# श्राद्धक्रियाकौमुदी।




कविकङ्कणाचार्य्य

श्रीगोविन्दानन्दविरचिता

एसियाटीकसोसाइटीनामिकायाः सभाया

अनुमत्या

भट्टपल्लीनिवासिना

श्रीकमलकृष्णस्मृतिभूषणेन

संस्कृता।

---

कलिकाता-राजधान्यां

श्रीउपेन्द्रनाथचक्रवर्त्तिना

संस्कृतयन्त्रे मुद्रिता।

एसियाटीकसोसाइटीनामिकया सभाया प्रकाशिता च।

---

१९०४ खृष्टाब्दे।

# PREFACE.

In the preface to the Varṣakriyā kaumudī I have said all that can be said about the life and time of the author Govindānanda Kavikankaṅācaryya. There I have tried to prove that the author wrote about 1540 A. D.

The present work is Śrāddha kaumudī, the third work of Govindānanda's code. The definition of Śrāddha as given by the author has been accepted by Śrī Kṛṣṇa Tarkālaṅkāra in his commentary on the Śrāddha viveka by Śūlapāṇi The great commentator sneers at Śūlapāṇi.

The writer seems to have been a more gifted person than Raghunandana who in his Malamāsa and Ahnika-tattvas quotes the author to support his own decisions.

Three Mss. have been used in preparing the manuscript copy for the press, two of them being Nos. I. B. 20 and III. G. 95 belong to the Asiatic Society and the third to a descendant of the author, Paṇḍit Kṣetra nāth Bhattacārjya of Ariadaha. One of the Society's manuscripts is exceptionally correct.

The descendants of the author still perform their religious ceremonies according to the directions given by the author in this work.

Kamal Kṛṣṇa Smṛtibhuṣaṇa

*The 7th October 1904.*

# श्राद्धक्रियाकौमुद्या विषयसूची।


| | पत्राङ्काः | पङ्क्त्यङ्काः। |
|---|---|---|
| अग्नौकरणम् ... ... ... | १४७ | १४ |
| अधिकारिनिर्णयः ... ... | ४४९ | १७ |
| अधिकारिनिर्णयसंक्षेपः ... ... | ४६२ | ११ |
| अध्वर्यूणां वृद्धिश्राद्धप्रयोगः ... ... | ५३१ | ७ |
| अनावश्यकश्राद्धकालाः ... ... | २९९ | १५ |
| अपकर्षकालाः ... ... ... | २५५ | ९ |
| अमावस्या ... ... ... | ३२३ | ८ |
| अम्बुघटश्राद्धम् ... ... ... | ३९१ | ३ |
| असंयुक्तश्राद्धपक्षः ... ... | २८१ | १ |
| अष्टका ... ... ... | ३५४ | १८ |
| आद्यैकोद्दिष्टश्राद्धप्रयोगः ... ... | ३९९ | ११ |
| आवश्यकश्राद्धकालाः ... ... | २५२ | ८ |
| उत्सर्गप्रयोगसंक्षेपः ... ... | ७४ | १५ |
| एकोद्दिष्टपरिपाटी ... ... | ३८० | १२ |
| एकोद्दिष्टम् ... ... ... | ३३६ | ४ |
| काम्यश्राद्धकालाः ... ... | २९७ | १ |
| गन्धः ... ... ... | १२१ | ३ |

| | पत्राङ्काः | पङ्क्त्यङ्काः |
|---|---|---|
| गन्धादिदानम् ... ... ... | १३८ | ४ |
| ग्रन्थकृद्वन्दनापरिचयौ ... ... | १ | १ |
| जीवत्पितृकश्राद्धनिरूपणम् ... ... | ५५१ | २० |
| दीपः ... ... ... | १४४ | १६ |
| धूपः ... ... ... | १४४ | १ |
| नवान्नम् ... ... ... | २६० | १० |
| नित्यश्राद्धम् ... ... ... | ५५६ | १० |
| निषिद्धफलानि ... ... | १८ | १ |
| पात्रनिरूपणम् ... ... ... | १२६ | ४ |
| पुष्पाणि ... ... ... | १४१ | १२ |
| पृथिपोत्सवः ... ... ... | २८५ | ११ |
| प्रेतक्रियाधिकारिनिर्णयः ... ... | ४६२ | ११ |
| वृद्धिश्राद्धम् ... ... ... | ४८३ | १६ |
| भोजनविधिः ... ... | २६८ | १ |
| मघात्रयोदशी ... ... ... | २७० | १७ |
| मातृपूजावसुधाराप्रयोगः ... ... | ५२८ | ११ |
| मृताहाज्ञाने दिननिरूपणम् ... | ४७७ | १८ |
| यजुषां पार्वणश्राद्धप्रयोगः ... ... | २२७ | १ |
| वस्त्राणि ... ... ... | १४५ | ११ |
| वाजसनेयिनां श्राद्धक्रमसंक्षेपः ... | ३२५ | १२ |
| विहितफलानि ... ... ... | १७ | १ |

| | पत्राङ्काः | पङ्क्त्यङ्काः। |
|---|---|---|
| शस्त्रहतचतुर्दशी ... ... | २८२ | १ |
| शेषभोजनेपरिसंख्यानिरूपणम् ... | २२० | १० |
| श्राद्धदिनकृत्यम् ... ... | ८६ | १ |
| श्राद्धदेवाः ... ... ... | ५६ | ८ |
| श्राद्धपरिभाषा ... ... ... | ४२,१५।२२४-१ | |
| श्राद्धपूर्व्वदिनकृत्यम् ... ... | ७६ | १५ |
| श्राद्धवर्ज्ज्यानि ... ... ... | २१ | ४ |
| श्राद्धवेला ... ... ... | ३०५ | ७ |
| श्राद्धसमयकृत्यम् ... ... | १०८ | १३ |
| श्राद्धस्नानम् ... ... ... | १०२ | १ |
| श्राद्धस्वरूपनिरूपणम् ... ... | २ | ५ |
| श्राद्धेऽपसारणीयाः ... ... | १०५ | ११ |
| श्राद्धे हविर्द्रव्याणि ... ... | ११ | १ |
| सपिण्डनकालनिर्णयः ... ... | ४४६ | ८ |
| सपिण्डनप्रयोगः ... ... | ४४५ | ६ |
| सपिण्डनश्राद्धम् ... ... | ४१७ | १ |
| सपिण्डनाधिकारिणः ... ... | ४६४ | ८ |
| सामगानां वृद्धिश्राद्धप्रयोगः ... ... | ५३१ | ५ |
| सामगानां श्राद्धक्रमसंक्षेपः ... ... | २५१ | १ |
| सांवत्सरिकश्राद्धप्रयोगः ... ... | ४०६ | ३ |

# ऋषिनामानि।

---


अङ्गिरा: २९६,६। २५८,८। २६८,२।

आपस्तम्ब: ८,५।२५,१७।८५,३। १००,३। १५२,१५।२१५,१।२७२, ६।४७६,१०।

उशना २६,१४।१०७,१८।४२१,१६।४४४,२०।

ऋष्यशृङ्ग: १०७,१।२७१,१८।४५२,१९।४५६,२।४८०,१२।

कात्यायन: २८,१४।४२,११। ५९,१२। १२५.१०। १८२,५। १८३,६, १८९,३। १९२,१२। १९५,१। १९७,५। १९३,१। १९९,९। २५६, १०।२९८,१२।३२९,५।३५२,१६।४९२,८।

कार्ष्णाजिनि: २१,२।११७,१४।१६०,७।२८२,२।५५७,६।

कुथुमि: २४९,९।

गार्ग्य: २९४,४।२९९,१५।

गौतम: १२४,११।३१७,१७।४५८,१८।४६१,१६।

गोभिल: ८,१८।१४,१५। ३६,१७।४४,१२। ४७,१६। ५०,१६।६२,८। ६६,१७।६८,६,१५।७०,३,१९।७१,८। ७६,१२।९१,१,१२। ९०, ९।९६,१४। १२०,२१। १२३,१-१३-१५। १२४,१३,१४। १२५,९। १२९,७। १३७,१८। १३९,५। १४८,६,१८। १५१,५। १५४,११। १६२,७।१६७,१८,१०। १६८,१९। १५२,५,८।१७२,३। १७३,८ १७८, २०। १७९,१७,१८। १८३,२,६। १८४,१,१८। १८६,१०।

१८७,१२।१८८,१८। १९०,१०।१९३,१४। १९४,११।१९५,१२।
१९७,१६।१९९,९,१२।२१२,१४।२१४,२१।३३३,१२। ३३६,९।
३५३,१४। ३६१,१९। ३७५,१८। ३८५,६। ३८७,८। ३८९,१२।
३९७,२। ४१७,२। ४१८,१६। ४२१,१७। ४२९,१२। ४३५,२०।
४८३,१७।४९६,१२।५०६,१९।५१३,१८।५१४,१८।
छागलेय: २९६,१।
जातूकर्ण्यः २८३,१।
जाबाल: ७३,१२। २८२,२०।३५४,२।१९८,१८।४७१,१०।४७४,१५।
देवल: १३,४। १५,१९। २०,३। २१,८। २२,२१। ४३,१६। ५३,१०।
५९,६।७७,४। ८१,७। ९६,१०। ९९,११। १०४,१२। १०७,४।
१०८,१४।१०९,१५।११०,३-१५।१४७,६।१५९,२०। १६१,११।
१८०,९। १८१,९। १८९,१९। २०६,१९। २१३,१। २१६,१४।
२१८,१९।२५३,१।३०७,१५।३१५,१३।३१६,१२।
नारद: ४५६,४।
पराशर: ९८,१२।१०४,४।
पारस्कर: ४५,११। ६२,४। ६३,१६। ६४,२-६-१४। ६६,७। ८०,४।
८२, १६। ९३,१४। ९८,७। ११८,१-५। १२२,१९। १२५,२०।
१३१,१२-१६। १३३,४। १३४,३,९,२११। १३५,५। १३७,६,१८।
१३८,३।१३९,५।१४०,२१।१४८,८।१४९,३,१३,१४।१५०,१९।
१५४,११।१५६,१२।१६२,१। १७१,१८। १७५,१।१७९,१३,१६।
१८५,१४। १८६,२। १८९,६। २०१,१२। २०२,६। २१०,४।
२११,५-९। २१२,१४। २१४,२१। ३७५,१९। ३८१,१३। ३८५,६।

३८७,१४। ३८८,४। ३९४,२०। ३९६,४। ३९७,२। ४१७,२।
४१८,१६।४२१,१७।५१०,१५।५१२,१९।५५८,२१।

पैठीनसिः ९०,६। १५३,१३। १६४,२। ३५२,१०। ४२६,१२।४२९,४।
४६४,२०।

प्रचेताः २६,२०।३०,१२।६१,२१।३२८,१८।४७७,१८।

वृद्धगार्ग्यः ३२९,१२।

वृद्धशातातपः १५३,८।

बृहन्मनुः २९,४।११४,५।२९२,११।

बृहस्पतिः ५६.१०।७३,८।९१,१०।१२५,३।१७१,९।१७६,३।
२११,१६।२१७,१२।३४४,५। ३८४,४। ३९७,१। ४११,४।
४५०,६।४५५,४।४९१,३।४५२,२०।

वौधायनः ४५,१९।७९,१०।२६१,१७।३१७,५।

भरद्वाजः ४५७,१।

मनुः ३,१,१४।५,१५। ६,१४।७,१। १४,१८। २०,१५। ३४,२। ३८,६।
३९,८। ४०,१। ४४,७।५४,१२।८३,५,९।९४,४,१०।९७,६।
१०२, २। १०५,१२। १५०,२। १५३,४,११। १६४,७। १६९,२।
१७०,१। १७२,७। १७७,१३। १९०,१२। १९२,१६। २७१,१।
२७२,२।२७३,१९।२७५,१८।२०१,४। २१५,९।२२१,१२।
२२२,९। २५२, ५।२८६,१८। २९३,११।३०५,८। ३०७,८।
३१४,११-१४-१६।२०७,१३।
४५०,१०।४५५,७,१५।४५६,१९।४९१,१०।५३३,१६।

मरीचिः ९,१६।४८,१५।१००,९।२९२,१८।३४७,१९।४४९,१८।

मार्कण्डेय: ७९,१४।८३,९। १०१,४। ११३,१७।११७,२०।१४७,१३।
१६६,१७।१७९,५।१८०,१३।१८६,४।२१२,६।२१८,५। ३०२,३।
३३३,१४।३७८,१४,२१।३९८,११।४५७,९।४६१,२०।४६२,१३।
४६४,१० ।

यमः ३७,७।५७,१७।८०,७।८८,६।९६,२।१०२,८।१०३,७।१०४,१३।
१०६,८। १०९,६। ११०,९। १११,१४। १३६,२२। १३९,१।
१४९,१०। १५४,१६। १५५,१६। १५९,११। १६६,३,१०,१३।
१७०,७।२१६,३,१७।२२३,१४। २९४,७।३०६,१,५। ३०७,१०।
३४५,५।३६२,३।५५६,११ ।

याज्ञवल्क्यः ७,१२।१३,११। २१,५। ३४,१६। ३८,१९,२२। ७४,१२।
८८,१।९२,८।९३,११।१११,८।११२,८।११५,४।११७,१,१०,२०।
११९,५। १२२,७,९। १२८,१। १४८,१। १३४,३,७।१३५,११।
१३६,९। १३७,१,१८। १५६,१। १६०,४। १६१,१७। १६२,१ ।
१६५,१,७।१६६,९,१३।१७२,२। १८०,८। २०१,१४। २१२,१६।
२१३,४।२१६,१।२१९,२।२२१,४।२२२,७।३०५,३।२९८,९,१९।
३०८,४,५,११।३५२,४।३६८,१७।३८१,१४।३४२.१३।३८७,२१।
४२७,६। ४२९,११। ४४१,१३। ४५४,१। ४५६,१६। ४८९, १२।
४९७,९।५१८,११ ।

लघुहारीतः २६,११। ३२४,७। ३३५,२। ३४६,१७। ३५५,१५।
४२६,१७।४३८,१७।४६६,३।४७८,२२।४८२;१९।४९३,२१।

वसिष्ठः २४,१४।२९,४।३५,७।९४,१६।१५९,१५।२१७,६।

वाल्मीकिः ४५१,१९।

विष्णुः ४४,१। ४७,६। ५८,१६। ७३,१७। १००,१०। १०३,११।
१०५,८। १०७,१२,१५।११९,११।१४१,४,१८।१५३,३।१७७,३।
२२२,१४।२२२,८।२४७,१८। २५८,१८।२७१,६-१०। २८०,१२।
२८३,४।२८४,१३। २८८,७-१६।३३८,१५। ३४६,४। ३४८,१३।
३७१,५। ३७६,१६। ३८१,११। ४३५,२०। ४३८,३। ४५४,१४।
४८४,४।५५४,१३।५५५,८।
वैजवापः ७,२०।६३,१३।६६,७।१५२,१८।४१८,८।
व्याघ्रः ३५०,१४,१५।४७१,२२।
व्यासः ८१,७।८८,१५।१५०,११,१८।३४७,१०।४५२,१३।४५६,१२।
शङ्खटः ३१६,४।
शङ्खः १८,१४,।५२,२१। ५८,४। ६३,२१। ६४,६। ६६,७। १०८,८।
१४४,७-१७।१४०,१०। १६०,८। १६८,१२। १७४,६। २७०,४।
२७१,१५। २८०,८।२८४,१०-१८। २२३,१४।३१०,३। ४३४,५।
३३८,८। ३४५,१०। ५४४,४। ४५३,१। ४५६,७। ४७२,६ २२।
४७,२,४।४८४,२१।
शातातपः ४२,१६।५३,१३। १७०,१६। १७१,१५।२६५,८। ३११,८।
३१४,१८। ३१७,१४। ३४६,१६। ३५१,८। ३६८,३। ३६०,१।
३८१,६२०। ३८२,१६। ४१७,११। ४१८,१७। ४२१,१५-२१।
४२२,४-१३।४८५,२०।४८२,१५।५०८,१८।५०१,१५।५०६,११।
शौनकः ३५२,१९ १३५,१५-१६। १३६,१५। १३७,१। १५२,२०।
४८८,१७।५१८,१४।
सत्यव्रतः २८,२०।८८,१८।३४८,१७।४३८,१८।

हारीत: ५,८। ६,४। १६,६। २३,४। ३२,१३। ३५,८। ४५,१६।४६,३। ४८,१७। ४९,१२। ८२,१९। ८६,१६। ८८,१२।१०१,११।१०८,३। ११२,१२। २२३,२। २२८,१२। २५०,८। २५९,१७। २६२,१०। २६२,१२। २६७,३। २६८,१६। ४२७,१९। ४२९,६,२०। ४३१,८। ४३७,१२।४४२,३,१५।४५०,१४।४६४ १५।४६५.१४।४८२,१४। ५०७ २०।५५२,१,८।

---

## पुराणनामानि ।

अग्निपुराणम् ११६,१४।१८७,२,३।२००,१४।२०१,१९।२०३,७,८। २०४,४।२६०,१५।

आग्नेयम् २१०,७.२७०,१५।

आदिपुराणम् २६.८। १९०,८।२९२,७।२९३,१२। ३२७,६।३३६,८। ३३९,१। ३६६,२१। ३७८,६। ४५१,१६। ४५७,२०। ४५८,३। ४५९,३।४६०,३।५५६,१४।

आदित्यपुराणम् १८,१२ ।२१८,४।

कालिकापुराणम् १३.२०।१०५,७।१४५,३।१४६,१३।१५६,१८।

काशीखण्डम् २२५,३।३९७,८।५५८,१८।

कूर्मपुराणम् १२ ८।१९,१७।१८,१४।७६,६।७७,१८।८३,११।१४२, २०।१६०,१८।२६७,६।२६९,१८।२९९,६।४६७,५।४९०,८।

गरुड़पुराणम् ५३,१६। ५४,५। ८३,१७। ११६,६। ११९,८। १२३,४। १२४,१८।१२९,११। १३२,७। १३८,१६ १९।१४१ ३।१४८,१४।

१५५,४।१६२,१८।१६५,१०। १६६,१५,२०।१६९,१८।१७८,३।
१८४,११। १९२,१। १९७,४। १९९,१९। २०६,४। २११,४।
३१९,१४।३४६,८।३७३,२०।३८९,१४। ५६०,४।
गारुडम् ११३,२०।१५५,२०। १५७,३,१७।१६३,४,७,१४। १७२,१।
१८०,१७। १९१,३। १९२,१। १९३,८। २०४,५। २१०,१०।
३८९,२०।
दानधर्मः १६०,१५।२९७,४।
देवीपुराणम् २६८,१९। २७६,४। २८४,५। २८७,५। २९२,१४।
३५६,१५।
नरसिंहपुराणम् १००,१९।१४६,१८।
नारदीयम् ७९,३।८३,१३।१६९,१५।१७२,१२।
पद्मपुराणम् ९२,१।१४२,३।२९९,११।४७८,१२।
बृहन्नारदीयपुराणम् ७८,१६। ८८,१। ११३,१२। ३०७,७। ३३८,४।
३२५,२०।
ब्रह्मपुराणम् ८,१।१६,१७। २३,२०।२४,१।२५,३। २८,४। ३०,२२।
३४,१५। ४६,१२। ५८,१३। ५९,१८। ६१,५। ६५,१३।६६,७।
७१,६। ७२,१०-१४। ८४,१४। ९४,१९। ९९,४। १०४,१।
११०,१३। ११२,१४। ११४,७ ११७,१७। ११९,१६। १२२,५।
१२६,१३।१३०,१४।१३३,४-८-१२। १३४,८।१३८,३। १४०,३।
१४१,७-१३।१४४,३। १४५,१२।१४७,१। १५१,१५।१५४,१,३।
१५९,२०।१६१,१० १८ १६३,१२,१६। १६४,२१। १६७,१०।
१६८,१८।१७०१३।१७१,२,१२।१७४,१-१९।१७६,५।१७८,१४।

१८१,१ १९ । १८२,१६ । १८४,१७ । १८६,१९ । १८८,३,७।
१८९,८-१३ । १९१,१-११ । १९५,१ । १९६,१९ । १९७,१०।
२१५,१७। २१७,९। २५५,१८। २५७,९। २५८,१५। २६०,२०।
२६१,१४। २६३,१९।२६६,१२। २६७,८। २७१,१९। २८०,२।
२८१,२।२८५,२०।२९१,१०।२९६,११।३००,१२,१४।३०२,६।
३०३,६।३०४,८।३०५,१४।३०९,१६।३११,२ ३१३,४।३१४,१।
३१७,२०। ३२७,२।३३८,१४। ३४३,३। ३४४,१०। ३५१,१३।
३६६,१७। ३७०,४। ३७१,८।३७५,१२-२१।३८२,१।३९०,११।
३९१,१। ४१८,१०। ४१९,८। ४२०,५। ४२२,१७। ४२३,१६।
४२७,१२।४४४,१२। ४५३,१२। ४५५,१०। ४५७,८। ४७३,१६।
४९२,११। ४९३,८। ५०५,१७।५०८,९। ५१४,८। ५२०,१३।
५२२,१।५५७,४।
ब्रह्माण्डपुराणम् ८५,१४ ।
ब्राह्मम् १५,३।१७,२।१८,२।१९,५।२०,६।४२,४।४३,१०। ६४,१२।
७४,९। ८४,१९। ११२,१९। १२२,१९। १४१,१० । १४२,१०।
१४३,११०। १४४,९। १४८,१। १७२,१६ । १८७,७। २०३,८।
२०६,१०।२१०,१५।२१२,३।२२५,७।३०३,१७।
भविष्यपुराणम् ५,२०। ३०,९। ५७,१०।६६,३। ७५,२१। १३३,१५।
१५४,८। २६४,२० । २६८,१। २८३,१४ । २९१,४ । २९४,१।
३११,९ । ३६५,१२। ३८०,९। ३८१,१५। ३९६,१८। ३९७,४।
४३६,१८।४३७,२०।४८४,१५।५०९,५।५५८,१६।
भारतम् ३१९,२० ।

मत्स्यपुराणम् ११,२। २७,१४। २८,१। ३२,१४। ३५,१४। ४१,१६। ५९,१४। ८१,६-१२। ८४,५। ९८,१५। १०३,२-१४। ११८,२। १२२,११।१२६,३।१२७,१४। १२८,३-५। १३७,८,१३।१४२,९। १५०,३। १५२,११। १५३,७। १८६,१७। १९२,१७। १९४,३। १९६,१९। १९७,३। २०३,११। २०७ ६ २०८,७। २१२,१। २१४,८। २५२,१७।२५९,१२।३००,१९। ३०१,१३। ३०६,८। ३१२,१९,२२। ३१९,८। ३२६,९। ३३६,१६। ३३७,७। ३४६,१। ३५७,१।३६२,८। ३८१,१७।३८९,६,१४।३९८,४,१६।४२५,७। ४३४,१। ४३५,११। ४३६,४। ४७१,५-१७।४७४,१२।४८८,१०। ५१५,१।५५७,२१।

महाभारतम् १३,१४। १४,११। १५,१८। २१,१७। ९७,७। ९८,५। ११२,३।१३८,९।१६०,१२।२७२,१०।३८८,२।५०४,१५।

मात्स्यम् १६,१। २२,१९। १७२,२०। १७५,७। १८६,७।२०२,११। २०७,६। २१५,१४। २१६,१७। २१७,१७। ३४०,५। ३६७,२१। ३५९,२०।३८८,१७।३९३,८।४१९,३।५१८,९।

मार्कण्डेयपुराणम् ४६१,२०।४९४,६।५०१,१०।५१०,१३।

रामायणम् १२,१७। ८१,१९। ३४०,२०। ३७२,१४। ३८४,१८। ५५१,१९।

वनपर्व्व २७४,४।५२८,९।

वराहपुराणम् ७५,८।७६,१६।७९,१। ८१ १९। ८२,१५।१४०,१२। २८२,३।२७७,९।२८०,१२।२८१,८।२८४,३।३९५,८।

वामनपुराणम् ३९,१९।३६१,६।

वायुपुराणम् १२,३। १७,८। १८,१६ । २० १२ । २३,८ । ३३,१८।
४३,५ । ४७,१८। १०१,११ । ११३.२ । १०८,६ । ११६,११।
१४०,१६।१६८,१० । १८०,२। २०४,३। २५४,१७। २५७,२०।
२८२,२।३०३,१४।३११,१२।३१३,१३।

वाराहम् १७१,७।२८२.११ ।

विष्णुपुराणम् ७,८।१०,११।१८,८।२२,८।४३,१३।५४,३।
५५,१५,१७।८०,१। ८४,११। ८८,२।८३,६ । ८८,२। १००,१३।
१०१,१५। १०६,२।११३,५। १२७,१७। १४७,११ । १६७,४।
१७३,३।१७४,१०।१८०१८।२००,७।२०३,१।२१३,८।२१७,२०।
२४३,१।२६४,३।२५२,१५।२५३,६। २६४,३।२६५,६। ३०३,८।
३०४,३,४। ३०८,८। ३३७,१२। ३४८,३। ३६३,१०।३८१,१८।
४६०,८ । ४८७,८। ४८०,१२ । ४८६,२२। ५००,१४। ५०१,५।
५१०,५ ।

स्कन्दपुराणम् ३८,४।१००,११।१४३.४।३१०,१४,१६।

हरिवंशम् ४८१,१४।५२८,८।


---

## संग्रहकारनामानि ।


अनिरुद्धः ७१,४।११५,१५।१३०,११।१३८,१३।१४८,११। १६८,२०।
३७४,११।३८८,१।३८०,३।५५८,७।

अपिपालः ५६,६।३८८,२।

कल्पतरुकारः ५५,१५।१५३,१।२५९,१६ ३७२,९।४१९,१६।
कुल्लूकभट्टः २०७,१८।
गौड़वृद्धः २९५,१५।
गौड़मैथिल-संग्रहकारः १६८,१९।
जिकनः ३५१,२।
दाक्षिणात्यः २४,१९।
नारायणोपाध्यायः ४१८,२१।४२७,२१।४३५,३।४९९,१३।
परिशिष्टकारः ५१ २०।
पाश्चात्यः १६४,९।
वृद्धः ४२८,१२।४३१,२१।४५२,८।
भट्टपादः २१९,८।
भाष्यकारः ३८८,११।
भोजराजः ४८०,१।
मैथिलः ९,१९।५९,९।७१,३।८६,१४। ११५,२०। १२९,१। १७४,२१।
१९३,१७।१९९,८।२०३,१९। २६७,३।२७६,१८। ३९३,३,१२।
३१७,९।३२२,९।३२४,८।३६९,७।३८५,१५।३८१,११।४१८,१।
४९५,३।
शूलपाणिः ३१,३।७१,४।१३८,१२।३७४,११।३९०,१६।५५९,७।
श्राद्धप्रदीपकारः १६८,१०।
स्मार्त्तः ५७,२। ६७,१९। ८५,२०। ९२,२० । ११६,१ । ११९,११।
१२३,१२। १३०,१०। १३७,१४। १३८,१०।१५४,५। १५७,१५।
१४९,११।१६२ १८।१६४,१२।१६८,२०।१७९,१५।१८५,६,१६।

१८८,६।२८५,१६। ३०५,१३ । ३१०,७। ३८०,१६ । ४२२,८।
४२७,१७।४७४,५।५०४,८।५१४,१३।५५८,७।
रत्नाकरः ५८,६।४०४,५।
रुद्रधरोपाध्यायः ११५, १०।११६,८।
वाचस्पतिमिश्रः ४५२,३।
हलायुधः १३८,१०,१४।३८८,१।४१८,१७।४२७,२०।४८३,१७।
हेमाद्रिः ५२,१८ ।

---

## संग्रहग्रन्थनामानि ।

कल्पतरुः ४,१।८५,५।१३८,७।१५७,१५।२८८,६।३५५,६।३८०,११।
३८४,७।४२७,२०।४८३,१६।५१८,२१।
कामधेनुः २६१,८।२६४,२०।३२८,५।
कालविवेकः ३२७,१७।
कृत्यचिन्तामणिः ४८८,५।
क्रियाकौमुदी ५५८,८।
दानकौमुदी ३४०,४।५२८,१०।
निर्णयामृतः ४५३,१३।४७५,१२।४८०,८.५०८,५।
पशुपतिनिबन्धः ५०३,२०।
पारिजातः १३८,१३।३८८,२।४७४,५।
पितृदयिता ५०३,२०।
भट्टभाष्यम् १६८,२०।१७८,१८।

मदनपारिजातम् ३२७,१०।४८०,६।
रत्नाकरः ४७४,५।
राजमार्त्तण्डः ५९,५ ४८०,१।४९०,१।४८८,१।
वर्षकौमुदी ३२३,६।३४२,२।३४८,४।४४०,८।४८३,१५।
श्राद्धचिन्तामणिः १६३,१३।१८५,१४।२६२,२।।२६५,१।२७९,१८।
२८६,२।३१९,६। ३४३,५। ३५४,१५। ३८२,१४। ४३१,२।
४५३,१४।४५०,१२।४५७,१४।४७५,१२।४७९,१४।
श्राद्धभाष्यम् ५९,४।
श्राद्धविवेकः ५४,१८।८१,१८। ८५,४। २२३,८। २६४,७। २८४,१३।
२८६,४।२८८,६। ३१९,१२। ३५६,४। ३८७,१८। ४३२,१७।
४५३,१५।४५७,१७।४७५,१२।४८२,२।४८३,१६।
षट्त्रिंशन्मतम् १४६,४।
संवत्सरप्रदीपः ५९,४।३००,१५।
समयप्रकाशः २८४,१६।३५९,८।४८२,१।
स्मृतिः ४७७,६।४७८,५।

## अन्यान्यग्रन्थनामानि ।

अमरकोषः २५,११।१४५,२।१९८,५।२७५,४।३६८,४।३७७,१२।
आश्वलायनः ५७,२०।७०,७।९४,१। १११,८। ११७,१३। १२७,१०।
१२७,१४।३७०,१७।३७४,१६।
आश्वलायनसूत्रम् ५०८,।५१५,१०।

आश्वलायनपरिशिष्टम् २७४,३।३८२,१५ ।

गृह्यपरिशिष्टम् ४८,७।७६,१२।१२४,१-१६। १४५,१८ । १८८,१७। २८३,६ । ३१५,५। ३१६,१८। ४८२,१७। ४८३,१। ४८४,१८। ५०३,१३।

छन्दोगपरिशिष्टम् ११,१७। ४०,१८। ४३,१।४६,७। ४८,८। ५१,१ । ५२,७।५५,१।६८,६।७१,१४।८३,३।९०,१२।९१,१५।९३,१७ । ९६,१८।९७,१४।१२४,५।१२५,७।१२८,१४।१३१,९।१३२,१३। १४०,५। १५०,८। १५१,८,१७। १५५,११। १५८,५।१६५,१३। १८२,१५।१८३,१६। १८५,१०।१८७,१४।१९२,४-७।१९४,१७। २६१,३। २०३,१४। २०४,१६। २०५,३। २१३,१७। २१८,१५। २५६,७।२५७,३। २५८,१३।२५९,३।२६१,३।२२३,९।२२५,३। ३३७,२०।३५८,३।३६७,१४।४२४,३।४३८,६।४३२,३।४३३,१। ४७५,४। ४८४,१।४८४,१०।४९५,२।४९६,६।५०१,२१।५०८,६। ५११,६।५१६,४।५३३,३।५५१,११।५५७,१।५५९,११।

ज्योतिषम् २६२,२० । २६४,१२,१८ । ३०६,२० । ३२० ५,११। ३२२,१४।

तैत्तिरीयशाखा १५२,१५।

त्रिकाण्डशेषः २३,११ ।

निगमः २५४,९ ।

निगमपरिशिष्टम् ५३,४।३१७,१ ।

परिशिष्टम् ५१,२०।१६८,५।१८२,१९।१९७,१।२०३,२२।२०४,२०। २०५,२०।२०९,२२।२११,१२। २९५,१०।३४५,१८। ३५२,२०।

३५४,१४। ३५८,११।४२८,१६। ४४४,१५। ४६६,११।४८५,५। ४८८,१। ४८३,११। ४८५,१६। ५०५,१४। ५०६,३। ५११,५। ५५२,१३।

परिशिष्टप्रकाशः ३३३,१७।

पारस्करगृह्यम् १२४,१५।१२४,२।

ब्रह्मसिद्धान्तः २४१,१६।

मिताक्षरा १६५,१८।१८७,१८।

मैत्रावरुणीयपरिशिष्टम् ४७,११।

याज्ञपार्श्वपरिशिष्टम् ५२,१४।५५४,८।५५५,१।

रुद्रयामलः २६६,६।

लौगाक्षिः ३११,१।

वराहसंहिता २६२,८।

विष्णुधर्मः २६२,७।२४१,१२।२४२,१४।२४८,२०।२६०,१०।

विष्णुधर्मोत्तरम् ४८,५। ५४,७।५५,८। १७७,१। २५६,५।२५८,१८। २७२,१२। २७४,१। २७८,३। २८१,१५। २८४,१३। २८५,१। २८७,१।३०३,२०।३१६,११,१४,१६।३२०,१०।३६५,१२।

विष्णुसूत्रम् ६१,१६।३७१,१२।४२६,६।

वैखानसगृह्यम् १५२,१८।

शब्दार्थकारिकाभाष्यम् ६१,१।

श्रुतिः ९१,८।१६६,७।२६०,१२।३१०,८।३१८,२।५५७,११।

सायनभाष्यम् ३८८,७।

सूर्यसिद्धान्तः ५८,३।२८५,२०।३०१,८।३४२,१७।

# श्राद्धक्रियाकौमुदीधृतव्यवस्थापकवचनानां वर्णानुसारेण सूचिपत्रम् ।

## अ


| | पत्राङ्काः । पङ्क्त्यङ्काः । |
|---|---|
| अज्ञाताध्ययनश्चैव ... | ...२२,१०।२६४,१ |
| अज्ञात्वा मालयागन्तु ... | ... ५०१,१७ |
| अज्ञात्वा मण्डलं ये तु ... | ... १४७,८ |
| अक्षुब्धो निभृतः सुस्थः ... | ... ७७,५ |
| अक्रोधनैः शौचपरैः ... | ... ८१,४।२२८,६ |
| अक्षताभिः सपुष्पाभिः ... | ... १०३,१८ |
| अक्षय्यं वाचयेत् पित्र्याम् ... | ... २०६,१८ |
| अक्षय्यावीरगोत्रं नः ... | ... २२६,१४ |
| अक्षय्योदकदानञ्च ... | ...२०५,४।५१३,७ |
| अगच्छन् स्त्रियमाप्नोति ... | ... १२०,४ |
| अगतेऽपि रवौ कन्याम् ... | ... २८२,२१ |
| अग्निराधिकवस्त्रश्च ... | ... १४६,११ |
| अग्निदग्धास्तथाचम्य ... | ... २२६,५ |
| अग्निहोत्रं गवालम्भम् ... | ... २५६,१८ |
| अग्नौकरणमेवन्तु ... | १४८,८।१५४,१७।१५५,१७ |
| अग्नौ वा कव्यहोमश्च ... | ... १५१,१८ |

| | | पत्राङ्काः । पङ्क्त्यङ्काः । |
|---|---|---|
| अग्नौ तु हुजुयात् पिण्डं | ... | ... २१६,८ |
| अग्न्यभावे तु विप्रस्य | ... | ... १५०,४। |
| अङ्गादङ्गात् सम्भवति | ... | ... ५५६,२० |
| अग्रगाः सर्व्वेषु वेदेषु | ... | ... ३४,१७ |
| अग्रभागांस्ततस्तेभ्यः | ... | ... १०४,४ |
| अजेन सर्व्वलोहेन | ... | १५,१७।२७३,१३ |
| अटव्यः पर्व्वताः पुण्याः | ... | ... १०४,२० |
| अत ऊर्द्धं च कन्यायाः | ... | ... ५८,१।२८६,६ |
| अत्रासहमिति ब्रुयात् | ... | ... १११,१ |
| अत्यम्लमतिलवणं | ... | ... १६,१४ |
| अथेन्दुराद्ये प्रहरेऽवतिष्ठते | ... | ... २२८,११ |
| अथ कश्चित् प्रमादेन | ... | ... २८६,१८ |
| अथ धर्मान्तु तान् ज्ञात्वा | ... | ... १७६,८ |
| अथ पत्रपुटे दत्वा | ... | ... १२७,७ |
| अथ तेनैव विधिना | ... | ... ४२२,१८ |
| अथार्घ्यभोज्यपिण्डादौ | ... | ... १२६,८ |
| अदत्तायान्तु यो जातः | ... | ... ४५५,११ |
| अध्येतव्यं नचान्येन | ... | ... ७६,१ |
| अध्वनीनो भवेदश्वः | ... | ... ८८,१८ |
| अनड्वम्मं यद्दत्तं | ... | ... १४५,१५ |
| अनस्तर्गर्भिणं मासं | ... | ५१,२।१२८,१५ |
| अनतीतद्विवर्षन्तु | ... | ... २६८,३ |

| | पत्राङ्काः। पङ्क्त्यङ्काः। |
|---|---|
| अनर्हः कर्म्मणां विप्रः ... ... | ४८४,५ |
| अनामिकायाः प्रथमं ... ... | ५२,५ |
| अनुज्ञाप्य ततः प्राप्य ... ... | ८४,१२ |
| अनेन विधिना श्राद्धं ... | २५२,१८/२५३,२ |
| अन्नमिष्टं हविष्यञ्च ... ... | १६०,५ |
| अन्नन्तु सदधिक्षीरं ... ... | ११,२ |
| अन्नप्राशे च सीमन्ते ... ... | ४९०,९ |
| अन्नं मधुमयं कृत्वा ... ... | १६६,४ |
| अन्नं कुम्भञ्च दातव्यं ... ... | २६७,१ |
| अन्नमादाय तृप्ताःस्थ ... ... | १८०,६ |
| अन्नं प्रवर्द्धतां नित्यं ... | २०९,१५/४१६,१ |
| अन्नेन,वा यथाशक्ति ... ... | २५१,७ |
| अन्यदेशगता पत्नी ... ... | २१५,१८ |
| अन्यायाधिगतां दत्वा ... ... | २२२,१५ |
| अन्यायोपात्तवित्तेन ... ... | २२२,१८ |
| अन्यत्राप्येष एव स्यात् ... | १२१,१/२०१,२१ |
| अन्वष्टका-गया-वृद्धि- ... | २७०,५/४९४,१९ |
| अन्वष्टका पितृणान्तु ... ... | २५७,२१ |
| अन्वष्टकायां वृद्धौ च ... ... | ६५,२ |
| अपत्नीकः प्रवासी च ... ... | २८,१७ |
| अपराह्णद्वयगामि- ... ... | २३५,२१ |
| अपराह्णे च संप्राप्ते ... ... | ३१२,१ |

पत्राङ्काः। पङ्क्त्यङ्काः।

अपसव्यक्रमाद्दत्तं ... ... ४५,७
अपसव्येन वा कार्य्यः ... ... १५१,२०
अपि नः स कुले जायात् ... २७१,२।२७२,११
अपि वा भोजयेदेकं ... ... ८४,१८
अपुत्रायां मृतायान्तु ... ४२८,२।४६४,१८
अप्येकं प्लावयेत् पिण्डं ... ... २११,४
अप्येकं भोजयेच्छ्राद्धे ... ... ५५६,१५
अब्दमम्बुघटं दद्यात् ... ... ३४८,१०
अभिरम्यतां विसर्गे स्यात् ... ... ३७८,५
अमङ्गलं तदग्रेषु ... ... १२६,१०
अमावस्या यदा मैत्र- ... ... १०,१२
अमावस्या यदा पुष्ये ... ... १०,१४
अमावस्यादिनियतं ... ... २८,१८
अमावस्याष्टमे भागे ... १२२,१८।१२३,६
अमावस्याष्टका वृद्धिः ... ... ७,१३
अमावस्यां चयो यस्य ... ... ४७६,८
अमावस्यां यत् क्रियते ... ... ६,१
अमावस्यान्तु यो मर्त्त्यः ... ... १००,१२
अमृताय च यद्दत्तं ... ... १६०,१२
अयनद्वितये श्राद्धं ... ... ३००,६
अयमेव विधिः प्रोक्तः ... ... ७५,८।३७७,८
अर्घ्यदानेऽप्यसंकल्पे ... ...६२,५।५१२,२०

| | पत्राङ्काः। पङ्क्त्यङ्काः। |
| --- | --- |
| अर्घ्यञ्च ताभ्यामुत्सृज्य ... | ... १२८,८ |
| अर्घ्यपुष्पैस्तथा धूपैः ... | ... ४२३,३ |
| अर्घ्यपात्राणि पिण्डानां ... | ... २१०,१६ |
| अर्घ्यं तेनैव विधिना ... | ... ४२०,१२ |
| अर्घ्यार्थं पितृपात्रेषु ... | ... ४३५,१६ |
| अर्घ्येऽक्ष्य्योदके चैव ... | ७१,१२।५१२,११ |
| अर्चर्याः पुष्पैश्च गन्धैश्च ... | ... १३०,१८ |
| अर्द्धं भुङ्क्ते तु यो विप्रः ... | ... १७०,१७ |
| अर्व्वाक् संवत्सराद्वृद्धौ | २५१,१८।२६०,२।३८२,१८।४६८,१ |
| अर्व्वाक्संवत्सराद्यस्य ... | २६०,१६।२६८,१८ |
| अर्व्वाक् संवत्सराज्ज्येष्ठः ... | ३४७,८।४५३,१४ |
| अवनेजनवत् पिण्डान् ... | ... ५१६,२१ |
| अवनेजनात्रपितरः ... | ... २५१,१६ |
| अवकाशेषु चोक्षेषु ... | ... १०२,५ |
| अवजिघ्रेच्च तान् पिण्डान् ... | ... २०१,५ |
| अविभक्ता विभक्ता वा ... | ...२८०,१०।४५३,२ |
| अशून्यन्तु वरं कुर्य्यात् ... | ... ५१,१८ |
| अश्राद्धियानि धान्यानि ... | ... २१,१८ |
| अश्रूणि पातयेच्चैव ... | ... १६१,१२ |
| अश्वयुक्कृष्णपक्षे तु ... | ... २८१,३ |
| अश्विन्यादि च सैन्नेषु ... | ... २६६,४ |
| अष्टवर्षा तु या दत्ता ... | ... २६,६ |

| | | पत्राङ्काः । पङ्क्त्यङ्काः । |
|---|---|---|
| अष्टका माघ्यभ्युदयाः | ... | ... २६६,१६।६,५ |
| अष्टकासु च कर्त्तव्यं | ... | २५८,१७।२६३,१५ |
| अष्टमेऽंशे चतुर्दश्याः | ... | ... ३२८,१२ |
| अष्टौ संस्कारकर्म्माणि | ... | ... ४८८,६ |
| असकृद्यानि कर्म्माणि | ... | ... ५२३,३ |
| असगोत्रः सगोत्रो वा | ... | ... ४५१,८ |
| असपिण्डीकृतं प्रेतं | ... | ३६६,१४।३८८,२१३८८,४ |
| असमर्थोऽन्नदानस्य | ... | ... २५३,८ |
| असङ्क्रान्तेऽपि कर्त्तव्यं | ... | ... ३५०,६ |
| असंस्कृतप्रमीतानां | ... | १७५,१७,२७५,१८ |
| असंस्कृतौ न संस्कार्य्यौ | ... | ७५,८।३६७,१२।४३२,३ |
| अस्तङ्गते तथादित्ये | ... | ८१,१८।२२८,६ |
| अस्तङ्गते ततः सूर्य्ये | ... | ... २१७,१० |
| अस्विन्नमुक्ते ब्राह्मणास्तु | ... | ... २१२,४ |
| अस्नातस्तु प्रमाणार्हः | ... | ... १००,२० |
| अहन्यहनि यत्कार्य्यं | ... | ... ३८६,१७ |
| अहन्येकादशे नाम | ... | ३५८,१८।४८८,८ |
| अहिंसा सत्यमक्रोधः | ... | ... ८८,५ |
| अह्नो मुहूर्त्ता विख्याताः | ... | ... ३०६,१३ |
| अह्नः पञ्चदशांशः | ... | ... ३०६,२१ |

---

| | | पत्राङ्काः। पङ्क्त्यङ्काः। |
|---|---|---|
| आ। | | |
| आग्रहायण्यमावस्या | ... | ... ३२८,१४ |
| आचम्योदक् परावृत्य | ... | ... १८३,१७ |
| आचान्तेषूदकं दद्यात् | ... | ... २०४,४ |
| आज्यं विना यथा तैलं | ... | ... ४५५,५ |
| आग्रहायण्यामतीतायां | ... | ... २५६,४ |
| आतपार्थं ततः छत्रम् | ... | ... ३८२,११ |
| आत्मनो देशकालानां | ... | ... २६,१५ |
| आद्यावसाने श्राद्धस्य | ... | २२४,१४।१८८,५ |
| आधानहोमयोश्चैव | ... | ... ५२१,१२ |
| आनन्त्याय भवेद्दत्तं | ... | ... १५,२० |
| आनन्त्यात् कुलधर्म्माणां | ... | २२२,१६।२५०,१६ |
| आपद्यनग्नौ तीर्थे च | ... | ... २६,२१ |
| आपादसेचनात् पूर्व्वं | ... | ... ५४,२ |
| आपः क्षीरं कुशाग्राणि | ... | ... १३३,१६ |
| आमश्राद्धं यदा कुर्य्यात् | ... | ... १४८,६ |
| आम्रमाम्रातकं बिल्वं | ... | ... १७,३ |
| आमं शूद्रस्य पक्वान्नं | ... | ... ३२,२२ |
| आमश्राद्धप्रदोऽनग्निः | ... | ... २८,११ |
| आयसेन तु पात्रेण | ... | ... १५४,९ |
| आयुष्मन्तं सुतं सूते | ... | ... २१५,१२ |
| आयुष्याणि च शान्त्यर्थं | ... | ... ५०२,७ |

| | | |
| --- | --- | --- |
| | पत्राङ्काः । | पङ्क्त्यङ्काः । |
| अष्टका माघ्यभ्युदयाः | ... | ... २६६,१६।६,५ |
| अष्टकासु च कर्त्तव्यं | ... | २५८,१७।२६३,१५ |
| अष्टमेऽंशे चतुर्दश्याः | ... | ... ३२८,१२ |
| अष्टौ संस्कारकर्म्माणि | ... | ... ४९९,६ |
| असत्क्रियाणि कर्म्माणि | ... | ... ५२३,२ |
| असगोत्रः सगोत्रो वा | ... | ... ४५१,९ |
| असपिण्डीकृतं प्रेतं | ... | ३६६,१४।३९८,२१३९९,४ |
| असमर्थोऽन्नदानस्य | ... | ... २५३,९ |
| असङ्क्रान्तेऽपि कर्त्तव्यं | ... | ... ३५०,६ |
| असंस्कृतप्रमीतानां | ... | १७५,१७.२७५,१९ |
| असंस्कृतौ न संस्कार्यौ | ... | ७५,९।३६७,१२।४४२,३ |
| अस्तङ्गते तथादित्ये | ... | ८१,१८।२२९,६ |
| अस्तङ्गते ततः सूर्य्ये | ... | ... २१७,१० |
| अस्थिलुप्ते ब्राह्मणानाम् | ... | ... २१२,४ |
| अस्यास्तु पुमान्नार्हः | ... | ... १००,२० |
| अहन्यहनि यच्छ्राद्धं | ... | ... ३९६,१७ |
| अहन्येकादशे नाम | ... | ३५८,१८।४८८,९ |
| अहिंसा सत्यमक्रोधः | ... | ... ९९,५ |
| अहो मुहूर्त्ता विख्याताः | ... | ... ३०६,१२ |
| अह्नः पञ्चदशांशः | ... | ... ३०६,२१ |

| | पत्राङ्काः। पङ्क्त्यङ्काः। |
|---|---|
| **आ।** | |
| आग्रहायण्यामावस्या … … | ३२८,१४ |
| आचम्योदक् परावृत्य … … | १८३,१० |
| आचान्तेषूदकं दद्यात् … … | २०४,४ |
| आज्यं विना यथा तैलं … … | ४५५,५ |
| आग्रहायण्यामतीतायां … … | २५६,४ |
| आतपार्थं ततः छत्रम् … … | ३८३,११ |
| आत्मनो देशकालानां … … | २६,१५ |
| आद्यावसाने श्राद्धस्य … | ११४,१४।१८८,५ |
| आधानहोमयोश्चैव … … | ५२३,१२ |
| आनन्त्याय भवेद्दत्तं … … | १५,२० |
| आनन्त्यात् कुलधर्माणां … | ३२२,१६।१५०,१६ |
| आपद्यनन्तो तीर्थे च … … | २६,२१ |
| आपादसेचनात् पूर्वं … … | ५४,२ |
| आपः क्षीरं कुशाग्राणि … … | १३३,१६ |
| आमश्राद्धं यदा कुर्यात् … … | १४८,६ |
| आम्रमाम्रातकं बिल्वं … … | १७,६ |
| आमं शूद्रस्य पक्वान्नं … … | ३२,२२ |
| आमश्राद्धप्रदोऽनग्निः … … | २८,११ |
| आयसेन तु पात्रेण … … | १५४,८ |
| आयुष्मन्तं सुतं सूते … … | २१५,१२ |
| आयुष्याणि च काम्यर्थं … … | ५०२,७ |

| | | पत्राङ्काः। पङ्क्त्यङ्काः। |
| --- | --- | --- |
| आयुः प्रजा धनं धान्यं | ... | ... ७५,१२ |
| आर्पक्रमेण सर्व्वं तु | ... | ... ७६,७ |
| आरण्यमहिषीक्षीरं | ... | ... १२,७ |
| आरण्यमाहिषच्छागं | ... | ... १३,१ |
| आरभेत नवैः पात्रैः | ... | ... १०२,१५ |
| आरभ्य कुतपे श्राद्धं | ... | ... ३१७,१५ |
| आवर्त्तनात्तु पूर्व्वाह्णः | ... | ... ३१०,११ |
| आविकं वै सदा वस्त्रं | ... | ... १४६,७ |
| आविकेन तु वस्त्रेण | ... | ... १४६,५ |
| आहृत्य प्राणमायम्य | ... | ... १९४,१८ |
| आश्वयुज्याश्च कृष्णायां | ... | ... २७४,८ |
| आषाढ़स्यापि दशमी | ... | ... ३०४,१७ |
| आषाढ़ीमवधिं कृत्वा | ... | ... २८३,२ |
| आसनाद्यर्घ्यपर्य्यन्तं | ... | ... ६९,२ |
| आसनेषु च कूर्मेषु | ... | ... ८४,८ |
| आसनं कुतपं दद्यात् | ... | ... ११०,२० |
| आसीन ऊर्द्धः प्रह्वो वा | ... | ... ५०५,१२ |
| आसीरन् दक्षिणासंस्थाः | ... | ... २११,१७ |
| आसु श्राद्धं द्विजः कुर्य्यात् | .. | ... २५५,४ |
| आस्येषु तिपचानां | ... | ... ९,२१ |
| आहुतित्रितयं दद्यात् | ... | ... १५१,१४ |
| आहूय मन्त्रतस्तेषु | ... | ८५,२।१२२,१४ |

| | पत्राङ्काः । | पङ्क्त्यङ्काः । |
|---|---|---|
| उपवीतो ततः कुर्यात् ... | ... | १४०,११ |
| उपवेश्य जपेद्धीमान् ... | ... | ११४,८ |
| उपह्वरनितम्बेषु ... | ... | २७२,२० |
| उपक्रियमधीतस्य ... | ... | १४६,१६ |
| उभयोर्हस्तयोर्युक्तं ... | ... | १५८,१० |
| उभौ हस्तौ समौ कृत्वा ... | | ८४,१५।११४,१८ |
| उष्णमन्नं द्विजातिभ्यः ... | ... | १६०,१० |

ऊ ।

| | | |
|---|---|---|
| ऊचुः सुस्वदितं विप्राः ... | | १६६,१६।२७१,९ |
| ऊर्ध्वं पिण्डार्चनं पिण्डे ... | ... | २२६,१२ |
| ऊर्ध्वं मुहूर्त्तात्कुतपात् ... | ... | २१३,१४ |
| ऊषरे कृमिसंयुक्ते ... | ... | १०५,८ |

ऋ ।

| | | |
|---|---|---|
| ऋत्विक् पुत्रो गुरुर्भ्राता ... | ... | ३२,१ |

ए ।

| | | |
|---|---|---|
| एकपाकेन वसतां ... | ... | ४५२,२१ |
| एकवासा यदश्नीयात् . | ... | १०१,८ |
| एकमूर्त्तित्वमायाति .. | | ४२७,१०।४२१,११ |
| एकशफोऽर्धचन्द्र्य | ... | १५,१४ |
| एकं पवित्रमेकोऽर्घ्यः . | ... | १९३,९ |

| | पत्राङ्काः। पङ्क्त्यङ्काः। |
|---|---|
| एकादशाहे निर्वर्त्त्ये | ३५४,१२।३५८,४ |
| एकाह्नेन तु षण्मासाः | ३३८,२ |
| एकोद्दिष्टन्तु कर्त्तव्यं | २८,१६।४५१,७ |
| एकोद्दिष्टन्तु यच्छ्राद्धं | ५७,८।३८१,१६ |
| एकोद्दिष्टस्य पिण्डे तु | ७०,८।७६,११।३७०,१८।३८१,१८ |
| एकोद्दिष्टस्य शेषन्तु | ३८१,१२ |
| एकोद्दिष्टं जले पिण्डं | ४४५,४ |
| एकोद्दिष्टं दैवहीनं | ३८७,२० |
| एकोद्दिष्टं परित्यज्य | ४७१,१४ |
| एकोद्दिष्टं न कुर्व्वीत | ४४४,२१ |
| एतच्चानुपनीतोऽपि | २७,१५।२५८,११।३२४,८ |
| एतद्वः पितरो वासः | ७२,७।१८१,१७।३७५,११ |
| एतद्वो ह्यनमित्युक्ता | ५८,१७।६५,१५।१६३,११ |
| एतानेव हि हिंसन्ति | २८२,७।३८८,६ |
| एता युगाद्याः कथिताः | ३०२,१६ |
| एतांस्तु श्राद्धकालान् वै | २५२,१२।३००,१ |
| एवमासाद्य तत्सर्व्वं | १०३,१७ |
| एवं शूद्रोऽपि सामान्यं | २८,२।२२,१५ |

---

ऐ।

| | |
|---|---|
| ऐङ्गुदं वदरोन्मिश्रं | ४११,२१ |
| ऐन्द्र्यान्तु प्रथमायां वै | २५७,११ |

| | पत्राङ्काः पङ्क्त्यङ्काः। |
| --- | --- |
| **ओं।** | |
| ॐकारं पूर्व्वमुच्चार्य्य ... | ११५,५।१६५,५ |
| **क।** | |
| कदलीदलस्य चापि ... ... | १५४,२ |
| कदाचिन्नाहरेद्विद्वान् ... ... | ४९,२ |
| कन्यापुनर्विवाहेषु ... ... | ४८७,१० |
| कन्यास्थे च रवावपि ... ... | २७६,५ |
| कन्यायां कृष्णपक्षे तु ... ... | २८४,३ |
| कन्यां गते सवितरि ... | २८३,१५।२८५,१६ |
| कमलं पद्मकुमुदं ... ... | १४२,१५ |
| कव्यं दद्यात्तु सायाह्ने ... ... | ३०७,५ |
| कर्पूरं नागरञ्चैव ... ... | १८,२१ |
| कर्म्मकाले प्रकुर्व्वीत ... ... | ५३,१ |
| कर्म्मनिष्ठास्तपोनिष्ठाः ... ... | ३५,१ |
| कर्म्मण्यथाभ्युदयिके ... ... | ४९३,५ |
| कर्म्मादिषु च सर्व्वेषु ... ... | ५०२,१ |
| कर्पूरसमन्वितं मुक्ता ... | ९३,१८।२५९,५।४७५,३ |
| कसेरुः कोविदारश्च ... ... | १७,१२ |
| काङ्क्षन्तः पुत्रपौत्रेभ्यः ... ... | २७४,१२ |
| कामं याचेऽर्च्चयेन्मित्रं ... ... | ४१,१० |
| कार्त्तिकं सकलं वापि ... ... | २९०,१३ |

| | | |
|---|---|---|
| | | पत्राङ्काः पङ्क्त्यङ्काः। |
| कार्त्तिकी फाल्गुनी चैत्री | ... | ... २०४,१८ |
| कार्य्यं श्राद्धममावस्यां | ... | २२७,५।२२२,१३ |
| कालशाकं दधिक्षीरं | ... | ... १८,१७ |
| कालशाकं महाशल्काः | ... | ... १४,१८ |
| काशाः कुशा बल्वजाश्च | ... | ... ४६,१६ |
| कुक्कुटो विड्वराहश्च | ... | ... १०६,८ |
| कुड्यलग्नांवसोर्धारां | ... | ... ५०२,५ |
| कुप्यभागी भवेच्छर्त्तः | ... | ... २८७,१५ |
| कुब्जकं तगरश्चैव | ... | ... १४२,१३ |
| कुर्य्यात् पुंसवनं सुयोगकरणे | ... | ... ३२२,२ |
| कुलद्वयेऽपि चोत्पन्ने | ... | ... ५६०,१४ |
| कुलालचक्रनिष्पन्नं | ... | ... ८७,१५ |
| कुशानां धारयेन्मूलं | ... | ... ५२,१० |
| कुष्ठी रक्तोच्चयः कुनः | ... | ... ४२,८ |
| कुष्माण्डालाबुवार्त्ताकु- | ... | ... २१,८ |
| कृतञ्च लवणं सर्व्वं | ... | ... २१,११ |
| कृते सपिण्डीकरणे | ... | ... २६०,११ |
| कृत्तिकादिभरण्यन्तं | ... | ... २८८,५ |
| कृत्वा पितामहादिभ्यः | ... | ... ४२३,१ |
| कृत्वा स्वधावाचनकं | - | ... २०७,७ |
| कृषिजीवी श्लीपदी च | ... | ... ४०,१५ |
| कृषिभागी भवेच्छ्राद्धं | ... | ... २८७,११ |

| | | पत्राङ्काः पङ्क्त्यङ्काः। |
|---|---|---|
| कृष्णपक्षापराह्णे तु | ... | ... ३२५,७ |
| कृष्णपक्षे दशम्यादौ | ... | ६,१८।९,८।२८६,१७ |
| कृष्णपक्षे यवश्राद्धं | ... | ... २६४,२१ |
| कृष्णमाषास्तिलाश्चैव | ... | ... १२,२।२१,८ |
| कृष्णाजिनस्य सान्निध्यं | ... | ... ११३,२ |
| कृष्णाजाजीं विडङ्गञ्च | ... | ... २२,१ |
| क्षत्रादिः सूतकान्ते तु | ... | ... २२६,१५ |
| क्षत्रियैस्तु मृगव्यायां | ... | ... १६,७ |
| क्षयं केचिदुपात्तस्य | ... | ... २६५,१२ |
| क्षात्रेण कर्मणा जीवेत् | ... | ... २२२,४ |
| क्षीरमेकशफानां यत् | ... | ... १२,११ |
| क्रतुर्दक्षो वसुः सत्यः | ... | ... ५६;११ |
| क्रीणीयाद्यस्त्वपत्यार्थं | ... | ... ४५५,१६ |

ख।

| | | |
|---|---|---|
| खड्गः काशः कुशिः शिवी | ... | ... १०६,१७ |

ग

| | | |
|---|---|---|
| गङ्गायाञ्च गयायाञ्च | ... | ... २६९,१९ |
| गच्छन् देशान्तरं यस्तु | ... | ... २६८,२ |
| गणशः क्रियमाणेषु | ... | ... ५२६,९ |
| गते वयसि हृष्टानि | ... | ... १८६,१ |

| | पत्राङ्काः। | पङ्क्त्यङ्काः। |
|---|---|---|
| घृतं न केवलं कुर्यात् | ... | १४४,५ |
| घ्राणेन विट्वराहश्च | ... | १०६,१२ |

च।

| | | |
|---|---|---|
| चक्रवत्परिवर्त्तेत | ... | ४३८,२६ |
| चण्डालश्च वराहश्च | ... | १०५,१२ |
| " | ... | १६८,५ |
| चण्डालाग्नेरमेध्याग्नेः | ... | २७,३ |
| चण्डालो जायते यज्ञ— | ... | २१,६ |
| चतुर्थस्य पुनः कार्यं | ... | ४३६,१ |
| चतुर्थे नवमे चैव | ... | ५७,१५ |
| चतुर्थे पञ्चमे चैव | ... | ३४५,६ |
| चतुर्दश्यान्तु यच्छ्राद्धं | ... | २८४,५ |
| चतुर्भिर्दर्भपत्रैश्च | ... | ५२,२ |
| चतुर्भ्यश्चार्घपात्रेभ्यः | ... | ४२०,६ |
| चन्दनागुरुणी चोभे | ... | १४४,३ |
| चन्द्रक्षयाहःपूर्व्वेद्युः | ... | ७८,१४ |
| चान्द्रायणं नवश्राद्धे | ... | ३४५,११ |
| चान्द्रः शुक्लादिदर्शान्तः | ... | ३४१,१४ |
| चिकित्सकान् देवलकान् | ... | ४०,२ |
| चितौ दर्भाः पथि दर्भाः | ... | ४८,१२ |

| | पत्राङ्काः। पङ्क्त्यङ्काः। |
|---|---|
| **ज।** | |
| जपेच पौरुषं सूक्तं ... ... | १०२,१२ |
| जवादिकुसुमं भिण्टी ... ... | १४३,१२ |
| जलं क्षीरं दधि घृतं ... ... | १२३,१२ |
| जातकर्मणि यच्छ्राद्धं ... ... | ४२८,१६ |
| जातयाचे [illegible] दद्यात्तु ... ... | २६,१० |
| जातीचम्पककुन्दानि ... ... | १४२,११ |
| जातीदर्शनमात्रेण ... ... | १४२,१८ |
| जुहुयात् व्यञ्जनचार— ... ... | १४७,१२ |
| ज्ञातीनाञ्च भवेच्छ्रेष्ठः ... ... | २८७,१९ |
| ज्येष्ठोऽसरवान् युग्मान् ... ... | १२२,१५ |
| ज्यैष्ठ्यञ्च वृषसंक्रान्त्यां ... ... | २०४,१ |
| **त।** | |
| तथापि दैवरहितं ... ... | ३८०,१२ |
| तत आचामयेदिमान् ... ... | २०३,८ |
| तत एकादशाहे तु ... ... | ३४०,७ |
| ततः पितामहादिभ्यः ... ... | ४२०,१० |
| ततः पितृत्वमाप्नः ... | ...३८२,८।४२५,४ |
| ततः प्रभृति वै प्रेतः ... | ३१९,८।३६२,११ |
| ततः प्रभृति पितरः ... | ३०१,२।३२५,१६ |
| ततः प्रभृति संक्रान्तौ | ३००,१५।३२७,५।३४५,२०।३५८,२१ |

| | पत्राङ्काः। पङ्क्त्यङ्काः। |
|---|---|
| ततः प्रातः समुत्थाय ... ... | ८८,२ |
| ततः सिद्धिमिति प्रोच्य ... ... | १११,१५ |
| ततस्तानयतः स्थिला ... ... | २१४,८ |
| ततस्तिलान् गृह्ले तस्मिन् ... ... | १२०,५ |
| ततस्तु वैश्वदेवाभ्यां ... ... | २१७,२१ |
| ततः स्नात्वा निवृत्तेभ्यः ... ... | १०८,१ |
| तत आचामयेद्विप्रान् ... ... | २०३,८ |
| ततो ज्ञातिषु भुक्तेषु ... ... | २१८,१ |
| ततो दक्षिणपूर्व्वस्यां ... ... | १८१,२ |
| ततो द्वादशभिर्मासैः ... ... | ३४३,१ |
| ततो नित्यक्रियां कुर्य्यात् ... ... | २१८,६ |
| ततोऽनिवृत्ते मध्याह्ने ... ... | १०८,१७ |
| ततोऽन्नं बहुसंस्कारं ... ... | १०८,१५ |
| ततोऽन्नं मृष्टमत्यर्थं ... | ८८,२०।१६७,२ |
| ततो मन्त्रं जपेन्मौनी ... ... | ११८,१० |
| ततो यज्ञीयवृक्षोत्थ— ... ... | १२०,१५ |
| ततो वृषिकमायाते ... ... | २८३,१७ |
| तत्र ते पितरः पूर्व्वे ... ... | ३२५,१८ |
| तत्रापि महती पूजा ... ... | २७६,७ |
| तत्राप्यसामर्थ्ययुतः ... ... | २५३,११ |
| तत्राष्टमो मुहूर्त्तो यः ... ... | ३१७,२० |
| तथान्नानि देयानि ... ... | ११०,१४ |

| | | | पत्राङ्काः पङ्क्त्यङ्काः। |
|---|---|---|---|
| तुलसीगन्धमाघ्राय | ... | ... | १४३,५ |
| तुलादि षड्शीत्यंशे | ... | ... | २८६,२ |
| तुल्यांशुजालसम्पर्कात् | ... | ... | ३०१,११ |
| तूष्णीमेताः क्रियाः स्त्रीणां | ... | ... | ४८७,८ |
| तूष्णीं पृथगपो दत्वा | ... | | ६८,४।१२२,११ |
| तृतीयश्च-जन्मर्क्षं | ... | ... | ११८,२१ |
| तृतीया चैव माघस्य | ... | ... | ३०४,१५ |
| तेभ्यश्च पैतृकः पिण्डः | ... | ... | ४२७,१२ |
| तेभ्यः पूर्व्वतरा येच | ... | ... | ४८१,२ |
| तेभ्यो दद्यादपोशानं | ... | ... | १६७,८ |
| तेषु दर्भेषु तं हस्तं | ... | ... | १८४,४ |
| तैलमुद्वर्त्तनञ्चैव | ... | ... | १०८,१८ |
| त्रयाणामाश्रमाणाञ्च | ... | ... | ४४४,१३ |
| त्रयोदशी नभस्ये या | ... | ... | २७२,२१ |
| त्रयोदश्यां प्रयत्नेन | ... | ... | २६६,११ |
| त्रयोदश्यां भाद्रपदे | ... | | ३००,१०।३०३,१८ |
| त्रिपिबं त्विन्द्रियक्षीणं | ... | ... | १४,१ |
| त्रिभिर्दर्भैः कृतं यत्तु | ... | ... | ५२,११ |
| त्रिभिः सपिण्डीकरणैः | ... | ... | ४२५,१८ |
| त्रिमुहूर्त्तापि कर्त्तव्या | ... | | ३१८,८।३३५,२ |
| त्रिमङ्कुर्व्वैरौद्राश्च— | ... | ... | ४२,१ |
| त्रिष्वप्येतेषु युग्मांस्तु | ... | ... | ५०७,१४ |

| | पत्राङ्काः । पङ्क्त्यङ्काः । |
|---|---|
| दर्भाः कृष्णाजिनं मन्त्राः ... ... | ४८,८ |
| दर्भाः पवित्रमित्युक्तं ... ... | ५१,४ |
| दर्भांयैवासने दद्यात् ... | ११७,१५।५५७,७ |
| दर्शश्राद्धन्तु यत्प्रोक्तं ... ... | ३१४,२० |
| दर्शे तु माघमासस्य ... ... | १०३,११,१८ |
| दशां विवर्जयेत् प्राज्ञः ... ... | १४५,१ |
| दारुणं चौरगं रौद्रं ... ... | ३२०,६ |
| दारुणेषु च सर्व्वेषु ... ... | ३२०,१ |
| दिनत्रयाधिके विंशे ... ... | २६२,२१ |
| दिवसस्याष्टमे भागे ... | ३१२,११।३१७,१२ |
| दिव्यभौमान्तरीक्षाणि ... ... | २८५,१४ |
| दीपमालाय कर्त्तव्याः ... ... | २८१,११ |
| दुर्गन्धिफेनिलक्षाम्बु ... ... | १०१,१२ |
| दुहिता पुत्रवत् कुर्यात् ... ... | ४५७,२ |
| देये पितॄणां श्राद्धे तु ... ... | ४८०,१३ |
| देवानां नमसा कार्य्यं ... | ३०३,२।१०४,११ |
| देवाद्यन्तं तदीहेत ... ... | ५४,१५ |
| दैवे युग्मान् यथाशक्ति ... ... | ८२,८ |
| दैवे कर्म्मणि पैत्रे च ... ... | ८७,५ |
| दैवे वा यदि वा पैत्रे ... ... | १०८,४ |
| दौहित्रैर्व्वा नरश्रेष्ठ ... ... | ५००,१३ |
| द्वादशाभीष्टमानस्य ... ... | २८७,१५ |

| | पत्राङ्काः। पङ्क्त्यङ्काः। |
|---|---|
| द्वादश प्रतिमास्यानि ... ... | २१८,६ |
| द्वादशाहेन वा कुर्य्यात् ... ... | २५४,२० |
| द्वादश्यान्तु सिते पक्षे ... ... | २८२,१२ |
| द्विगुणांस्तु कुशान् दत्त्वा ... | १११,७।११७,८ |
| द्विजाङ्गुष्ठं गृहीत्वा तु ... ... | १२२,४ |
| द्वितीयादिकयुग्मानां ... ... | ३१७,२ |
| द्वितीयेऽहनि भाण्डानां ... ... | २२५,८ |
| द्विःखिन्नं परिदग्धञ्च ... ... | २४,२ |
| द्वे शुक्ले द्वे तथा कृष्णे ... ... | १०३,२१ |
| द्वौ दैवे प्राक् त्रयः पित्र्ये ... ... | ९२,११।११२,९ |
| द्वौ दैवे पितृकृत्ये त्रीन् ... ... | ९४,११ |
| द्वौ मासौ मत्स्यमांसेन ... ... | ११,५ |

ध।

| | |
|---|---|
| धनं विद्यां भिषक्- ... ... | २९९,२ |
| धानाश्च मधुसंयुक्ताः ... ... | २०,४ |
| धूपार्थं गुग्गुलं दद्यात् ... ... | १४४,८ |
| धौताधौतं तथा दग्धं ... ... | १४६,९ |

न।

| | |
|---|---|
| न कदाचित् सगोत्राय ... ... | ३०,२२ |
| न कुतश्चित् पता ... ... | १२२,१६ |

| | पत्राङ्काः श्लोकाङ्काः। |
|---|---|
| नक्ताहृतमनुत्सृष्टं ... ... | १०१,१६ |
| नचत्वं देवदेवेश ... ... | २१६;२ |
| नचचे न च कुर्व्वीत ... ... | ३१८,२१ |
| न च द्विजातयो ब्रुयु: ... ... | १७०,२ |
| नचाग्न्यु जपेत्किञ्चित् ... ... | ५१६,८ |
| न जानाति दिनं यस्तु ... ... | ४७८,१४ |
| न तदश्नन्ति पितरः ... ... | १६८,११ |
| न दगायन्यिकेनैव ... ... | ५२५,१५ |
| न निर्वपति यः श्राद्धं ... ... | ३२७,७ |
| नन्दायां भार्गवदिने ... | २६४,१६।१२०,१५ |
| न पृथक् पिण्डदानन्तु ... | ३५१,२०।३६०,४ |
| न पैतृयज्ञीयो होमः ... ... | ७,२ |
| नवम्यां कुर्व्वतः श्राद्धं ... ... | २८७,१२ |
| नवम्यां शुक्लपक्षस्य ... ... | ३०३,८ |
| न वह्निर्जागुरुत्ववया: ... ... | १७१,१२ |
| न ब्रह्मचारिण: कुर्यु: ... ... | ३१,५ |
| न ब्राह्मणं परीक्षेत ... ... | ३४,७ |
| न भिन्नभाण्डे भुञ्जीत ... ... | १५३,१२ |
| न मिश्रीकृत्य दद्यात्तु ... ... | १४५,८ |
| न म्लेच्छविषये श्राद्धं ... ... | १०५,१० |
| नमेऽस्ति वित्तं न धनं ... ... | २५३,१८ |
| न योषिद्भ्यः पृथग्दद्यात् ... ... | ४८४,८ |

| | पत्राङ्काः । पङ्क्त्यङ्काः । |
| --- | --- |
| न रक्तमुल्वणं वासः | १४६,१८ |
| नवान्नं नैव नन्दायां | २६४,१३ |
| नवान्नालभने दैवे | ५८,१६ |
| नवोदके नवान्ने च | २६५,११ |
| न श्राद्धे भोजयेन्मित्रं | ४१,६ |
| न सन्ति पितरश्चेति | २८१,५ |
| न स्त्रीशूद्रापहस्तेन | १७१,१० |
| न स्वधाञ्च प्रयुञ्जीत | २७१,१६ |
| नात्रापसव्यकरणं | ४०६,११ |
| नाद्यादविधिना मांसं | २२०,८ |
| नानिष्ट्वा तु पितॄन् श्राद्धैः | ५७,४८५,२१ |
| नान्दीमुखं पितृगणं | ३७१,१५ |
| नान्दीमुखानां कुर्वीत | ५१८,११ |
| नान्दीमुखानां कर्त्तव्यं | ५०८,१० |
| नाष्टकासु भवेच्छ्राद्धं | ५२१,१८ |
| नान्दीमुखास्त्वमूर्त्ताःस्युः | ३१६,११ |
| नाम्रोचितं स्पृशेत्किञ्चित् | ३३,१७।४२,६ |
| नासपिण्डाग्निमान् पुत्रः | ३५४,३ |
| नारङ्गञ्च सखर्जुरं | १७,२ |
| नाध्यात् परतरः कालः | २८०,१६ |
| नास्त्रमापातयेज्जातु | १६१,५ |
| नित्यनैमित्तिकं कुर्यात् | ३४४,३ |

पत्राङ्काः । पङ्क्त्यङ्काः ।

नित्यश्राद्धं देवहीनं ... ... १८७,८
नित्यश्राद्धमदैवं स्यात् ... ५,८।३८६,१८।४२७,१२।५५८,२
नित्यश्राद्धमहोमं स्यात् ... ... १८७,५
निधायाथ दर्भचयं ... ... ८८,१६
निपातो नहि सव्यस्य ... ... ५०६,८
निमन्त्रणं स्वागतञ्च ... २२५,१३।२५१,२
निमन्त्रयीत त्र्यवरान् ... ... ८३,६
निमन्त्रयीत पूर्व्वेद्युः ... ७८,३।१५।८३,१०
निमन्त्रयेद्द्विजं प्राज्ञं ... ... ८३,१४
निमन्त्रितश्चिरं नैव ... ... ८८,७
नियोजयेत् यतीन् ... ... १४१,१८
निरङ्कुशन्तु यच्छ्राद्धं ... ... ८८,१२
निरामिषं सकृद्भुक्ता ... ... ७१,७
निरूप्य चतुरः पिण्डान् ... ४२१,१२।४२२,१४
निर्दशं मलिनं जीर्णं ... ... १४६,१४
निवृत्ते पितृयज्ञे तु ... ... २१६,१५
निहत्य प्रणिपत्याथ ... ... २१७,१८
निषेककाले सोमे च ... ... ४८४,१६
निहन्मि सर्व्वमित्यादिः ... ... १८१,२०
नीलग्रीवो रक्तशिराः ... ... १४,३
नीवीमध्ये च ये दर्भाः ... ... ४८,१७
नीवीं विस्रंस्य च जपेत् ... ... १८५,१५

| | पत्राङ्काः। | पङ्क्त्यङ्काः। |
|---|---|---|
| पद्मबिल्वार्कधुस्तुर— | ... | १४२,७ |
| पयोमूलफलैः शाकैः | ... | ८,२ |
| परकीयगृहे यस्तु | ... | १०४,२ |
| परदारेषु जायेते | ... | ३८,८ |
| परपूर्व्वापतिःस्तेनः | ... | ४१,१८ |
| परमान्नेन यो दद्यात् | ... | १३,१५ |
| परिवेषयेत् प्रयतो गुणान् | | १५८,१६।१६४,८ |
| परिप्लुते प्रदद्यात्तु | ... | १०८,१ |
| पवित्रान्तर्हितान् पिण्डान् | | २०१,८।२१०,१।२११,१३ |
| पश्चाच्च वैश्वदेवाख्यान् | ... | २११,८ |
| पश्चाद्विसर्ज्जयेद्देवान् | ... | २११,५ |
| पाकादि न प्रशंसेरन् | ... | १६८,१६ |
| पाणिप्रक्षालनं दत्त्वा | ... | ११७,२ |
| पाणिप्रक्षालनं दद्यात् | ... | १११,५ |
| पाणिभ्यामूपसंगृह्य | ... | १५८,८ |
| पात्रे तु मृण्मये यस्तु | ... | २५३,८ |
| पात्रं वनस्पतिमयं | ... | १२६,११ |
| पानीयमप्यत्र तिलैः | ... | १००,१५ |
| पापिष्ठमपि शूद्रेण | ... | ४३२,५ |
| पारक्ये भूमिभागे च | ... | १०४,१४ |
| पार्व्वणेन विधानेन | ... | ५८,६ |
| पार्व्वणेषु तु सर्व्वेषु | ... | ३८८,३ |

| | पत्राङ्काः। पङ्क्त्यङ्काः। |
|---|---|
| पालाशे ब्रह्मवर्चसी ... ... | १२७,१ |
| पिञ्जल्यादाभिसंस्थ्य ... ... | १८२,१२ |
| पिण्डनिर्वपणं कार्यं ... ... | ४७,७ |
| पिण्डानां मासिकं श्राद्धं ... ... | ३२४,१८ |
| पिण्डार्थे ये स्तृता दर्भाः ... ... | ४८,८ |
| पिण्डान्वाहार्य्यकं श्राद्धं ... | ३२३,१०।३२४,१६ |
| पिण्डांश्च गोऽजविप्रेभ्यः ... | ११६,२।४०५,१४ |
| पिण्डेभ्यः स्वल्पिकां मात्रां ... ... | ३२६,१७ |
| पिण्डैर्मातामहांस्तत्र ... ... | २०१,२ |
| पितरः क्षिप्रमायान्ति ... ... | १७४,१८ |
| पितरः पर्व्वकालेषु ... ... | २५५,६ |
| पितरो यत्र पूज्यन्ते ... | ८३,१२।५००,४ |
| पिता पितामहश्चैव ... | १७३,३।२४२,८ |
| पिता पितामहो भ्राता ... ... | ३५७,१८ |
| पितामहः पितुः पश्चात् ... ... | ४३३,२ |
| पितामहे सजीवे वै ... ... | ४३४,६ |
| पिता यस्य तु हतःस्यात् ... ... | ७४,७ |
| पितुः पितामहे यद्वत् ... ... | ४३१,१७ |
| पितुः पुत्रेण कर्त्तव्या ... ... | ४५६,८ |
| पितुः सपिण्डतां कृत्वा ... ... | २५२,१५ |
| पितृयज्ञन्तु निर्वर्त्त्य ... ... | ६,१५ |
| पितृतीर्थेन सतिलान् ... ... | २००,१० |

| | पत्राङ्काः। पङ्क्त्यङ्काः। |
|---|---|
| पितृतीर्थेन तत्तोयं ... ... | १२१,१ |
| पितृपात्रे निधायाथ ... ... | ३८८,५ |
| पितृभ्यः प्रथमं भक्त्या ... ... | २०३,४ |
| पितृभ्यश्च ततो दद्यात् ... ... | १६४,१७ |
| पितृभ्योऽथ मनुष्येभ्यः ... ... | २१८,१६ |
| पितृयज्ञन्तु निर्वर्त्य ... | ६,१५।३८८,१८ |
| पितॄनर्चयन् प्रतिपदि ... ... | २८७,४ |
| पितॄनेवाग्रयेत्तत्र ... ... | ४१७,१६ |
| पितॄन् निमन्त्रयेत् पादौ ... | ५३,१८।५४,४ |
| पितॄन् सन्तर्प्य विधिवत् ... ... | २१८,२ |
| पित्रदानाय मूले स्युः ... ... | २५४,१८ |
| पित्रादित्रयपत्नीस्तु ... ... | ३१०,१४ |
| पित्रादिनवदैवत्यं ... ... | २७०,१६ |
| पित्रे यः पङ्क्तिमूर्द्धन्यः ... | १५०,८।१५५,८ |
| पिप्पलीं मरिचञ्चैव ... ... | १८,१८ |
| पिप्पलीं मरिचं हिङ्गुं ... ... | १८,१२ |
| पुत्रमायुर्धनं धान्यं ... ... | २८२,५ |
| पुत्राः कुर्व्वन्ति विप्राय ... ... | ३७८,८ |
| पुनर्भोजनमध्वायं ... ... | ८८,१६ |
| पुनर्भोजनमध्वानं ... ... | ८८,१६ |
| पुराणवेत्ता धर्म्मज्ञः ... ... | ३५,१७ |
| पुरोरवो माद्रवाय ... ... | ५६,१६ |

| | | |
|---|---|---|
| | | पत्राङ्काः पङ्क्त्यङ्का । |
| पूजयित्वा द्विजाग्रयाणां | ... | ... ५५,१८ |
| पूर्वं निमन्त्रयेद्विप्रान् | ... | ५२,१७।८२,१८ |
| पूर्वाह्णे दैविकं श्राद्धं | ... | २११,०।५०८,१८ |
| पूर्वाह्णे मातृकं श्राद्धं | ... | ... १०८,१७ |
| पृथक् तयोः केचिदाहुः | ... | ... ८१,४ |
| पृथक् पृथक् चासनेषु | ... | ... ११२,१५ |
| पृथिवी ते पात्रमित्यत्र | ... | ... २,४।११,१८ |
| पैतृकं प्रथमं पात्रं | ... | ... ११६,२० |
| पौनर्भवश्च काणश्च | ... | ... ४०,८ |
| पौर्णमासी तथा माघी | ... | .... २६०,१ |
| पौषे चैत्रे चाश्वयुजे | ... | ... २६५,२ |
| प्रक्षाल्य विप्रपादांश्च | ... | ... ११३,११ |
| प्रतिपत्प्रभृतिष्वेतान् | ... | ... २८८,१० |
| प्रतिसंवत्सरश्चैव | ... | ... ३५२,३ |
| प्रतिसंवत्सरं कार्यं | ... | ... ३०८,११ |
| प्रत्यग्रमेकदा स्त्रियं | ... | ... २५,११।५७,१ |
| प्रत्यब्दं द्वादशे मासि | ... | ... ४३८,१८ |
| प्रथमं प्राङ्मुखो भूत्वा | ... | ... १०८,१२ |
| प्रथमेऽहनि यो दद्यात् | ... | ... ४५१,१४ |
| प्रदक्षिणन्तु देवानां | ... | ... ४५,२० |
| प्रदक्षिणमनुव्रज्य | ... | ... २१८,५ |
| प्रदानं यत्र यत्रैषां | ... | ... ४६८,२१ |

| | पत्राङ्काः। पङ्क्त्यङ्काः। |
|---|---|
| प्रेतश्राद्धेषु सर्व्वेषु | २७४,२।२८३,१६ |
| प्रेतसंस्कारकर्म्माणि | ३४६,२० |
| प्रेतानामिह सर्व्वेषां | ३६०,५ |
| प्रेते पितृत्वमापन्ने | ३६३,८ |
| प्रेष्यो ग्रामस्य राज्ञश्च | ४०,४ |
| प्रौष्ठपद्यामतीतायां | २७१,२०।२७२,११ |
| प्रौष्ठपद्याः परः पक्षः | २७७,१८।२८१,१८।२८७,२ |

फ।

| | |
|---|---|
| फलं तालतरूणाञ्च | १८,७ |

ब।

| | |
|---|---|
| बर्द्धमानाममावस्यां | ३१०,७ |
| बर्द्धमानेन्दुपक्षस्य | ३१७,६ |
| बलिं दद्याच्च विधिवत् | १८६,३ |
| बहिःप्रदक्षिणं कुर्य्यात् | २१४,११ |
| बहुत्वं वा स्वगोत्राणां | १२३,१८।१८८,१५।२०८,१८ |
| बह्वीनामेकपत्नीनां | ४६५,२ |
| बुधः शौचस्मृतेर्लुप्तः | २८६,१८ |
| बृहत्पत्रक्षुद्रपशु- | ५२५,१२ |
| बैल्वदेव्यां तृतीयायां | २५७,१० |
| ब्राह्मणे दक्षिणा देया | ५४,२१ |

पत्राङ्काः । पङ्क्त्यङ्काः ।

भिक्षार्थमागतान् वापि ... ... ३८,१५
भुक्तवत्सु ततस्तेषु ... ... १०५,८
भुञ्जानेषु तु विप्रेषु ... ... १०१,४
भूतविद्धाऽप्यमावस्या ... ... २२८,१०
भृतकाध्यापकः शूरः ... ... १८,६
भोजयेच्चापि दौहित्रं ... ... ९६,८
भ्राता वा भ्रातृपुत्रो वा ... १५५,१२।४६५,१८
भ्रातुर्भार्या स्वयञ्चैव ... ... ४१८,१८

म ।

मण्डलानि च कार्य्याणि ... ... १४७,२
मद्यपः स्वैरिणी चैव ... ... १००,२
मधुकं रामठञ्चैव ... ... १८,४
मधु चाज्यं अन्नं पुष्पं ... ... ४२१,१४
मध्याह्नव्यापिनी या तु ... ... ११८,४
मध्याह्ने सर्वदा यस्मात् ... ... १०६,१४
मध्ये चेदधिमासः स्यात् ... ... १४८,२१
मध्याह्नव्यापिनिर्मिश्रेण ... ... २०४,१४
मध्याह्नव्यापिसम्मिश्रे ... ... १८८,१८
मनसा निश्चयं कृत्वा ... ... ४३८,७
मन्वादिषु कर्तव्यं ... ... ४३८,९
मन्त्रिगुणस्य स्वामी च ... ... ३८१,३

पत्राङ्काः पङ्क्त्यङ्काः ।

मृतस्य न भवेद्वार्त्ता ... ... ४७८,६
मृताहनि च कर्त्तव्यं २०८,६।२४२,११ २७८,१।४४१,११
मृताहनि च कर्त्तव्याः ... ... ४६१,७
मृते पितरि पुत्रेण ... ... ४४८,१८
मृते पितरि यस्याथ ... ... ४२३,५
मृते पितरि वै पुत्रः ... ... २८७,१३

य ।

यक्ष्मी च पशुपालश्च ... ... ४०,६
यचोक्तं दृश्यमानेऽपि ... ... १२८,१०
यज्ञवास्तुनि मुष्टयाश्च ... ८०,१५।१८५,८
यज्ञोपवीतं यो दद्यात् ... ... १४०,१७
यत् किञ्चित् पच्यते गेहे ... ... २२३,१२
यत् किञ्चिन्मधुना मिश्रं ... ... ११,१४
यत्कृतं धनुषि श्राद्धं ... ... २६२,११
यतः कुतश्चित् संप्राप्य ... ... २४१,१५
यतिस्त्रिदण्डी करुणा ... ... २११,५
यत्तु भुङ्क्त्वा पुनर्भुङ्क्ते ... ... १७०,८
यत्र कुर्यात्तु विप्रेभ्यः ... ... १५०,१६
यत्र यत् क्रियते कर्म्म ... ... ३१,११
यत्र यत्र प्रदातव्यं ... ... ४७१,६
यथा चैवापरः पक्षः ... ... ३१५,१७

पत्राङ्काः । पङ्क्त्यङ्काः ।

यथासुखं यूयध्वं भोः ... ... १६६,१८
यथोक्तवस्तुसम्पत्तौ ... ... २६१,४
यद्ददाति तिलोन्मिश्रान् ... ... १६२,१७
यदा चतुर्दशीयामं ... ... ३२८,६
यद्गर्हितेनार्जयन्ति ... ... २२२,१०
यदुक्तं यदहस्त्वेव ... ... ३२८,८
यद्येकं भोजयेद्विप्रं ... ... ७१,६
यत्र सर्व्वार्थसुसृष्टं ... ... १०१,५
यद्वेष्टितशिरा भुङ्क्ते ... ... १६८,२
यत्र सर्व्वार्थसुसृष्टं ... ... १०१,५
यथाम्नातं स्वशाखायां ... ... १२४,२
यथास्तं सविता याति ... ... ३१५,६
यवाः प्रियङ्गवो मुद्गाः ... ... १८,१०
यवाम्बुना तु देवानां ... ४२,१४।१२०,१६
यवैरन्वयकीर्य्याथ ... ११८,६।१२७,१८
यः सपिण्डीकृतं प्रेतं ... ३८२,१४।४६८,६
यस्तु पाणितले भुङ्क्ते ... ... १७१,११
यस्मादस्मात्कृता माया ... ... ३२६,१०
यस्मिंस्तु संस्रवाः पूर्व्वं ... ११५,१२।५१८,१२
यस्मिन्पर्व्वणि पुराणे वा ... ... ५०,१८
यस्मिन्नब्दे द्वादशैकम् ... ... ३३०,१
यस्य ते प्रतिगृह्णन्तुः ... ... २४४,८

| | | पत्राङ्काः। पङ्क्त्यङ्काः। |
|---|---|---|
| यस्य नैवाधरोष्ठाभ्यां | ... | ... २८,२० |
| यस्य मित्रप्रधानानि | ... | ... ४१,८ |
| यस्य संवत्सरस्य प्राक् | ... | ... १५१,६ |
| यस्यैतानि न दीयन्ते | ... | ... १६२,४ |
| यानि च व्यवहार्याणि | ... | ... १०,७ |
| यानि पञ्चदशाख्यानि | ... | २८५,८।४११,८ |
| यामिमिं समनुप्राप्य | ... | ... २१५,११ |
| यावच्च कन्यातुभयो | ... | ... २८१,७ |
| यावदब्दञ्च यो दद्यात् | ... | ... १८८,५ |
| युग्मानिव स्वन्ति याव्य | ... | ... २११,१८ |
| युवानस्तु खहे यस्य | ... | ... १८२,१ |
| ये चात्र विश्वदेवार्थे | ... | ... ११०,११ |
| येयं दीपान्विता राजन् | ... | ... २८१,६ |
| ये समाना इति द्वाभ्यां | ... | ४२१,११।४२५,२ |
| येरिष्टं विविधैर्यज्ञैः | ... | ... ११४,१८ |
| यो ददाति गृहोत्थिताम् | ... | ... १५,८ |
| योनिक्रियावबोधाद्यैः | ... | ... ८०,८ |
| योऽप्रमयमना भुङ्क्ते | ... | ... ११८,७ |
| यो यः कश्चित् तीर्थयात्रान्तु | ... | ... ३१०,८ |

| | | पत्राङ्काः। | पङ्क्त्यङ्काः। |
|---|---|---|---|
| र। | | | |
| रक्षणाय तु यद्दत्तं | ... | ... | ११४,२ |
| रक्षोघ्नांश्च जपेन्मन्त्रान् | ... | ... | ११२,१८ |
| रक्षोघ्नमन्त्रपठनं | ... | ... | १७१,४ |
| रजस्वला च या नारी | ... | ... | ८७,८ |
| रविमाला: प्रशस्ता वै | ... | ... | ४७,२० |
| रविशुक्रदिने चैव | ... | ... | १००,७ |
| राजतैर्भाजनैरेषाम् | ... | ... | १२६,६ |
| राजतन्तु तथा पात्रं | ... | ... | २१२,७ |
| राजसूयाश्वमेधाभ्यां | ... | ... | २८५,१८ |
| राजामात्यान् मधुर्गीय | ... | ... | २१,१२ |
| रात्रौ श्राद्धं न कुर्वीत | ... | ... | १०५,८ |
| रामठं मागधश्चैव | ... | ... | १८,६ |
| राहुदर्शनदत्तं हि | ... | ... | २६५,१८ |
| राहुदर्शनभक्तान्ति– | ... | ... | १०७,१८ |
| रूपं द्रमियुतं क्रियं | ... | ... | १०५,१ |
| रोगी हीनातिरिक्ताङ्गः | ... | ... | ९८,१ |
| रोहिताभिषमुत्स्वयं | ... | ... | १४,६ |
| रोहितामृत पाठीनं | ... | ... | १६,२ |
| रौरवेण तु मांसेन | ... | ... | ११,८ |

---

पत्राङ्काः। पङ्क्त्यङ्काः।

ल।

लेपभाजश्चतुर्थाद्याः ... ... १८०,२२
लोके श्रेष्ठतमं यत् स्यात् ... ... १०४०,१८

---

व।

वर्ज्यानि कुर्व्वता श्राद्धं ... ... ८८,२
वर्षास्वमेध्यशाकैश्च ... ... २५५,१७
वस्त्राभावे क्रिया नास्ति ... ... १४५,१९
वस्त्रोत्तरं गन्धपूर्व्वं ... ... १२७,८
वाग्भावदुष्टश्च तथा ... ... २४,६
वामपार्श्वैकपादस्थं ... ... १०,१६
वाससा वायुधूतानि ... ... १६१,८
वित्तशाठ्येन रहितं ... ... २१२,२
विदेशगमनश्चैव ... ... २५८,२
विपरीतायनगतौ ... ... ३०१,८
विप्रान् पूर्व्वे परे वाऽपि ... ... २६,१४
विवाहादिः कर्मगणः ... ... २३४,७
विश्वेदेवाः क्रतुदक्षौ ... ... ५८,१४
विषयागतं मांसं ... ... ६६,८
विषमावस्थमप्राप्य— ... ... २८३,१८
विसर्जयेत् प्रीतमनाः— ... ... २११,११
विप्रस्य मातृपक्षाभ्यां ... ... २०७,१४

| | | पत्राङ्काः । पङ्क्त्यङ्काः । |
|---|---|---|
| बीभत्समशुचिं नग्नं | ... | ८७ १।१०७,७ |
| वृषेषु दीपो दातव्यः | ... | १४५,८ |
| वृश्चिके शुक्लपक्षे तु | ... | २६२,१० |
| वैशाखमासस्य तु या | ... | ३०२,८ |
| वैशाखे शुक्लपक्षे तु | ... | ३०३,२ |
| वैखदेव्यां तृतीयायां | ... | २५७,११ |
| वैशाखादिपदे चन्द्रे | ... | २८२,१६ |
| व्यतीपातः प्रसिद्धोऽयं | ... | ३०१,१२ |
| व्रतस्थमपि दौहित्रं | ... | ३८,६ |

श ।

| | | |
|---|---|---|
| शत्रुभिः पिण्डदानञ्च | ... | २६८,६ |
| शक्रध्वजनिपाताद्यः | ... | २८२,१ |
| शचीदेव्योत्थयं त्रिधा | ... | १२८,६ |
| शरद्वसन्तयोः केचित् | ... | २६२,१ |
| शर्कराक्षीरसंयुक्ताः | ... | १८,२० |
| शर्मवर्मादिकं कार्यं | ... | ६२,११ |
| शशकूर्मयोस्तु मांसेन | ... | ११,११ |
| शस्यं फाल्गुनं सोमं | ... | १०७,८ |
| शलपत्रमुद्वेगं | ... | ८८,१२ |
| शालिपिष्टान्नतोयाद्यैः | ... | २८१,२१ |
| शाकम्भरी फाल्गुनाष्टम्यां | ... | २५६,८ |

| | पत्राङ्काः । पङ्क्त्यङ्काः । |
|---|---|
| शाकमारण्यकञ्चैव | १८,१० |
| शाकैस्तृतीया कर्त्तव्या | २५५,१ |
| शालग्रामशिलाग्रे तु | ८२,२ |
| शालग्रामशिलायान्तु | ८१,२० |
| शाल्यन्नं दधिमध्वन्नं | ११,१८।५२२,२ |
| शिवमेकोद्वयं यस्मात् | २१२,१२ |
| शुक्लाङ्गारकसंयुक्ता | २८८,१२ |
| शुक्लपक्षस्य पूर्वाह्णे | २११,११ |
| शुक्लपक्षे तिथिर्ग्राह्या | २१६,८ |
| शुक्लपक्षे नवं धान्यं | २६१,१० |
| शुचिं देशं विविक्तञ्च | १०२,६ |
| शुचीभूतेन दातव्यं | ४८०,१५ |
| शूद्रमिश्रो गुरुश्चैव | ४०,११ |
| शूद्रस्य दशमः पिण्डः | २४६,१२ |
| शृङ्गि दंष्ट्रि नखि-व्याल- | २२६,१२ |
| श्यावदन्तोऽथ खल्वाटः | ४२,७ |
| श्रद्धायुक्तः शुचिर्दान्तः | ८१,८ |
| श्रवणाश्विधनिष्ठार्द्रा- | १०१,१७ |
| श्राद्धमेवापि कर्त्तव्यं | १०४,१८ |
| श्राद्धमुपक्रम्य | ४१८,१ |
| श्राद्धविघ्ने द्विजातीनां | २६,१३।३८,१४ |
| श्राद्धविघ्ने समुत्पन्ने | ४२८,११।४८८,१ |

पत्राङ्काः। पङ्क्त्यङ्काः।

| | | | |
|---|---|---|---|
| सपिण्डीकरणान्ता हि | ... | ... | ३५८,८ |
| सपिण्डीकरणे विप्रान् | ... | ... | ४१८,२ |
| सपितुः पितृकार्य्येषु | ... | ... | ५५२,१ |
| समतीते दशाहे तु | ... | ... | ३४०,२१ |
| समत्वमागतस्यापि | ... | ... | २८४,२ |
| समुत्सृजेत् भुक्तवतां | ... | ... | १७५,१० |
| समूलान् दक्षिणाग्रांश्च | ... | ... | १८७,१८ |
| सर्पिः कृष्णाः सिता रक्ताः | ... | ... | ३११,७ |
| सर्वैर्हता स्तोत्र्यामैः | ... | ... | २८२,१२ |
| सर्व्वस्यैव पितः प्रोक्तः | ... | ... | ६२,११ |
| सर्व्वं पर्युषितं वर्ज्जेत् | ... | ... | १४२,१७ |
| सर्व्वं प्रदक्षिणं कार्य्यं | ... | ... | १११,१० |
| सर्व्वस्वेनापि कर्त्तव्यम् | ... | २६५,८।२७८,१ | |
| सर्व्वायासविनिर्मुक्तैः | ... | ... | ८०,१० |
| सर्व्वाभावे वनं गत्वा | ... | ... | २५३,१७ |
| सर्व्वाभावे स्त्रियः कुर्युः | ... | ... | ३७४,१५ |
| सर्व्वेषान्तु मतं कृत्वा | ... | ... | ४५०,१ |
| सहपिण्डक्रियायान्तु | ... | ... | २५२,६ |
| संवत्सरं तथा गव्यम् | ... | ... | १५,४ |
| संस्थितायान्तु भार्य्यायां | ... | ... | ४३१,८ |
| सा तिथिस्तदहोरात्रं | ... | ... | ३१६,८ |
| सायाह्नस्त्रिमुहूर्त्तः स्यात् | ... | ... | २०६,११ |

| | पत्राङ्काः । | पङ्क्त्यङ्काः । |
|---|---|---|
| सिद्धेदस्त्रीणि सर्व्वाणि | ... ... | ४५,४ |
| सिताः सुमनसः श्रेष्ठाः | ... ... | १४१,१४ |
| सितानि च सुगन्धीनि | ... ... | १४२,४ |
| सिद्धाः क्षताय ये भक्ष्याः | ... ... | २४,४ |
| सिद्धार्थकैः कृष्णतिलैः | ... ... | १०८,९ |
| सिनीवाली द्विजैःकार्या | ... ... | १२७,१८ |
| सीमन्तोन्नयने चैव | ... ... | ४८७,१२ |
| सुतसैस्तैरनुज्ञातः | ... ... | २००,८ |
| सुवर्ण-रूप्य-ताम्राभ्र- | ... ... | १५१,१९ |
| सुगिन्धः शब्दरहितः | ... ... | १४५,६ |
| सुस्वधेत्याशिषां युक्ता | ... ... | ५६,१ |
| सूतकान्ताद्वितीयेऽह्नि | ... ... | ११८,१८ |
| सूतकान्ते गृहस्थानां | ... | ११०,२।११८,१४।१४४,११ |
| सूतके मृतके चैव | ... ... | २०९,२० |
| सूर्यस्य सिंहसंक्रान्त्यां | ... ... | १०४,९ |
| सेतुबन्धसमुद्रादीनां | ... | २६०,४।४९०,११ |
| सैन्धवं लवणं तद्वत् | ... ... | २०,११ |
| सैन्धवं सागरोत्थञ्च | ... ... | २०,९ |
| सोमपा नाम विप्राणां | ... ... | ७४,१ |
| सौरसंवत्सरस्यान्ते | ... ... | २८४,१७ |
| सौवर्णं राजतं ताम्रं | ... ... | १३६,५ |
| स्नानागमदिनेषु | ... ... | ४८,१९ |

| | | पत्राङ्काः। पङ्क्त्यङ्काः। |
|---|---|---|
| स्त्रियो द्वितीयां जायन्ते | ... | ... २८७,६ |
| स्त्रीणाममन्त्रकं श्राद्धं | ... | ... ३७७,१८ |
| स्त्रीभिर्वर्णावरैः शूद्रैः | ... | ... २८,५ |
| स्थालीपाकं पशुस्थाने | ... | ... २५७,४ |
| स्नातोऽधिकारी भवति | ... | १००,१८।३८६,८ |
| स्नानं दानं जपः श्राद्धं | ... | ... ३०६,६ |
| स्नानं सन्ध्या जपो होमः | ... | ... १०६,२ |
| स्पष्टमुक्तमन्यत्र | ... | ... १३८,२ |
| स्मरणं कीर्त्तनं केलिः | ... | ... ७८,१८ |
| स्रवतस्तु स्रोत आपन्नं | ... | ... १६१,२ |
| स्वदारनिरतश्चैव | ... | ... २२१,१ |
| स्वपितृभ्यः पिता दद्यात् | ... | ... ४८६,७ |
| स्वर्गं ह्यपत्यमोजश्च | ... | ... २८८,२० |
| स्वशाखाश्रयमुत्सृज्य | ... | ... १२५,५ |
| स्वस्रीय-ऋत्विक्-जामातृ- | ... | ... ३४,१८ |
| स्वाध्यायं श्रावयेत् पित्रे | ... | ... १७२,८ |
| स्वाहा कुर्याच्च मन्त्रान्ते | ... | ... १५१,८ |
| स्वेन भर्त्रा सह श्राद्धं | ... | ... ६५,८।४२८,७ |
| स्वेन भर्त्रा सहैवासाः | ... | ४२६,१८।४२८,१८। |

| | पत्राङ्काः । पङ्क्त्यङ्काः । |
|---|---|
| **ह ।** | |
| हंसे वर्षासु कन्यास्थे ... ... | २८३,१८ |
| हतमश्रोत्रियं दानं ... ... | २११,१७ |
| हतमश्रोत्रियं श्राद्धं ... ... | ८१,११ |
| हविषा संस्कृता ये तु ... ... | २६१,७ |
| हविषा संस्कृतानान्तु ... ... | १०८,७ |
| हविष्यान्नेन वै मासं ... ... | १३,१६ |
| हरिता यज्ञिया दर्भाः ... ... | ४६,८ |
| हस्तदत्ताश्च ये स्नेहाः ... ... | १५८,१६ |
| हीनाङ्गः पतितः कुष्ठी ... ... | १०७,५ |
| हुतशेषं प्रदद्यात्तु ... ... | १५६,२ |
| हुतावशिष्टमन्नन्तु ... ... | १५६,२० |
| होमे प्रदाने भोज्ये च ... ... | १०५,१५ |



# श्राद्धक्रियाकौमुदी ।

ॐ नमो गोविन्दाय ।

---

पूतं पञ्चमरागतोऽपि सुभगं बालाविलासादपि ।
श्लाघ्यं कोकिलकूजितादपि मनोमोहं मनोजादपि ।
गीतं गीतमयूखतोऽपि मधुरं माध्वीकमध्वादपि ।
श्रीगोविन्दपदारविन्दमुरलीमाहात्म्यमृत्याभुमः ॥

श्रीगोविन्दपदद्वन्द्वनखेन्दुरुचिसन्ततिः ।
सन्तापिनाभिवक्रान्तचित्तध्वान्तं धुनोतु नः ॥

येन ज्योतिषपङ्क्तिषु नितरां मार्त्तण्डबिम्बायितम् ।
श्रीगोविन्दपदारविन्दयुगले मीलामरामायितम् ।
वेदान्तस्मृतिसम्मतिविषयगोष्ठ्येवे हिमाद्रीयितम् ।
श्रीपा नो परितोषितो गणपतिर्भट्टः सतां हृत्प्रियः ॥

तत्तनुजन्मा विद्वत्तामधुरागमभूमिकाभिरामिशः ।
मधुरिपुपदारविन्दद्वयामृतमाधुरीरसाभिज्ञः ॥

आलोच्याखिलसंग्रहानविकलं दृष्ट्वा पुराणान्यपि
प्रोक्ताः सम्यगथो विविच्य मुनिभिर्मन्वादिभिः संहिताः।
श्रीमत्तातपदारविन्दविलसद्धूलीभरोद्देशतः
श्रीगोविन्दकविः करोति गहनां श्राद्धक्रियाकौमुदीम्॥

---

## अथ श्राद्धस्वरूपं निरूप्यते।

तत्र केचित्—

पृथिवी ते पात्रमिति मन्त्रकरणकपात्रालम्भनपूर्व्वको हविस्त्यागः श्राद्धमित्याहुः।

तन्न, पिण्डपितृयज्ञेऽव्याप्तेः, न च तत्र लक्ष्यमिति वाच्यं, गोभिलेन पिण्डपितृयज्ञमभिधाय तच्छ्राद्धमितरदमावस्यायामित्यनेन तस्य श्राद्धत्वाङ्गीकारात्।

नचामावस्यायां तत्पिण्डपितृयज्ञरूपं कार्य्यं इतरच्छ्राद्धमन्वाहार्य्यपार्व्वणाभिधेयञ्च कार्य्यमिति सूत्रार्थ इति वाच्यम्।

विशेषणीभूतानामितरादिशब्दानां विशेष्यजातीयप्रतियोग्युपस्थापकत्वनियमादन्तापोतरदित्यस्मात् प्रतियोगिनः पिण्डपितृयज्ञस्य श्राद्धसजातीयत्वावगमात् अन्यो घट इति वत् अन्यथा इतरशब्दस्य वैयर्थ्यापत्तेः। किञ्च एकोद्दिष्टश्राद्धे नित्यश्राद्धेऽव्याप्तेः हुतशेषं दत्वा पात्रमालभ्य जपति पृथिवी ते पात्रं इति पारस्करोक्तमन्त्रलिङ्गेन पात्रालम्भनबाधात्, मन्त्रेऽस्मृतं जुहोमीत्यमृतपदस्य हुतशेषवाचकत्वेन पात्रालम्भनस्य पदाङ्गत्वात्।

तथाच मनुः—

विघसं भुक्तशेषन्तु यज्ञशेषन्तथामृतम्। इति।

न च

पृथिवी ते पात्रमित्यन्नममृतं चिन्तयेत् पठन्।

इति वचनानुसारात् मन्त्रे स्वधातुल्यलक्षणेति वाच्यम्।

हुतशेषस्यैव स्वधातुल्यतया चिन्तनाद्वचनार्थोपपत्तौ मुख्यार्थबाधाभावात् मन्त्रे लक्षणाया अयोगात्।

अन्यस्तु—

वेदबोधितसम्बोधितदैवतो हविस्त्यागः श्राद्धमित्याह। तदयुक्तं यजुर्वेदिनां तर्पणेऽतिव्याप्तेः।

न च हविःपदेनाग्निप्रक्षेपार्हादनीयद्रव्यस्य विवक्षितत्वात् जलस्य चाग्निप्रक्षेपयोग्यत्वाभावान्नातिव्याप्तिरिति वाच्यम्।

दद्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन वा।

इति मनुना नित्यश्राद्धविधानात्। तत्र जलस्याग्निप्रक्षेपयोग्यत्वाभावादव्याप्तेः।

किञ्चाग्निप्रक्षेपरूपाङ्गविधिज्ञाने श्राद्धज्ञानं श्राद्धज्ञानेऽग्निप्रक्षेपरूपविधिज्ञानञ्चेत्यन्योन्याश्रयो दुर्निवारः।

किञ्च अम्बे अम्बिके इति मन्त्रकरणकाम्बिकाहोमेऽतिव्याप्तिश्च तत्र हविस्त्यागस्य देवताया अनेनैव मन्त्रेण वेदेन सम्बोधितत्वात्।

पितॄनुद्दिश्य ब्राह्मणस्वीकारपर्य्यन्तो हविस्त्यागः श्राद्धमिति

कल्पतरुलक्षणमप्यनुपादेयं सधाभिनामाज्ञश्राद्धे देवश्राद्धे सनकादिश्राद्धे चाव्याप्तेः पितृबलिदाने चातिव्याप्तेः।

अपरस्तु गन्धादिपञ्चकान्यतमदानपूर्व्वको हविस्त्यागः श्राद्धमित्याह।

तदपि पिण्डपितृयज्ञाव्याप्तत्वा विष्णुपूजादावतिव्याप्तत्वा च हेयम्।

वस्तुतस्तु वेदबोधितसम्बोधनपदोपनीतोद्देश्यकतर्पणेतरः प्रधानो हविस्त्यागः श्राद्धमिति लक्षणम्।

अस्यार्थः—

मुन्यन्नानि पयः सोमो मांसं यच्चानुपस्कृतम्।
अक्षारलवणञ्चेति प्रकृत्या हविरुच्यते॥

इति मन्वादिनानामुन्यन्नादिषु वेदबोधितादनीयद्रव्यमिह हविष्ट्वेनाभिमतम्। मनुवचनेऽनुपस्कृतमविकृतमित्यर्थः। वेदबोधितसम्बोधनपदोपनीत उद्देश्यो द्रव्यस्वामित्वेनाभिमतो यः तेन विष्णो इदमन्नं तुभ्यं नम इत्यत्र नातिव्याप्तिः सम्बोधनपदस्य वेदबोधितत्वाभावात्।

न च

निवेदयामि भगवते जुषाणेदं हविर्हरे।

इति विष्णुनैवेद्यदानेऽतिव्याप्तिरिति वाच्यम्।

निषिद्धार्पणमन्त्रोऽयं सर्व्वार्थेषु नियोजयेत् *।

* ख पुस्तके—सर्व्वासु विनियोजयेत्।

इत्युत्तरार्द्धेन तस्य नैवेद्यसमर्पणमन्त्रत्वेन विधानात् त्यागमन्त्रत्वाभावात्।

नाप्यम्बिकाहोमेऽतिव्याप्तिस्तत्र सम्बोधनपदस्य वेदत्वेन वेदबोधितत्वाभावात्।

तर्पणेतरपदं यजुर्वेदिमते तर्पणेऽतिव्याप्तिवारणायेति। प्रधानपदन्तु अर्घ्यपिण्डयोरप्रधानाङ्गयोर्व्यावर्त्तनायावश्यं देयम्। प्रधानत्वाच्चोत्सर्ग एव

नित्यश्राद्धमदैवं स्यादर्घ्यपिण्डविवर्ज्जितम्।

इति हारीतेनार्घ्यपिण्डयोर्वर्ज्जनात् प्रधानस्य च वर्जनासम्भवात् पिण्डपितृयज्ञगया*पिण्डदानयोस्तु कर्म्मान्तरत्वात्तत्र तयोरेव प्राधान्यमिति तत्र नाव्याप्तिः। तथा सत्यप्यङ्गत्वे दैवश्राद्धस्य प्रकृतकर्म्मणोऽभ्युदयाप्ततया दैवश्राद्धस्य च—

तेषामारक्षभूतं हि दैवं पूर्ब्बं नियोजयेत्।
रक्षांसि हि विलुम्पन्ति श्राद्धमारक्षवर्ज्जितम्॥

इति मनुना रक्षावत्ताफलकथनादस्ति प्राधान्यम्।

कर्म्माङ्गत्वेऽपि सन्ध्यायाः प्राधान्यवदिति तत्र नाव्याप्तिः। एवञ्च सन्न्यासिनामाम्श्राद्धे जीवत्पितृकश्राद्धे सनकादिश्राद्धे च लक्षणमनुगतमेवेति।

अथ सर्व्वेषां प्रकृतित्वात् प्रथमं पार्व्वणश्राद्धं विविच्यते। भविष्यपुराणे—

---

* ख पुस्तके गयापदं नास्ति।

अमावस्यां यत् क्रियते तत् पार्व्वणमुदाहृतम्।
क्रियते पर्व्वणि यत् तत् पार्व्वणमिति स्थितिः॥

पर्व्वाण्यष्टका माघीपौर्णमास्यादि।

यथा हारीतः—

अष्टका माघ्यभ्युदया स्त्रीयंद्रव्योपपत्तयः। इति।

अमावस्यायां श्राद्धविधिमाह गोतमः—

अथ श्राद्धममावस्यायां पितृभ्यो दद्यात् पञ्चमीप्रभृति वा कृष्णपक्षस्य सर्व्वस्मिन् काले वा नियमः शक्तित इति।

अमावस्यायां मुख्यविधिस्तत्राशक्तिसम्भावनायां कृष्णपक्षस्य पञ्चमीप्रभृति वा यस्यां कस्याञ्चित्तिथौ कार्य्यम् "सकृत् कृते कृतः शास्त्रार्थ इति न्यायात्। अत्राप्यशक्तिसम्भावनायां सर्व्वस्मिन् कृष्णपक्षे यस्यां कस्याञ्चित्तिथौ कार्य्यं तत्र चतुर्द्दशीं वर्ज्जयित्वा इति बोध्यम्।

तथाच मनुः—

पितृयज्ञन्तु निर्व्वर्त्य विप्रश्चन्द्रक्षयेऽग्निमान्।
पिण्डान्वाहार्य्यकं श्राद्धं कुर्य्यान्मासानुमासिकम्॥

इत्यादिना अमावस्यायां श्राद्धमभिधाय तत्राशक्तौ

कृष्णपक्षे दशम्यादौ वर्जयित्वा चतुर्द्दशीम्।
श्राद्धे प्रशस्तास्तिथयो यथैता न तथेतराः॥

इत्यनेन कृष्णपक्षे चतुर्द्दशीं वर्जयित्वा अनुकल्पविधिस्तु निरग्नेरेव नतु साग्नेः।

मनुः—

न पैतृयज्ञियो होमो लौकिकेऽग्नौ विधीयते।

न दर्शेन विना श्राद्धमाहिताग्नेर्द्विजन्मनः॥

दर्शएवाभ्युद्धरणस्य विहितत्वादङ्गभूतहोमबाधात् पार्व्वणश्राद्धं दर्शेन विना नास्ति अन्वष्टकादिषु विप्रपाण्यादौ होमः। अत्र दर्शेतिकर्त्तव्यतां विना न श्राद्धमिति हलायुधः। तच्च लक्षणाप्रसङ्गाद्वाक्यभेदापत्तेश्च।

तथाच विष्णुपुराणे—

नास्ति भार्यासिते पक्षे पञ्चदश्यां नरेश्वर।

अष्टकासु प्रकुर्व्वीत काम्यानन्यान् शृणुष्व मे॥

असितपक्षे पञ्चदश्याममावस्यायामित्यर्थः।

याज्ञवल्क्येनापि—

अमावस्याष्टकावृद्धिः कृष्णपक्षोऽयनद्वयम्।

इत्यनेन प्रथमममावस्यायामित्युक्त्वाऽयंश्रौ• इति कृष्णपक्षमात्रेऽपि विधिरुक्तः।

एवञ्च यानि यानि कृष्णपक्षविधायकानि तानि सर्व्वाणि अमावस्यायामप्रशक्तिसम्भवेन विषयकाणि।

यथा च कात्यायनः—

श्राद्धाभिज्ञः श्राद्धं कुर्व्वीत कन्यामपरपक्षं नातिक्रमेत्।

पैठीनसिः—

कृष्णपक्षे श्राद्धं कुर्व्वीत अन्नं सुसंस्कृत्य।

ब्रह्मपुराणे—

पयोमूलफलैः शाकैः कृष्णपक्षे च सर्व्वदा।

पराधीनः प्रवासी वा निर्धनो वाऽपि मानवः॥

मनसा भावशुद्धेन श्राद्धे दद्यात्तिलोदकम्।

आपस्तम्बः—

मासि मास्यपरपक्षस्यापराह्णः श्रेयान्॥ अथापरपक्षस्य जघन्यान्यहानि सर्व्वेष्वेवापरपक्षस्याहःसु क्रियमाणे पितॄन् प्रीणाति।

जघन्यानि दशम्यादीनि श्रेयांसीत्यर्थः। पक्षं व्याप्य क्रियमाणे श्राद्धे पितृप्रीत्यतिशयः फलमित्यर्थः।

यत्तु—

अपरपक्षस्य यदहः सम्पद्यते अमावस्यान्तु विशेषेणैव।

इति निगमपरिशिष्टवचनम्।

तस्यायमर्थः—अमावस्यायां विशेषेणैव प्राधान्येनैव श्राद्धं कुर्य्यात् तत्राशक्तौ अपरपक्षमात्रे यदहः सम्पद्यते यस्मिन्नहनि शक्तिः स्यात् तत्र कुर्य्यादिति। अयमर्थो गोभिलेनापि स्वहस्तितः।

यथा गोभिलः—

अथ श्राद्धममावस्यायां पितृभ्यो दद्यात् पञ्चमीप्रभृति वा अपरपक्षस्य यदहः सम्पद्यते तदहः पूर्व्वेद्युर्ब्राह्मणानामन्त्रयेत्।

अतएवामावस्याविहितपार्व्वणश्राद्धं करिष्ये इत्येव वाक्यं कुर्व्वन्ति। अन्यथामावस्यायां प्राप्तत्वात् कृष्णपक्षे मुख्यविधेः

कृष्णपक्षविहितश्राद्धमिति वाक्यममावस्याश्राद्धे स्यात् अमावस्या-निमित्तेन विधानाभावात्तस्य श्राद्धस्य पार्वणश्राद्धानुपपत्तिः स्यात्।

एतेन—सामान्यकृष्णपक्षप्राप्तं श्राद्धमनूद्य ब्रह्मपुराणे तदेव श्राद्धमश्वयुक्कृष्णपक्षगोचरतया दिने दिने विधीयते न तु विशिष्ट-विध्यन्तरं मुख्यविध्यन्तरकल्पनागौरवात्।

तत्र च

कृष्णपक्षे दशम्यादौ वर्जयित्वा चतुर्दशीम्।

इत्यनेन चतुर्दशीवर्जनमप्यस्य सिद्धं तदनुवादकत्वादश्वयुक्-विधेरिति यन्मैथिलैरुक्तं तन्निरस्तम्।

प्रधानस्याश्वयुग्विधेरनुपपत्तिप्रसङ्गाच्च। अतोऽश्वयुक्कृष्णपक्षे इयमेव विधिः कल्प्यते। दिने दिने इति वीप्सावचनाच्चतुर्दशी-श्राद्धमविरुद्धमेव।

यच्च— विष-श्वापद-शस्त्राहि-तिर्यग्-ब्राह्मण घातिनाम्।
चतुर्दश्यां क्रिया कार्या अन्येषान्तु विगर्हिता॥

इति मरीचिवचनम्

तत्प्रमाणशून्यं कृष्णपक्षप्रकरणपाठायाश्वयुक्कृष्णपक्षश्राद्ध-विषयम्। अन्यथा चतुर्दश्यां सम्पातिश्राद्धमपि न स्यात्।

यच्चान्यन्मैथिलैरुक्तं आश्विनचतुर्दश्यां अशक्तस्यापि श्राद्ध-प्राप्तौ—

आहवेषु विपन्नानां जलाग्निभृगुपातिनाम्।
चतुर्दश्यां भवेत् पूजा अमावस्यान्तु कामिकी॥

एत्याश्विनापरपक्षप्रकरणस्थदेवीपुराणवचने यत्तत्र पुनः श्राद्धविधानं तदाश्विनचतुर्द्दश्यां प्रागेव शस्त्रहतानामिति परिसङ्ख्यार्थमन्यथा वैयर्थ्यादिति। तदपि मन्दं

अयमत्र्या पक्षादिकल्पाकरणे आश्विनचतुर्द्दश्यां शस्त्रहतश्राद्धमयमेनाप्यवश्यं कर्त्तव्यमिति विधिरेव न तु दोषदुष्टा परिसंख्येति।

यद्वा अन्यत्र चतुर्द्दश्यां शस्त्रहतश्राद्धस्य प्राशस्त्यमुक्तं आश्विने तु नित्यविधिरिति। अतएव अमावस्यान्तु कामिकीत्युक्तं आश्विनचतुर्द्दश्यामकरणे प्रत्यवायतादवस्थ्यादित्यलं बहुना।

अमावस्याश्राद्धस्य नित्यत्वेऽपि नक्षत्रविशेषयोगेन फलातिशयमाह विष्णुपुराणे—

अमावस्या यदा मैत्र-विशाखा-स्वाति-योगिनी।
श्राद्धैः पितृगणस्तृप्तिं तदाप्नोत्यष्टवार्षिकीम्॥
अमावस्या यदा पुष्ये रौद्रऋक्षे पुनर्वसौ।
द्वादशाब्दं तदा तृप्तिं प्रयान्ति पितरोऽर्च्चिताः॥
वासवाजैकपादर्क्षे पितॄणां तृप्तिमिच्छताम्।
वारुणेनाप्यमावस्या देवानामपि दुर्लभा॥

मैत्रमनुराधा रौद्रं आर्द्रा वासवं धनिष्ठा अजपदं पूर्व्वभाद्रपदं वारुणं शतभिषा।

---

## अथ श्राद्धे हविर्द्रव्याणि।

मत्स्यपुराणे—

अन्नन्तु सदधिक्षीरं गोघृतं शर्करान्वितम्।
मासं * प्रीणाति वै सर्व्वान् पितॄनित्याह केशवः॥
द्वौ मासौ मत्स्यमांसेन त्रीन् मासान् हारिणेन तु।
औरभ्रेणाथ चतुरः शाकुनेनाथ पञ्च वै॥
षण्मासान् छागमांसेन पितरस्तृप्तिमाप्नुयुः।
सप्त पार्षतमांसेन तथाष्टावैणजेन तु॥
रौरवेण तु मांसेन तृप्तिर्मासान्नवैव तु।
दशमासांस्तु तृप्यन्ति वराहमहिषामिषैः॥
शशकूर्म्मयोस्तु मांसेन मासानेकादशैव तु।
संवत्सरन्तु गव्येन पयसा पायसेन तु॥
वार्द्धीनसस्य मांसेन तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी।
कालशाकेन चानन्त्यं खड्गमांसेन चैव हि॥
यत्किञ्चिन्मधुना मिश्रं गोःक्षीरं मधुपायसम्।
दत्तमक्षय्यमित्याहुः पितरः पूर्व्वदेवताः॥

अन्नं व्रीहिशाल्यादिकृतं। यथा छन्दोगपरिशिष्टम्—

शाल्यन्नं दधिमध्वाज्यं बदराणि यवांस्तथा।
तिलैर्व्रीहियवैर्माषैरद्भिर्मूलफलेन च।
दत्तेन मासं प्रीयन्ते विधिवत् पितरो नृणाम्।

---

* क पुस्तके मांसं।

मनुवचने माषैरिति कृष्णमाषपरम्।

कृष्णमाषास्तिलाश्चैव श्रेष्ठाः स्युर्यवशालयः।

इति वायुपुराणवचनात्।

सदधिक्षीरेति माहिषक्षीरपरं परतो गोघृतमित्यभिधानात् तदितरक्षीरप्रतीतेः गोक्षीरस्य संवत्सरप्रीतिफलत्वेन वक्ष्यमाणत्वाच्च।

आरण्यमहिषीक्षीरं शर्कराशुण्ठीसंयुतम्।

* मध्वक्तं हि नरो दद्यादमृतमेव तत्॥

इति कूर्म्मपुराणवचनाच्च।

यच्च—

क्षीरमेकशफानां यदौष्ट्रमाविकमेव च।

आजञ्च माहिषं मार्गं वर्ज्जयेच्छ्राद्धकर्म्मणि॥

इति विष्णुपुराणवचनं तद्ग्राम्यमहिषक्षीरनिषेधकमिति।

ततश्चो ——————लवण एव च।

अतः प्रभृति काकुत्स्थ पितरः कव्यभोजनाः।

अफलं भुञ्जते मेयं सफलं नैव भुञ्जते॥

इति रामायणदर्शनात् शाकुनेन भक्ष्यपक्षिणां मांसेनेत्यर्थः। पृषतश्चित्रमृग एनः कृष्णसारः रुरुः खकुमारो मृगविशेषः वराहमहिषावारण्यौ।

---

* क पुस्तके मध्वक्तं तदिन्नं पारं दद्यात्।

आरण्यमाहिषश्चागं मार्गं रौरवमेव च।
भक्ष्यमांसं समुद्दिष्टमौरभ्रं पार्षतं तथा॥
वराहाश्च तथा भक्ष्या महारण्यनिवासिनः।

इति देवलवचनात्।

संवत्सरन्त्विति—।

अत्र केचित् उपकरणमध्यपाठादुपकरणभूतेनैव पायसेन न त्वयं विहाय केवलं परमान्नेन श्राद्धमित्याहुः। तन्न, मांसादीना मुपकार्य्यत्वाश्रवणादुपकरणत्वेऽस्तु परमान्नस्य तु उपकार्य्यत्व-सम्भवेन प्राधान्याविरोधात् उपकरणमध्यपाठस्याकिञ्चित्-* करत्वादन्नं विनापि केवलपरमान्नेन श्राद्धमविरुद्धम्।

अतएव याज्ञवल्क्येन प्रधानेन सह पठितं तदधिकफलश्चोक्तम्। यथा—

हविष्यान्नेन वै मासं पायसेन तु वत्सरम्।

तथा च महाभारते—

परमान्नेन यो दद्यात् पितॄणामौडुदेहिकम्।
गजच्छायास्तु पूर्व्वस्यां कुरुते दक्षिणामुखः॥

अत्र निरपेक्षश्रवणात् प्रधानभूतेन परमान्नेन यः श्राद्धं कुर्य्यात् स पूर्व्वस्यामर्थादपराह्णकालीनायां गजच्छायायामेव श्राद्धं कुरुते गजच्छायाकृतश्राद्धफलं प्राप्नोतीत्यर्थः।

वार्द्धीनसस्य द्वैविध्यमुक्तं कालिकापुराणे—

---

* स पुस्तके किं ऐत-।

त्रिपिबं त्विन्द्रियक्षीणं श्वेतं वृद्धमजापतिम् ।
वार्द्धीनसं विजानीयात् हव्यकव्येषु संस्कृतम् * ॥
नीलग्रीवो रक्तशिराः कृष्णपादः सितच्छदः ।
वार्द्धीनसः स पक्षी स्यान्मम विष्णोरपि प्रियः ॥

त्रिपिबमिति त्रिभिः कर्णद्वयमुखैः पिबति स त्रिपिबः यस्य जलपानकाले कर्णद्वयं निपततीत्यर्थः। इन्द्रियक्षीणं छिन्नप्रपर्ण स प्रसिद्धः पक्षी तन्नाम्ना ख्यात इत्यर्थः। शम्भोर्वन्नृत्वाम्म शम्भोरित्यर्थः ।

यत्किञ्चिदिति यत्किञ्चिद्द्रव्यं मधुमिश्रं दत्तमक्षयं स्यात् विशेषतस्तु गोक्षीरं घृतपायसञ्च ।

महाभारते—

† वर्द्धमानतिलैः श्राद्धमक्षयं मनुरब्रवीत् ।
सर्व्वकामैः स यजते यस्तिलैर्यजते पितॄन् ॥
वर्द्धमानतिलं प्रचुरतिलम् ।

गोभिलः—

श्राद्धाक्षयहेतवः खड्गः कालशाकं लोहितच्छागो मधु महा शल्का वर्षासु मघासु श्राद्धं हस्तिच्छायायाञ्च ।

मनुः—

कालशाकं महाशल्काः खड्गलोहामिषं मधु ।
आनन्त्यायैव कल्पन्ते मुन्यन्नानि च सर्व्वशः ॥

---

* ग एतत्कृतम् । † ग वर्द्धमानतिल ।

महाशल्को रोहितमत्स्य इति प्राञ्चः, युक्तञ्चैतत् ब्रह्मपुराणवचनैकवाक्यतावगमात् ।

यथा ब्राह्मे—

संवत्सरं तथा गव्यं पयः पायसमेव च ।
वार्ध्रीणसामिषं लौहं कालशाकं तथा मधु ॥
रोहितामिषमत्यन्तं दत्त्वा तु स्वकुलोद्भवाः ।
अनन्तां वै प्रयच्छन्ति तृप्तिं गौरीसुतस्तथा ॥
यो ददाति गुडोन्मिश्रान् तिलान् वा श्राद्धकर्मणि ।
मधु वा मधुमिश्रं वा अक्षयं सर्व्वमेव तत् ॥

अष्टमवर्षे विवाहिता गौरी तस्याः सुतो यत्किञ्चिद्दत्त्वा अनन्तां तृप्तिं प्रयच्छतीत्यर्थः ।

आधुनिकास्तु—महाशल्कः शिङ्गट इत्याहुः ।

वचनञ्च—पुलस्त्यमात्या पठन्ति—

एकशल्कोऽर्द्धचन्द्रश्च ललाटे रक्तसंयुतः ।
शुक्लवर्णश्च यो मत्स्यो महाशल्कः स उच्यते ॥
खड्गामिषं गण्डकमांसं लोहितच्छागमांसम् ।
अनेन सर्व्वलोहेन मधुना च यतव्रतः ॥

इति महाभारतवचनात् ।

तथाच देवलः—

आनन्त्याय भवेद्दत्तं खड्गमांसं दिनक्षये ।
महाशकुनिनो मत्स्याश्छागो वा सर्व्वलोहितः । इति ।

मुन्यन्नानि नीवाराणीत्यर्थः ।

तथा मात्स्ये—

रोहिमांसञ्च पाठीनं गोक्षीरं मधुरा रसाः।
खड्गो लौहामिषञ्चैव मधु श्यामाकशालयः॥
यव-नीवार-मुद्गेक्षु-शुक्लपुष्प-घृतानि च।
वल्लभानि प्रशस्तानि पितॄणामिह सर्व्वदा॥

हारीतः—

क्षत्रियैस्तु मृगव्यायां विधिना यदुपार्ज्जितम्।
श्राद्धकाले प्रशंसन्ति सिंहव्याघ्रहतञ्च यत्॥
विषबाणहतं मांसं व्याधतिर्य्यग्धतञ्च यत्।
न प्रशंसन्ति तच्छ्राद्धे यच्च मन्त्रविवर्ज्जितम्॥

मृगयायां यदुपार्ज्जितं मध्यपशुमांसमित्यर्थः। तिर्य्यञ्चोऽत्र सिंहव्याघ्रव्यतिरिक्ताः पक्षसर्पादयः पूर्व्ववचनात्। मन्त्रवर्ज्जितम-प्रोक्षितमित्यर्थः। मांसञ्च पक्षमेषादेर्यं नामम्।

अत्यम्लमतिलवणमतितिक्तकटूनि च।
आममांसं तथा मद्यं पूतिमांसं सुरासमम्।
असुराणां हि भोज्यानि तानि तस्माद्विवर्ज्जयेत्॥

इति ब्रह्मपुराणवचनात्।

एतेन शूद्रस्यामश्राद्धविधानादाममांसस्य चासुरत्वात् शूद्रेण मत्स्यमांसं न देयम्।

## अथ विहितफलानि ।

आग्नेये—

आम्रमाम्रातकं बिल्वं दाडिमं बीजपूरकम् ।
पनसामलकं क्षीरं नारिकेलं परूषकम् ॥
नारङ्गञ्च सखर्ज्जूरं द्राक्षा नीलकपित्थकम् ।
एतानि फलजातानि श्राद्धे देयानि यत्नतः ॥
यानि च व्यवहार्य्याणि स्वादुस्निग्धानि भो द्विजाः ।
ईषदम्लकटूनीह देयानि श्राद्धकर्म्मणि ॥

वायुपुराणे—

बिल्वामलकमृद्वीका पनसाम्रातदाड़िमम् ।
भव्यं पारावतं मोचं खर्ज्जूराम्रफलानि च ॥
*कशेरुः कोविदारश्च कर्कन्धुर्लवली बिसम् ।

मृद्वीका द्राक्षा भव्यं कामरङ्गफलं पारावतं [illegible] मोचं कदलीफलं कर्कन्धुर्बदरीफलं कोविदारो युगपत्रः काञ्चनविशेषः, बिसं मृणालम् ।

---

* क पुस्तके कशेरुरित्यादि पद्यार्द्धं नास्ति ।

## निषिद्धफलानि।

ब्राह्मे—

> तालं करुणकाकाञ्चि बहुपुत्राञ्जुनीफलम्।
> जम्बीरं रक्तविल्वञ्च शालस्यापि फलं त्यजेत्॥

बहुपुत्रा बहुवारफलम्।

तथा तत्रैव—

> फलं तालतरूणाञ्च भुक्ता नरकमृच्छति।
> दत्वा पितृंस्तैः सार्द्धं पूयवन्नरकं व्रजेत्॥

विष्णुपुराणे—

> यवाः प्रियङ्गवो मुद्गा गोधूमा व्रीहयस्तिलाः।
> निष्पावाः कोविदाराश्च सर्षपाश्चात्र शोभनाः॥

निष्पावो देवधान्यम्।

आदित्यपुराणे—

> मधुकं रामठञ्चैव कर्पूरं मरिचं तथा।
> श्राद्धकर्म्मणि शस्तञ्च सैन्धवं त्रपुषं तथा॥

शस्ताशनं वायुपुराणे—

> कालशाकं दधि क्षीरं चिञ्चा वैत्राङ्कुरस्तथा।
> वैकङ्कतं नारिकेलं शृङ्गाटक-परूषजम्॥
> पिप्पलीं मरिचञ्चैव पटोलं वृहतीफलम्।
> रामठं मत्स्यमांसञ्च कलायाः सर्व्व एव हि॥
> कर्पूरं नागरञ्चैव दीर्घमूलकमेव च।

वैकङ्कतं वंहिच इति ख्यातं मधुपर्णं मधुपफलमिति ख्यातम्। रामठं हिङ्गु नागरं शुण्ठी दीर्घमूलकं मूलकमिति प्रसिद्धम्। तत्र न भक्षयेत् काकरीरञ्च रक्तमूलकमेव च। इति निषेधात् रक्तमूलकं न देयम्।

तथा ब्राह्मे—

रामठं मागधञ्चैव नागरार्द्रकतित्तिडीम्।
आम्रञ्च जीरकञ्चैव तुम्बुरुञ्च नियोजयेत्।
कालशाकं कलायञ्च मसूरं मूलकन्तथा।
वैत्राङ्कुरं पटोलञ्च सर्षपं सुनिषण्णकम्॥
शाकमारण्यकञ्चैव श्राद्धे दद्यादमूनि च।
मागधं पिप्पली नागरं शुण्ठी तुम्बुरुर्धन्याकः।

यत्तु—

पिप्पलीं मरिचं हिङ्गुं वंशायञ्च विवर्जयेत्।

इति शङ्खवचनं तत्पृथक्मरिचादिदाननिषेधपरं द्रव्यान्तर-संस्कारे तु विधिरिति न विरोधः तेन आमश्राद्धे मरिचादिकं न देयम्।

कूर्म्मपुराणे—

घृतेन भोजयेद्विप्रान् घृतं भूमौ समुत्सृजेत्।
सक्तून् लाजांस्तथा पूपान् दत्वा सक्तून्च भोजयेत्॥
शर्कराक्षीरसंयुक्ताः पृथुका नित्यमत्तयाः।

घृतं भूमौ समुत्सृजेत् इति—तथा घृतं देयं यथा भूमौ श्रवतीति। पृथुकाश्चिपिटकाः।

देवलः—

धानाश्च मधुसंयुक्ता दद्यांश्चैव सगोरसान्।
शर्कराफलमूलञ्च सर्व्वं दद्यादमत्सरी॥

ब्राह्मे—

गुड़ शार्कर-मत्स्यण्डी-खण्ड फाणितकं तथा।
गव्यं पयो दधि घृतं तैलञ्च तिलसम्भवम्॥
सैन्धवं सागरोत्थञ्च लवणं सारसं तथा।

मत्स्यण्डी खण्डीभूतसितशर्कराविशेषः। सारसं मानससरोजातं साम्भरीति प्रसिद्धम्।

वायुपुराणे—

सैन्धवं लवणं तद्वत् तथा मानससम्भवम्।
पवित्रे परमे ह्येते प्रत्यक्षे अपि नित्यशः॥

तथा मनुः—

मुन्यन्नानि पयः सोमो मांसं यच्चानुपस्कृतम्।
अक्षारलवणञ्चैव प्रकृत्या हविरुच्यते॥

सोमः सोमलतारसः अनुपस्कृतं अविकृतं पूतीभवमित्यर्थः। उत्पात-प्रतियत्न विकृत वाक्याध्याहारेष्विति विकृतार्थे सुट्।

तथा तत्रैव—

भक्ष्यं भोज्यञ्च विविधं मूलानि च फलानि च।
हृद्यानि चैव मांसानि पानानि सुरभीणि च॥

कार्ष्णाजिनिः—

यदिष्टं जीवतश्चासीत्तत्तद्दद्यात् प्रयत्नतः।

इष्टं निषिद्धेतरम्।

---

## अथ याज्यवर्ज्यानि।

याज्ञवल्क्यः—

चण्डालो जायते यज्ञकरणाच्छूद्रभिक्षितात्।

यज्ञार्थंलब्धमददद्भासः काकोऽपि जायते॥

देवलः—

कुष्माण्डालावु-वार्त्ताकु पालङ्क्या राजिकास्तथा।

पिप्पलीं मरिचञ्चैव रामठं पिण्डमूलकम्॥

क्षतञ्च लवणं सर्व्वं वंशाग्रञ्च विवर्ज्जयेत्।

राजमाषान् मसूरांश्च तथा वै कोरदूषकान्।

लोहितान् वृक्षनिर्य्यासान् श्राद्धकर्म्मणि वर्ज्जयेत्।

पालङ्क्या शाकभेदः राजिका राजसर्षपः पिप्पल्यादिवर्ज्जनं प्रत्यक्षविषयमिति प्रागेवोक्तं पिण्डमूलकं मूलकविशेषः कोरदूषः कोद्रवः।

महाभारते—

अश्राद्धीयानि धान्यानि कोद्रवाः पुलकास्तथा।

हिङ्गु द्रव्येषु शाकेषु नालिका-लसुनादिकम्।

कृष्णाजाजीं विड्ञ्च शीतपाकीन्तथैव च।
वर्जयेल्लवणं सर्व्वं तथा जम्बुफलानि च।
अवक्षुतावरुदितं तथा श्राद्धे विवर्ज्जयेत्।

श्राद्धानर्हाणि शरत्पक्वहैमन्तिकेतराणि धान्यानि द्रवद्रव्येषु मध्ये हिङ्गुं वर्जयेदित्यर्थः। नालिका कलम्बिका कृष्णाजाजी कृष्णजीरकं शीतपाकी सकजड्डा। लवणं सर्व्वमिति कृत्रिमलवणविषयं अवक्षुतावरुदितं यस्योपरि क्षुतं रुदितं वा कृतमित्यर्थः।

विष्णुपुराणे—

अकृताग्रयणञ्चैव धान्यजातं नरेश्वर।
राजमाषानणूंश्चैव मसूरांश्च विवर्ज्जयेत्॥
अलावुं गृञ्जनञ्चैव पलाण्डुं पिण्डमूलकम्।
गान्धारकं करम्भञ्च लवणान्यौषराणि च।
आरक्ताश्चैव निर्यासाः प्रत्यक्षलवणानि च॥
वर्ज्यान्येतानि वै श्राद्धे यच्च वाचा न शस्यते।

धान्यजातं शरद्धेमन्तोद्भवधान्यसमूहः अकृताग्रयणं अकृतप्रथमागमश्राद्धमित्यर्थः। अणवो मर्कटाः प्रत्यक्षलवणं द्रव्यलवणं न देयं किन्तु व्यञ्जनादिसंस्कारकाले द्रव्यान्तरमिश्रितं देयमित्यर्थः।

मात्स्ये—

मसूर-शन-निष्पाव-राजमाष-कुलत्थकाः।
कोद्रवोद्दाल-चणक-कपित्थ-मधुकातसी॥
एतान्यपि न देयानि पितृभ्यः प्रियमिच्छता।

निष्पावो, देवधान्यं ग्राम्यं निषिद्धं एवं विधिस्तु आरण्य-निष्पावपरः। उद्दालो बहुवारकः मधुकं यष्टिमधु चतसी मांसलेति ख्याता।

हारीतः—

पालङ्क्या-नालिका-पुती-वार्त्ताकु माष मसूर-शिग्रु नृपमाष-क्षतकलवणानि श्राद्धे न दद्यात्।

माषोऽत्र कृष्णेतरः।

कृष्णमाषास्तिलाश्चैव श्रेष्ठाः स्युर्यवशालयः।

इति वायुपुराणवचने कृष्णमाषविधानात्। नृपमाषो वर्व्वट इति ख्यातः।

तथा त्रिकाण्डशेषः—

राजमाषस्तु वर्व्वट इति। शिग्रुः शोभाञ्जनः।

विष्णुः—

पिप्पली-भूस्तृणासुरीसर्षप पालङ्क्या तण्डुलीयक सुरसा कुष्माण्डालाबु-वार्त्ताकु तुद्रु कुसुम्भ महिषीक्षीराणि वर्जयेत् राजमाष-मसूर क्षतलवण-पर्य्युषितानि च।

आसुरीसर्षपो राजीसर्षपः विष्णुपुराणे तु तदितरसर्षप-विधिः। सुरसा तुलसी व्यञ्जनप्रकरणाच्छाकात्मा निषिद्धा।

जातीचम्पकपुष्पाणि मल्लिकां तुलसीं तथा।

इति ब्रह्मपुराणे पुष्पत्वेन तुलस्या विधानात्।

ब्रह्मपुराणे—

द्विःस्विन्नं परिदग्धञ्च तथैवाग्रावलेहितम्।
शर्कराकीटपाषाणैः केशैर्यच्चाप्युपस्कृतम्॥
सिद्धाः क्षताय ये भक्ष्याः प्रत्यक्षलवणीकृताः।
पिण्याकं मथितञ्चैव तथातिलवणञ्च यत्॥
वाग्भावदुष्टञ्च तथा दुष्टैर्योपाहृतञ्च यत्।
वाससा चावधूतञ्च वर्ज्यानि श्राद्धकर्म्मणि॥

द्विःस्विन्नं वशिष्ठवचने व्याख्यास्यते। अग्रावलेहितं उपभुक्ताग्रभागं शर्करादिभिः सङ्गोपस्कृतं पक्वमित्यर्थः। पिण्याकस्तिलकल्कः मथितं तक्रं सिद्धा निष्पन्नाः क्षताः सन्तो येऽवतारितास्तदोत्तरकालं लवणप्रक्षेपेण प्रत्यक्षलवणीकृतास्ते वर्ज्या इत्यर्थः। भावदुष्टं मनोदुष्टं दुष्टैश्चाण्डालादिभिराहृतं दुग्धादि। वाससा अवधूतं उपरिवासोविधूनितम्।

मात्स्यादित्यपुराणे वशिष्ठः—

अन्न पर्य्युषितं भावदुष्टं पुनःस्विन्नमामं स्रजीषपक्वञ्च। कामन्तु दध्ना घृतेन वा अभिघारितमुपभुञ्जीत।

पुनः स्विन्नं सिद्धमोदनं काठिन्यादिनिमित्तं पुनर्जलादिना कृतपाकं यच्च स्विन्नधान्यतण्डुलानामोदनं तदपि पुनः स्विन्नम्। दाक्षिणात्यास्तु—

स्विन्नावतारितं व्यञ्जनं पुनर्घृतादिपाकेन संस्कृतमपि द्विःस्विन्नमाहुः। अतएव ते प्रथमतो घृतादिसंस्कारेण तत्रैव वा घृतप्रक्षेपेण व्यञ्जनं संस्कुर्व्वते। युक्तञ्चैतत्

प्रत्यग्रमेकदा खिन्नमपर्य्युषितमुत्तमम् ।

* इति ब्रह्मपुराणवचनात् ।

एतेनान्न निष्पाद्य तदन्नं दुग्धेन सह पुनः पाकेन पायसं क्रियते इति केषाञ्चिदाचारो दुराचार एवेति ।

आमनिषेधस्तु खिन्नधान्यतण्डुलविषयः पुनःखिन्नताविधानात् ।

न च आमं तण्डुलमुद्गादीति कल्पतरुव्याख्यानं युक्तं, प्रकृतत्वादन्नस्य विशेषणात् ।

नचादनीयमात्रे अन्नशब्दः, ओदनशब्दपर्य्याये धान्यविकार विशेषे योगरूढत्वात् । अतएव

भिःसा स्त्री भक्तमन्धोऽन्नमोदनोऽस्त्री स दीदिविः ।

इत्यमरकोषः ।

ततश्चामविशेषणात् स्वकारणे तण्डुले लाक्षणिकमन्नामपदम् । अतो नामसुद्गादिनिषेधः ।

किञ्च—

तण्डुलमात्रस्याभक्ष्यत्वे चामान्नेन श्राद्धे वैश्वदेवादिविधान प्रसङ्गं स्यात् ।

आपस्तम्बेनापि—

सर्व्वं पर्य्युषितमभक्ष्यं त्यक्तित पृथुकधाना तण्डुल करम्भ तक्र शाक मधु मांस क्षीरविकारौषधिमूलवर्ज्जमिति प्रति प्रसूय पर्य्युषितस्यापि तण्डुलस्य भक्ष्यत्वमभिहितम् ।

---

* अ पुस्तके इति श्राद्धे भक्ष्याभक्ष्याः ।

भविशेषेण सर्व्वशिष्टप्रवृत्तिश्च दृश्यते तस्मात् सान्निध्यात् खिन्नतण्डुलविषयोऽयं निषेधः। ऋजीषं पिष्टपचनभाण्डं तत्र पक्वमित्यर्थः। उक्तानां सर्व्वेषां प्रतिप्रसवमाह कामन्त्विति श्रयन्तु प्रतिप्रसवो भक्षणविषय एव नतु श्राद्धविषयः पूर्व्वोक्तवचनेषु श्राद्धे सामान्यतो निषेधात्।

अत्र विहितद्रव्याणां पाकविधानात् ब्राह्मणभोजनविधानाच पाकोऽङ्गं तदभावे श्राद्धं विगुणं वचनात्तु क्वचित् पाकाभावेऽपि श्राद्धमविगुणमेव।

ययादिपुराणे—

जातमद्येन दद्यात्तु पक्वान्नं ब्राह्मणेषु च।

तथा लघुहारीतः—

श्राद्धविघ्ने द्विजातीनामामश्राद्धं प्रकीर्त्तितम्।

पाकसामग्र्यभावेनाशक्त्यादिना वा श्राद्धविघ्ने सतीत्यर्थः।

व्यासः—

आत्मनो देशकालानां विप्लवे समुपस्थिते।

आमश्राद्धं द्विजैः कार्य्यं शूद्रेण तु सदैव हि॥

अथात्मनो विप्लवः पाककरणार्त्तिः, देशविप्लवः स्थानसङ्कोचादिना पाकासामर्थ्यम्, कालविप्लवः पवनचक्रादिभयादिना पाकक्षतकालक्षेपासहिष्णुता।

प्रचेताः—

आपद्यनग्नौ तीर्थे च चन्द्रसूर्य्यग्रहे तथा।

आमश्राद्धं द्विजैः कार्य्यं शूद्रेण तु सदैव हि॥

अतएव मत्स्यपुराणे शूद्रस्यापि पाकप्रसक्तौ निषेधमाह—

एवं शूद्रोऽपि सामान्यं वृद्धिश्राद्धन्तु सर्व्वदा।
नमस्कारेण मन्त्रेण कुर्य्यादामान्नवद्बुधः॥

तथा ब्रह्मपुराणे—

स्त्रीभिर्व्वर्णावरैः शूद्रैर्देयं विप्रानुशासनात्।
मन्त्रवद्विधिपूर्व्वं हि वह्निपाकविवर्ज्जितम्॥

अत्र स्त्रीणां प्रकरणात् सपिण्डनोत्तरश्राद्धविषय एव पाक निषेधः। शूद्राणान्तु 'शूद्रेण तु सदैव हि, इत्युशनोवचनात् सर्व्वदैवामविधिः शिष्टाचारोऽप्येवम् एव।

यत्तु—

आमश्राद्धमदोऽनग्निः सर्व्वत्रापुत्रमेवोदितः।

इति जाबालनामकं वचनं यदि समूलं तदपि पाकोप-युक्तान्याभावपरं शूद्रपरं वा मन्तव्यम्।

यच्च—

भार्य्याभावे द्विजाभावे प्रवासे पुत्रजन्मनि।
आमश्राद्धं द्विजैः कार्य्यं यस्य भार्य्या रजस्वला॥
अपयोगः प्रवासो च यस्य भार्य्या रजस्वला।
सिद्धान्नेन न कुर्व्वीत आमं तस्य विधीयते॥

इति नाममूलं वचनद्वयं तदमूलं मत्स्यपुराणे भार्य्याविर-हितोऽप्येतद्विलादिना भार्य्याभावे प्रवासे च पाकाद्यकथाऽ-विधानात्।

प्राश्येदग्नौ तदन्नञ्च दद्याद्वा ब्रह्मचारिणे।
अग्नौ तु जुहुयादन्नमप्सु वा तत्प्रवेशयेत्॥
भूमौ दर्भेषु वा दद्यात् विना पात्रं कथञ्चन।

इति वशिष्ठब्रह्मनुवचनाभ्यां द्विजाभावेऽपि पाकप्रतीतेश्च समूलत्वेऽपि भार्य्याद्यभावे स्वयं पाककरणासामर्थ्ये मन्तव्यं पुत्रजन्मनि तु वचनान्तरात् सामर्थ्येऽसामर्थ्ये च सति।

न च द्विजाभावोऽप्यापदिति वाच्यम्।
निधायाथ दर्भचयमासनेषु समाहितः।
प्रैषानुप्रैषसंयुक्तं विधानं प्रतिपादयेत्॥

इति सत्यव्रतेन द्विजाभावेऽपि श्राद्धस्य विहितत्वेनापत्त्वाभावात् तदन्नस्याग्न्यादौ प्रक्षेपोपदेशाच्च। एवञ्चापदादिना पाकाशक्तावामविधानं सामान्यतः प्राप्तमप्येकोद्दिष्टे नास्तीत्याह लघुहारीतः—

श्राद्धविघ्ने द्विजातीनामामश्राद्धं प्रकीर्त्तितम्।
अमावस्यादिनियतं माससंवत्सरादृते॥
एकोद्दिष्टन्तु कर्त्तव्यं पाकेनैव सदा स्वयम्।
अभावे पाकपात्राणां तदह्नः समुपोषणम्॥
अमावस्यादिनियतं प्रोषिते सहचारिणौ।
पत्नी तु कारयेन्नित्यमन्येनाप्यृत्विगादिना॥

अयन्तया पाकाङ्गकश्राद्धविघ्ने सति अमावस्यादिविहितं नियतमाद्यङ्गकश्राद्धसामश्राद्धं कीर्त्तितम्।

काम्यश्राद्धे तु "नित्ये हि किञ्चिदङ्गहानिः यथा न तु काम्ये" इति सर्व्वशक्त्यधिकरणे दर्शितत्वात् नामश्राद्धविधानमिति। श्राद्धविघ्न इत्यनेन दायाद्दिकपिण्डदानस्य विघ्नेऽप्याम-विधिर्निरस्तः। माससंवत्सरादृते इति माससंवत्सरविहित-श्राद्धादिभिन्नेत्यर्थः।

मासशब्दोऽत्र सकलप्रेतकृत्यकालोपलक्षकः, तेन एकादशाहादीनि सपिण्डीकरणान्तानि श्राद्धानि नामावेन कार्य्याणि किन्तु पाकेनैव।

तथाच भविष्यपुराणम्—

सपिण्डीकरणं यावत्श्राद्धं प्रेतस्य तमिदम्।
पक्वान्नेनैव कर्त्तव्यं सामिषेण द्विजातिभिः॥

तथा प्रचेताः—

प्रेतश्राद्धानि कुर्व्वीत पक्वान्नेनैव सर्व्वदा।

तथा प्रतिसंवत्सरमेकोद्दिष्टविधिना सात्त्वादिना पार्व्वणविधिना वा क्रियमाणं श्राद्धं नामावेन, पाकेनैव कार्य्यमित्यर्थः। तत्र एकोद्दिष्टपदेन पूर्व्वोक्तं सकलप्रेतकृत्यं सांवत्सरिकञ्चोच्यते। पाकेनेति विशेषणे तृतीया पाकेन विशेषितं सकलप्रेतकृत्यं सांवत्सरिकञ्च स्वयमेव सदा विघ्नेऽविघ्नेऽपि कार्य्यं न तु वक्ष्यमाण-वचनात् अमावस्यादिवत् ऋत्विगादिद्वारा कारयितव्यम्। अत्रापि स्वगणस्थो गोत्रजद्वारैव कर्त्तव्यं न ऋत्विगादिद्वारेति। यथा प्रेतक्रियां प्रकृत्य ब्रह्मपुराणे—

न कदाचित् सगोत्राय श्राद्धं कार्य्यमगोत्रजैः।

अगोत्रजैः सगोत्रायैत्वसम्बन्धादगोत्रजैर्द्वारभूतैः सगोत्राय श्राद्धं न कार्य्यं किन्तु गोत्रजद्वारैव विशेषश्रवणात्। इति श्रीशूलपाणिः।

अत्राधुनिकाः—

न ब्रह्मचारिणः कुर्य्युरुदकं पतिता न च।

इति याज्ञवल्क्यनिषेधात् ब्रह्मचारिणा मातापितृश्राद्धं गोत्रजद्वारा कर्त्तव्यमित्येवंपरत्वोपपत्तौ स्वयमेवेत्यस्य सङ्कोचे प्रमाणाभाव इत्याहुः।

तदशुद्धं पतितप्रव्रजितवत् ब्रह्मचारिणां कर्म्माधिकार-निषेधादनधिकारिणाञ्च प्रतिनिधेरप्रसिद्धत्वात्। अन्यथा पतितादीनामपि प्रतिनिधिकरणप्रसङ्गात् तदनधिकारे च तत्सपिण्डादीनां स्वतएवाधिकारात् ब्रह्मचारिणां गोत्रजद्वारानु-ष्ठानमाकाशकुसुममेवेति।

वस्तुतस्तु—अमावस्यादि-श्राद्धानामुत्तरकाल-कर्त्तव्यत्वाभावा-त्तोपपत्तौ अन्यद्वारा कर्त्तव्यत्वमस्तु एकोद्दिष्टस्य तु तदेकादश्या-मुत्तरकाले स्वयमनुष्ठानश्रवणात्। तदा स्वयमिति विधान-बलाच्च स्वानुष्ठाननियमे सत्यपि चिरकालापाटवविदेशगमनादिना वत्सरमध्येऽपि तदेकादश्यां यद्यं करणाशक्तिसम्भावनायां गोत्रजद्वारा वह्निपुराणेन विधीयते इत्यादौ विस्तरः॥

अथान्यस्य पाकाभावे तर्हि किं स्यादित्याह—अभावे पाक-पात्राणामिति।

एतच्च सकलसामग्र्यभावोपलक्षकम्। तदहः समुपोषण-मिति तदहः श्राद्धहेतुपाकसामग्र्यसम्पादनजनितपापक्षयार्थं प्रायश्चित्तरूपमुपोषणं न तु श्राद्धस्थानीयं प्रमाणाभावात्। श्राद्धविधे कृष्णैकादशीविधिरंशतो बाधापत्तेश्च।

किञ्च उपवासस्यानुकल्पत्वे प्रेतश्राद्धस्याप्यकरणप्रसङ्गात् षोड़शश्राद्धानामजातत्वेन प्रेतत्वपरीहारो न स्यात्।

अमावस्यादीति—प्रोषिते पत्यौ अमावास्यादिनियतममाय-स्याद्यनुष्ठेयं नित्यमावश्यकश्राद्धं पत्नी ऋत्विगादिना कारयेत् नतु काम्यमित्यर्थः।

ऋत्विगादिस्तु—

> ऋत्विक् पुत्रो गुरुर्भ्राता भागिनेयोऽथ विट्पतिः।
> एभिरेव हुतं यत्तु तद्धुतं स्वयमेव हि॥

इति हारीतोक्तेः।

मत्स्यपुराणे—

> एवं शूद्रोऽपि सामान्यं वृद्धिश्राद्धञ्च सर्व्वदा।
> नमस्कारेण मन्त्रेण कुर्य्यादामान्नवद्बुधः॥

सामान्यं यत्किञ्चित्कर्म्म दार्शाह्निकपिण्डदानदेवतानैवेद्या-दिकम्। वृद्धिश्राद्धपदेन सकलश्राद्धमुपलक्षते अन्यथा वृद्धिश्राद्धेन नमस्कारमात्रो नमस्कारेणेति व्यर्थं स्यात् सर्व्वदा आपदनापदो-र्व्वयः। अतएव—शूद्रेण तु सदैव होति प्रचेतोवचनम्। तथा देवलः—

> आमं शूद्रस्य पक्वान्नं पक्वमुच्छिष्टमुच्यते।

पक्वान्नमिति द्विजातिना पक्वान्नेन यत् क्रियते शूद्रेण तत्कर्म्मामान्नेन कार्य्यमित्यर्थः ।

उच्छिष्टं देव-पितृ-द्विजातिगोचरतया उच्छिष्टतुल्यमित्यर्थः ।

अथेह कः पक्वपदार्थः ।

नचाग्निपाकजन्यविकारापन्नं पक्वमिति वाच्यम् ।

शूद्रकृतदुग्धलाजादीनामपक्वत्वप्रसङ्गात् ।

नचाग्निसन्तापे यस्य स्पर्शे आचमनं विहितं तत्पक्वमिति वाच्यम् । पक्वज्ञाने आचमनविधानं आचमनविधानज्ञाने च पक्वज्ञानमित्यन्योन्याश्रयदोषात् ।

वस्तुतस्तु सहजकठिनानामग्नितापितानां स्विन्नता पाकः तद्युक्तमिह पक्वं विवक्षितम् ।

तेन लाजादीनां जलसम्पर्के स्विन्नतायोगात् पक्वत्वं दुग्धादीनान्तु कठिनत्वाभावान्न पक्वत्वं गुड़शर्करामिश्रादीनां तु द्रवमूलत्वेन सहजकाठिन्याभावात् पुनः पुनरग्निसंयोगात् * घृतवत् पक्वत्वमिति ।

तेन —

नामौषितं स्पृशेत् किञ्चिद्दैवे पैत्रे कथञ्चन ।

इति वायुपुराणवचनात् सूक्ष्मभोजितानामेव श्राद्धे देयत्वात् लाज-सक्तु-चिपिटकादीनां जलस्पर्शे पक्वत्वात् शूद्रेण लाजादीनि न देयानीति । एतत् मध्यमाचारानुरोधेनैव लिखितम् ।

---

* ख पुस्तके * अंशो नास्ति ।

## अथ श्राद्धार्हब्राह्मणाः।

मनुः—

दूरादेव परीक्षेत ब्राह्मणं वेदपारगम्।
तीर्थं तद्धव्यकव्यानां प्रदाने सोऽतिथिः स्मृतः॥

दूरात् पितृपितामहादिक्रमेण, तीर्थं पात्रम्।

यत्तु—

न ब्राह्मणं परीक्षेत दैवे कर्मणि धर्मवित्।
पित्र्ये कर्मणि तु प्राप्ते * परीक्षेत प्रयत्नतः॥

इति तदीयापरवचनं तत् यत्नेन पितृब्राह्मणस्य परीक्षाधिक्यकथनार्थं न तु दैवब्राह्मणपरीक्षा न कार्य्येति।

श्रोत्रियायैव देयानि हव्यकव्यानि दातृभिः।

इति तदीयापरवचनात्।

तीर्थश्राद्धे तु ब्राह्मणपरीक्षा न कार्य्या।

तीर्थेषु ब्राह्मणं नैव परीक्षेत कदाचन।

इति ब्रह्मपुराणवचनात्।

याज्ञवल्क्यः—

अग्र्याः सर्व्वेषु वेदेषु श्रोत्रियो ब्रह्मविद्युवा।
वेदार्थवित् ज्येष्ठसामा त्रिमधुस्त्रिसुपर्णकः॥
स्वस्रीय ऋत्विक् जामातृ याज्य श्वशुर मातुलाः।
त्रिणाचिकेत दौहित्र शिष्य सम्बन्धिबान्धवाः॥

---

* ख पुस्तके सम्प्राप्ते।

कर्म्मनिष्ठास्तपोनिष्ठाः पञ्चाग्निव्रतचारिणः।
पितृमातृपरायैव ब्राह्मणाः श्राद्धसम्पदः॥

श्रोत्रियोऽधीतसाङ्गवेदः युवेत्युभयविशेषणं प्राशस्त्यार्थं *
त्रिमधुत्रिसुपर्णौ वेदभागविशेषास्तदध्ययनयोगात् ब्राह्मणास्तथा
व्यपदिश्यन्ते स्वस्रीयो भागिनेयः त्रिनाचिकेतो वेदभागविशेष-
स्तद्विद् शिष्यो गुणवान्।

वशिष्ठः—

शिष्यानपि गुणवतो भोजयेत्।

हारीतः—

पचनः पावनस्त्रेता यस्य पञ्चाग्नयो गृहे।
सायं प्रातः प्रदीप्यन्ते स विप्रः पङ्क्तिपावनः॥

पचनः पाकाग्निः पावनोऽतिथीनां शीतापनोदनाग्निः
श्राद्धसम्पदः श्राद्धेऽत्यन्तं प्रशस्ता इत्यर्थः।

मत्स्यपुराणे—

श्रोत्रियः श्रोत्रियसुतो विधिवाक्यविशारदः।
सर्व्वज्ञो वेदविन्मन्त्री ज्ञातवंशकुलान्वितः॥
पुराणवेत्ता धर्म्मज्ञः स्वाध्यायी जपतत्परः।
शिवभक्तः पितृपरः सूर्य्यभक्तोऽथ वैष्णवः॥
ब्रह्मण्यो योगविच्छान्तो विजितात्मा सुशीलवान्।
यत्र व्याकुरुते वाचं यत्र मीमांसतेऽध्वरम्॥

* ग पुस्तके त्रिमधुरित्यारभ्य भगवता इत्यन्तोऽंशो नास्ति।

सामस्वरविधिज्ञश्च पङ्क्तिपावनपावनाः * ।
षड़ङ्गवित् ध्यानयोगी योगतत्त्वज्ञ एव वा ॥
श्रयाचिताशी शुद्धात्मा श्राद्धकर्मविदेव वा ।
श्रष्टादशानां विद्यानामेकस्यापि च पारगः ॥
इतिहासपुराणैश्च पवित्रीकृतमानसः ।
अष्टवर्षा तु या दत्ता श्रुतशीलसमन्विते ।
सा गौरी तत्सुतो गौरः पङ्क्तिपावन एव सः ॥
भोजयेच्चापि दौहित्रं यत्नतः श्वशुरं गुरुम् ।
विट्पतिं मातुलं बन्धुमृत्विगाचार्यसोमपान् ।

विजितात्मा जितेन्द्रियः यश्च व्याकुरुते वाचं वेदाङ्गव्याख्याता यश्च मीमांसतेऽध्वरं यज्ञविधिव्याख्याता, पङ्क्तिपावनाद्युक्ता तदभावे दौहित्रादीनां प्राशस्त्यमाह भोजयेच्चापीति विट्पतिर्जामाता ।

तथा तत्रैव— :

विप्रान् पूर्व्वे परे वाह्नि संयतात्मा निमन्त्रयेत् ।
शीलवृत्ता गुणोपेतान् वयोरूपसमन्वितान् ॥

गोभिलः—

शाखाध्यायी मन्त्राध्यायी षड़ङ्गवित् ज्येष्ठसामस्त्रिणाचिकेत स्त्रिसुपर्णः पञ्चाग्निर्मन्त्रवित् मन्त्रब्राह्मणवित् धर्म्मज्ञो ब्राह्मोढ़ापुत्रश्च वागीश्वरो याज्ञिकः पंक्तिपावन इति ।

* च पुस्तके पङ्क्तिपावनपावकाः ।

नियोज्यानामभावे पंक्तिपावनमेकं पङ्क्तिमूर्द्धनि सञ्ज्ञात्। यावद्दशात् पंक्तिं पुनातीति श्रुतिः काममितरे।

अथ चेन्मन्त्रविद्युक्तः शारीरैः पङ्क्तिदूषणैः।
अदूष्यं तं यमः प्राह पंक्तिपावन एव सः॥

धर्मज्ञो धर्मशास्त्रज्ञः शारीरैः स्थूलत्व-हीनातिरिक्ताङ्गत्वादि-दोषैः।

यमः—

ये सोमपा विरजसो धर्मज्ञाः शान्तबुद्धयः।
व्रतिनो नियमस्थाश्च ऋतुकालाभिगामिनः॥
त्रिणाचिकेतः पञ्चाग्निस्त्रिसुपर्णः षडङ्गवित्।
ब्रह्मदेयानुसन्तानश्छन्दोगो ज्येष्ठसामगः*॥
मन्त्रब्राह्मणवित्तैव यश्च स्यादन्त्रपाठकः॥
ब्रह्मदेयासुतश्चैव गर्भशुद्धः सहस्रदः।
चान्द्रायणव्रतपरः सत्यवादी पुराणवित्॥
निष्णातः सर्व्वविद्यासु शान्तो दान्तोऽविकत्थनः।
गुरुदेवाग्निपूजासु प्रसक्तो ज्ञानतत्परः॥
वेदविद्याव्रतस्नातो ब्राह्मणाः पंक्तिपावनाः।
अभ्युत्क्रान्ताः स्वधर्मेभ्यो ये विप्राः श्रुतिसत्कृताः॥
प्राणिहिंसानिवृत्ताश्च समावक्तोऽनसूयकाः।
ये प्रतिग्रहनिःस्नेहा नित्यं दानरताश्च ये॥
सदृशाचारयुक्ताश्च ब्राह्मणाः पंक्तिपावनाः।

ऋतुकाल एव गमनपरा नान्यकाले इत्यर्थः।

---

* क पुस्तके पाठः।

ब्रह्मदेयासुतः ब्राह्मविवाहितासुतः गर्भशुद्धः पुंसवनादिगर्भसंस्कारयुक्तः सहस्रदो बहुप्रदः। शान्तो रागादिशून्यः दान्तस्तपःक्लेशसहः।

स्कन्दपुराणे—

कुलश्रुतिभ्यां संयुक्तादसुव्रतस्तु विशिष्यते।

दौहित्रप्रशंसामाह मनुः—

व्रतस्थमपि दौहित्रं श्राद्धे यत्नेन भोजयेत्।
कुतपञ्चासने दद्यात्तिलैश्च विकिरेन्महीम्॥
त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहित्रं कुतपस्तिलाः।
त्रीणि चात्र प्रशंसन्ति शौचमक्रोधमत्वराम्॥

कात्यायनः—

स्नातकान् यतीन् गृहस्थान् साधून् श्रोत्रियान् अनवद्यान् स्वकर्मस्थान्। अनवद्यानिति श्रोत्रियविशेषणम्।

कूर्मपुराणे—

भिक्षार्थमागतान् वापि काले संयमिनो यतीन्।
भोजयेत् प्रणिपाताद्यैः प्रसाद्य यतमानसः॥

काले श्राद्धकाले इत्यर्थः। यतिब्रह्मचारिभ्यां श्राद्धे मधुमांसञ्च न भोज्यम्।

यथा याज्ञवल्क्यः—

ब्राह्मणः काममश्नीयाच्छ्राद्धे व्रतमपीडयन्।
व्रतम् ब्रह्मचर्य्यं मधुमांसत्यागेनार्जयन्नित्यर्थः।

अथ पङ्क्तिपावनानाह याज्ञवल्क्यः—

रोगी हीनातिरिक्ताङ्गः काणः पौनर्भवस्तथा।
अवकीर्णी कुण्डगोलौ कुनखी श्यावदन्तकः॥
भृतकाध्यापकः क्लीबः * कन्यादूष्यभिशस्तकः।
मित्रध्रुक् पिशुनः सोमविक्रयी परिविन्दकः॥
मातापितृगुरुत्यागी कुण्डाशी वृषलात्मजः।
परपूर्व्वापतिः स्तेनः कर्म्मदुष्टाश्च निन्दिताः॥

पौनर्भवः द्विरूढ़ापुत्रः अवकीर्णी स्खलितव्रतो ब्रह्मचारी।
कुण्डगोलावाह मनुः—

परदारेषु जायेते द्वौ सुतौ कुण्डगोलकौ।
पत्यौ जीवति कुण्डस्तु मृते भर्त्तरि गोलकः॥

भृतकाध्यापको वेतनं गृहीत्वा योऽध्यापयति तेनाध्यापितोऽपि मनूक्तोऽत्र ज्ञेयः।

कन्यादूषी कन्यागन्ता अभिशस्तः उपपातकादिना परिवादग्रस्तः पिशुनः परदोषसूचकः परिविन्दकः अकृतदारे ज्येष्ठे कृतदारः अत्र तज्ज्येष्ठपरिवित्तिरपि मनूक्तो ग्राह्यः कुण्डाशी बहुभोजनशीलः वृषलात्मजः शूद्रायामुत्पादितः पुत्र इत्यर्थः। वृषलीपतिरप्यत्र मनूक्तो ग्राह्यः स्तेनश्चौर्य्ययोग्यः कर्म्मदुष्टा निषिद्धवाणिज्यादिकर्म्मकारिणः।

वामनपुराणे—

यस्य नैवाधरोष्ठाभ्यां छाद्यते दशनावली।
विरूपः स तु विज्ञेयो ब्राह्मणः पंक्तिदूषकः॥

---

* अ पुस्तके क्लीवः।

मनुः—

चिकित्सकान् देवलकान्मांसविक्रयिणस्तथा ।
विपणेन च जीवन्तो वर्ज्याः स्युर्हव्यकव्ययोः ॥
प्रेष्यो ग्रामस्य राज्ञश्च कुनखी श्यावदन्तकः ।
प्रतिरोद्धा गुरोश्चैव त्यक्ताग्निर्वार्द्धुषिस्तथा ॥
यक्ष्मी च पशुपालश्च परिवेत्ता निराकृतिः ।
ब्रह्मद्विट् परिवित्तिश्च गणाभ्यन्तर एव च ।
कुशीलवोऽवकीर्णी च वृषलीपतिरेव च ॥
पौनर्भवश्च काणश्च यस्य चोपपतिर्गृहे ।
भृतकाध्यापको यश्च भृतकाध्यापितश्च यः ॥
शूद्रशिष्यो गुरुश्चैव वाग्दुष्टः कुण्डगोलकौ ।
पित्रा विवदमानश्च कितवो मद्यपस्तथा ।
पापरोग्यभिशस्तश्च दाम्भिको रसविक्रयी ॥
आचारहीनः क्लीबश्च नित्यं याचनकस्तथा ।
कृषिजीवी श्लीपदी च सद्भिर्निन्दित एव च ।
प्रेतनिर्यातकश्चैव * वर्जनीयाः प्रयत्नतः ॥

गुरोः प्रतिरोद्धा प्रतिकूलाचरणशीलः वार्द्धुषिर्वृद्ध्याजीवी यक्ष्मी क्षयरोगी निराकृतिः पञ्चयज्ञानुष्ठानरहितः ।

छन्दोगपरिशिष्टम्—

निराकर्त्ता ऽमरादीनां स विज्ञेयो निराकृतिः ॥

---

* क पुस्तके प्रेतनिर्हारक ।

गणाभ्यन्तरो गणार्थोत्सृष्टमठधनोपजीवी। कुशीलवो नर्त्तकः। शूद्रस्य गुरुरित्यर्थः। वाग्दुष्टः परुषभाषी कितवो द्यूतकारः रसविक्रयी लवणादिरसविक्रेता। प्रेतनिर्यातकः कपर्दकग्रहणेन मृतहारीत्यर्थः।

तथा तत्रैव—

न श्राद्धे भोजयेन्मित्रं धनैः कार्य्योऽस्य संग्रहः।
नारिं न मित्रं य विद्यात् तं श्राद्धे भोजयेद्द्विजम्॥
यस्य मित्रप्रधानानि कव्यानि च हवींषि च।
तस्य प्रेत्य फलं नास्ति श्राद्धेषु च हविःषु च॥
कामं श्राद्धेऽर्च्चयेन्मित्रं नाभिरूपमपि त्वरिम्।
द्विषता हि हविर्भुक्तं भवति प्रेत्य निष्फलम्॥

धनैर्धनान्तरैः संग्रहः प्रीतिः अभिरूपं विद्वांसमपीत्यर्थः प्रेत्य परलोके।

तथा— ब्राह्मणो ह्यनधीयानस्तृणाग्निरिव शाम्यति।
तस्मै हव्यं न दातव्यं न हि भस्मनि हूयते॥

मत्स्यपुराणे—

पतिताभिशस्तक्लीबान्धपिशुनव्यङ्गरोगिणः।
कुनखी श्यावदन्श्चित्री जटिलः कुण्डगोलकौ॥
परपूर्व्वापतिः स्तेनः कितवो ग्रामयाजकः॥
वैडालव्रत-दुष्टत्त-दम्भि देवलकादयः।
कृतघ्ना नास्तिकास्तद्वत् म्लेच्छदेशनिवासिनः॥

त्रिशङ्कुर्वर्व्वरोड्राश्चान्ध्रटक्कद्रविड़ कोङ्कणाः।
कर्णाटाश्च कलिङ्गाश्च चीनाः श्राद्धेषु निन्दिताः॥
जटिलो जटाधरः त्रिशङ्क्वादिदेशवासिनः।

ब्राह्मे—

इदानीं संप्रवक्ष्यामि वर्ज्जनीयान् द्विजाधमान्।
स्त्रिवभुक् कुनखी क्लीवः क्षयी श्वित्री वणिक् तथा॥
श्यावदन्तोऽथ खल्वाटः काणोऽन्धो वधिरो जड़ः।
मूकः पङ्गुः कुणिः षण्डो दुश्चर्म्मा व्यङ्गकेकरौ॥
कुष्ठी रक्तेक्षणः कुब्जो वामनो विकटोऽलसः।
मित्रं प्रभुर्दुष्कुलीनः पशुपालो निराकृतिः।

कात्यायनः—

नग्न-शुक्रविक्रयि-श्यावदन्त विप्रजनन-व्याधित व्यङ्गाधिकाङ्ग-श्वित्रि* † कुष्ठिकुनखिवर्ज्जम्।

विप्रजननोऽनपत्यः।

---

## अथ श्राद्धपरिभाषा।

यातातपः—

उदङ्मुखस्तु देवानां पितॄणां दक्षिणामुखः।
प्रदद्यात् पार्व्वणे श्राद्धे देवपूर्व्वं विधानतः॥

---

* ख पुस्तके नास्ति।
† क पुस्तके चेति।

छन्दोगपरिशिष्टम्—

दक्षिणं पातयेज्जानु देवान् परिचरन् सदा।

पातयेदितरज्जानु पितॄन् परिचरन्नपि॥

इतरत् वामम्।

वायुपुराणे—

नाभोचितं स्पर्शयेत् किञ्चित् दैवे पित्र्येऽथवा पुनः।

उत्तरेणाहरेद्वेद्या दक्षिणेन विसर्ज्जयेत्॥

वेदिः श्राद्धभूमिः यत्किञ्चित् प्रवेश्यं तदुत्तरदिशा प्रवेशयेत्।
यत्निःसार्य्यं तद्दक्षिणदिशा निःसारयेदित्यर्थः।

ब्राह्मे—

तर्ज्जन्यङ्गुष्ठयोरन्तः पित्रं तीर्थमुदाहृतम्।

अङ्गुल्यग्रे तथा दैवं तेन दैवक्रियाविधिः॥

विष्णुपुराणे—

यवाम्बुना तु देवानां दद्यादर्घ्यादिकं बुधः।

तिलाम्बुना पितॄणान्तु दद्यादर्घ्यादिकं नृपः *॥

देवलः—

†प्राचीनावीतिना पित्र्यं दैवं चैवोपवीतिना।

देवाना नमसा देयं पितॄणाञ्च स्वधेति च॥

नमसा नमःपदेनेत्यर्थः।

---

* ख पुस्तके बुध।

† ख पुस्तके देवलवचनस्य पूर्व्वपादद्वयं नास्ति।

तथा विष्णुः—

नमो विश्वेभ्यो देवेभ्य इत्यर्घमादौ प्राङ्मुखयोर्निवेदयेत्।

यत्तु—

विश्वे देवा एष वोऽर्घ्यः स्वाहेति पितरेष ते अर्घ्यः स्वधेति वै दद्यात् पितृणाञ्च यथाक्रमम् इत्यग्निपुराणे दैवे स्वाहापदमुक्तं तच्छाखान्तरीयं इच्छाविकल्प इति गौडाः।

मनुः—

प्राचीनावीतिना सम्यगपसव्यमतन्द्रिणा।
पित्र्यमानिधनात् कार्यं विधिवद्दर्भपाणिना॥

अपसव्यं वामावर्त्तकर्मेणेत्यर्थः। आनिधनात् श्राद्धसमाप्तिपर्य्यन्तम्।

उपवीतित्वं प्राचीनावीतित्वञ्च स्पष्टयति गोभिलः—

दक्षिणं बाहुमुद्धृत्य सव्येऽंसे प्रतिष्ठापयति दक्षिणं कक्षमनुपलम्बं भवत्येवं यज्ञोपवीती भवति।

सव्यं बाहुमुद्धृत्य दक्षिणांसे प्रतिष्ठापयति सव्यं कक्षमनुपलम्बं भवत्येवं प्राचीनावीती भवति।

अत्र यज्ञोपवीतस्यैव दक्षिणांसधारणविधानादुत्तरीयधारणे तु विशेषाभावात् प्राचीनावीतित्वपक्षेऽपि सव्यांस एवोत्तरीयधारणमिति ये वदन्ति न एवं द्रष्टव्याः विशेषवचनाभावात् उत्तरीयधारणं सव्यांसे कार्यं सव्यमिति।

अन्यथा कल्पनागौरवाद्यज्ञोपवीतधारणपरिभाषया तत्साधि-

ध्यादुत्तरीयस्यापि धारणं कस्मान्न इति चेत् प्राचीनावीति-त्वपक्षेऽपि तत् साहित्येन धारणं सिद्धमेवेति।

किञ्च नारायणोपाध्यायेन परिशिष्टप्रकाशे

छिन्द्वेदस्थीनि सर्व्वाणि प्राचीनावीत्यभावयन्॥

इति वचनव्याख्यानावसरे आदिपुराणवचनं लिखितम्। यथा—

अपसव्यं क्रमादस्तं कृत्वा कश्चित् सगोत्रजः।

प्रेतस्यास्थीनि गृह्णीयादधानाङ्गोद्भवानि च॥

तथा हारलतालिखितप्रेततर्पणे शङ्खलिखितवचनम्—

राजन्यवैश्यावपसव्यं वासयज्ञोपवीतं कृत्वा अमावितत्व इति।

पारस्करः—

पित्र्ये तु द्विगुणा दर्भाः पवित्रपाणिर्दद्यादासीनः सर्व्वत्र प्रश्नेषु* पंक्तिमूर्द्धन्यं पृच्छेत्॥

पवित्रशब्दोऽत्र कुशवचनः ते च वक्ष्यमाणछन्दोगपरिशिष्ट विधिना धार्य्यौ कुशा धार्य्याः॥

हारीतः—

मन्त्रैरद्भिस्तिलैर्दत्तं तूष्णीमश्नुते दिवम्।

मन्त्रैर्यथाविध्युक्तवाक्यैः तूष्णीं शब्दान्तरप्रयोगं विनेत्यर्थः।

बौधायनः—

प्रदक्षिणन्तु देवानां पितॄणामप्रदक्षिणम्।

देवानामृजवो दर्भाः पितॄणां द्विगुणाः स्मृताः॥

---

* ख पुस्तके साहित्यात्। † ख पुस्तके आश्रमेषु।

प्रदक्षिणं दक्षिणावर्त्तेन देवानां कार्य्यं पितृणान्तु वामावर्त्तं नेत्यर्थः।

श्राद्धदिनं प्रकृत्य हारीतः—

श्वो भूते श्राद्धकर्म्मणि दक्षिणां दिशं गत्वा दक्षिणाग्रणान् समूलान् कुशानाहरेदन्यापरिगृहीतायापः। इति।

निमन्त्रणदिनात् श्वः परदिने भूते सति श्राद्धदिने इत्यर्थः।

छन्दोगपरिशिष्टम्—

हरिता यज्ञिया दर्भाः पीतकाः पाकयज्ञियाः।
समूलाः पितृदेवत्याः कल्माषा वैश्वदेविकाः॥

पाकयज्ञा वैश्वदेवादयः समूला मूलसमीपे छिन्ना इत्यर्थः। बर्हिरुपमूलन्लूना इति गोभिलवचनात् पितृकर्म्मणि समूलत्वनियमादन्यत्रामूलानियमः कल्माषः कृष्णपाण्डरः।

ब्रह्मपुराणे—

गोकर्णमात्रास्तु कुशाः सकृच्छिन्नाः समूलकाः।
पितृतीर्थेन देयाः स्युर्दूर्व्वाः श्यामाक एव च॥
काशाः कुशाः बल्वजाश्च तथा वै तीक्ष्णरोमशाः।
मौञ्जाश्च शाद्वलाश्चैव षड्दर्भाः परिकीर्त्तिताः॥
श्राद्धे बल्वजं विशेषेण * मुनयाःसंगवेधकाः।

गोकर्णमात्रा विस्तृतानामिकाङ्गुष्ठप्रमाणाः तीक्ष्णरोमशा इति बल्वजविशेषणम्। अतएव गोभिले बल्वजनिषेधस्तदितर-

* न युञ्ज्यात् ग्रन्थेन।

बल्वजपरः, मुञ्जः शरस्तत्पर्व मौञ्जं दलं भेत् दलविधानात् कर-धारणासामर्थ्याच्च गोभिले शरनिषेधः शरकाण्डपरः शाड्वलमिति दूर्व्वादीनां सर्व्वेषां विशेषणं। दूर्व्वादिषु दर्भशब्दो गौणपरस्तत्-कार्य्यकरणार्थः। अत्र दर्भत्वाव्यभिचारेऽपि यषां मध्ये यत् कुशस्य गणनं तत्तु कुशपदेऽेष्वपि पदस्य दर्भशब्दप्रयोगार्थम्।

अत्र कुशाभावे काशं दूर्व्वां वा दद्यात् इति विष्णुवचनात्—

पिण्डनिर्वपणं कार्य्यं कुशाभावे विचक्षणैः।
काशेषु राजन् दूर्व्वासु पवित्रे परमे मते॥

इति विष्णुधर्म्मोत्तरवचनाच्च काशदूर्व्वयोर्मुख्यप्रतिनिधित्वम्। तयोरभावे त्वन्येषामिति।

अतएव मैत्रावरुणीयपरिशिष्टम्—

दर्भास्तरणार्थे काशः प्रतिनिधिः तदलाभे पर्व्वतीभिः काण्डवतीभिरोषधीभिःस्तरणं कुर्व्वन्तीति।

उलपस्तृणभेदः गवेधुका गवेडुरित्यर्थः।

शूक तृण बल्वज शर शौर्य्य···वर्ज्जं सर्व्वं तृणानि।

इति गोभिलवचनेन प्रतिनिधित्वेन प्राप्तयोर्निषेधोऽयम्॥ शूकतृणं शूकयुक्ततृणं धान्यादि शौर्य्यादयस्तृणभेदाः स्वनाम-ख्याता देशविशेषप्रसिद्धाः।

वायुपुराणे—

रत्निमात्राः प्रशस्ता वै पितृतीर्थेन संस्कृताः।
उपमूले तथा लूनाः प्रस्तरार्थे कुशोत्तराः॥

प्रदक्षिणं दक्षिणावर्त्तेन देवानां कार्य्यं पितॄणान्तु वामावर्त्तेनेत्यर्थः।

श्राद्धदिनं प्रकृत्य हारीतः—

श्वो भूते श्राद्धकर्म्मणि दक्षिणां दिशं गत्वा दक्षिणप्रवणान् समूलान् कुशानाहरेदन्यापरिगृहीतायाम्। इति।

निमन्त्रणदिनात् श्वः परदिने भूते सति श्राद्धदिने इत्यर्थः।

छन्दोगपरिशिष्टम्—

हरिता यज्ञिया दर्भाः पीतकाः पाकयज्ञियाः।
समूलाः पितृदैवत्याः कल्माषा वैश्वदेविकाः॥

पाकयज्ञा वैश्वदेवादयः समूला मूलसमीपे छिन्ना इत्यर्थः।

बर्हिरुपमूललूना इति गोभिलवचनात् पितृकर्म्मणि समूलत्वनियमादन्यत्रामूलानियमः कल्माषः कृष्णपाण्डुरः।

ब्रह्मपुराणे—

गोकर्णमात्रास्तु कुशाः सकृच्छिन्नाः समूलकाः।
पितृतीर्थेन देयाः स्युर्दूर्व्वाः श्यामाक एव च॥
काशाः कुशाः बल्वजाश्च तथा ये तीक्ष्णरोमशाः।
मौञ्जश्च शाद्वलश्चैव षड्दर्भाः परिकीर्त्तिताः॥
श्राद्धे वर्ज्या विशेषेण * झुलपाःसंगवेधुकाः।

गोकर्णमात्रा विस्तृतानामिकाङ्गुष्ठप्रमाणाः तीक्ष्णरोमशा इति बल्वजविशेषणम्। अतएव गोभिले बल्वजनिषेधस्तादिस्र-

---

* भ पुस्तके मयश्वेन।

बल्वजपर:, सुञ्ज: शरस्तहृवं मौञ्जं दर्भं येन दलविधानात् कर-भारणासामर्थ्याच्च गोभिले शरनिषेध: शरकाण्डपर: शाद्वलमिति दूर्व्वादीनां सर्व्वेषां विशेषणं। दूर्व्वादिषु दर्भशब्दो गौणपरस्तत्-कार्य्यकरणार्थ:। अत्र दर्भत्वाव्यभिचारेऽपि यथा मध्ये यत् कुशस्य गणनं तत्तु कुशवदेतेष्वपि पवत्तु दर्भशब्दप्रयोगार्थम्।

अथ कुशाभावे काशं दूर्व्वां वा दद्यात् इति विष्णुवचनात्—

पिण्डनिर्व्वपणं कार्य्यं कुशाभावे विचक्षणै:।
काशेषु राजन् दूर्व्वासु पवित्रे परमे मते॥

इति विष्णुधर्म्मोत्तरवचनाच्च काशदूर्व्वयोर्मुख्यप्रतिनिधित्वम्। तयोरभावे तन्येषामिति।

अतएव मैत्रावरुणीयपरिशिष्टम्—

दर्भास्तरणार्थे काश: प्रतिनिधि: तदलाभे पर्व्वतीभि: काण्डवतीभिरोषधीभि:स्तरणं कुर्व्वन्तीति।

उलपस्तृणभेद: गवेधुका गवेडुरित्यर्थ:।

शूक तृण वल्वज शर शौर्य...वर्जं सर्व्वं तृणानि।

इति गोभिलवचनेन प्रतिनिधित्वेन प्राप्तयोर्निषेधोऽयम्॥ शूकतृणं शूकयुक्ततृणं धान्यादि शौर्य्यादयस्तृणभेदा: स्वनाम-ख्याता देशविशेषप्रसिद्धा:।

वायुपुराणे—

रश्मिमात्रा: प्रशस्ता वै पितृतीर्थेन संस्कृता:।
उपमूले तथा लूना: प्रस्तरार्थे कुशोत्तरा:॥

गुन्द्राः श्राद्धे चोरकुशा वल्वजा गन्धकी तथा।
वीरणार्य्योलपार्य्येव लब्धा वर्ज्यास्तु नित्यशः।

संस्कृता संसृष्टाः प्रस्तरोऽत्र पिण्डास्तरः कुशोत्तराः कुशश्रेष्ठाः ...न्द्रा मुस्तकः चोरकुशाः प्रत्यग्रजाताः गन्धकी गन्धतृणानि लब्धा उक्तपरिमाणादधिकाः कुशा एवेत्यर्थः।

विनियुक्तविनियोगविरोधाद्दर्भादीनां पुनर्नियोगप्रसक्तावाह गृह्यपरिशिष्टम्—

दर्भाः कृष्णाजिनं मन्त्रा ब्राह्मणा हविरग्नयः।
अयातयामान्येतानि नियोज्यानि पुनः पुनः॥

हविर्घृतं अयातयामानि अजीर्णानि सर्व्वदा कर्म्मक्षमाणी-त्यर्थः।

अत्र केचित्—

मासे नभस्यमावस्या तस्यां दर्भचयो मतः।
अयातयामास्ते दर्भा विनियोज्याः पुनः पुनः॥

इति मरीचिवचनैकवाक्यतया श्रावणामावस्योत्पादित-कुशानामेवायातयामत्वं नान्येषामित्याहुः।

तन्नर्न्द,—हारीतेन श्वो भूते श्राद्धकर्म्मणीत्यनेन श्राद्धदिने प्रातः कुशाहरणमुक्ता अनन्तरं—

आसनासनपिण्डेषु षट् कुशान् परिवर्ज्जयेत्।

इत्यनेन तेषामेवास्तरणसम्बन्धिनां वर्जनस्याभिधानादन्येषा-मयातयामत्वप्रतीतेः।

किञ्च—

कदाचिन्नाहरेद्विद्वान् प्रसुप्ते केशवे कुशान्।
अभावे तु समुद्धृत्य परेऽहनि विवर्जयेत्॥

इति विष्णुधर्मोत्तरेण शयनाहृतकुशानामेकरात्रोपयो विधानात् तदपवादः श्रावणामावस्याहृतकुशानां मरीचिवचनेन विधीयते। ततश्च गृह्यपरिशिष्टवचने दर्भपदसङ्कोचे प्रमाणाभावात् सर्व्वेषामेव कुशानामयातयामत्वं सिद्धम्।

छन्दोगपरिशिष्टम्—

पिण्डार्थं ये स्तृता दर्भाः तर्पणार्थं तथैव च।
धृतैः कृते च विण्मूत्रे त्यागस्तेषां विधीयते॥

धृतैः कुशैरुपलक्षितेन पुंसा कृते विण्मूत्रे सतीत्यर्थः।

हारीतः—

चितौ दर्भाः पथि दर्भा ये दर्भा यज्ञभूमिषु।
स्तरणासनपिण्डेषु षट् कुशान् परिवर्ज्जयेत्॥
पिण्डार्थं ये स्तृता दर्भा यैः कृतं पितृतर्पणम्।
मूत्रोच्छिष्टप्रलेपे च तेषां त्यागो विधीयते॥
नीवीमध्ये च ये दर्भा ब्रह्मसूत्रे च ये कृताः।
पवित्रांस्तान् विजानीयाद्यथा कायस्तथा कुशाः॥

यज्ञभूमिष्विति अचिरकृतयज्ञभूमिष्वित्यर्थः चिरकृतयज्ञभूमिजातकुशानां वर्ज्जनीयत्वे प्राचीनबर्हिषा सकलपृथिव्यामेव यज्ञकरणात् कुशानामप्राप्ततापत्तेः।

०

स्तरणं यत्नोऽग्निपरिस्तरणं पिण्डार्थं ये स्तृता इत्यनेन पिण्डा-स्तरणनिषेधस्य वक्ष्यमाणत्वात् पिण्डेष्वित्यनेन* पिण्डदानसाधन-भुग्नकुशनिषेधः। पितृतर्पणमित्यत्र पितृपदात् देवादिक्षततर्पण-कुशेन तर्पणं कार्य्यम्।

पितृपदमत्र ब्रतमात्रपरं तेन दिव्यपितृतर्पणकुशेन यमादि तर्पणम्। यैरिति साधकतमे तृतीया साधनप्रकर्षयासाधारण्यादेव असाधारण्यं तु तन्मात्रविधानात् भुग्नकुशास्तरणकुशानामेव न तु पवित्रादिहस्तकुशानां तेषां सर्व्वकर्मसाधारण्येन विधा-नात्, अतो नैषां त्यागः शिष्टाचारोऽप्येवम्।

धृतैः कृते चेत्यस्यापवादमाह नीवीमध्ये मेखलात्वेन धृता इत्यर्थः।

ब्रह्मसूत्रे चेति —अत्र केचित्

अनेनैवार्थवादेनान्यथानुपपत्त्या विधिं कल्पयित्वा यज्ञोपवीते कुशान् धारयन्ति। तदयुक्तम्—

यज्ञोपवीतं कुरुते सूत्रं वस्त्रं वा अपि वा कुशरज्जुम्। इति गोभिलेनोपवीताभावे विहितकुशरज्जोः "धृतैः कृते च" इत्यनेन वर्ज्जनप्राप्तौ ब्रह्मसूत्रे चेत्यत्र निमित्तसप्तम्या ब्रह्मसूत्रनिमित्तं धृतानां दर्भाणां प्रतिप्रसवत्वेनोपपत्तौ अधिकरणसप्तमीभ्रमेण विधिकल्पनस्यान्याय्यत्वात्।

अतएव यथा कामस्तथा कुर्य्यात् इति हेतुवन्निगदोऽपि सङ्गच्छते उपवीतधारणस्य पुरुषार्थत्वात्।

---

* क पुस्तके—पिण्डदानसाधन दर्भाश्च ब्रह्मसूत्रे चेत्यतोऽयं पाठो नास्ति।

छन्दोगपरिशिष्टम्—

> अनन्तर्गर्भिणं साग्रं कौशं द्विदलमेव च।
> प्रादेशमात्रं विज्ञेयं पवित्रं यत्र कुत्रचित्॥
> दर्भाः पवित्रमित्युक्तमतः सन्ध्यादिकर्मसु।
> सव्यः सोपग्रहः कार्य्यो दक्षिणः सपवित्रकः॥

गर्भिणमिति बर्हिणादिशब्दवदप्रत्ययः गर्भोऽस्फुटमञ्जरी अन्तर्गर्भवदितरमित्यर्थः। कौशं द्विदलमित्यवयववाचिना अन्प्रत्ययेन गुच्छे कुशपदप्रवृत्तिर्दर्शिता गुच्छ एव कुशत्वजातिरित्याश्रेय।

नच जलत्वस्वर्णत्वादिवदवयवेऽपि कुशत्वजातिर्वर्त्तते संस्थानव्यङ्ग्यजातेरवयववृत्तित्वाभावात् घटावयवे घटत्वाभावात् जलत्वस्वर्णत्वादीनामस्तु तथात्वं संस्थानव्यङ्ग्यत्वाभावादिति।

दर्भाः पवित्रमिति बहवो दर्भा एव पवित्रं कर्मसु शुद्धिसाधनं नत्वेक इति हारीतादिमुनिभिरङ्गुल्यन्तु करं कुर्य्यादित्यादिनोक्तम्। अतो हेतोर्वामः करः सोपग्रहः समुष्टिः कार्य्यः दक्षिणस्तु पूर्व्वसङ्केतितद्विदलात्मकपवित्रसहितः कार्य्यः।

एतेन—

> अङ्गुल्यन्तु करं कुर्य्यात् सुवर्णरजतैः कुशैः।

इति हारीतेन करमात्रे बहुकुशधारणं सामान्येनोक्तमस्पष्टम्। परिशिष्टकृता तु स्फुटीकृतम्।

अत्रैकस्मिन्नपि सुवर्णरजते बहुत्वमबाधितं अवयवावयवेऽपि सुवर्णादिजातिस्वीकारात्।

अत्र केचित्—

चतुर्भिर्दर्भपवैस्तु ब्राह्मणस्य पवित्रकम्।
एकैकं न्यूनमुद्दिष्टं वर्णे वर्णेऽनुपूर्व्वशः॥

इति हारीतोक्तं चतुर्द्दलरूपं पवित्रं यथावर्णं श्रुते भार्यं द्विदलरूपपवित्रस्त्वर्थादिविषयमिति वदन्ति।

केचित्तु द्वयोरेव विकल्पमाहुः।

वस्तुतस्तु—छन्दोगपरिशिष्टे "कौशं द्विदलमेव च पवित्रं यत्र कुत्रचित्" इत्यभिधाय सन्ध्यादिकर्म्मसु दक्षिणः सपवित्रकः" इत्यभिधानात् तादृशपवित्रस्यैव प्रतीतेः कर्म्मकाले तदेव धारणीयम्।

हारीतोक्तचतुर्द्दलादि तु—

त्रिभिर्दर्भैः कृतं यत्तु पवित्रं शान्तिकं भवेत्।
चतुर्भिः पौष्टिकं ज्ञेयं पञ्चभिरभिचारिकम्॥
देवकार्य्ये भवेद्द्वाभ्यां पितृकार्य्ये तथैव च।

इति यज्ञपार्श्वपरिशिष्टवचनैकवाक्यतया पौष्टिककर्म्मपरं देवपितृकार्य्ये तु द्विदलमेव। अतएव कौशं द्विदलमेव च इत्येवकारोऽपि सङ्गच्छते।

कुशानां धारयेन्मूलमग्रं मध्यं यथाक्रमात्।
अधः कनिष्ठातर्ज्जन्योर्मध्यमानामिकोपरि॥

इति हेमाद्रिलिखितवचनोक्तपरिपाट्या कुशा धार्य्याः।
ब्रह्मग्रन्थियुतमपि पवित्रं कर्म्मकाले धार्य्यम्।

तथा गृह्यः—

कर्म्मकाले प्रकुर्व्वीत सपवित्रामनामिकाम् ।
लङ्घयेदेकपर्व्वास्या द्वितीयं नैव लङ्घयेत् ॥

द्वितीयं न लङ्घयेत् मूलपर्व्वणि न धार्य्यमित्यर्थः ।

निगमपरिशिष्टम्—

अनामिकायाः प्रथमं पर्व्व स्वर्णेन योजयेत् ।
द्वितीयं दर्भसंयुक्तं कार्य्यं विप्रेण नित्यशः ॥

अत्राधोगणनया प्रथमतृतीयव्यवस्था तेनानामिकाया अग्रे मध्यमे च पर्व्वणि धार्य्यं नाध इति ।

निमन्त्रणादिकं सर्व्वं दैवादिक्रमेण कार्य्यम् ।

देवलः—

यत्र यत्क्रियते कर्म्म पैतृके ब्राह्मणान् प्रति ।
तत् सर्व्वं तत्र कर्त्तव्यं वैश्वदेवानुपूर्व्विकम् ॥*

शातातपः—

सदैवं भोजयेच्छ्राद्धे तत्पूर्व्वञ्च प्रवर्त्तयेत् ।
अन्यथा त्ववलुम्पन्ति सदैवासुरराक्षसाः ॥

गरुड़पुराणे—

पूर्व्वं निमन्त्रयेद्विप्रान् निशि स्युर्ब्रह्मचारिणः ।
प्रदक्षिणोपवीतेन देवान् वामोपवीतितः ॥
पितॄन् निमन्त्रयेत् पादौ क्षालयित्वा विधानतः ।
ते निमन्त्रिता विप्रा निशि ब्रह्मचारिणस्त्यक्तमैथुनाः स्युः ।
क्रममाह प्रदक्षिणोपवीतेनेति । पितॄन् पितृब्राह्मणान् ।

---

* क पुस्तके वैश्वदेवानुपूर्व्वकम् ।

यत्तु—

आपादसेचनात् पूर्व्वं कुर्याद्देवद्विजन्मनाम्।

इति विष्णुपुराणवचनं। तत्

पितॄन् निमन्त्रयेत्यादौ चालयित्वा विधानतः।

इति गरुड़पुराणवचनैकवाक्यतया निमन्त्रणपूर्व्वकर्त्तव्यपादक्षालनावधिपरं नतु श्राद्धकालकर्त्तव्यपादक्षालनावधीति तस्यार्थः।

तथा विष्णुधर्म्मोत्तरे—

विश्वेदेवोपविष्टानां चरमं हस्तधावनम्।

विसर्ज्जनञ्च निर्द्दिष्टं तेषु रक्षा यतः स्थिता॥

सर्व्वमन्यत् प्रकर्त्तव्यमादौ तेषां नराधिप।

हस्तधावनमाचमनम्।

मनुः—

तेषामारक्षभूतं हि दैवं पूर्व्वं नियोजयेत्।

रक्षांसि हि विलुम्पन्ति श्राद्धमारक्षवर्ज्जितम्॥

दैवाद्यन्तं तदीहेत पित्राद्यन्तं न तद्भवेत्।

पित्राद्यन्तं त्वीहमानः क्षिप्रं नश्यति सान्वयः॥

क्षिरवधारणे नियोजयेदित्यर्थः।

अत्र श्राद्धविवेकः—

दैवाद्यन्तमित्यत्रान्तत्वेन दक्षिणायाः परिग्रहात् दक्षिणा पित्र्यपूर्व्वैव च विसर्ज्जनमेवान्तः।

यद्यपि दक्षिणा देया या यत्र परिकीर्त्तिता।

कर्म्मान्तेऽनुच्यमानायां पूर्णपात्रादिका भवेत्।

इति छन्दोगपरिशिष्टादिवचने दक्षिणाया एव सर्व्वकर्म्मान्त-त्वबोधनात्। अन्यथा प्रदक्षिणीकरणपिण्डप्रतिपत्त्यादीनामेवान्तता न विसर्ज्जनस्येति। तेनाचमनदक्षिणाविसर्ज्जनानि पितृपूर्व्वाण्ये-वेत्याह।

*कल्पतरुकारप्रभृतयस्तु—दक्षिणाया दैवादित्वमाहुः।

तेषामिदं हृदयम्—

सर्व्वमन्यत्प्रकर्त्तव्यमादौ तेषां नराधिप।

इति विष्णुधर्म्मोत्तरवचने आचमनविसर्ज्जनयोरन्यत्र दैवादित्व-प्रतिपादनादन्यपदसङ्कोचे प्रमाणाभावात् लाघवादेकश्रुतिमूलत्वेन मनुवचनेऽप्यन्त्यपदेन विसर्ज्जनं लभ्यते।

प्राचीनावीतिना सम्यगपसव्यमतन्द्रिणा।

पित्र्यमानिधनात् कार्य्यं विधिवद्दर्भपाणिना॥

इति तस्यैव वचनान्तरे आनिधनादित्यनेन विसर्ज्जनस्यान्तत्व-प्रतिपादनाच्च दैवपूजायां विसर्ज्जनञ्च अन्त्यमन्ते इति दर्शनाच्च। विष्णुपुराणे—

आचमनविसर्ज्जनयोर्विधिमित्य पित्रादित्वकथनेनान्यत्र दैवा-दित्वप्रतीतेश्च सिद्धं दक्षिणाया दैवादित्वम्।

यथा विष्णुपुराणे—

पूजयित्वा द्विजाग्र्यार्णां दद्यादाचमनं ततः।

पितृभ्यः प्रथमं भक्त्या तन्मनस्को नरेश्वर॥

---

* ग पुस्तके कल्पतरुकार—विष्णुधर्म्मोत्तरवचने न स्तः।

सुस्वधेत्याशिषो युक्तां दद्याच्छक्त्या तु दक्षिणाम् ।
दत्त्वा च दक्षिणां तेभ्यो वाचयेद्वैश्वदेविकान् ॥
प्रीयन्तामिति ये विश्वे देवास्ते च इतीरयन् ।
पश्चाद्विसर्जयेद्देवान् पूर्वं पित्र्यान्महामते ॥
सुस्वधेति स्वधावाचनसंयुक्तामित्यर्थः ।
तथा भविष्यपालधृतदेवलवचनम्—
अथ वै वैश्वदेवाद्यान् ब्राह्मणान् स्वस्ति वाचयेत् ।
वैश्वदेविकान् ब्राह्मणान् दक्षिणादाने स्वस्ति वाचयेदित्यर्थः ।

---

## अथ श्राद्धदेवाः ।

तथाच बृहस्पतिः—

क्रतुर्दक्षो वसुः सत्यः कालः कामस्तथैव च ।
धुरिश्च लोचनश्चैव तथा चैव पुरोरवाः ॥
श्राद्धार्थं दशैवैते विश्वेदेवाः प्रकीर्त्तिताः ।
इष्टिश्राद्धे क्रतुर्दक्षः सत्यो नान्दीमुखे वसुः ।
नैमित्तिके कालकामौ काम्ये च धुरिलोचनौ ॥
पुरोरवो माद्रवाय पार्व्वणे समुदाहृतौ ।
उत्पत्तिं नाम चैतेषामविचार्य्य द्विजातयः ।
अर्थंसुचारणीयस्तैः श्लोकः श्रद्धासमन्वितैः ॥
आगच्छन्तु महाभागा विश्वेदेवा वरप्रदाः ।
ये यत्र विहिताः श्राद्धे सावधाना भवन्तु ते ॥

इष्टिश्राद्धं दृच्छाश्राद्धं रुचिश्राद्धमित्यर्थः।

चोदस्तु—

नानिष्ट्वा तु पितॄन् श्राद्धैः कर्म्म वैदिकमारभेत्।

इत्यनेन विहितं कर्म्माङ्गश्राद्धमित्याह।

तदयुक्तं—नान्दीमुखपदेन कर्म्माङ्गश्राद्धग्रहणात्।

सांवत्सरिकश्राद्धे साग्न्यादिना पार्व्वणविधिना चतुर्थेयं इति केचित्। तन्न—

तस्यैकोद्दिष्टत्वाभावेन नैमित्तिकपदानभिधेयत्वात्।

एकोद्दिष्टन्तु यच्छ्राद्धं तन्नैमित्तिकमुच्यते।

इति भविष्यपुराणवचनात्।

अन्ये तु—

उपरागादिनिमित्तविहिते श्राद्धे इत्याहुः।

तन्न—रूढ़ेर्योगापहारित्वात्।

वस्तुतस्तु—

चतुर्थे नवमे चैव दशमैकादशे तथा।

यदन्नं दीयते जन्तोस्तन्नवश्राद्धमुच्यते॥

इति प्रमोक्तनवश्राद्धसंज्ञके एकोद्दिष्टे—

यस्मिन्नवे पुरांश्चे वा विश्वे देवा न लेभिरे।

श्रासुरं तन्नवेश्राद्धं प्रथलं सम्प्रवर्जितम्॥

इत्याश्वलायनेन सदेवकतया विहिते चतुर्थेये काल-श्रामयोर्देवतालमवगन्तव्यम्।

काम्ये स्वगतफलानुसन्धानेनानुष्ठेये तिथिश्राद्धादौ पार्व्वणे अमावस्याश्राद्धे तदतिदिष्टे युगाद्ये च।

यच्च—

पुरोरवसमाद्रवमिति मद्रवचनम्।

तत्र—

छन्दःप्रयसङ्गितमितिवत् पुरोरवसेत्यत्राकारागम आर्षः।
माद्रवमित्यत्र सकारलोपश्च ज्ञेयो बृहस्पतिवचनात्।
मादिशाब्दपाठस्य कामधेनुशूलपाणिप्रभृतिभिः स्वीकृतत्वाच्च।

श्राद्धे पुरः प्रथमतो रूयते कीर्त्यते इत्यौणादिकासुन्प्रत्ययान्त-ओकारवान् पुरोरवःशब्दो न तु पुरूरवःशब्दो दीर्घोकारवान् स हि चन्द्रवंशजे राजविशेषे वर्त्तते। महाभारते तथा दर्शनात्।

मत्स्यपुराणे—

विश्वेदेवाः क्रतुदक्षौ सर्व्वास्विष्टिषु विश्रुतौ।
नित्ये नान्दीमुखश्राद्धे वसुसत्यौ च पैतृके॥
नवान्नालम्भने देवौ कालकामौ सदैव हि।
अपि कन्यागते सूर्य्ये काम्ये च धुरिलोचनौ॥

नवान्नालम्भन इति पूर्व्वोक्तबृहस्पतिवचनात् नैमित्तिक-पदाभिधेये नवश्राद्धे चेति बोद्धव्यम्।

कन्यागते सूर्य्ये इति—

कन्यायायन्तुरंश इत्युक्ता

अत ऊर्द्धन्तु कन्याया यान्यहानि तु षोडश।
क्रतुभिस्तानि तुल्यानि तेषु दत्तमथाक्षयम्॥

इत्यनेन सूर्य्यसिद्धान्तोक्ते कन्यागतश्राद्धे इत्यर्थः।

न चैतस्य वचनस्य सन्दिग्धमूलत्वाशङ्का संवत्सरप्रदीप-श्राद्धभाष्य-राजमार्त्तण्डादिभिर्लिखितत्वात्।

तथा च रत्नाकरलिखितं देवलवचनम्—

पार्व्वणेन विधानेन नवम्यस्यागमे स्मृतम्।
विश्वेदेवास्तु तच्छ्राद्धे कालकामौ प्रकीर्त्तितौ॥

अत्र मैथिलाः—

एषां नामोल्लेखे प्रमाणाभावात्—

विश्वान् देवानावाहयिष्ये।

इति कात्यायनवचने

विश्वान् देवान् यवैः पुष्पैः।

इति मत्स्यपुराणे च

नमो विश्वेभ्यो देवेभ्यः इत्यवमादौ प्राङ्मुखयो निवेदयेत्।

इति विष्णुवचने च

एतद्वोऽर्घमित्युक्त्वा विश्वे देवाय संयजेत्।

इति ब्रह्मपुराणे च केवलविश्वदेवपदश्रवणात् विश्वेदेवा इदं वो नम इति पठन्ति।

तदयुक्तम्—

उत्पत्तिं नाम चैतेषां न विदुर्ये द्विजातयः।

इति बृहस्पतिना नामस्थानकथनस्य नामोल्लेखं विना प्रयोजनाभावात्। न च नामचिन्तनमेव प्रयोजनमिति वाच्यं नामचिन्तायाः क्वाप्यदृष्टत्वात् संज्ञाविधेस्तत्तच्छब्देन तु प्रयोगार्थत्वाच्च।

नामाग्रे—

अयमुच्चारणीयस्तैः श्लोकः श्रद्धासमन्वितैः।

इत्युक्त्वा आगच्छन्तु महाभागा इति नामरहितश्लोकोच्चारणविधानात्। तन्नाम—देवतात्वावगमाच्च।

यच्च—

विश्वान् देवानावाहयिष्ये इत्यादि तदपि पितॄनावाहयिष्ये इत्यादिवत् सामान्येनोपपद्यत एव।

न च विधायर्थवादे उत्सर्गवाक्ये च विश्वेदेवपदात् बहुवचननिर्देशात् तथैवाभिलापस्य शास्त्रीयत्वात् क्रतुदक्षयोर्द्वयोर्बहुत्वासम्भवात् द्विवचनबहुवचनयोः सामानाधिकरण्येनान्वयाभावात् वाक्यरचनापि न साधीयसीति वाच्यम्।

विश्वपदोत्तरं सामानाधिकरण्यदेवपदं तुलापुरुषादिषु षोडशसु महादानशब्दवत् क्रतुदक्षादिषु दशसु श्राद्धदेवेषु रूढं तस्माच्च दारशब्दवत् बहुवचनमेव साधु।

एवञ्च समानाधिकरणानामेका विभक्तिरेवेति नियमात् वचनस्य सति सम्भवे तुल्यत्वनियमादसम्भवे यथासम्भवस्यैव न्याय्यत्वात् मत्स्यजातस्तुभ्यं रेवती दारा इत्यादिवत् क्रतुदक्षौ विश्वे देवा इदं वो मम इति वाक्यमविरुद्धमेव।

तथा च शब्दसंस्कारशास्त्रम्—

विशेष्यवद्दचनमेकाधिकरणस्य प्रायेणेति।

अतएव—

विश्वेदेवाः क्रतुदक्षौ सर्व्वास्विष्टिषु विश्रुतौ।

इति ब्रह्मपुराणवचनम्।

न च क्रतुदक्षसंज्ञका विश्वेदेवा इति वाक्यमुक्तं विधौ क्रत्वादीनां प्राधान्येन श्रवणात् गत्यन्तरसम्भवे समासे गुणीभावस्यान्याय्यत्वात् संज्ञाशब्दान्तर्भावेन देवतात्वभावाच्च।

न च क्रतुदक्षाविश्वेवास्तु किं विश्वेदेवपदेनेति वाच्यम्।

एष वोऽर्घ्य इति एतद्वोऽन्नमित्युक्ता विश्वेदेवांश्च संयजेत्।

इति पारस्करब्रह्मपुराणादिषु वाक्यविधायकविधिषु बहुवचनान्वयानुपपत्त्या विश्वेदेवा इत्यवश्यं वाच्यत्वात्।

न च नमो विश्वेभ्यो देवेभ्य इत्यसमाद्यौ माधुश्रयोर्निवेदयेदिति विष्णुवचनाच्चतुर्थ्यन्तं वाक्यं श्योदश्चोक्तं युक्तम्।

एष वोऽर्घ्य इति एतद्वोऽन्नमित्युक्तेति पारस्करब्रह्मपुराणादिषु पुरूषच्छन्दप्रयोगेण सम्बुद्धान्तपदस्यैव निर्णीतत्वात्। विष्णुसूत्रस्य तु भिन्नश्रुतिमूलत्वकल्पनाभिया नम इत्यनेन विश्वेभ्यो देवेभ्योऽन्नं निवेदयेदित्यर्थ्यय। अन्यथा नमो विश्वेभ्यो देवेभ्य इत्यपि क्रमः स्यात्।

अथ पितॄणामर्घादिसंकल्पवाक्यम्।

प्रचेताः—

गोत्रसम्बन्धिनामानि पितृणामनुकीर्त्तयन्।
एकैकस्य तु विप्रस्य हस्तेऽर्घ्यं विनिक्षिपेत् ॥

गोत्रसम्बन्धिनामानीति क्रमपरोऽयं निर्देशः।

तथाच पारस्करः—

अर्घदानेऽक्षय्यकाले पिण्डदाने तथाऽक्षये।
गोत्रसम्बन्धिनामानि यथावत् प्रतिपादयेत् ॥

अक्षये अक्षय्यदाने। वचनत्रयपाठक्रमेण गोत्रसम्बन्धनाम्नां क्रममाह गोभिलः—

गोत्रं स्वरान्तं सर्व्वत्र गोत्रस्याक्षय्यकर्म्मणि।
गोत्रस्तु तर्पणे प्रोक्तः कर्त्ता एवं न मुह्यति ॥
सर्व्वत्रैव पितः प्रोक्तः पिता तर्पणकर्म्मणि।
पितुरक्षय्यकाले तु षष्ठ्या तृप्तिमिच्छता ॥
शर्म्मन्नर्घ्यादिके कार्य्ये शर्म्मा तर्पणकर्म्मणि।
शर्म्मणोऽक्षय्यकाले तु पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥

स्वरान्तमिति अकारान्ततया सम्बोधनान्तमित्यर्थः।
पितरित्यादिसम्बोधनपदस्य प्रामाण्यात् ॥

एतेनामुकसगोत्रेभ्योऽस्मत्पितृपितामहप्रपितामहेभ्योऽमुकामुकेभ्य इदमन्नं स्वधेति केषाञ्चिन्मतं निरस्तम्।

न चामुकसगोत्रा अस्मत्पितृपितामहप्रपितामहा अमुकामुकशर्म्माण इदमन्नं सुपाभ्यं स्वधेति वाक्यं युक्तम्।

प्रयोक्तुरेव समन्वितत्वोपस्थितत्वादस्मत्पदवैयर्थ्यात् सर्व्वत्रैवास्मत्पदविनाभावेन श्रवणाच्च।

असावेतत्ते इति यजमानस्य पित्रे इत्यादि श्रुतौ प्रतिनिधि-करणपक्षे यजमानसम्बन्धितया निर्द्देशाभिधानाच्च विधावर्थवादे च गोत्रपदमात्रश्रवणात्तस्य सकारादित्वे प्रमाणाभावाच्च।

अर्घ्यदानाक्षोत्सर्गपिण्डदानादिषु श्रुतौ स्मृतौ च बहुशः पित्रादीनां निरपेक्षाणां प्रत्येकं दैवतात्वावगमात् पृथक् पृथक् निर्द्देशस्यैव न्याय्यत्वेन समुच्चयाभिधायकद्वन्द्वसमासस्यानुचितत्वाच्च।

श्रुतिस्मृतिभ्यामेकवचनान्तपदप्रयोगेण वाक्यरचनाविधानाच्च। यथा श्रुतिः—

असावेतत्ते इति यजमानस्य पित्रे।
असावेतत्ते इति पितामहाय।
असावेतत्ते इति प्रपितामहाय। इति
अत्रासाविति सम्बोधनैकवचनान्तनामनिर्द्देशः।

बैजवापः—

पितरेतत्तेऽर्घ्यं पितामहैतत्तेऽर्घ्यं प्रपितामहैतत्तेऽर्घ्यमित्यनुदिशति।

पारस्करः—

असावेष ते अर्घ इति।

अतएव वचनात् यजुर्व्वेदिनामर्घशब्दः पुंलिङ्ग एव सर्व्वत्र मन्तव्यः पूर्व्वोक्तबैजवापगोभिलादिदर्शनात्तु सामगानामर्घ्यशब्दो यौपान्तो नपुंसकलिङ्गश्चेति।

पिण्डदाने शङ्खलिखितौ—

एकैकं त्रिभिरामन्त्र यथावेतत्त इति।

त्रिभिर्गोत्रसम्बन्धिनामभिरित्यर्थः।

पिण्डपितृयज्ञाधिकारे पारस्करः—*

यथावनिक्तं पिण्डान् दद्यादसावेतत्त इति।

यथावनिक्तं अवनेजनस्थानानुक्रमेणेत्यर्थः।

अत्र शङ्खलिखितवचने पारस्करे च पिण्डदानवाक्यरचनाया-मेतदिति नपुंसकनिर्देशात् यजुर्वेदिनां नपुंसकलिङ्ग एव पिण्डदाने पिण्डशब्दः सर्व्वत्रैव मन्तव्यः।

पिण्डपितृयज्ञवदुपचार इति पारस्करातिदेशात् दृश्यते हि प्रेतपिण्डदाने पिण्डशब्दस्य नपुंसकता। यथा—

भवेदेतच्च वै पिण्डं यच्चदत्तस्य पूरकमिति।

ब्राह्मेऽपि—

मातामहानामप्येवं दद्यौ पिण्डानि शौकरः।

एतेन मौञ्जीन् पिण्डान् दद्यादिति पारस्करदर्शनात् यजुर्वेदिनामपि पुंलिङ्गः पिण्डशब्द इति मैथिलानां भ्रमो हेय एव।

सामगानान्तु—

एष ते पिण्ड इति गोभिलदर्शनात् पुंलिङ्ग एव निर्विवाद इति।

अतएव श्रुतिस्मृतिविरोधात् सपत्नीकस्य पित्रादेर्देवतात्वं केनचिदङ्गीकृतं तदपि निरस्तम्।

---

* ख पुस्तके पारस्करस्थल पतितम्।

यत्तु—

> अन्वष्टकायां वृद्धौ च गयायां मृतवासरे।
> अत्र मातुः पृथक् श्राद्धमन्यत्र पतिना सह॥

इति वचनम्।

तदमूलकमेव समूलत्वे तु विधौ मन्त्रवाक्ये च निरपेक्ष-देवतात्वावगमात् भोज्यपदाध्याहारेण भोगे सहभावः कल्पनीयो नतु दाने।

किञ्च—

> स्वेन भर्त्रा सह श्राद्धं माता भुङ्क्ते सुधामयम्।
> इति बृहस्पतिवचनानुसारात्।

भर्तुरेव सहभावोऽत्रावगम्यते न तु मातुस्तदा च सभर्तृके मातरिति वाक्यं स्यात्।

ब्रह्मपुराणे—

> ततो मधुघृताक्तन्तु सोष्णमन्नं तिलान्वितम्।
> गृहीत्वा देवतीर्थेन प्रणवेनैव तत्पुनः॥
> एतद्वो ह्यन्नमित्युक्त्वा विश्वान् देवांश्च संयजेत्।
> पितृभ्यश्च ततो दद्यादन्नमामन्त्रणेन तु॥
> असुकासुकगोत्रैतत्तुभ्यमन्नं स्वधा नमः।

अत्र प्रणवेनैवेति दर्शनात् पितृपक्षेऽपि सर्व्वत्रैवादौ प्रणवः प्रयोक्तव्य इति।

अत्र च द्विजातिमधिकृत्य ब्रह्मोपदेशात् ब्रह्मोक्त "ते" पदेन द्विजातीनां प्रयोगः पौराणिकविधेय सामान्यधर्म्मत्वात् नञ्-

पुराणोक्त"तुभ्यं"पदेन सर्व्ववर्णगोचरः प्रयोगः,विशेषेण च शूद्राणां पौराणिकविधेस्तेषां विहितत्वात्।

यथा भविष्ये—

'विशेषतस्तु शूद्राणां पावनानि मनीषिभिः।
अष्टादशपुराणानि चरितं राघवस्य च॥
तथोक्तं भारतं वीर पाराशर्य्येण धीमता।

अत्र च श्रुति-वैजवाप पारस्कर-शङ्खलिखित-ब्रह्मपुराण-गोभिलादिषु च सर्व्वत्रैव एतच्छब्दानन्तरं दैवद्रव्यस्य पूर्व्वं ते तुभ्यं पदयोर्नियमेन दर्शनादेतदर्थं तुभ्यं नम इत्यादिप्रयोगोऽशुद्ध एव। श्रुतिस्मृतिविहितक्रमसुलङ्घ्य क्रमान्तरस्यान्याय्यत्वात्। एतेनेदं शब्दप्रयोगोऽपि निरस्तः।

स्वधा नम इति स्त्रीशूद्रविषयो नमःप्रयोगः।
अनुमतोऽस्य नमस्कारो मन्त्र इति गोतमवचनात्।

तदुभयस्य युगपत्प्रयोगः श्राद्धप्रदीपाद्युक्तो युक्तः। उभयोर्दानार्थत्वेनैकस्य वैयर्थ्यात् गोभिलादिषु केवलस्वधाकारेण दानदर्शनाच्च।

यथा गोभिलः—

अत्रापि ते पितरो ये चात्र त्वामनु यांश्च त्वमनु तस्मै ते स्वधा। एवं यत्रावितस्तेऽर्घ्यमित्यादि स्वधान्तम्।

अत्र तेपदद्वयं वाचनिकत्वाददोषाय एकपदस्यादृष्टार्थत्वादिति भावः।

आधुनिकास्तु—

एष ते पिण्ड इत्यस्य लौकिकत्वात् ये चेत्यादेश्च वैदिकमन्त्रत्वात् लौकिकप्रयोगवैदिकमन्त्रयोरन्वयायोगादुभयथैव ते पदं वाच्यमित्याहुः। तदसङ्गतम्—

लौकिकशब्दस्य वैदिकमन्त्रेण सहानन्वय इति यदुच्यते तत्र किं वैदिकमन्त्रो निरर्थकः सार्थको वा सार्थको वा नीदृशः निराकाङ्क्षः साकाङ्क्षो वा।

आद्ये नोमिति ब्रूमः।

द्वितीये तु—गौरश्वः पुरुषो हस्तीत्यादिपदाकाङ्क्षाविरहालौकिकेनापि लौकिकस्य नान्वयः किमुत वैदिकेनेति।

तृतीये तु—नैतादृशी राजाज्ञाऽस्ति तत् कथं नान्वयः। अन्यथा अत्रैव कथं ये चात्र त्वेत्यादि वैदिकमन्त्रप्रविष्टेन स्वधापदेन सह एष पिण्ड इत्यस्यान्वय इति।

वस्तुतस्तु—ये च त्वामनु त्वचोकृत्य तिष्ठन्ति यांश्च त्वं त्वचोकृत्य त्वं तिष्ठसि तस्मै सर्व्वस्मै ते तुभ्यञ्च एष ते त्वदर्थं कल्पितः पिण्डः स्वधा दीयते इति ते पदद्वयार्थः। तस्मा इति बहुष्वेकवचनमार्षं त्वामिति सार्व्वत्रिकः पाठः त्वामिति भाष्यव्याख्यानात्। त्वादेशे सति निरनुस्वारः पाठ इत्यपरे।

अत्र—श्रीदत्तादयः—

अर्घ्यगन्धादिदानावनेजनद्वयपिण्डदानस्वधादानेषु षट्सु गोभिलेन प्रत्येकं निर्द्देशात् आसनाच्छोदनयोरनुक्तत्वात्तत्र ये

चात्र त्वेति मन्त्रपाठो नास्ति अन्यथा पुनः पुनः पाठवैफल्यं स्यादित्याहुः ।

आधुनिकास्तु—

अवनेजनद्वयपिण्डदानसूत्रदानेषु चतुर्षु ये चात्र त्वामिति मन्त्रपाठो नान्यत्र इति ।

अर्घ्यदानसमये गोभिलेन यत्तिलोदकदानमुक्तं न तदर्घ्यदानं किन्तु अवनेजनार्थमुपयुज्यमानस्य तिलोदकस्य तस्मिन्नवसरे *स्थापनमात्रं विधीयते ।

तदयुक्तं—यदि तदवनेजनार्थं स्थापनमात्रं तदा कथं गोभिलेन दर्भान् प्रदाय उदकपूर्व्वं तिलोदकं ददाति पितुर्नाम गृहीत्वा असावेतत्ते तिलोदकं ये चात्र त्वामनु यांश्च त्वमनु तस्मै ते स्वधेत्युत्सर्गवाक्यमुक्तम् ।

कथं वा अवनेजनस्थाने† पितुर्नाम गृहीत्वा असाववनेनिक्ष्व ये चात्र त्वामनु यांश्च त्वमनु तस्मै ते स्वधा इति अप उपस्पृश्य एवमेतयोरिति गोभिलेन पुनरुक्तम् ।

किञ्च—

तथा गन्धानित्यनेन तथाशब्दात् गन्धादिदानेऽपि ये चात्र त्वेत्यादिवाक्यमुक्तं ? अन्यथा तदनर्थकं स्यात् ।

---

* ख पुस्तके स्थापनमात्र ।

† ख, ग पुस्तके दाने ।

यत्तु—

आसनाद्यर्घ्यपर्य्यन्तं वशिष्ठेन यथोदितम्।
कृत्वा कर्म्माथ पात्रेषु उक्तं दद्यात्तिलोदकम्॥
तूष्णीं पृथगपो दत्त्वा मन्त्रेण तु तिलोदकम्।
गन्धोदकञ्च दातव्यं सन्निकर्षक्रमेण तु॥

इति छन्दोगपरिशिष्टवचनम्।

तस्यायमर्थः—

अर्घ्यपर्य्यन्तमर्घ्यावधिकमासनादि आसनमावाहनञ्च वशिष्ठोक्तं कर्म्म कृत्वा अनन्तरं पात्रेषु ब्राह्मणेषु उदकपूर्व्वं तिलोदकं ददातीति सूत्रेण* गोभिलोक्तं तिलोदकमर्घ्यं दद्यात्।

तत्परिपाटीमाह—

ब्राह्मणहस्ते पृथगपो जलान्तरं तूष्णीं मन्त्रं विना दत्त्वा ये चात्र त्वेत्यादि मन्त्रेण तिलोदकमर्घ्यं दातव्यं तथा गन्धानिति सूत्रोक्तं गन्धोदकं जलघृष्टचन्दनं गन्धं ये चेत्यादिमन्त्रेण दातव्यं सन्निकर्षक्रमेण पित्रादित आरभ्येत्यर्थः।

अत्र गन्धोदकमिति गन्धादिपञ्चकोपलक्षणं गोभिले तथा गन्धानिति बहुवचनात्। ततश्चामन्त्रपाठोऽर्घ्यगन्धादौ समायात एव।

न च तिलोदकदानं गन्धदानञ्चार्घ्यगन्धादिदानात् पृथगिति वाच्यम्। अदृष्टाश्रुतकल्पनागौरवात्।

---

* क पुस्तके गोभिलोक्तमित्यारभ्य सूत्रोक्तमिति यावदंशो नास्ति।

यदि पुनर्गन्धादिदानावनेजनदानाञ्च पृथगेव साग्नि-कार्य्यम् पिण्डदानाङ्गकं कर्षूषु तिलोदकदानं गन्धोदकदानञ्चा-न्वष्टकायां गोभिलेनोक्तम् आसनाद्युत्सर्गपर्य्यन्तन्तु गोभिला-नुक्तमेवेत्युच्यते। तदा पिण्डदानमात्रस्यैवोक्तत्वादनुक्तेषु आसना-द्युत्सर्गपर्य्यन्तेषु वाक्याकाङ्क्षायां पिण्डदानोक्तवाक्यस्यैवोपस्थित-त्वात् तेष्वपि तदेव समन्वयवाक्यमुपतिष्ठते।

यथान्यदुक्तम्—अतएवाश्वलायने—

एकोद्दिष्टस्य पिण्डे तु अनुशब्दो न युज्यते।

इति पिण्डपदं दत्तं अन्यथा एकोद्दिष्टेष्वित्येवार्थं इति।

तदपि मन्दं पूर्व्वोक्तयुक्त्या अर्घ्यादिषु प्राप्तेः किमनेनोप-न्यासेन।

किञ्च—

यदि पार्व्वणे पिण्डमात्रे विधिस्तदा तदतिदेशादेकोद्दिष्टेऽपि तन्मात्रप्राप्तौ तत्रैव निषेधसम्भवात् पिण्डपदमनर्थकमेव।

वस्तुतस्तु पिण्डविषयमाधिकारे मन्त्रमुक्त्वा प्रसङ्गादेकोद्दिष्टे निषेधोक्तौ आश्वलायनदत्तं पिण्डपदं सकलकार्य्योपलक्षणमन्यथा पिण्डमात्रे निषेधादवनेजनदयस्वधादानेष्वपि मन्त्रप्रसङ्गः स्यात्।

यथान्यदुक्तम्—

अतएव गोभिलीये अमावस्याश्राद्धे असावेतत्तेऽर्घ्यमिति पृथगुक्तमिति।

तदपि मन्दं गोभिलेन यदनुक्तं तत् गोभिलीयो विदधाति—या दिव्या आप इत्यादि मन्त्रं गोभिलानुक्तमधिकमुक्त्वा असावेतत्ते

इत्यनेनैकोद्देशेन गोभिलोक्तमेव ये चात्र त्वेत्यादि स्मारितं न तु तत् पृथगिति।

यच्च मैथिलैरासनान्नदानयोर्ये चात्र त्वेति मन्त्रो नास्तीत्युक्तं तदनिरुद्धशूलपाणिप्रभृतीनां प्राचामसम्मतम्।

तेषामेवं हृदयं—

गृह्यान्तरे ब्रह्मपुराणादौ चान्यथा वाक्यकल्पनात् ये चात्र त्वेत्यस्यैकत्र निर्देशे सति तन्मात्रे तत्प्रयोग इतिशङ्कानिरासाय पुनः पुनर्निर्देशो गोभिलस्योपलक्षणत्वसूचकमेव।

किञ्च—

छन्दोगगोचरतया श्रुतिद्वयकल्पनागौरवं दुर्निवारमेव अत्र पित्रादित्रिकस्य तन्त्रेणैवाभ्युत्सर्गः।

> अर्घेऽक्षय्योदके चैव पिण्डदानेऽवनेजने।
> तन्त्रस्य विनिवृत्तिः स्यात् स्वधावाचनमेव च॥

इति छन्दोगपरिशिष्टवचनेऽर्घ्यादिषु तन्त्रतानिषेधात् एवकारादन्यत्र तन्त्रताप्रतीतेः।

नचार्घ्यादिषु तन्त्रतानिषेधादन्यत्रानियम इति वाच्यम्।

तन्त्रस्य विनिवृत्तिः स्यादिति पर्य्युदासो वा निषेधो वाच्यः।

पर्य्युदासपक्षेऽर्घ्यादिव्यतिरिक्तस्थले तन्त्रताविधिर्वाचनिक एव स्फुटः, निषेधपक्षे तु प्राप्तस्यैव प्रतिषेधः प्राप्तिस्तु न्यायादेव न्यायोऽपि लाघवमेव। तन्त्रता च अनेकानुष्ठानजन्यानेकफलोद्देशेन सकृदनुष्ठानं तस्याय हेतुः समानदेशकालकर्तृकत्वे सत्यगृह्यमाणविशेष-

तथा लाघवमेव। ततश्च न्यायसिद्धस्यार्थस्यान्यथाकरणमवैदिक-* मेवेति ध्येयम्।

नचासावेतत्त इति यजमानस्य पित्रे इत्यादि पूर्व्वोक्तश्रुति-दर्शनात्तन्त्रताभावोऽस्त्विति वाच्यम्।

अर्घ्यपिण्डादिपरतयैव श्रुतेरुपपत्तेः। तर्हि वस्त्रदाने कथं तन्त्रतेति चेत्—

एतद्वः पितरो वास इति जल्पन् पृथक् पृथक्।
अमुकामुकगोत्रैतत्तुभ्यं वासः पठेत्ततः॥
दद्यात्क्रमेण वासांसि श्वेतवस्त्रभवा दशाः।

इति ब्रह्मपुराणवचनात्। ततश्च स्वधावाचन एव चेति चकारेण वस्त्रदानमपि लभ्यत इत्यायातम्।

न च

अमुकामुकगोत्रैतत्तुभ्यमस्तु स्वधा नमः।

इति ब्रह्मपुराणे एकस्मिन्निर्द्देशाद्वस्त्रोत्सर्गे कथं तन्त्रतेति वाच्यम्।

नेदं वचनमेतावन्मात्रवाक्यरचनाविधानपरं किन्तु सम्बोधन-पदोपनीतान् चतुर्थ्यन्तेन तच्छब्देनोद्दिश्य स्वधापदेन हविस्त्यागाभिलापविधानपरं स चाभिलापो न्यायानुसारेणैव कार्य्यः। अन्यथा गोत्रकीर्त्तनमपि नाम्नः परं स्यात् सम्बन्धकीर्त्तनञ्च न स्यात्।

ततश्च—यथा नागृहीतविशेषणा न्यायात् नाम्नः प्राक् गोत्र-सम्बन्धकीर्त्तनं तथा तन्त्रतापि न्यायात्।

---

* क पुस्तके अवैदिकं।

अत्र च पृथक् पृथक् सम्बोधितानां पित्रादीनां सर्व्वनाम्नः प्रकृतपरामर्शितया तुभ्यमिति पदेन तन्त्रेणैकोद्देश्यसम्भवात् तन्त्रेणैव स्वधासम्बन्ध इति ध्येयम्।

[इयञ्च तन्त्रता त्यागवाक्य एव न तु प्रक्षेपादनीयद्रव्ययोः अन्नगन्धादिषु ब्राह्मणत्वेन भेदात्। एकब्राह्मणपक्षेऽपि—

यद्येकं भोजयेद्विप्रं स्वल्पत्वात् प्रकृतस्य तु।

स्तोकं स्तोकं समुद्धृत्य तेभ्योऽन्नं विनिवेदयेत्॥

इति बृहस्पतिवचनात् भेदावगमाच्च।]*

तर्हि पितृमातामहादीनां यथामेवेति तन्त्रेणोत्सर्गोऽस्तु। नैवं—

सपिण्डीकरणादूर्द्धं त्रिभिः सामान्यमिष्यते।

इति जाबालवचने पुरुषत्रयस्य सह पार्व्वणभोक्तृत्वरूपस्य सामान्यस्य सपिण्डनाधीनत्वावगमत्वात्।

पित्रादिभिस्तु मातामहादीनां सपिण्डनाभावेन सह श्राद्धभोक्तृत्वाभावात् तन्त्रेणोत्सर्गस्यान्याय्यत्वात्।

मातामहानामप्येवं श्राद्धं कुर्य्यात् विचक्षणः।

इत्यादि विष्ण्वादिवचनैरेवमित्यनेन मातामहादीनां पृथक् श्राद्धविधानाच्च।

अतएव—

मातृणामग्रतः कृत्वा पितॄणां तदनन्तरम्।

ततो मातामहादीनां वृद्धौ श्राद्धत्रयं स्मृतम्॥

---

* ख पुस्तके [ ] चिह्नितांशो नास्ति।

इति विष्णुपुराणे विहितौ नान्दीमुखे पृथक् श्राद्धत्रयमुक्तमिति।

यत्तु—

सोमपा नाम विप्राणां क्षत्रियाणां हविर्भुजः।

वैश्यानामाज्यपा नाम शूद्राणाञ्च सुकालिनः॥

इति मनुवचनं तत् विप्रादिभिः सोमपादिरूपतया स्वपित्रादीनां ध्यानोपदेशपरं पूर्व्वोक्तस्मृतिश्रुतिविरोधात्।

पिता यस्य तु वृत्तः स्याज्जीवेच्चापि पितामहः।*

इत्यादितदीयवचनान्तरविरोधाच्च।

तथा ब्राह्मे—

वसून्रुद्रांस्तथादित्यान्नक्षत्रग्रहतारकाः।

प्रीणयन्ति मनुष्याणां पितरः श्राद्धतर्पिताः॥

याज्ञवल्क्योऽपि—

आयुः प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च।

प्रयच्छन्ति तथा राज्यं प्रीता नृणां पितामहाः॥

तदयं संक्षेपः।

ॐ अमुकगोत्र पितरमुकदेवशर्म्मन् अमुकगोत्र पितामहामुकदेवशर्म्मन् अमुकगोत्र प्रपितामहामुकदेवशर्म्मन्नेतत्तेऽर्घ्यं स्वधा इति यजुर्वेदिनामर्घ्योत्सर्गप्रयोगः।

सामगानान्तु—

ॐ अमुकगोत्र पितरमुकदेवशर्म्मन् एवं पितामह एवं प्रपिता-

* क पुस्तके जीवेच्च प्रपितामह।

मह एतत्तेऽन्नं ये चात्र त्वामनु यांश्च त्वमनु तस्मै ते स्वधेति प्रयोगः।

ओँ अमुकगोत्र पितरमुकशर्म्मन् एवं पितामह एवं प्रपितामह एतत्तुभ्यमन्नं स्वधेति सामान्यधर्म्मः पौराणिकत्वात् विशेषतस्तु शूद्रस्यायमेव विधिः किन्तु प्रणवस्थाने स्वधास्थाने च नमःपदं योज्यं "अनुमतोऽस्य नमस्कारो मन्त्र" इति गौतमवचनात् आवाहनादि मन्त्रपाठस्तु ब्राह्मणद्वारा करणीयः।

वराहपुराणे—

> अयमेव विधिः प्रोक्तः शूद्राणां मन्त्रवर्जितः।
>
> अमन्त्रस्य तु शूद्रस्य विप्रो मन्त्रेण गृह्यते॥

विप्रो मन्त्रेण गृह्यते सम्बध्यते इत्यर्थः। परिभाषेयम्।

न च परिभाषा प्रकरणेन नियम्यते, तेन शूद्रस्य सर्व्वक्रियास्वेव ब्राह्मणेन मन्त्रः पठनीयः, अन्यथा प्रकरणादेरौद्दिष्ट एव ब्राह्मणस्य मन्त्रपाठः स्यात पार्व्वणादौ।

अतएव पित्रे तु द्विगुणा दर्भा इति पारस्करवचनं प्रकरणान्न श्राद्धमात्रविषयं किन्तु परिभाषात्वात् पितृकृत्यमात्रविषयमिति।

अमन्त्रस्येति विशेषणोपादानं यावदमन्त्रव्यावृत्यर्थं तेन स्त्रियापि क्रियमाणे कर्म्मणि ब्राह्मणस्य मन्त्रपाठमुल्यन्यायात्।

तेनावाहनादौ द्रष्टार्थप्रकाशनं ब्राह्मणपठितमन्त्रेणैव अदृष्टन्तु स्वयंपठितनमःपदेनैव जन्यत इति। एवं पौराणिकमन्त्रोऽपि। यथा पुराणमधिकृत्य भविष्ये—

अध्येतव्यं नवाप्येन ब्राह्मणं क्षत्रियं विना।
श्रोतव्यमिह शूद्रेण नाध्येतव्यं कदाचन ॥
श्रौतं स्मार्त्तं हि वै धर्मं प्रोक्तमस्मिन् नृपोत्तम।
तस्माच्छूद्रैर्विना विप्रं न श्रोतव्यं कदाचन ॥

विप्रं विना विप्रद्वारैव श्रोतव्यं नतु क्षत्रियद्वारेत्यर्थः।
शूद्रेण तु यजुर्वेदविधिना कार्य्यं यथा कूर्मपुराणे—

आर्षक्रमेण सर्व्वे तु शूद्रा वाजसनेयिनः।
तस्माच्छूद्रः स्वकं कर्म्म यजुर्वेदेन कारयेत् ॥

स्त्रिया तु स्ववेदविधिनैव कार्य्यं विशेषाश्रवणात्।

छन्दोगानामेकोद्दिष्टे ये चात्र त्वेति मन्त्रपाठो नास्ति।

एकोद्दिष्टस्य पिण्डे तु त्वशब्दो न युज्यते।

इति गृह्यपरिशिष्टवचनात्।

तदतिदेशात् सांवत्सरिकेऽपि तत्र चामावस्यामरणादिनिमि-त्तेन पार्व्वणविधिना क्रियमाणे तु ये चात्र त्वेति पाठोऽस्त्येवेति ॥

---

## अथ श्राद्धपूर्व्वदिनकृत्यम्।

वराहपुराणे—

कृत्वशौचादि कर्त्तव्यं श्वःकर्त्तास्मीति जानता।
स्नानोपलेपनञ्चैव कृत्वा विप्रान् निमन्त्रयेत् ॥
दन्तकाष्ठञ्च विसृजेत् ब्रह्मचारी शुचिर्भवेत् ॥

आदिशब्दात् मलापकर्षणचौरादिना देहशौचादीनां ग्रहणम्। दन्तकाष्ठं विसृजेत् निमन्त्रितब्राह्मणेभ्यो दद्यादिति केचित्। स्वयं दन्तकाष्ठं वर्ज्जयेदित्यन्ये।

देवलः —

> अक्रुद्धो निभृतः सुस्थः यथावानत्वरः शुचिः।
> श्वः कर्त्तास्मीति निश्चित्य दाता विप्रान् निमन्त्रयेत्॥
> निरामिषं सकृद्भुक्त्वा सर्व्वसुप्तजने गृहे।
> असम्भवे परेद्युर्वा ब्राह्मणांस्तान्निमन्त्रयेत्॥
> अस्नातीनसमानार्षानयुग्मानात्मशक्तितः॥

निभृतो विविक्तदेशस्थः निश्चित्येत्यभिधानात्।

उपरागतीर्थश्राद्धादौ भविष्यद्ग्रासप्रत्यक्षस्य तीर्थप्राप्तेश्च सन्देहात् प्रधानकर्त्तव्यतानिश्चयाभावात्।

स्मार्त्त शेषभक्तयागाधिवासवत् सकृद्भोजननिमन्त्रणयोर्ब्बाध इति। दातेत्यनेन अन्यद्वारा निमन्त्रणं निषिद्धम्।

*यत्तु—साधुभिः सन्निमन्त्रयेदिति वचनात्

स्वयमशक्तौ सजातीयपुरुषद्वारा निमन्त्रयेदिति श्रीदत्तेनोक्तं तत्तद्वचनस्य पूर्व्वापरमनालोच्यैव।

यथा कूर्म्मपुराणे—

> गोमयेनोदकैर्भूमिं शोधयित्वा समाहितः।
> सन्निपात्य द्विजानग्र्यान् साधुभिः सन्निमन्त्रयेत्॥

---

* क पुस्तके यत्त्वित्यारभ्य पङ्क्तिद्वयं नास्ति।

श्वो भविष्यति मे श्राद्धं पूर्व्वेद्युरभिपूज्य च।
असम्भवे परेद्युर्व्वा यथोक्तैर्लक्षणैर्युतान्॥
भिक्षार्थमागतान् वापि काले संयमिनो यतीन्॥

तत्र साधुभिः सुकृतवचनैरित्यर्थः।

निरामिषं भक्तङ्क्तेति—

अत्र केचित्

भुक्तेति क्त्वाश्रवणात् भोजनस्य निमन्त्रणाङ्गताप्रतीतेरङ्गस्य च प्रधानकालान्वयनियमात् परदिने च श्राद्धात्प्राक् भोजननिषेधात् अनन्वयिसर्व्वसुतमञ्चपदव्यवधानाच्च सद्यो निमन्त्रणे निरामिषसकृद्भोजनं नाङ्गमिति वदन्ति।

तदयुक्तं नहि क्त्वाप्रत्ययोऽङ्गत्वबोधकः भुक्त्वा हसतीत्यादौ व्यभिचारात्। किन्तु क्रम एव क्त्वाप्रत्ययार्थः।

एवञ्च—

चन्द्रक्षयाहःपूर्व्वेद्युः स्नात्वा चैकाशनी भवेत्।
अधःशायी ब्रह्मचारी निशि विप्रान् निमन्त्रयेत्।

इति वृहन्नारदीयवचनेन पृथक् पृथक् श्राद्धाङ्गतया बोधितयोरेकभोजननिमन्त्रणयोः क्त्वाप्रत्ययेन क्रममात्रबोधनात्।

सद्यो निमन्त्रणपक्षेऽपि पूर्व्वेद्युर्निरामिषसकृद्भोजनमव्याहतमेव अन्यथा श्राद्धवैगुण्यप्रसङ्गः तस्य श्राद्धाङ्गत्वात्। अतएव कुशब्राह्मणपक्षेऽपि पूर्व्वेद्युर्निरामिषसकृद्भोजनं सिद्धमिति।

अत्र भोजनस्य रागप्राप्तत्वेन विधानायोगात् गुणद्वयविशिष्टनियमविधौ तु सामिषद्वितीयभोजनस्य प्रसक्तेस्तत्र ब्रह्मचारी

शुचिर्भवेदिति वराहपुराणे अधःशायी ब्रह्मचारी निशि विप्रा-
न्निमन्त्रयेदिति नारदीये च ब्रह्मचर्य्यविधिबाधापत्तेः।

निमन्त्रयीत पूर्व्वेद्युर्ब्राह्मणानात्मवान् शुचिः।

तैश्चापि संयतैर्भाव्यमिति याज्ञवल्क्योक्तसंयमविधिबाधापत्तेश्च।

तदेकवाक्यतया आमिषभोजन-पुनर्भोजनयोर्निषेधविधौ सक्ल-
न्निरामिषमेव भुञ्जीत नान्यदिति गुणद्वयविशिष्टपरिसंख्याविधौ
वा सति कदाचिद्भोजनासम्भवात्रापि न श्राद्धवैगुण्यमिति ध्येयम्।

असमानार्षान् असमानप्रवरान् नामतः संख्यातयेत्यर्थः।

अत्र गुणवदसपिण्डाभावे सपिण्डमपि गुणवन्तं भोजयेत्।
यथा बौधायनः—

तदभावे एवंविधं सपिण्डमप्याशयेदिति।

एतच्च पुरुषत्रयादूर्द्धं यथा गोभिलः—

भोजयेदूर्द्धं त्रिभ्यो गुणवन्तं सपिण्डमपीति।

मार्कण्डेयपुराणे—

निमन्त्रयीत पूर्व्वेद्युः पूर्व्वोक्तान् द्विजसत्तमान्।
अप्राप्तौ तद्दिने वापि हित्वा योषित्प्रसङ्गिनम्॥

अत्र प्रसङ्गात् क्रियानिष्पत्तिपर्य्यन्तं मैथुनिनो निषेधः।

यत्तु—

स्मरणं कीर्त्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्।
सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च॥

इति दक्षेणाष्टविधमैथुनं निषिद्धम्। तन्निमन्त्रणोत्तरविषयम्।

तथा च विष्णुपुराणे—

श्राद्धे नियुक्तो भुक्त्वा वा भोजयित्वा नियुज्य वा ।
व्यवायी रेतसो गर्त्ते मज्जयत्यात्मनः पितॄन् ॥

पारस्करेऽपि—

तदहरक्रोधनोऽप्रमत्तोऽत्वरितः सत्यवादी स्यादध्वमैथुनश्रम-स्वाध्यायान् वर्ज्जयेदिमन्त्रितयैवमिति ।

यमः—

योनिक्रियाववोधाद्यैर्गुणैर्युक्तानलोलुपान् ।
प्रार्थयेत प्रदोषान्ते श्वःकार्य्ये शयितान् द्विजान् ॥
सर्व्वायासविनिर्मुक्तैः कामक्रोधविवर्ज्जितैः ।
भवद्भिर्भवितव्यं नः श्वो भूते श्राद्धकर्म्मणि ॥
ते तं तथेत्यविघ्नेन याति चेद्रजनी सुखम् ।
यथाश्रुतं प्रतीक्षेरन् श्राद्धकालमतन्द्रिताः ॥

योनिगुणो विशुद्धमातापितृकत्वं, क्रियागुणः सत्कर्म्मशालित्वं अववोधगुणो ज्ञानगुण आत्मानात्मविवेचनशक्तिः, आदिग्रहणात् स्वाध्यायतत्परत्वादिः अलोलुपान् अलुब्धान्, प्रदोषान्ते रात्रि-प्रथमप्रहरान्ते, प्रार्थयेत निमन्त्रणपूर्व्वकं नियममभ्यर्थयेदित्यर्थः ।

त नियममाह सर्व्वायासेति—ते ब्राह्मणाः, तं निमन्त्रयितारं, यद्यविघ्नेन रजनी याति तदा सर्व्वमेतत्करिष्य इति प्रतिवदेयु-रिति शेषः । तदहरामन्त्रणपक्षे तु नास्य मन्त्रस्य पाठोऽसमवेतार्थत्वात् ।

न च स्वः पदस्थानेऽप्यपदोहः ।

उपदेशविधेरन्यथाकल्पनभिया प्रकृतावूहकल्पनाया अयोगात् विकृतावेवातिदेशप्राप्तस्यान्यथानुपपत्त्या ऊहकल्पनासद्भावात् ।

अक्रोधनैः शौचपरैः सततं ब्रह्मचारिभिः ।
भवितव्यं भवद्भिश्च मया च श्राद्धकर्म्मणि ॥

इति मत्स्यपुराणोक्तासमवेतार्थमन्त्रसद्भावे ऊहकल्पनाया अन्याय्यत्वाच्च ।

तस्मात् पूर्व्वदिने सर्व्वायासपाठस्तदहरक्रोधनैरित्यस्येति व्यवस्थितविकल्पः ।

अत्र केचित्—एकब्राह्मणनिमन्त्रणे अक्रोधनैरित्यादौ बहुवचनस्यैकवचनोहः कार्य्य इत्याहुः । तन्मन्दम्—मत्स्यपुराणे—

दक्षिणं जानुमालभ्य त्वं मयात्र निमन्त्रितः ।
एवं निमन्त्र्य नियमान् पैतृकान् श्रावयेद्बुधः ॥

अक्रोधनैः शौचपरैरित्यादौ मत्स्यपुराणे एकब्राह्मणनिमन्त्रण एव बहुवचनप्रयोगाद्बहुवचनस्य समवेतार्थत्वेनोहायोगात् ।* तथा—

अस्तं गते तथादित्ये गत्वा विप्रनिवेशनम् ।

इति वराहपुराणवचनाद् विप्रगृहगमनेनैकैकविप्रस्यैव सम्भवात् सर्व्वायामित्यत्रापि बहुवचनस्यासमवेतार्थत्वादूहोऽन्याय्य एवेति ।

अत एकोद्दिष्टे त्वामहं निमन्त्रये इति वराहपुराणदर्शनात्

---

* ख पुस्तके उपयोगात् ।

पार्व्वणेऽपि श्राद्धं कर्त्तुं त्वामहं निमन्त्रये इति लडन्त एव* प्रयोगः कार्य्यः।

न तु—

हविर्ग्यं आतुमासाद्य त्वं मयाऽद्य निमन्त्रितः।

इति मत्स्यपुराणवचनात् क्तप्रत्ययान्तं वाक्यं प्रयोक्तुं युक्तम्। निमन्त्रित इत्यस्यातीतनिमन्त्रणप्रकाशकत्वात् निमन्त्रणस्य वर्त्तमानत्वात् वर्त्तमानताया आनुबन्धधातुविषयत्वात् अतीततायाश्च असमवेतार्थत्वादसमवेतार्थपदस्य च विधापकाक्षमत्वात् निमन्त्रणबाधापत्तेः, निमन्त्रितोऽस्मीति प्रत्युत्तरबाधापत्तेश्च।

तस्मात् पुंवचसो दृष्टार्थत्वेन मत्स्यपुराणे क्तप्रत्ययस्याविवक्षितत्वात् निमन्त्रणकर्मणि† समवेतार्थ—लट् प्रत्ययेन वाक्यं साधीयः।

अतएव त्वामहमामन्त्रये इत्यपि निरस्तं यत्र प्रत्याख्याने प्रत्यवायस्तन्निमन्त्रणं यत्र कामचारस्तदामन्त्रणमिति निमन्त्रणामन्त्रणयोर्भेदेन निरुक्तत्वाच्च।

श्राद्धे चानिमन्त्रितो नातिक्रमेत्।

इति पारस्करे प्रत्यवायश्रवणान्निमन्त्रणमेवेति।

यच्च—

आमन्त्रिता आमन्त्रयिता च शुचयस्तां रात्रिं निनयेयुः।

इति हारीतवचने।

---

* ख पुस्तके नोऽभिमतस्य एव।

† ख पुस्तके निमन्त्रणकर्म्मणो°।

यत्र—

प्रातरामन्त्रितान् विप्रान् युग्मानुभयतस्तथा।

इति छन्दोगपरिशिष्टादावर्थवादवाक्ये आमन्त्रणं श्रूयते तन्मन्वादीनां विधिवाक्यस्थनिमन्त्रणपदश्रवणाद् गौणम्।

यथा मनुः—

निमन्त्रयीत त्र्यवरान् सम्यग् विप्रान् यथोदितान्॥

देवलः—

श्वः कर्त्तास्मीति निश्चित्य दाता विप्रान्निमन्त्रयेत्॥

मार्कण्डेयपुराणे—

निमन्त्रयीत पूर्व्वेद्युः पूर्व्वोक्तान् द्विजसत्तमान्॥

कूर्मपुराणे—

साधुभिः सन्निमन्त्रयेत्॥

नारदीये—

निमन्त्रयेद् द्विजं प्राज्ञं दर्भपाणिर्जितेन्द्रियः॥

वराहपुराणे—

स्नानोपलेपनञ्चैव कृत्वा विप्रान्निमन्त्रयेत्॥

गरुड़पुराणे—

पूर्व्वं निमन्त्रयेद्विप्रान् निशि स्युर्ब्रह्मचारिणः॥

यत्तु—

ॐ अद्यास्मिन् देशे अमुकमासे अमुकराशिस्थे सवितरि अमुकपक्षे अमुकस्यान्तिथौ अमुकगोत्राणां पित्रादीनां यथानामशर्म्मणाम् श्राद्धं युष्मास्वहं करिष्ये। इति गरुड़पुराणवचनम्।

यदपि—युष्माकं श्राद्धमाचरिष्य इति शङ्खलिखितवचनम्।

तन्निमन्त्रणान्तरक्रियमाणानुज्ञाप्रायेणावाक्यपरं न तु निमन्त्रणम्।

नन्वनुज्ञायां विधिः क्व दृष्ट इति चेत् सत्यम्।

मत्स्यपुराणे—

दक्षिणं जानुमालभ्य त्वं मयात्र निमन्त्रितः।

इत्यादिना नियमवचनपर्यन्तं निमन्त्रणमुक्त्वा—

आसनेषु तु क्लृप्तेषु दर्भवत्सु समाहितः।

उपस्पृष्टोदकान् विप्रानुपवेश्यानुमन्त्रयेत्॥

इत्यनेनासनोपवेशनानन्तरमनुज्ञाविधिरुक्तः।

विष्णुपुराणे—

अनुज्ञाञ्च ततः प्राप्य दत्त्वा दर्भान् द्विधाकृतान्॥

अत्रानुज्ञाकथनात् तत्प्रार्थनरूपं प्रश्नवाक्यमाक्षिप्यते।

ब्रह्मपुराणे—

दर्भौ दर्भौ समौ कृत्वा जानुनोरन्तरास्थितौ।

सम्यग्योपविष्टः सन् सर्वान् पृच्छेद् द्विजोत्तमान्॥

श्राद्धं करिष्य इत्येवं भक्तिनम्रः समाहितः।

कुरुष्वेति च तैरुक्तो दद्यादर्घासनं ततः॥

तथा ब्राह्मे—

दर्भानादाय पृच्छेत करिष्ये श्राद्धकर्म तु।

तैरप्युक्ते कुरुष्वेति विश्वेदेवांस्ततो भुवि॥

आहूय मन्त्रतस्तेषु वेदोक्तविधिना हविः।
अथतैर्देवता रचां चक्रे चक्रगदाधरः॥

आपस्तम्बोऽपि—

पूर्व्वेद्युर्निवेदनं परेद्युर्द्वितीयं तृतीयमामन्त्रणञ्च।

अस्यार्थः—

पूर्व्वेद्युः कार्य्यव्यासङ्गनिमन्त्रणायक्तौ श्वः श्राद्धं कर्त्तव्यं तत्र भवन्तः प्रातर्निमन्त्रयितव्या इति मनुष्यद्वारा योषित्-प्रसङ्गवारणाय निवेदनं कार्य्यं, परेद्युर्द्वितीयं प्रातर्निवेदनं नियमश्रवणार्थं मत्स्यपुराणोक्तं निमन्त्रणं, तृतीयं निवेदनमनुज्ञाप्रार्थनरूपं गरुड़पुराणोक्तं, दिनद्वित्वे तु निवेदनापेक्षया सम्बन्धे चास्य गरुड़पुराणदर्शनान्निमन्त्रणानुज्ञयोर्मासपचतिथ्याद्युल्लेखः कार्य्यः।

मासपचतिथीनाञ्च निमित्तानाञ्च सर्व्वशः।
उल्लेखनमकुर्व्वाणो न तस्य फलभाग्भवेत्॥

इति ब्रह्माण्डपुराणे न तस्य फलभाग्भवेदित्यनेन यत्र यत्रैव प्रधानकर्म्मोल्लेखः तत्र तत्रैव मासपचादीनामुल्लेखविधानाच्च।

अतएव निमन्त्रणानुज्ञाप्रार्थनदक्षिणाच्छिद्रावधारणेषु प्रधानोल्लेखसम्भवात्मासादीनामुल्लेखो निर्व्विवाद एव, पाद्यादिषु तन्त्रेषु प्रधानकर्म्मोल्लेखाभावान्मासादीनामुल्लेखो नास्ति दैवतानैवेद्यादिदानवदिति।

अतएव श्रीदत्तलिखितोऽप्ययमयोगोऽपि निरस्तः। यस्मादुत्सर्गवाक्याभिधायकनानामुनिवचनैश्चहृटत्वाच्च दिङ्मात्रमिदं विशेषतो दानकौमुद्यां सर्व्वमेव विवृतमस्तीति।

यत्त्वाधुनिकाः—

पित्रादिरथश्राद्धार्थे त्वामहं निमन्त्रय इति वाक्यं वर्णयन्ति, तन्न।

श्राद्धदानतर्पणादिषु समस्तकर्म्मसु उद्देश्यगतगोत्रसम्बन्धनाम्नां कीर्त्तनस्यानेकमुनिवचनैः प्राप्तत्वादत्र तदाधस्याम्नाय्यत्वात् दृष्ट-कल्पनान्यायस्य दुर्निवारत्वात् प्रागुक्तगरुड़पुराणादिवचनान्मास-पक्षतिथीनामुल्लेखस्य प्राप्तत्वाच्च।

अन्ये तु—

अमुकगोत्राणामस्मत्पितृपितामहप्रपितामहानाममुकामुक-शर्म्मणां श्राद्धार्थमित्याहुः। तदपि हेयम्।

पित्रादीनां निरपेक्षाणां प्रत्येकं देवतात्वात् समुच्चयाभिधायक-द्वन्द्वसमासस्याम्नाय्यत्वात् प्रयोक्तुः स्वसम्बन्धितयैव प्रतीतेरस्मत्पद-वैयर्थ्याच्च।

यत्तु मैथिलाः प्रथमं श्राद्धसङ्कल्पमाचरन्ति। तदप्ययुक्तं
मनसा सङ्कल्पयति वाचाभिलपति कर्म्मणा प्रतिपादयति।

इति हारीतवचनस्य काम्यकर्म्मपरत्वात्। अन्यथा सन्ध्यापञ्च-महायज्ञादिष्वप्यतिप्रसङ्गः। अतएव न तस्य फलभाग्भवेदिति ब्रह्माण्डपुराणं किन्तु धनपुत्राद्यभिसन्धानेन क्रियमाणे काम्ये-ऽतिथिश्राद्धादावभिलापो निर्विवादः।

कुशमयब्राह्मणपक्षे तु निमन्त्रणं न कार्यं श्राद्धद्रव्यस्वीका-रार्थमनुमतिफलकस्य विज्ञापनस्य निमन्त्रणपदार्थत्वात् कुशमय

ब्राह्मणस्याचेतनत्वेन स्वीकारासम्भवादनुमत्यसम्भवाच्च निमन्त्रणासम्भवात्।

एवञ्च फलाभावात् नियमश्चावश्यमपि बाधितम् तथा स्वागतप्रश्नपाद्याद्याचमनीयान्यपि ब्राह्मणमात्रोपयुक्तत्वात्।

न च सपवित्रेषु हस्तेष्विति पारस्करवचनात् अब्राह्मणकश्राद्धे हस्ताभावादर्घ्यबाधोऽस्त्विति वाच्यम्।

पित्राद्युद्देशेनैव दानादुत्तरप्रतिपत्त्यपेक्षया द्विजकरस्यार्घ्यप्रक्षेपाधारमात्रत्वेन तदभावे द्विजस्थानाभिषिक्तदर्भवटोरेव गन्धादिदानवदुत्तरप्रतिपत्त्याधारत्वसम्भवात्।

न च ब्राह्मणस्य मुख इति मन्त्रलिङ्गात् ब्राह्मणाभावे पात्रालम्भनबाधोऽस्त्विति वाच्यम्।

जुहोमीति वर्त्तमाननिर्देशात्।

हुतशेषं प्रदद्याच्च भाजनेषु समाहितः।

इत्यादिवचनैः पात्रेष्वेव हुतशेषार्पणविधानाच्च।

हुतशेषं दत्त्वा पात्रमालभ्य जपतीति वाक्यावधृतपात्रपरत्वानुपपत्त्या च पृथिवी ते इति मन्त्रे ब्राह्मणस्य मुखतुल्यतया मुखपदे पात्रलक्षणा। दृष्टा हि दृषदि तण्डुलानावपतीति वाक्यावधृततण्डुलपरत्वानुपपत्त्या धान्यमसीति मन्त्रे धान्यपदे तण्डुललक्षणा ततश्च ब्राह्मणाभावे कुतः पात्रालम्भनबाध इति।

न च—

कृत्वेदं विष्णुरित्यत्र द्विजाङ्गुष्ठं निवेशयेत्।

इति याज्ञवल्क्यवचनादङ्गुष्ठनिवेशनबाधोऽप्यस्तु भोक्तृद्विजाभावादिति वाच्यम्।

अङ्गुष्ठनिवेशनस्य यमहारीताभ्यामसुरेभ्यो रक्षारूपप्रयोजनकथनादावश्यकत्वेन द्विजाभावे स्वाङ्गुष्ठनिवेशनस्यैव युज्यमानत्वात्।

यथा यमः—

अङ्गुष्ठमात्रो भगवान् विष्णुः पर्य्यटते महीम्।
राक्षसानां वधार्थाय को भेत्ता प्रहरिष्यति॥
तस्माच्छ्राद्धेषु सर्व्वेषु अङ्गुष्ठारोपणं स्मृतम्।
निरङ्गुष्ठन्तु यच्छ्राद्धं बहिर्जानु च यत्कृतम्॥
बहिर्जानु च यद्दत्तं सर्व्वमेवासुरं भवेत्॥

हारीतः—

निरङ्गुष्ठन्तु यच्छ्राद्धं न तत्प्रीणयते पितॄन्।
तस्मादङ्गुष्ठमारोप्य अपेक्षन्तं समाहितः॥

इति। यत्

किञ्च—वैष्णव्यार्चा यजुषा चाङ्गुष्ठमन्नेऽवदायेति गोभिलेः स्वाङ्गुष्ठदानं प्रतीयते अन्यथा चावदायेति ब्रूयात् तत्र ब्राह्मणाभावे गन्तव्यम्।

तथा—

ततोऽन्नं मृष्टमत्यन्तमभीष्टमपि संस्कृतम्।
दत्वा जुषध्वमिच्छातो वाच्यमेतदनिष्ठुरम्॥

इति विष्णुपुराणोक्तं भोजनप्रवर्त्तकं जुषध्वमिति वचनं बाधितम्।

तथा भोजनानन्तरं तृप्तिप्रश्नोऽपि बाधितः भोजनस्य तृप्ते-रसम्भवात्। तथा ब्राह्मणभोजनानन्तरमाचमनमपि तथा आमावाजस्येति ब्राह्मणानुव्रजनमपि बाधितम्।

अनुज्ञाप्रार्थनन्तु कर्त्तव्यमेव कुशमयब्राह्मणेऽहं श्राद्धं करिष्ये इत्युक्ते कुरुष्वेति प्रत्युत्तरदानस्य ब्राह्मणान्तरद्वाराऽपि सिद्धेः।

न च श्राद्धभोक्तृब्राह्मणस्यैव प्रकृतत्वेन सर्व्वत्र तस्यैव प्रत्युत्तरदानस्योचितत्वादन्येषामकिञ्चित्करत्वात् भोक्तृब्राह्मणाभावे ऽनुज्ञापि बाधिता स्यादिति वाच्यम्।

भोक्तृब्राह्मणाभावे श्राद्धाधिकारकब्राह्मणस्य प्रकृतत्वादबाधित-प्रत्युत्तरदाने तस्यायोग्यत्वाभावात्। निमन्त्रणादौ तु श्राद्धभोक्तृ-तरब्राह्मणानां प्रत्युत्तरस्य बाधितत्वेन निमन्त्रणाद्यभाव एवावाहन-पिण्डाग्नौकरणप्रश्नस्वधावाचनाशीर्ग्रहणादीन्यपि कर्त्तव्यान्येव। किञ्च—

निधायाथ दर्भवयमासनेषु समाहितः।
प्रैषानुप्रैषसंयुक्तं विधानं प्रतिपादयेत्॥

इति सत्यव्रतेन दर्भमयब्राह्मणपक्षेऽपि प्रैषानुप्रैषौ विहितौ।

प्रैषोऽनुमतिग्रहणं अनुप्रैषोऽनुमतिपूर्व्वकनियोगः यथा कुरुष्वेति नियोगस्य चेतनसाध्यत्वादर्थाद्ब्राह्मणद्वारेति सिद्धमेव।

निमन्त्रितोऽस्मि तृप्तोऽस्मि इत्यादिकन्तु नानुप्रैषः, नियोगा-भावात्।

एतेन केनचित् कुशमयब्राह्मणे प्रमाणाभावादङ्गभूतब्राह्मणाभावे याङ्गलोप इति यदुक्तं तन्निरस्तम्।

ननु आसने दर्भत्रयस्यैव निधानविधानात् दर्भवटुश्च कुतो लभ्यत इति चेत् दर्भत्रयस्य ब्राह्मणप्रतिनिधित्वेन प्रतिपादनात् ब्राह्मणप्रतिनिधेश्च दर्भवटोः सर्व्वत्रैव दृष्टत्वात्तल्लाभः।

यथा पैठीनसिः—

दर्भमयीं प्रतिकृतिं तीर्थवारिणि मज्जयेत्।
मज्जयेत्तु यमुद्दिश्य अष्टभागं लभेत सः॥

गोभिलः —

यद्युभयं चिकीर्षेत् हौत्रं ब्रह्मत्वञ्च तेन कालेनछत्रमुत्तरासङ्गमुदककमण्डलुं दर्भवटुं वा निधायेति।

उपाकर्म्मणि छन्दोगपरिशिष्टम्—

पौत्रान्पौत्रान् स्थण्डिलस्थान् गन्धादिभिरलङ्कृत्य।

तथा तत्रैव—

यज्ञवास्तुनि मुष्ट्याञ्च स्तम्बे दर्भवटौ तथा।
दर्भसंख्या न विहिता विष्टरास्तरणेष्वपि॥

यज्ञवास्तुनि दर्भमुष्टिकाहोमे धारणार्थायां कुशमुष्टौ च स्तम्बे गोभिलेन श्रवणाकर्म्मण्युक्ते दर्भस्तम्बे दर्भवटौ ब्राह्मणाभावे तत्प्रतिनिधित्वेन कल्पिते च मुनिभिर्द्दर्भसंख्या न विहितेत्यर्थः।

यत्तु—

पञ्चाशद्भिर्भवेद्ब्रह्मा तदर्द्धेन च विष्टरः।
तदर्द्धेनोपयमनं तदर्द्धेन द्विजः स्मृतः॥

इति गोभिलपुत्रनाम्ना वचनं पठन्ति तदपि समूलं तदा-सम्भवासम्भवत्स्यां नियमानियमयोर्व्यवस्थितो विकल्पः।

अथानतिलचणस्य द्वारस्य बाधात् कुशमयब्राह्मणपचे दचिणा-बाधोऽस्तु यथा सत्रयागे यजमानस्यैव ऋत्विक्त्वेन दचिणाबाध उक्तः।

तन्न दचिणाया अङ्गत्वेनावश्यकत्वाददृष्टार्थदचिणायाः सत्त्वात्। यथा व्यासः—

यथायुक्तो शुचिर्दान्तो दानं दद्यात् सदचिणम्।
अदचिणन्तु यद्दानं तद्दानं निष्फलं भवेत्॥

वृहस्पतिः—

हतमन्त्रोऽपि यं श्राद्धं हतो यज्ञस्त्वदचिणः।
तस्मात् पर्णं काकिनीं वा फलं पुष्पमथापि वा॥
प्रदद्यात् दचिणां यज्ञे तया स सफलो भवेत्।

अत्र पुष्पादीनामानत्यर्थाभावाददृष्टार्थो दचिणायाः।

अतएव छन्दोगपरिशिष्टे स्वयंकर्तृकपचे दचिणोक्ता यथा—

विदध्याद्धौत्रमन्यश्चेद्दचिणार्द्धहरो भवेत्।
स्वयञ्चेदुभयं कुर्य्यादन्यस्मै प्रतिपादयेत्॥

ततश्च सत्रयागेऽप्यतिदेशागतदृष्टार्थदचिणाबाधो नादृष्टार्थाया दचिणाया इत्युक्तं श्राद्धविवेके।

शालग्रामशिलायान्तु यः श्राद्धं कुरुते नरः।
सुप्रीताः पितरस्तस्य प्रयान्ति ब्रह्मणोऽन्तिकम्॥

इति पद्मपुराणात् केचित् कुशब्राह्मण इव शालग्रामेऽपि श्राद्धमाचरन्ति ।

वस्तुतस्तु—

शालग्रामशिलाग्रे तु यैः श्राद्धं क्रियते नृभिः ।
तेषां शतान्तिकं स्थानं तृप्ताः स्युः पितरो दिवि ॥

इति लिङ्गपुराणवचनैकवाक्यतया शालग्रामशिलायां सन्निहितायां सत्यामित्यर्थः ।

ब्राह्मणसंख्यामाह याज्ञवल्क्यः—

दैवे युग्मान् यथाशक्ति पित्र्येऽयुग्मांस्तथैव च ।
परिस्रुते शुचौ देशे दक्षिणाप्रवणे तथा ॥
द्वौ दैवे प्राक् त्रयः पित्र्ये उदगेकैकमेव वा ।
मातामहानामप्येवं तन्त्रं वा वैश्वदेविकम् ॥

परिस्रुते सर्वतो वेष्टिते । प्राक् प्राङ्मुखा उदक् उदङ्मुखाः । एकैकमिति दैवे चैकं पित्रादिक्रिके चैकमित्यर्थः । यथाशक्तीत्यनेन शक्तितो विकल्पः । मातामहानामप्येवमित्यनेन दैवे युग्मनियमात् इति यथाशक्तीत्यादिसर्वमनुकृष्यते ।

तन्त्रं वेति पितृदैवमातामहदैवयोस्तन्त्रमेकप्रयोगो वेत्यर्थः वाकाराद्वाहवौ कन्नभूमेत्यर्थः । अथादैव वचनान्न्यायसिद्धाया अपि तन्त्रताया बाधः ।

अत्र गौडाः—

प्रकरणाद्ब्राह्मणस्यैव तन्त्रत्वं नतु श्राद्धस्य किन्तु एकब्राह्मण एव दैवश्राद्धद्वयं पृथक्प्रयोगेण कार्यमित्याह ।

तन्मन्दं

तथा मातामहश्राद्धं वैश्वदेवसमन्वितम्।
कुर्व्वीत भक्तिसम्पन्नस्तन्त्रं वा वैश्वदेविकम्॥
पृथक् तयोः केचिदाहुः श्राद्धस्य करणं नृप।
एकत्रैकेन पाकेन वदन्त्यन्ये महर्षयः॥

इति विष्णुपुराणे श्राद्धस्य तन्त्रताभिधानात्।
एतेनागृहीतमातामहधनस्य दौहित्रस्य पुत्रिकापुत्रस्य च मातामहश्राद्धमावश्यकं अन्यस्य त्वनियमः अन्यथा पुत्रिकाकरणं निष्फलं स्यादिति केषाञ्चिन्मतं निरस्तं विष्णुपुराणादिभिः सामान्येन विधानात्।

तथा च योगियाज्ञवल्क्यः—

पितरो यत्र पूज्यन्ते तत्र मातामहा ध्रुवम्।
अविशेषेण कर्त्तव्यं विशेषान्नरकं व्रजेत्॥

पार्व्वणश्राद्धे पारस्करः—

पितृभ्यः पितामहेभ्यः प्रपितामहेभ्यो मातामहेभ्यः प्रमातामहेभ्यो वृद्धप्रमातामहेभ्यश्च स्वधोच्यताम्।

छन्दोगपरिशिष्टे—

कर्षुसमन्वितं मुक्त्वा तथाद्यं श्राद्धषोड़शम्।
प्रत्याब्दिकञ्च शेषेषु पिण्डाः स्युः षड़िति स्थितिः॥

इति षट्संख्यानियम उक्तः।

कर्षुसमन्वितमष्टकाश्राद्धं षोड़शानां पूरणं षोड़शं सपिण्डीकरणमाद्यं प्रथमपार्व्वणम्।

तथा चाश्वलायनः—

आदिः सपिण्डीकरणमिति ।

प्रत्याब्दिकं साग्न्यादिना पार्व्वणविधिना क्रियमाणम् ।

अतएव मनुना—

मातुः प्रथमतः पिण्डं निर्व्वपेत्पुत्त्रिकासुतः ।

द्वितीयञ्च पितुस्तस्यास्तृतीयञ्च पितुः पितुः ॥

इत्यनेन पुत्त्रिकापुत्रस्य प्रकारान्तरमुक्तम् ।

पुत्त्रिकाकरणन्तु अन्वष्टकायामेकोद्दिष्टे च जीवत्यपि पितरि दर्शादौ च नित्याधिकारार्थमिति ।

मनुः—

द्वौ दैवे पितृकार्य्ये त्रीनेकैकमुभयत्र वा ।

भोजयेत् सुसमृद्धोऽपि न प्रसज्येत विस्तरे ॥

सत्क्रियां देशकालौ च शौचं ब्राह्मणसम्पदः ।

पञ्चैतान् विस्तरो हन्ति तस्मान्नेहेत विस्तरे ॥

उभयत्र पूर्व्वोक्ते दैवे पैत्रे च एकैकमित्यर्थः ।

अतएव वशिष्ठः—

अपि वा भोजयेदेकं ब्राह्मणं वेदपारगम् ।

श्रुतशीलोपसम्पन्नं सर्व्वलक्षणवर्ज्जितम् ॥

तथा च मत्स्यपुराणम्—

*देशकालधनाभावादेकैकमुभयत्र वा ।

सत्क्रिया पूजा ब्राह्मणसम्पदो विशिष्टब्राह्मणलाभः ॥

* स्वपुस्तके देशकालोभयाभावात् ।

यत्तु—एकैकमेकैकस्य द्वौ द्वौ त्रींस्त्रीन् वा हृद्धौ फलभूयस्त्वं नत्वेकैकं सर्व्वेषां काममनाद्यमित्याश्वलायनवचनम्।

अस्यायमर्थः—एकैकस्य पित्रादेरेकैकं द्वौ द्वाविति वीप्सा दैवे सन्नताभावपक्षे इति श्राद्धविवेकः।

कल्पतरौ तु—

आभ्युदयश्राद्धविषयमुक्तं एकैकस्य पित्रादेः किन्तु अनाद्यं आद्यं सपिण्डीकरणं आदिः सपिण्डीकरणमित्याश्वलायनवचनात् तदर्थमित्यर्थः अतः सपिण्डीकरणे पितामहादीनां त्रयाणां पृथक् पृथक् ब्राह्मणोपवेशनं कार्य्यं न त्वेकैकं सर्व्वेषामिति आचारोऽप्येवम् एवेति।

त्रींस्त्रीन् वा अस्मिन् पक्षे फलभूयस्त्वं न तु द्वे सर्व्वेषां पित्रादीनां त्रयाणां एतच्च शक्तिसद्भावे च ज्ञेयं तदसम्भवे त्वाह काममनाद्यमिति कामं यथेच्छमेकमेव ब्राह्मणं भोजयेत् एतच्च पूर्व्वोक्तवशिष्ठवचनसमानार्थम्।

[*प्रातः स्नात्वेति प्रातःस्नानं तत्त्वर्थमपीति दर्शितम्।

अन्ये तु—परिसंख्यया मध्याह्नस्नानं न कार्य्यमित्याहुः। तत्रस्त्वं नियमविधिसम्भवे दोषत्रय—

अन्ये तु—आदामदनीयं तदभाव इत्याहुः]।

---

* क पुस्तके [ ] चिह्नितांशो नास्ति।

# अथ श्राद्धदिनकृत्यम् ।

यमः—

तथैव यन्त्रितो दाता प्रातः स्नात्वा सिताम्बरः ।
आरभेत नवैः पात्रैरन्वारम्भञ्च बान्धवैः ॥

यन्त्रितो नियमस्थः नवैः पात्रैः पाकस्थाल्यादिभिरन्नस्यारम्भं पाकक्रियां बान्धवैः ज्ञातिभिर्द्वारभूतैरारभेतेत्यर्थः ।

अत्राधुनिकैर्लिपिप्रमादभ्रमोहितैरामन्त्रित इति पाठं मत्वा आमन्त्रितद्विजस्य प्रातःस्नानमात्रेणान्वयः पाकारम्भे दातुरेव योग्यत्वादिति व्याख्यातम् ।

तथा देवलः—

पत्नीं नियोजयेत् पाके सपिण्डं वा स्वयञ्च वा ।

पत्न्यशक्तौ स्वयं सपिण्डो वा पचेदित्यर्थः ।

सर्व्वेषु पाकादिश्राद्धकृत्येषु पत्न्याः प्राधान्येन नियोगात् ।

यथा गोभिलः—

निष्पन्ने *प्रातराशे सायमाशे च भूतमिति प्रवाचयेत् ।

यच्च—

श्राद्धञ्च फाल्गुनाष्टम्यां स्वयं पत्न्यापि न पचेत् ।

इति छन्दोगपरिशिष्टवचनं तदुभयोस्तुल्यत्वप्रदर्शनेन दम्पत्योः गर्भौ सपिण्डत्वाद्यर्थम् ।

तत्रैव योषिदादिवर्जनमाह देवलः—

---

* क पुस्तके प्रातराशे च ।

वीभत्समशुचिं नग्नं मत्तं धूर्त्तं रजस्वलाम्।
नीलकाषायवसनं छिन्नकर्णञ्च वर्ज्जयेत्॥

वीभत्सं विकृताकारं नग्नस्त्यक्तवेदाचारः रजस्वलां चतुर्थ-दिनस्नातामपि।

दैवे कर्म्मणि पैत्रे च पञ्चमेऽहनि शुध्यति।

इति मनुवचनात्।

महाभारते—

रजस्वला च या नारी व्यङ्गिता कर्णयोस्तथा।
निवापे नोपतिष्ठेत संग्राह्या नान्यवंशजा॥

कर्णयोर्व्यङ्गिता त्रुटितकर्णी निवापे पितृकर्म्मणि पाकादा-विस्यर्थः, न संग्राह्या न व्यापारयितव्या इत्यर्थः। अन्यवंशजा पितृवंशासम्बन्धा अन्यवंशजानिषेधादसपिण्डाया वंशजाया अपि ग्रहणम्।

पाकपात्रमाह छन्दोगपरिशिष्टम्—

कुलालचक्रनिष्पन्नं आसुरं मृण्मयं भवेत्।
तदेव हस्तघटितं पैतिकं दैविकं भवेत्॥
तिर्य्यगूर्द्धं समिन्मात्रा दृढा नातिहृदमुखी।
मृण्मय्यौडुम्बरी वापि चरुस्थाली प्रशस्यते॥

समिन्मात्रा प्रादेशप्रमाणा औडुम्बरी ताम्रमयी।

बृहन्नारदीये—

ततः प्रातः समुत्थाय नित्यं कर्म समाचरेत्* ।
दन्तधावनताम्बूलं तैलाभ्यङ्गमभोजनम् ॥
स्वाध्यायञ्च परान्नानि श्राद्धकर्त्ता विवर्ज्जयेत् ।

महाभारते—

उपवासे तथा श्राद्धे दन्तकाष्ठञ्च वर्ज्जयेत् ।

पारस्करीयेऽपि—

अनिन्द्येनामन्त्रितो नातिक्रमेत् आमन्त्रितो नान्नमन्यं प्रतिगृह्णीयात् अहान्वितः श्राद्ध कुर्व्वीत श्वोभेनाप्यपरपक्षं नातिक्रमेत् तदहः शुचिरक्रोधनोऽत्वरितोऽप्रमत्तः सत्यवादी च स्यात् । अध्वमैथुनश्रमस्वाध्यायान् वर्ज्जयेदामन्त्रितस्तथैवमेवम् ।

पराशरः—

आमन्त्र्य ब्राह्मणं मोहाददुष्टं यो व्यतिक्रमेत् ।
तमप्रसाद्य घोरासु तिर्य्यग्योनिषु जायते ॥

मत्स्यपुराणे—

पुनर्भोजनमध्वानं द्यूतमायासमैथुनम् ।
स्वाध्यायं कलहञ्चैव दिवास्वप्नञ्च सर्व्वदा ॥
श्राद्धकृच्छ्राद्धभुक् चैव सर्व्वमेतत् विवर्ज्जयेत् ।
मैथुनं दयोत्रमष्टविधं प्राग्गुक्तम् ।

---

* क पुस्तके समाचरेत् ।

विष्णुपुराणे—

वर्ज्जानि कुर्व्वता श्राद्धं कोपोऽध्वगमनं त्वरा।
भोक्तुरप्यत्र राजेन्द्र त्रयमेतन्न शस्यते॥

ब्रह्मपुराणे—

अहिंसा सत्यमक्रोधो दूरे चाध्वगमक्रिया।
अभारोद्वहनं शान्तिः श्राद्धस्योपासनेऽ विधिः॥
निमन्त्रितश्चिरं नैव कुर्य्याद्विप्रः कथञ्चन।
चिरकारी भवेद्द्रोग्धा पच्यते नरकाग्निना॥
... ... ... ग्लानिस्तद्धेतुका क्रिया।
चिरकरणेन श्राद्धकालात्ययं न कुर्य्यादित्यर्थः।

देवलः—

शस्त्रग्रहणमुद्वेगं प्राणिहिंसां तथानृतम्।
द्यूतं चौर्य्यं विवादञ्च यानारोहणमुत्सृजेत्॥

यानं नौकाश्वादि।

व्यासः—

पुनर्भोजनमध्वानं भारमध्यानमैथुनम्।
दानं प्रतिग्रहं होमं श्राद्धभुगष्ट वर्ज्जयेत्॥
अध्वनीनो भवेदश्वः पुनर्भोजी तु वायसः।
होमकृन्नेत्ररोगी स्यात् पाठादायुः प्रहीयते॥
दानं निष्फलतामेति प्रतिग्राही दरिद्रताम्।
कर्म्मकृज्जायते दासो मैथुनी शूकरो भवेत्॥

* न पुस्तके पाठोऽयं।

होमोऽत्रानावश्यकः पाठस्वाध्ययनाध्यापनरूपः, दानञ्च पितृग्रहणव्यतिरिक्तम् ।

आपस्तम्बः—

आसन्त्वपितुश्चाभोजनमासमापनाङ्गीकुर्येति ।

आसमापनात् श्राद्धसमाप्तिपर्य्यन्तमित्यर्थः ।

यत्तु—

रविशुक्रदिने चैव द्वादश्यां श्राद्धवासरे ।

सप्तम्यां जन्मदिवसे न कुर्य्यात्तिलतर्पणम् ॥

इति मरीचिवचने तिलतर्पणवर्ज्जनं तत् सांवत्सरिकश्राद्धदिन एव नैयममावस्यादौ विशेषदर्शनात् ।

यथा स्कन्दपुराणे—

अमावस्यान्तु यो मर्त्त्यः करोति तिलतर्पणम् ।

विशेषात् कुशसंसर्गात् पीयूषादधिकं भवेत् ॥

विष्णुपुराणे—युगाद्यामधिकृत्य—

पानीयमप्यत्र तिलैर्विमिश्रम् ।

दद्यात् पितृभ्यः प्रयतो मनुष्यः ।

विष्णुः—

स्नातोऽधिकारी भवति दैवे पैत्रे च कर्म्मणि ।

नरसिंहपुराणे—

अस्नातस्तु पुमानार्हः पितृदैवतकर्म्मणि ॥

आहरेदित्यनुवृत्तौ हारीतः—

अन्यापरिगृहीताश्चाप इति ।

अन्यस्वामिकेतरा इत्यर्थः ।

तथा च मार्कण्डेयपुराणे—

यच्च सर्व्वार्थमुत्सृष्टं यच्चाभोज्यनिपानजम् ।
तद्वर्ज्यं सलिलं तात सदैव पितृकर्म्मणि ॥
पित्रर्थं मे प्रयच्छस्वेत्युक्ता यच्चाप्युपाहृतम् ।
धर्ज्जनीयं सदा सद्भिस्तत्पयः श्राद्धकर्म्मणि ॥

यत् सर्व्वार्थे नोत्सृष्टमप्रतिष्ठितमित्यर्थः ।

अभोज्या अन्त्यजाः कैवर्त्तादयः ।

वायुपुराणे—

दुर्गन्धिफेनिलञ्चाम्बु तथा वै पल्वलोदकम् ।
न लभेयत्र गौस्तृप्तिं नक्तं यच्चैव गृह्यते ॥

पल्वलमल्पसरः ।

विष्णुपुराणे—

नक्ताहृतमनुत्सृष्टं तृप्यते न च यत्र गौः ।
दुर्गन्धिफेनिलं चाम्बु श्राद्धयोग्यं न पार्थिव ॥

अनुत्सृष्टं स्वकीयं परकीयञ्च ।

---

## अथ श्राद्धस्थानम् ।

मनुः—

शुचिं* देशं विविक्तञ्च गोमयेनोपलेपयेत् ।
दक्षिणाप्रवणञ्चैव प्रयत्नेनोपपादयेत् ॥
अवकाशेषु चोक्षेषु नदीतीरेषु चैव हि ।
विविक्तेषु च तुष्यन्ति दत्तेन पितरः सदा ॥
विविक्तं विजनं चोक्षेषु मनोहरेषु ।

यमः—

जघान दानवौ विष्णुः पूर्व्वन्तु मधुकैटभौ ।
हतौ महेन्द्रश्च ततः पृथ्वी तन्मेदसावृता ॥
अतोऽस्तु मेदिनी नाम लोके विख्यायते जनैः ।
तस्माच्छ्राद्धे पञ्चगव्यैर्लेप्या शोध्या तथोक्षणैः ॥
गौरमृत्तिकया कृत्वा प्रकीर्णतिलसर्षपा ।
तत्रैव मण्डितो दाता स्नात्वा प्रातः सिताम्बरः ॥
आरभेत नवैः पात्रैरन्यारब्धञ्च बान्धवैः ।
तिलांश्च विकिरेत्तत्र परितो बन्धयेदजान् ।
असुरोपहतं श्राद्धं तिलैः शुध्यत्यजेन च ॥

अजेनेत्येकवचनादेकस्याजस्य बन्धनमिति वाच्यम् ।
विधौ बहुत्वश्रुतेरर्थवादस्थितैकवचनस्याकिञ्चित्करत्वात् परित इत्यनुपपत्तेश्च ।

---

* ख पुस्तके शुचिर्देश ।

अयञ्च भूमिसंस्कारो वाराणस्यां नास्ति।

मेदसा विप्लुता भूमिरविमुक्ते तु वर्ज्जिता॥

इति मत्स्यपुराणवचनात्।

गोमयोपलेपनन्तु तत्रापि।

शुचिं देशमित्यादिना मनुना गोमयोपलेपनस्य शुचिदेशेऽपि विहितत्वात्।

तथा यमः—

दक्षिणाप्रवणं स्निग्धं विविक्तं शुभलक्षणम्।

शुचिं देशं परीक्ष्याथ गोमयेनोपलेपयेत्॥

शुभलक्षणं श्मशानादिचिह्नरहितम्।

विष्णुः—

पुलिनेषु मनोज्ञेषु वनेषूपवनेषु च।

पुलिनं तोयोत्थितप्रदेश उपवनमुद्यानम्।

तथा मत्स्यपुराणे—

तीर्थायतनगोष्ठेषु द्वीपोद्यानगृहेषु च।

विविक्तेषूपलिप्तेषु श्राद्धं देयं विजानता॥

एवमासाद्य तत् सर्व्वं भवनस्याग्रतो भुवि।

गोमयेनोपलिप्तायां गोमूत्रेण च मण्डलम्॥

अक्षताद्भिः सपुष्पाभिस्तदभ्यर्च्यापसव्यवत्।

विप्राणां क्षालयेत् पादावभिनन्द्य पुनः पुनः।

श्राद्धभवनस्याग्रत इत्यर्थः। अपसव्यवत् प्राचीनावीतित्वादिधर्म्मेण पितृविप्राणां पादौ क्षालयेत्।

ब्रह्मपुराणे—

परकीयगृहे यस्तु स्वान् पितॄं स्तर्पयेज्जड़ः ।
तद्भूमिस्वामिनस्तस्य हरन्ति पितरो बलात् ॥
अग्रभागं ततस्तेभ्यो दद्यान्मूल्यञ्च जीवताम् ।

गृह इति भूभागोपलक्षणं पारक्ये भूमिभागे चेति वक्ष्यमाणयमवचनात्, जीवतां भूमिस्वामिनां मूल्यं वेत्यर्थः । चकारोऽयं विकल्पार्थो न समुच्चयार्थः ।

अग्रभागदानेन तत्पितृतृप्तेः श्राद्धहरणाभावात् मूल्यदानेन तदर्थं स्वाम्योपादानाच्च अत एतच्छ्राद्धप्रमवादिकमेतत्भूमिस्वामिपितृभ्यः स्वधेत्येव वाक्यं न तु नमःपदेन ।

देवानां नमसा कार्य्यं पितॄणाञ्च स्वधेति च ।
इति देवलवचनात् ।

यमः—

पारक्ये भूमिभागे च पितॄणां निर्व्वपेत्तु यः ।
तद्भूमिस्वामिपितृभिः श्राद्धकर्म्म विहन्यते ॥
तस्माच्छ्राद्धानि देयानि पुण्येष्वायतनेषु च ।
नदीतीरेषु तीर्थेषु स्वभूमौ च प्रयत्नतः ॥
उपकूलनितम्बेषु तथा पर्व्वतसानुषु ।
गोमयेनोपलिप्तेषु विविक्तेषु गृहेषु च ॥
अटव्यः पर्व्वताः पुण्या नद्यस्तीर्थानि यानि च ।
सर्व्वाण्यस्वामिकान्याहुर्न हि तेषु परिग्रहः ॥

रुक्षं क्रमियुतं क्लिन्नं सङ्कीर्णानिष्टगन्धिकम्।
देशञ्चानिष्टशब्दञ्च वर्जयेच्छ्राद्धकर्म्मणि॥

परिग्रहः स्वीकारो नास्ति।

उपक्कूलं पर्व्वतान्तिकं स्वामित्वाभावे हेतुमाह नहीति कस्यापि तेषु। रुक्षं धूलीयुतं, क्लिन्नं पङ्किलं, सङ्कीर्णं स्वल्पं स्वल्पतया सत्वाद्यावासम्।

कालिकापुराणे—

ऊषरे क्रमिसंयुक्ते स्थाने कष्टेऽपि नाचरेत्॥

विष्णुः—

न म्लेच्छविषये श्राद्धं कुर्य्यान्न च गच्छेत्*।

---

## अथ श्राद्धेऽपसारणीयाः।

मनुः—

चण्डालश्च वराहश्च कुक्कुटः श्वा तथैव च।
रजस्वला च षण्डश्च नेक्षेरन्नश्नतो द्विजान्॥
होमे प्रदाने भोज्ये च यदेभिरभिवीक्षितम्।
दैवे हविषि पैत्रे च तद्गच्छत्ययथायथम्॥

अयथायथं विफलमित्यर्थः।

---

* क्व पुस्तके—
न म्लेच्छविषये कुर्य्यान्न च गच्छेत् कदाचन।

विष्णुपुराणे—

षण्ढापविद्धचण्डालपापण्डोन्मत्तरोगिभिः ।
कृकवाकु-श्व नग्नैश्च वानर-ग्रामशूकरैः ॥
उदक्या-सूतिकाशौचिमृतहारैश्च वीक्षिते ।
श्राद्धे न चैव पितरो भुञ्जते पुरुषर्षभ ॥

अपविद्धः परिवादग्रस्तः पापण्डो नास्तिकः कृकवाकुः कुक्कुटः नग्नस्त्यक्तवेदाचारः ।

यमः—

कुक्कुटो विट्वराहश्च काकः श्वा च विड़ालकः ।
वृषलीपतिश्च वृषलः षण्डो नारी रजस्वला ॥
एतानि श्राद्धकाले च परिवर्ज्यानि नित्यशः ।
कुक्कुटः पक्षवातेन हन्ति श्राद्धमसम्वृतम्* ॥
घ्राणेन विट्वराहश्च वायसस्तु रुतेन च ।
श्वा तु दृष्टिनिपातेन मार्ज्जारश्चरणेन तु ॥
वृषलीपतिश्च दानेन चक्षुर्भ्यां वृषलस्तथा ।
छायया हन्ति वै षण्डः स्पर्शेन च रजस्वला ॥
खञ्जः काणः कुणिः श्वित्री दासः प्रेष्यकरो भवेत् ।
हीनाङ्गो व्यतिरिक्ताङ्गस्तानपि† तिनयेत्ततः ॥
स्पर्शेन चेति चकारादर्शनेन च पूर्वोक्तमनुवचनात् ।

---

* ख पुस्तके मृतान्तरे ।
† ख पुस्तके अपेदवः ।

ऋष्यशृङ्गः—

मद्यपः स्त्रैरिणी चैव परपूर्व्वापतिस्तथा ।
नैव श्राद्धेऽभिवीक्षेरन्नारम्भात् प्रभृति क्वचित् ॥

देवलः—

हीनाङ्गः पतितः कुष्ठी व्रणी पुक्कसनास्तिकौ* ।
कुक्कुटः शूकरः श्वा च वर्ज्याः श्राद्धेषु दूरतः ॥
वीभत्समशुचिं नग्नं मत्तं धूर्त्तं रजस्वलाम् ।
नीलकाषायवसनं छिन्नकर्णं विवर्ज्जयेत् ॥
शस्त्रं कालायसं शीसं मलिनाम्बरवाससम् ।
षण्डं पर्य्युषितं चापि श्राद्धेषु परिवर्ज्जयेत् ॥

मलिनमम्बरं वासः परिधानं यस्य स तथा ।

विष्णुः—

संवृते च श्राद्धं कुर्य्यात् न रजस्वलां पश्येत् न श्वानं न विड्व-
राहं न ग्रामकुक्कुटं प्रयत्नाच्छ्राद्धमजस्य दर्शयेत् ।

पुनर्विष्णुः—

न हीनाधिकाङ्गाः श्राद्धं पश्येयुर्न शूद्रा न पतिता न महा-
रोगिणः ।

उशनाः—

श्वपाकषण्डपतिताः श्वानः शूकरकुक्कुटाः ।
रजस्वला च चण्डालः श्राद्धे कार्य्यास्त्वदर्शनाः† ॥

---

* ख पुस्तके ह्यवननास्तिकौ ।

† क पुस्तके श्राद्धकार्य्यास्त्वदर्शनाः ।

परिस्तृते प्रदद्यात्तु तिलैर्यावकिरेन्महीम् ।
ग्रसयेदुपविष्टस्तु तं दोषं पंक्तिपावनः ॥

हारीतः—

दैवे वा यदि वा पैत्रे सुरापी यस्तु संस्पृशेत् ।
रजस्वला पुंश्चली वा वृथा गच्छति हि तत् ॥

एभिर्दुष्टवस्तूनां शोधनमाह वायुपुराणे—

हविषां संस्कृतानान्तु पूर्व्वमेव हि मार्ज्जनम् ।
सर्व्वयुक्ताभिरद्भिस्तु प्रोक्षणन्तु विधीयते ॥
सिद्धार्थकैः कृष्णतिलैः कार्य्यञ्चैवावकीरणम् ।
गुरुवत्साग्निसूर्य्याणां दर्शनं वापि कारयेत् ॥

आहारम्भात् पूर्व्वमित्यर्थः । अवकीरणमित्यार्षम् ।
गुरुर्महत्तरः पंक्तिपावन इत्यर्थः, वत्सश्छागः ।

---

## अथ श्राद्धसमयकृत्यम् ।

देवलः—

ततोऽग्रे बहुसंस्कारं नैकव्यञ्जनभोज्यवत् ।
चोष्यपेयसमृद्धञ्च यथाशक्त्युपकल्पयेत् ॥
ततोऽभिवृत्ते मध्याह्ने क्लृप्तकेशनखान् द्विजान् ।
तैलमुद्वर्त्तनञ्चैव स्नानीयञ्च पृथग्विधम् ।
पात्रैरौडुम्बरैर्दद्याद्वैश्वदेवाद्यपूर्व्वकम् ॥

ततः स्नात्वा निवृत्तेभ्यः प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः।

पाद्यमाचमनीयञ्च संप्रयच्छेद्यथाक्रमम् ॥

अनिवृत्ते प्रवृत्ते मध्याह्न एव स्नानविधेरपराह्ने श्राद्धोपक्रमात्। श्रोडुम्बरैस्ताम्रमयैः पात्रैर्यथाक्रमं दैवब्राह्मणपूर्व्वकमित्यर्थः।

यमः—

पादप्रक्षालनं कुर्य्यात् स्वयमेव विनीतवत्।

शङ्खलिखितौ—

प्रयतोऽपराह्ने शुचिः शुक्लवासा दर्भेषु तिष्ठन् स्वागतमिति पृच्छेत्। पाद्यार्घाचमनीयानि च दद्यादित्यर्थः।

प्रयतः पादप्रक्षालनाचमनादिना संयतः पादप्रक्षालनञ्च दक्षिणामुखेन कर्त्तव्यम्।

प्रथमं प्राङ्मुखो भूत्वा पादौ प्रक्षालयेच्छनैः।

उदङ्मुखो वा दैवत्ये पैतृके दक्षिणामुखः ॥

इति देवलवचनात्।

पाद्यार्घाचमनीयानि तूर्णीं ब्राह्मणेभ्य एव दद्यात् अर्घश्च गन्धपुष्पाक्षतरूपं पूजार्हद्रव्यम्।

अत्राधुनिकाः—

पाद्यमित्यभिधानादर्घमपि पादार्घमेवेति व्याख्याय दैवपितृद्देशेनासनादिवदुत्सृज्य गन्धपुष्पाक्षतरूपं पादार्घं ब्राह्मणपादेऽर्पणीयं प्रकरणादिति वदन्ति—तदशुद्धम्।

दैवपित्रायुग्मैकदानप्रकरणगम्यस्याभावात् श्राद्धमहं करिष्ये इत्यनुज्ञाग्रहणानन्तरमेवासनमारभ्य दैवपित्रादिदानप्रकरणात्।

ततः स्नात्वा निवृत्तेभ्य इत्यादि पूर्वोक्तदेवलवचनोक्तपाद्याचमनीयदानवत् ब्राह्मणपूजार्थत्वेन दृष्टार्थत्वाच्च वारद्वयमर्घ्यदानमप्यलेव। अन्यथा तैलोद्वर्त्तनादिदानमपि पित्राद्युद्देशेन स्यादिति।

यदि पूर्वं निमन्त्रणं न कृतमस्ति तदास्मिन्नवसरे गोमयोपलिप्तप्राङ्गणे गोमूत्रकृतमण्डले निमन्त्रणं पूर्ववत् कुर्य्यादिति। अक्रोधनैरिति नियमश्चावश्यं कार्य्यम्।

यमः—

आसनं कुतपं दद्यादितरद्वा पवित्रवत्।

कुतपो नेपालकम्बलः। इतरत् तृणादिकं वाशब्दात् कुतपस्य प्राशस्त्यार्थमुक्तम्।

ब्रह्मपुराणे—

तत्रासनानि देयानि चैलानि च कुशैः सह।

देवलः—

ये चात्र विश्वेदेवार्थे द्विजाः पूर्व्वं निमन्त्रिताः।
प्राङ्मुखान्यासनान्येषां द्विदर्भोपहितानि च॥
दक्षिणामुखमुक्तानि पितॄणामासनानि च।
दक्षिणाग्रैकदर्भाणि प्रोक्षितानि तिलोदकैः॥

प्राङ्मुखत्वं दक्षिणामुखत्वञ्चापक्रमात्।

आसनं कुतपं दद्यादितरं वा पवित्रवत्।
ततः सिद्धमिति प्रोच्य कल्पितेष्वासनेषु तु॥

अत्रासद्ध्वमिति ब्रूयादासनं संस्पृशन्नपि ॥

कल्पितासनस्य ब्राह्मणोपवेशनैकोपयोगकथनाच्च।

तेन कृतपाद्यासनं ब्राह्मणोपवेशनार्थमेव न तु पित्राद्यर्थ-मुत्सृष्टव्यमिति। देवपित्राद्यर्थन्तु कुशत्रयात्मकमासनमुत्सर्जनीयम्।

पाणिप्रक्षालनं *दद्याद्विष्टरार्थं कुशानपि।

आवाहयेदनुज्ञातो विश्वेदेवास इत्यृचा ॥

द्विगुणांस्तु कुशान् दत्त्वा उशन्तस्त्वेत्यृचा पितॄन् ॥

इति याज्ञवल्क्यवचनात्।

तथा चाश्वलायनः—

दर्भान् द्विगुणभुग्नानासनं पितृभ्यः प्रदायमेदितिं†।

विष्णुः—

ब्राह्मणानुपसंगृह्योपवेशयेदासनमालभ्य।

उपसंगृह्य हस्ते धृत्वा आलभ्य स्पृष्ट्वा इत्यर्थः।

यमः—

ततः सिद्धमिति प्रोच्य कल्पितेष्वासनेषु तु।

अत्रासध्वमिति ब्रूयादासनं संस्पृशन्नपि ॥

आसीरन् दक्षिणासंस्था न स्पृशेयुः परस्परम्।

सिद्धमित्यत्रादिसामग्रीसमुदायार्पणयेत्यर्थः।

अत्र पृथक् पृथक् ब्राह्मणोपवेशनादासनमित्येकवचनाच्च एकब्राह्मण एवासध्वमिति बहुवचनं गौरवादिति मन्तव्यम्।

---

* ख पुस्तके दत्त्वा।

† क पुस्तके प्रदायेति।

दक्षिणासंस्था दक्षिणजानव इत्यर्थः।

महाभारते—

दक्षिणाग्रास्तथा दर्भा विष्टरेषु निवेशिताः।
पादयोश्चैव विप्राणां ये त्वन्नमुपभुञ्जते॥

ये विप्रा भुञ्जते तेषां विप्राणां विष्टरेष्वासनोपरि पादयोर्दक्षिणाग्रा दर्भा निवेशिता दत्ता इत्यर्थः। दक्षिणाग्राः पितृपक्ष एव दैवे तु प्रागग्राः।

याज्ञवल्क्यः—

द्वौ दैवे प्राक् त्रयः पित्रे उदगेकैकमेव वा।
मातामहानामप्येवं तन्त्रं वा वैश्वदेविकम्॥
प्राक् प्राङ्मुखा उदक् उदङ्मुखा इत्यर्थः।

हारीतः—

विद्यातपोऽधिकानाञ्च प्रथमासनमिष्यते।

ब्रह्मपुराणे—

पृथक् पृथक् आसनेषु तिलतैलेन दीपकाः।
अच्छिद्रायास्तथा देयास्तै* च रक्ष्यास्तु तैर्द्विजैः॥

आसनेषु आसनसमीपेषु अच्छिद्रायाः आश्रयपर्यन्तस्थायिनः तैः श्राद्धीयद्विजैः। रक्षा उत्तेजनीया इत्यर्थः।

मात्स्ये—

†अमोघाः सदयाः कुर्यात् पितॄणामेतदीप्सितम्।

---

* क पुस्तके—ते च रक्ष्यास्तु वै द्विजाः।

† क पुस्तके—अक्रोधाश्च सदाः।

ब्रह्मोद्या ब्रह्मप्रतिपादिकाः।

वायुपुराणे—

कृष्णाजिनस्य सान्निध्यं दर्शनं दानमेव वा।
रक्षोघ्नं ब्रह्मवर्चस्यं पशून् पुत्रांश्च (दाप)वन्धयेत्॥

विष्णुपुराणे—

यज्ञेश्वरो हव्यसमस्तकव्य-
भोक्ताऽव्ययात्मा हरिरीश्वरोऽत्र।
तत्सन्निधानादपयान्तु सद्यो
रक्षांस्यशेषाण्यसुराश्च सर्वे॥

अतो राक्षसादिनिवारणार्थं श्रालयामशिलादिकं सन्निधी-कृत्य तत्र प्रथमं यज्ञेश्वरमर्चयेत्।

बृहन्नारदीये—

प्रक्षाल्य विप्रपादांश्च स्वाचान्तानुपवेश्य* च।
यथावदर्चयेद्भक्त्या परं नारायणं प्रभुम्॥
ब्राह्मणानां ततो मध्ये द्वारदेशे च सत्तमाः।
अपहता इत्युच्चार्य कर्त्ता तु विकिरेत्तिलान्॥

मार्कण्डेयपुराणे—

रक्षोघ्नांश्च जपेन्मन्त्रांस्तिलैश्चावकिरेन्महीम्।
सिद्धार्थकैश्च रक्षार्थं श्राद्धे हि प्रचुरच्छलम्॥

गारुडे—

प्रारम्भे कर्म्मणां विप्रं पुण्डरीकं स्मरेद्धरिम्।

---

* क पुस्तके स्वाचान्ता.।

पुण्डरीकं पुण्डरीकाक्षमित्यर्थः। स्मरेत् विष्ण्वादिनामत्रय-मुच्चारयेदित्यर्थः।

रक्षणाय तु यद्दत्तमुदकं श्राद्धकर्म्मणि।
तावदश्नन्ति पितरो यावत्तिष्ठति तज्जलम्॥

इति वृद्धमनुवचनानुसारात् ब्राह्मणसमीपे रक्षार्थं जलं स्थापनीयम्।

ब्रह्मपुराणे—

उपवेश्य जपेदेतान् गायत्रीं तदनुज्ञया।
पावमानीमथ ऋग्वेदं पावमानीं तथा॥
मन्त्रं चाप्यथ तस्मादमृतं देवनिर्म्मितम्।

ॐ—

देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च।
नमः स्वधायै स्वाहायै नित्यमेव नमो नमः॥
आद्यावसाने श्राद्धस्य त्रिरावृत्त्या जपेत्सदा।
पिण्डनिर्व्वपणे चैव जपेदेतं समाहितः॥
पठ्यमानमिमं श्रुत्वा श्राद्धकाले उपस्थिते।
पितरः क्षिप्रमायान्ति राक्षसाः प्रद्रवन्ति च॥
उभौ हस्तौ समौ कृत्वा जानुनोरन्तरास्थितौ।
सम्यग्योपविष्टः सन् सर्व्वान् पृच्छेत् द्विजोत्तमान्॥
श्राद्धं करिष्य इत्येवं भक्तिनम्रः समाहितः।
कुरुष्वेति स तैरुक्तो दद्याद्दर्भासनं ततः॥

उपवेश्य ब्राह्मणानिति शेषः। तदनुज्ञया कुरुष्वेति

ब्राह्मणानुप्रेत्यर्थः। अनुज्ञासामर्थ्यात् गायत्रीजपमहं करिष्ये इति प्रश्नवाक्यमाचिप्यते।

गायत्रीं प्रणवमहाव्याहृतित्रयादिकां प्रणवान्तां जपेत्।

योगियाज्ञवल्क्येन—

ॐकारं पूर्वमुच्चार्य्य भूर्भुवःस्वरनन्तरम्।

गायत्री प्रणवश्चान्ते जपे चैवमुदाहृता॥

इति परिभाषितत्वात्।

तथा पापापहं मन्त्रं जपेत्। पावमानीं पावमानीस्त्र्या-तुल्यफलदामित्यर्थः। तं मन्त्रमाह मन्त्रं वक्ष्यामीति।

अत्र ब्राह्मी नित्यमेव भवन्त्वितीति पाठं विलोक्य रुद्रधरो-पाध्यायेन नमो नम इति यजुर्वेदिनां भवन्त्वितीति सामगानां पाठो व्यवस्थापितः।

अन्ये तिच्छाविकल्पमाहुः।

आद्ये गायत्रीजपानन्तरं श्राद्धानुज्ञाग्रहणात् पूर्व्वं तथैव क्रमात्। अनिरुद्धेन तु श्राद्धानुज्ञाग्रहणानन्तरमासनदानात् प्राक् लिखितम्।

अन्ये तु—यजुर्वेदिनामनुज्ञाग्रहणात् प्राक् सामगानान्तु पश्चादिति निर्वासनं व्यवस्थापयन्ति।

अवसाने विसर्ज्जनात् प्राक् इत्यर्थः। विसर्ज्जनात् परमिति मैथिलाः। तत्र श्राद्धस्यावसानावयवतया जपाभ्यनुज्ञानात् विसर्ज्जनेन च श्राद्धसमाप्त्या तदवसानावयवत्वाभावात्। पिण्ड-निर्व्वपणे पिण्डदानाव्यवहितसमये अवनेजनानन्तरमित्यर्थः।

अवनेजनात् प्रागिति तु यौदत्तः ।

[1][मदेत्यनेन स्थानत्रय एव प्रत्येकं त्रिराहत्तिपाठः ।

उभौ हस्तौ समौ कृत्वेति पुटाञ्जलिं कृत्वेत्यर्थः ।

मासपक्षतिथ्याद्युल्लेखेन पार्व्वणश्राद्धमहं करिष्य इत्यनुज्ञाग्रहणं कार्य्यम् । ]

पूर्व्वलिखितगरुड़पुराणादिवचनादुत्तरत्रैव ।

आधुनिकास्तु मासपक्षतिथ्याद्युल्लेखो नियमाप्यक इति विशेषादर्शनादेव वदन्ति ।

हलधरोपाध्यायेनापि सदीयश्राद्धविवेके सङ्कल्पवाक्यतया मासपक्षाद्युल्लेखः स्वीकृत इति ।

वायुपुराणे—

हविषां संस्कृतानाञ्च पूर्व्वमेव हि मार्ज्जनम् ।
मन्त्रसंयुताभिरद्भिस्तु प्रोक्षणन्तु विधीयते ॥

अग्निपुराणे—

सप्त व्याधा दशार्णेषु मृगाः कालञ्जरे गिरौ ।
चक्रवाकाः शरद्वीपे हंसाः सरसि मानसे ॥
तेऽपि जाताः कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणा वेदपारगाः ।
प्रस्थिता दूरमध्वानं यूयं तेभ्योऽवसीदत ॥
श्राद्धादौ पठते श्राद्धं पूर्णं स्याद्ब्रह्मलोकदम् ।

१ ख पुस्तके [ ] चिह्नितांशो नास्ति ।

याज्ञवल्क्यः—

पाणिप्रक्षालनं दत्त्वा विष्टरार्थं कुशानपि।
आवाहयेदनुज्ञातो विश्वेदेवा स इत्यृचा॥

दैवादिक्रमेण प्रत्येकं पाणिप्रक्षालनार्थं ब्राह्मणपाणौ जलं दत्त्वा दैवपित्राद्युद्देशेन कुशानुत्सृज्य तत्पाद्यासनोपरि दद्यात्।

विष्टरार्थमासनार्थमित्यर्थः। कुशमयब्राह्मणे तु जलदानबाधः पाणिप्रक्षालनाभिधानात्। अत्र कुशानिति दैवे ऋजुकुशत्रय-दानमुक्तम्।

द्विगुणांस्तु कुशान् दत्त्वा उशन्तस्त्वेत्यृचा पितॄन्।
इति याज्ञवल्क्यवचनान्तरात्—

भुग्नकुशत्रयदानं पितृपक्षे मन्तव्यम्।

आश्वलायनः—

दर्भान् द्विगुणभुग्नानासनं पितृभ्यः प्रदायेति।*

कार्ष्णाजिनिः—

दर्भांश्चैवासने दद्यात् न तु पाणौ कदाचन।
पितृदेवमनुष्याणामेवं तृप्तिर्हि शाश्वती॥

ब्रह्मपुराणे—

कुरुष्वेति स तैरुक्तो दद्याद्दर्भासनन्ततः।

अत्रासनादिगन्धान्तं दैवे प्रदाय पश्चादासनादि गन्धान्तं पित्र्ये देयमिति याज्ञवल्क्यमार्कण्डेयपुराणोक्तमेकं मतम्।

---

* क पुस्तके प्रदापयेदिति।

आसनादौ एकैकं दैवे दत्त्वा पश्चात् पित्रे देयमिति पारस्कर-मत्स्यपुराणादीनामपरं मतम्।

अथ चेच्छाविकल्पो मन्तव्यः, आवाहयेदनुज्ञात इति अनुज्ञा-सामर्थ्यात् प्रश्नवाक्यमाक्षिप्यते।

तथाच पारस्करः —

आसनेषु दर्भानास्तीर्य्य विश्वान् देवानावाहयिष्ये।

इति पृच्छति आवाहयेत्यनुज्ञातो विश्वे देवा स इत्यनेना-वाह्यावकीर्य्य जपति विश्वे देवाः शृणुतेममिति।

पितॄनावाहयिष्ये इति पृच्छति आवाहय इत्यनुज्ञातोऽपि उशन्त स्त्वेत्यादिनावाह्यावकीर्य्य—

आयान्तु न इति जपित्वा यज्ञियवृक्षचमसेषु पवित्रान्तर्हितेषु एकैकस्मिन्नप आसिञ्चति शन्नो देवीति, एकैकस्मिन् तिलानाव-पति—

तिलोऽसि सोमदेवत्यो गोसवो देवनिर्म्मितः।
प्रत्नमद्भिः पृक्तः स्वधया पितॄन् लोकान् प्रीणाहि नः स्वाहा॥

इति सौवर्णराजतौडुम्बरखड्गमयानां पात्राणामन्यतमेषु यानि वा विद्यन्ते पत्रपुटेषु वा एकैकस्यैकैकेन ददाति।

सपवित्रेषु हस्तेषु—

ॐ या दिव्या आपःपयसा सम्बभूवुर्य्या
आन्तरीक्षा उत पार्थिवीर्य्याः।
हिरण्यवर्णा यज्ञियास्ता न आपः
शिवाः संश्योनाः सुहवा भवन्तु॥

इत्यसावेष ते अर्घ्यं इति प्रथमे पात्रे संस्रवमानीय न्युब्जं पात्रमधो दधाति।

अस्यार्थः— ,

अवकीर्य्यत्र दैवे यवैः पित्रे तिलैरिति च शेषः।

यथा याज्ञवल्काः—

यवैरन्ववकीर्य्याय भाजने सपवित्रके।

शन्नो देव्या पयः क्षिप्त्वा यवोऽसीति यवान् क्षिपेत्॥

यथा गरुड़पुराणे—

आगच्छन्तु महाभागा इत्यादि मन्त्रान्तमावाहनमुक्ता ओं अपहता असुरा रक्षांसि वेदिषद इति सिर्षपान् विकिरे दित्युक्तम्।

एतेन यवोऽसीति मन्त्रेण यवविकिरणमिति श्रीदत्तस्य निष्प्रमाणकलिखनं निरस्तम्।

अस्मादेव वचनादागच्छन्तु महाभागा इति मन्त्रोऽपि देवावाहने पठितव्यः पौराणिकविधेः सर्व्वसाधारणत्वात्।

तथा ब्रह्मपुराणे—

देवानावाहयिष्ये तं प्राहुरावाहयेति च।

द्विजाङ्गुष्ठं गृहीत्वा तु विद्वान् देवान् समाह्वयेत्॥

ततो मन्त्रं जपेन्मौनी विश्वे देवाः स आगत।

द्वितीयञ्च जपेन्मन्त्रं विश्वेदेवाः शृणुते च॥

तृतीयञ्च जपेन्मन्त्रं पौराणं पुष्टिवर्द्धनम्।

आगच्छन्तु महाभागा विश्वेदेवा महाबलाः॥

ये यत्र विहिताः श्राद्धे सावधाना भवन्तु ते।
पितॄनावाहयिष्ये च शेषान् विप्रान् वदेत्ततः॥
आवाहयेति चोक्तास्तैः सावधाना भवन्त्विति।
उशन्तस्त्वेति च जपम् पितॄनावाहयेत्ततः॥
ततस्तिलान् स्वहस्ते तस्मिन् विकिरेच्च प्रदक्षिणम्।
श्रद्धया परया युक्तो जपन्नपहता इति॥

अत्र द्विजाङ्गुष्ठग्रहणं दैव एव तत्रैव विशेषविधानात् कुश ग्राह्यत्वे तु नहाय.।

अत्र पित्रादीनां मातामहादीनाञ्च तन्त्रेणैव सकृदावाहनं न तु पृथक्।

पितॄनावाहयिष्ये। आयान्तु नः पितर इत्यादौ पितृपदस्य

षड्भ्यः पितृभ्यस्तदनु श्राद्धदानमुपक्रमेत्।

इत्यादिवत् पार्व्वणभोक्तृत्वोपाधिना षट्सु पुरुषेषु शक्तत्वात् न तु जनकत्वोपाधिना बहुवचनात्। अन्यथा पितामहप्रपितामहयोरपि पृथगावाहनप्रसङ्गः।

एवञ्च सति बाधके लाघवमूलस्य तन्त्रतान्यायस्य सर्व्वत्र जागरूकत्वात् गायत्रीजप देवताभ्य इति मन्त्रपाठः, अपहता इति तिलविकिरणम् पितृभ्यः स्थानमसीति न्युब्जीकरणाग्नौकरण पिण्डसंहितादिजपाक्षय्यविकरण-ऋतुनमस्काराशीर्ग्रहणादीनां तन्त्रेणैवानुष्ठानमिति।

सामगानामावाहनमाह गोभिलीयः—

आसनेषु कुशानास्तीर्य्य विश्वान् देवान् आवाहयिष्य इति
पृच्छेत्, आवाहयेत्यनुज्ञातः—

ओं विश्वेदेवास आगत शृणुताम
इमं हवं एदं बर्हिर्निषीदत ।
ओं विश्वेदेवाः शृणुतेमं हवं
ये मे अन्तरीक्षे य उपद्यविष्ट ।
ये अग्निजिह्वा उतवा यजत्रा
आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वम् ॥
ओं ओषधयः समवदन्त सोमेन सह राज्ञा*
यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तं पारयामसीति ।

अथ पितॄनावाहयिष्य इति पृच्छति आवाहयेत्यनुज्ञातः ।

ओं एत पितरः सोम्यासो
गम्भीरेभिः पथिभिः पूर्व्विणेभिः ।
दत्तास्मभ्यं द्रविणेह भद्रं
रयिञ्च नः सर्व्ववीरं नियच्छत ॥
उशन्तस्त्वा निधीमह्युशन्तः समिधीमहि ।
उशन्नुशत आवह पितॄन् हविषे अत्तवे ॥
आयान्तु नः पितरः सोम्यासो
अग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः ।
अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तो
ऽधिब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥ इति ।

---

* च इत्यत्र राजन् ।

ततोऽपहता असुरा रक्षांसि वेदिषदः ।

इति तिलान् विकिरेत् ।

ब्रह्मापि—

दिशाङ्कुशं गृहीत्वा तु विश्वान् देवान् समाह्वयेत् ।

इति ब्रह्मपुराणवचनात् देवावाहनं दिशाङ्कुशग्रहणपूर्व्वकं कार्य्यम् ।

अत्र याज्ञवल्क्यादिषु यवविकरणविधानात्

दैवे यवविकरणं कार्य्यम् ।

यथा याज्ञवल्क्यः—

यवैरन्ववकीर्य्याथेति ।

मत्स्यपुराणे—

विश्वेदेवा स इत्यृग्भ्यामावाह्य* विकिरेद्यवान् ।

ब्राह्मे—

आहूय मन्त्रतस्तेषु वेदोक्तविधिना हविः ।

प्रक्षतैर्देवतारक्षां चक्रे चक्रगदाधरः ॥

१ न कुतश्चित् क्षता यस्मात्तस्मात्ते ह्यक्षताः स्मृताः ।

देवानां ते हि रक्षार्थं निर्म्मिता विष्णुना पुरा ॥

अत्र केचित्—

पारस्करदर्शनात् विश्वे देवा स आगतेति मन्त्रेणावाह्य यवान् विकीर्य्य विश्वे देवाः शृणुतेममित्यादि मन्त्रद्वयं जपनीयमिति वदन्ति । तन्मन्दम्—

---

* क पुस्तके ऋचा आवाह्य ।

गोभिलेन देवावाहन एव मन्त्रद्वयस्य विनियुक्तत्वात् तदनन्तरमेव यवविकरणस्योचितत्वात् तत्रैव त्रिभिर्मन्त्रैः पित्रावाहनमुक्त्वा यथास्तिलविकरणविधानाच्च ।

[ गरुड़पुराणेऽपि—

ओं विश्वे देवास आगतेति ।

ओं विश्वेदेवाः शृणुतेममिति ।

ओं ओषधयः सममदन्त इति ।

ओं आगच्छन्तु महाभागा इत्यावाह्य—

ओं अपहता असुरा रक्षांसि वेदिषद इति

तिलान् विकिरेदित्युक्तत्वाच्च । ]

यत्तु—

श्रीदत्तेन पित्रावाहने आदौ उशन्तस्त्वेति विलिख्य एत पितर इति मन्त्रः पश्चाल्लिखितः तद्गोभिलसूत्रक्रमानवधानादेवेति ।

अयञ्च विशेषो गोभिलोक्तत्वात् सामगानामेव नतु वाजसनेयिनामपीति । देवावाहने ओषधयः सममदन्त इति पित्रावाहने च एत पितर इति चाधिकमन्त्रद्वयं पठितव्यम् ।

बहुत्वं वा यथाप्रोक्तं यस्य यावत् प्रकीर्त्तितम् ।
तस्य तावति आख्याते तत्र मन्त्रः तत्रो भवेत् ॥

इति गृह्यपरिशिष्टवचनात् ।

न च—

यदाम्नातं स्वशाखायां परोक्तमविरोधि च ।
विद्वद्भिस्तदनुष्ठेयमग्निहोत्रादिकर्मवत् ॥

इति छन्दोगपरिशिष्टविरोध इति वाच्यम् ।

अविरोधि चेति चकारेणाकाङ्क्षितस्यैव परोक्तस्य* ग्रहणा- दन्यथातिप्रसङ्गात् ।

यथा अग्निहोत्रं जुहोतीत्यनेनाविशेषात् सर्व्वशाखिनामधि- कारे बोधिते इतिकर्त्तव्यतापेक्षया यजुर्वेदिकाग्निहोत्रविधेः सर्व्व- शाखिसम्बन्धः ।

अतएव गोतमादिभिर्गर्भाधानादि चत्वारिंशत् संस्काराणां सर्व्वशाखिसाधारणतया प्रतिपादनात् गोभिलानुक्तमप्यन्नप्राशनं पारस्करोक्तं सामगैः कर्त्तव्यमेव अनाकाङ्क्षितन्तु वर्ज्जयेदेव यथा गोभिलोक्तं पिण्डपित्रावाहनं यजुर्वेदिना नास्ति प्रकृते तु पारस्करगृह्ये आवाहनमन्त्रविशेषोपादाने मन्त्रान्तरस्य निरा- काङ्क्षत्व एवञ्च गृह्यपरिशिष्टवचनमप्यनाकाङ्क्षितस्य परशाखोक्तस्य निषेधपरम् ।

तर्हि कथं आगच्छन्तु महाभागा इति गरुड़पुराणोक्तस्य देवताभ्यः पितृभ्य इत्यादीनां चानाकाङ्क्षितानां पुराणोक्तानां ग्रहणं । सत्यम्—

* ख—पूर्व्वोक्तस्य ।

उत्पत्तिं नाम चैतेषां न विदुर्ये द्विजातयः।
अयमुच्चारणीयस्तैः श्लोकः श्रद्धासमन्वितैः॥

इति बृहस्पतिना सर्व्वशाखिगोचरतया विधानात्।

किञ्च—

स्वशाखाश्रयमुत्सृज्य परशाखाश्रयन्तु यः।
कर्त्तुमिच्छति दुर्मेधा मोघं तस्य विचेष्टितम्॥

इति छन्दोगपरिशिष्टे स्वशाखोक्तधर्मत्यागेन पारशाखिक-धर्म्मानुष्ठानं निषिध्यते।

यथा नमो वः पितर इत्यनेनाञ्जलिकरणं गोभिलोक्तं विहाय नमो वः पितरः शुष्मायेति षडञ्जलिकरणं कात्यायनोक्तं साम-गानामिति।

पुराणोक्तस्य तु सर्व्वशाखिगोचरतया विधानात् सामान्य-धर्म्मस्य न परशाखाश्रयत्वं यथा श्राद्धारम्भे गायत्रीजपादीना-मिति।

तदयं सङ्कलितार्थः—

आकाङ्क्षितं परशाखोक्तमपि कर्त्तव्यं अनाकाङ्क्षितन्तु न कर्त्तव्यमेव पुराणोक्तन्तु आकाङ्क्षितमनाकाङ्क्षितं वा सामान्य-धर्म्मत्वात् सर्व्वैरेवानुष्ठेयम्। तत्रापि स्वशाखोक्ताविरोधिना कार्य्यमिति।

अथार्घ्यमाह पारस्करः—

यज्ञियवृक्षचमसेष्विति।

यज्ञियवृक्षाः पलाशाश्वत्थोडुम्बरादयः।

तत्काष्ठनिर्म्मितेषु चमसेषु तोयाधारपात्रेष्वित्यर्थः ।
अलाभे तु स्वर्णादिपात्रेषु अभावे पत्रपुटेष्वित्यर्थः ॥

मत्स्यपुराणे —

सौवर्णं राजतं ताम्रं पितॄणां पात्रमुच्यते ।
राजतस्य कथा वापि दर्शनं दानमेव च ॥
राजतैर्भाजनैरेषामपि वा रजतान्वितैः ।
वार्य्यपि श्रद्धया दत्तमानन्त्यायोपकल्पते ॥
तथार्घ्यभोज्यपिण्डादौ पितॄणां राजतं स्मृतम् ।
शिवनेत्रोद्भवं यस्मात्तस्मात्तत्पितृवल्लभम् ॥
अमङ्गलं तद्यत्नेषु देवकार्य्येषु वर्ज्जितम् ।
पात्रं वनस्पतिमयं तथा पर्णमयं पुनः ॥
जलजं वापि कुर्व्वीत शङ्खशुक्त्यादिसम्भवम् ।

ब्रह्मपुराणे—

भक्तभाण्डानि वर्ज्ज्यानि पितृदैवतकर्म्मणि ।
सुवर्णरूप्यताम्राश्मशङ्खस्फटिकशुक्तयः ॥
भिन्नान्यपि हि योज्यानि पितृदैवतकर्म्मसु ।
पृथिवी पितृभिर्दुग्धा पात्रे रूप्यमयैः पुरा ॥
स्वधामृतन्तु तत्तस्मात्तेभ्यः प्रियतरं सदा ।
रूप्यपात्रेण चार्घ्यादि सूत्रेणापि हि कारयेत् ॥
दत्त्वा हेममये पात्रे रूपवान् स्यादमत्सरः ।
दत्त्वा रत्नमये पात्रे सर्व्वरत्नाधिपो भवेत् ॥

पालाशे ब्रह्मवर्चस्वी आश्वत्थे वह्यमाप्नुयात् ।
पात्रे चौडुम्बरे दत्वा सर्व्वभूताधिपो भवेत् ॥
दत्वा न्यग्रोधपात्रे च प्रजां पुष्टिं श्रियं लभेत्† ।
रक्षोघ्नकाश्मरीपात्रे दत्वा पुण्यं लभेद्यशः* ॥
श्वेतार्कमन्दारमये दत्वा च मतिमान् भवेत् ।
बिल्वपात्रे धनं वृद्धिं दीर्घायुष्यमवाप्नुयात्* ॥
अथ पद्मपुटे दत्वा मुनीनां वल्लभो भवेत् ।

वह्यं याज्ञत्वं काश्मरी गम्भारी। एतान्यर्घ्यपात्राणि सजातीयानि कार्य्याणि न विजातीयानि।

तैजसाश्ममयमृन्मयेष्वेकद्रव्येष्विति आश्वलायनवचनात्।

अत्र केचित्—

विश्वान् देवान् यवैः पुष्पैरभ्यर्च्यासनपूर्व्वकम् ।
पूरयेत् पात्रयुग्मन्तु स्थाप्य दर्भपवित्रके ॥

इति मत्स्यपुराणवचनदर्शनादर्घ्यद्वयं दैवे निवेद्यमिति‡।

तदयुक्तम्—

यवाम्बुना तु देवानां दद्यादर्घ्यं विधानवत् ।

इति विष्णुपुराणवचनात्—

यवैरन्ववकीर्य्याथ भाजने सपवित्रके ।

---

* ख पुस्तके—लभेत च ।
† पुस्तके—दीर्घायुर्लभते धनं वरः ।
‡ पुस्तके—दैवे निवेद्यम् ।

इति याज्ञवल्क्यवचनाच्च एकत्वावगमात्।

सति बाधके श्रुतहान्यश्रुतकल्पनाभयेन वैभक्तिकसंख्याया-स्त्यक्तत्वात्तदनुरोधान्मत्स्यपुराणोक्तमर्घ्यद्वयं पितृमातामहदैवद्वयस्य तन्त्रताभावपक्षे वर्णनीयम्।

अतएव मत्स्यपुराणे स्थाप्य दर्भपवित्रके इत्यनन्तरम्—

यवो देवीत्यपः क्षिप्त्वा यवोऽसीति यवान् क्षिपेत्।

गन्धपुष्पैरलङ्कृत्य या दिव्येत्यर्घ्यमुत्सृजेत् ॥

अर्घ्यञ्च ताभ्यामुत्सृज्य पितृकार्यं समारभेत् ॥

इत्यनेन ताभ्यां दैवद्वयब्राह्मणाभ्यामित्युक्तम्।

केचित्तु—

ब्राह्मणद्वयपक्षे अर्घ्यद्वयमतएव नान्दीमुखेऽप्यर्घ्यद्वयमिति वदन्ति।

पवित्रान्तर्हितेष्विति—

पवित्रमुक्तं छन्दोगपरिशिष्टे—

अनन्तर्गर्भिणं साग्रं कौशं द्विदलमेव च।

प्रादेशमात्रं विज्ञेयं पवित्रं यत्र कुत्रचित् ॥

अत्र कुशपदं विहितत्वोपलक्षणम्।

तेन काशादिपवित्रेऽपि "पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ" इति मन्त्रस्य न बाधः समवेतार्थत्वात्।

एवञ्च—दक्षिणः सपवित्रक इत्यनेन काशादिपवित्रधारण-मपि सङ्गच्छते।

अत्र मैथिलाः—

होमे समन्त्रक*च्छेदनमार्ज्जनयोर्विधानात् श्राद्धे च तदप्राप्तेस्तूष्णीं पवित्रस्थापनं कार्य्यमित्याहुः । तन्मन्दम्—

प्रादेशमात्रकरणे कथमिति प्रकाराकाङ्क्षायां गोभिलहोमप्रकरणोपात्तप्रकार एव ग्रहीतव्यः, अन्यथा आकाङ्क्षायास्ताद-†स्थ्यात् ।

यथा गोभिलः—

बर्हिषा प्रादेशमात्रे पवित्रे कुरुते ओषधिमन्तर्धाय छिनत्ति न नखेन "पवित्रे स्थो वैष्णव्याविति, अथैतदद्भिरनुमार्ष्टि विष्णोर्मनसा पूते स्थ इति ।

किञ्च—पार्व्वणश्राद्धे गरुड़पुराणे व्यक्तमेवोक्तं यथा—

साग्रकुशपत्रद्वयं प्रादेशप्रमाणं कृत्वा ॐ पवित्रे स्थो वैष्णव्यावित्यनेन कुशान्तरेण छित्वा ॐ विष्णोर्मनसा पूते स्थ इत्यभ्युक्ष्य कुशान्तरेण त्रिवृतं बद्ध्वा पात्रे पवित्रनिवेशनम् ।

ॐ शन्नो देवीरभीष्टये आपो भवन्तु पीतये ।

शंयोरभिस्रवन्तु नः ।

पात्रे जलदानम् ।

ॐ यवोऽसि यवयास्मद्द्वेषो यवयारातीः ।

यवदानम् ।

गन्धपुष्पदानं पात्रस्य पुष्पेण पूजनं पितृपक्षे जलदानं

---

* ख ग पुस्तके समन्त्रक ।

† ख पुस्तके तादवस्थ्यात् ।

हस्ताभ्यां पात्रमुत्थाप्य ॐ या दिव्या आप इति पठित्वा उत्सृज्य दद्यादिति।

अस्मादेव वचनात् पवित्रस्य कुशान्तरेण द्विरावृत्त्या बन्धनं कार्य्यम्।

देवपात्रे उत्तराग्रं पैत्रपात्रे दक्षिणाग्रं छलं पवित्रं निवेशनीयम्।

आपो भवन्तु पीतये इति यजुर्वेदिनां। सामगानान्तु शन्नो भवन्तु पीतये इति पाठोऽवगन्तव्यः।

अत्र विशेषदर्शनात् यवयासीतिरित्यनेनैव मन्त्रेण यवदानं श्रीदत्तादिसंग्रहेष्वप्येवं लिखितम्।

दिवे लेत्यादिमन्त्रशेषपाठस्तु विशेषादर्शनक्लतोऽनिबद्धभट्टलिखितो हेय एवेति।

अर्घ्यपात्रस्य पुष्पेण पूजनं ब्राह्मणस्येति शेषः।

ब्रह्मपुराणे—

ततो यवित्रयद्वीत्यपात्रेषु च कुशेषु च।
गृहीलाथः पवित्राय शन्नो देवीर्जपन् क्षिपेत्॥
विकिरेत्तेषु च तिलान् तिलोऽसीति जपन् क्रमात्॥
अर्घ्याः पुष्पैश्च गन्धैश्च ताः प्रपद्याय शास्त्रवद्*।
ततो वामेन हस्तेन गृहीला च पृथक् पृथक्†॥

* - ख पुस्तके शास्त्रवित्।
† ख पुस्तके चषयान् पृथक्।

पितृतीर्थेन तत्तोयं दक्षिणेन च पाणिना।
दत्तदर्भोदके हस्ते विप्राणाञ्च पृथक् पृथक्॥
दद्यान्मन्त्रं जपंश्चापि या दिव्या आप इत्यपि।
असुकासुकगोत्रेतत् तुभ्यञ्चापि तिलोदकम्॥
कुशेषु कुशोपरिन्यस्तेषु यज्ञियवृक्षपात्रेष्वित्यर्थः।
पात्रत्रयन्यासमपीपर्य्युपरिक्रमेण कार्य्यः।
तस्मात् श्राद्धेषु सर्व्वेषु वृद्धिमत्स्वितरेषु च।
मूलमध्याग्रदेशेषु ईषत्सक्तांश्च निर्व्वपेत्॥

इति छन्दोगपरिशिष्टे पिण्डानामुपर्य्युपरिक्रमेण दानविधानादर्घ्यस्थापनस्यापि तथैव न्याय्यत्वात्।

अत्र तिलोऽसीति जपत् क्रमादित्यभिधानादेकैकस्मिन्नप आसिञ्चति शन्नोदेवीति पारस्करोक्तेश्च तिलोऽसीत्यस्य शन्नोदेवीरित्यस्य च प्रत्यर्घ्यपात्रमावृत्तिः।

या दिव्या इति मन्त्रं जपन् पृथक् पृथक् दद्यात् इत्यभिधानादर्घ्यदानाऽऽवृत्त्या मन्त्रस्याप्यावृत्तिः।

तथा च पारस्करः—

एकैकस्यैकैकेन ददाति या दिव्या आप इत्यथावैव तेऽर्घ्य इति।

ताः प्रयताय शाखवदिच्छत्वेन दर्भान्तरेणार्घ्यपात्रादादानमच्छिद्रोऽयमर्घ्योऽस्त्वित्यभिलापमात्र दर्भोदकमेव कर्त्तव्यमित्युप-

* ख पुस्तके डार्मारिद्।

दिश्यते। सपिण्डीकरणप्रकरणे कुशान्तरेणार्घपात्रं पिधाया-
छिद्रावधारणान्तं समाप्य तथैव पितुरपि समाप्य पितादीनां
दर्भोद्घाटनम्। ता आप द्रव्यैः पससानर्घ्यपात्राणीत्यर्थः।
दत्तदर्भोदक इति अत्र दर्भपदं अर्घ्यपात्रस्थपवित्रपरं सपवित्रेषु
हस्तेष्विति पारस्करोक्तेः।

अत्र पवित्रदाने पवित्रसहितपुष्पादिकमपि हस्ते देयं तुल्य-
न्यायात् पूर्व्वोक्तगरुड़पुराणाच।

उदकान्तरन्तु पृथगेव हस्ते देयम्।

अमुकामुकगोत्रैतत्तुभ्यस्त्वापि तिलोदकम्।

इत्यनेन तिलोदकदानस्य वक्ष्यमाणत्वात्।

तूर्णीं पृथगपो दत्वा मन्त्रेण तु तिलोदकम्।
गन्धोदकञ्च दातव्यं सन्निकर्षक्रमेण च॥

*[इति छन्दोगपरिशिष्टवचनाच। अत्र दैवे प्रागग्रं पैत्रे
दक्षिणाग्रं कृत्वा ब्राह्मणहस्ते पवित्रं देयम्।

ज्येष्ठोत्तरकरान् युग्मान् कराग्राग्रपवित्रकान्।
कृत्वार्घ्यं सम्प्रदातव्यं नैकैकस्यात्र दीयते॥]

इति छन्दोगपरिशिष्टे कराग्रे पवित्रापविधानात्।

न च नान्दीमुख एव तदिति वाच्यम्।

नैकैकस्यात्र दीयत इत्युपसंहारात् नान्दीमुखे ज्येष्ठोत्तर-
करत्वमेव पार्व्वणात् विशेषो न तु कराग्राग्रपवित्रदानम्।

---

* ख पुस्तके [ ] चिह्नितांशो नास्ति।

अन्यत्राप्येष एव स्यादवादिरहितो विधिः।

इति तदीयवचनान्तरात् पार्श्वेऽपि प्राप्तत्वात्।

यच्च सपविचेषु हस्तेष्वित्यभिधाय—

अप्सवेव तेऽर्घं इति पारस्करे जलपरत्वाप्राप्तेः ब्रह्मपुराणे दत्तदर्भादिके हस्ते इत्युक्ता दद्यात्तिलोदकमित्यन्तेऽभिधानाच्च।

सपिण्डीकरणार्घ्यमिश्रणे—

प्रेतविप्रस्य तु हस्ते तु चतुर्भागं जलं क्षिपेत्।

इति ब्रह्मपुराणाच्च।

अष्टाङ्गार्घ्यादौ गन्धपुष्पादीनां क्वचित् कस्यचिद्व्यभिचारात् तत्रत्यस्य तु सर्वत्रैवान्वयाद्दर्भाद्यद्रव्यसहितस्य जलस्यैवार्घ्यशब्दार्थत्वेन प्राधान्यदर्शनस्पुष्पपवित्रसहितस्यैव जलस्योत्सर्गः।

यथाष्टाङ्गार्घ्याधिकारे ब्रह्मपुराणे—

जलं क्षीरं दधि घृतं तिलतण्डुलसर्षपान्।

कुशाग्राणि च पुष्पाणि दत्त्वाचामेत्ततः स्वयम्॥

भविष्ये—

आपः क्षीरं कुशाग्राणि दध्याज्यमधुतण्डुलाः।

तिलाश्च सर्षपाश्चैव अष्टाङ्गोऽर्घ्यः प्रकीर्त्तितः॥

एतेन एष ते सतिलोदकोऽर्घ्यः स्वधेति कस्यचिदभिलापोऽपास्त एव अर्घ्यपदवाच्यस्योदकस्योदकसाहित्येनान्वयात्।

वस्तुतस्तु—

उदकपूर्व्वं तिलोदकं ददाति पितुर्नाम गृहीत्वा असावेतत्ते तिलोदकं ये चात्र त्वेत्यादि गोभिलवचनात् गोभिलीयेनापि

असावेतत्तेऽर्घ्यमित्युक्त्वाश्रोभयदर्शनात् सामगानामेतत्ते तिलो-दकमर्घमित्यभेदनिर्देशेन प्रयोगः।

यजुर्वेदिनान्तु असावेष तेऽर्घ्य इति पारस्करगृह्ये याज्ञवल्क्ये चार्घ्यपदमात्रश्रुतेरेष तेऽर्घ्यः स्वधेत्येव प्रयोगो मन्तव्यः।

केचित्तु—

या दिव्या आप इति मन्त्रेण हस्तेष्वर्घ्यं विनिक्षिपेत्।

इति याज्ञवल्क्यवचनात् प्रथममभिलापं कृत्वा या दिव्ये-त्यादि मन्त्रपाठानन्तरं ब्राह्मणहस्ते अर्घ्यजलमेव दद्यादाहुः।

तदसत्—पारस्करब्रह्मपुराणवचनविरोधादिविनिक्षिपेदित्यस्य उत्सृज्य दद्यादित्यर्थात्।

तथा च गोभिलीयः—

यज्ञियवृक्षचमसेषु पवित्रान्तर्हितेषु एकैकस्मिन्नप आसि-ञ्चति शन्नो देवीति, एकैकस्मिन् तिलानावपति तिलोऽसीति। सौवर्णराजतौडुम्बरखड्गमणिमयानां पात्राणामन्यतमेषु पत्रपुटेषु वा एकैकस्यैकैकेन ददाति सपवित्रेषु हस्तेषु ॐ या दिव्या आप इत्यसावेतत्तेऽर्घ्यमिति।

अत एकैकस्मिन् तिलानावपति तिलोऽसीति प्रत्येकं मन्त्र-विनियोगात् तिलोऽसीति मन्त्रे पितॄन् लोकान् इति बहुवचनस्या-समवेतार्थतया अदृष्टार्थत्वात् विकृतावेकोद्दिष्टे पितॄन् लोकानिति बहुवचनमेव प्रयोक्तव्यं नत्वेकवचनोह इति।

अथ उपस्पृश्य एवमेवेतरयोरित्यष्टकायां पारस्करगोभिलीयौ

आवाहनमन्त्रवदिति। एतेन मातामहादीनां पृथक् न्युब्जीकरण-पक्षो निरस्तः।

अत्र केचित्—

न्युब्जपात्रं निदधातीति विशेषाश्रवणात् केवलस्यैव पितृ-पात्रस्य न्युब्जीकरणमाहुः।

तन्न—

दत्वार्घ्यं संस्रवांस्तेषां पात्रे कृत्वा विधानतः।

पितृभ्यः स्थानमसीति न्युब्जं पात्रं करोत्यधः॥

इति याज्ञवल्क्यवचनादधःस्थितं पितृपात्रं न्युब्जं करोतीत्य-न्वयादधःपदेनोद्देशितं पिधानपात्रमाक्षिप्यते, अन्यथाऽधःपद-वैयर्थ्यात्।

नचाधो भूमाविति मैथिलव्याख्यानं युक्तं सकलकर्माधार-तया वेद्याः प्राप्तत्वेन वैयर्थ्यतादवस्थ्यात्।

ततश्च केन पिधानमित्याकाङ्क्षायां प्रपितामहपात्रेण पिधाय प्रतिष्ठापयतीति शौनकसूत्रात् प्रपितामहपात्रेण पिहितस्यैव पितृपात्रस्य न्युब्जीकरणमिति।

एवञ्च संस्रवजले पितॄणामवस्थितत्वेन संस्रवग्रहणस्य दृष्टार्थता भवति। अन्यथा अदृष्टार्थकल्पनागौरवप्रसङ्गः।

यत्तु—

पैतृकं प्रथमं पात्रं तत्र पैतामहं न्यसेत्।

प्रपितामहं ततो न्यस्य नोद्धरेन्न च चालयेत्॥

इति यमवचनं तत् शाखान्तरीयमिति केचित्।

वस्तुतस्तु याज्ञवल्क्यवचन—शौनकसूत्रयोर्विरोधात् पैतामह-प्रपैतामहपदं संस्रवपरम्।

न च स्ववाक्ये पात्रपदश्रवणात्*तस्यैवान्वयो युक्त इति वाच्यम्।

तत्र पैतामहं त्यजेदित्यत्र तत्रपदेनोक्तस्य पात्रस्य त्याताधि-करणतयोक्तेस्तल्लब्धाकाङ्क्षायां प्रथमे पात्रे संस्रवान् समवनीयेति पारस्करवचनैकवाक्यतया पैतामहपदे संस्रवपरत्वस्यैव युक्तत्वा-दन्यथाश्रुतिद्वयकल्पनापत्तेः।

मत्स्यपुराणे—

वस्त्रोत्तरं गन्धपूर्वं दद्यात् संस्रवमादितः।
पितृपात्रे निधायाथ न्युब्जमुत्तरतो न्यसेत्॥

गन्धपूर्वकं गन्धादिपञ्चकं वस्त्रान्तमित्यर्थः। आदितो गन्धादिदानस्यादौ संस्रवं पितृपात्रे निधायेत्यन्वयः। अयमेव पाठो मत्स्यपुराणे दृश्यते। अपिपासेनाप्येवं लिखितम्।

श्रीदत्तादयस्तु—संस्रवणादि चेति पठित्वा आदिपदेनार्घ-पात्रावशिष्टानां तिलपुष्पपवित्राणां ग्रहणमिति व्याख्याय पवित्राणि पितृपात्रे स्थापयित्वा न्युब्जं कार्यमित्याहुः।

तन्मन्दं—संस्रवणादीति पाठे गन्धादिदानात् परं न्युब्जी-करणं पारस्कर-गोभिलीय-याज्ञवल्क्यादिविरुद्धं सर्वदेशीयाचार-विरुद्धञ्च स्यात्।

भवतु वा स पाठस्तथापि पर्यायेण प्रतिपत्त्याकाङ्क्षायां संस्रववत्

---

* ख—संस्रवपात्रश्रवणात्।

पात्रलग्नावशिष्टानां गन्धपुष्पतिलानामेवादिशब्देन ग्रहणं न ॥
पवित्रस्य, ब्रह्मपुराणे दत्तदर्भो *[ दर्भं हस्ते दद्यनेन
। सपवित्रेषु हस्तेष्विति पारस्करादिवचनेन च पवित्रस्य
ब्राह्मणहस्ते विनियुक्तत्वेन विशिष्टत्वाभावादिति कथं घटते
किन्तु ब्राह्मणहस्तस्थपवित्राणि स्वधावाचनार्थं यथाक्रमं पृथगेव
स्थापनीयानीति।

उत्तरे न्यसेदिति उत्तरस्यां दिशि चेति कल्पतरुः । ]

उत्तरे चास्य सौवर्णं लक्ष्म पार्श्वे भविष्यति।

महाभारते उत्तरशब्दस्य वामार्थत्वदर्शनात् ब्राह्मणानां वाम-
पार्श्वे इति हलायुधश्रीदत्तश्राद्धप्रदीपकाराः।

† [ उत्तरे न्यसेदित्याख्यातात् कर्त्तुः सन्निहितत्वेन तस्यैव
वामपार्श्वे सकरस्याद्वीयब्राह्मणदक्षिणे इति श्रीमूलपाणिः॥
धनिरुद्धपारिजातयोरपि मतमेतत् । ]

वस्तुतस्तु वचनाध्यायस्य उत्तरतो दुर्बलत्वात् हलायुधादि-
मतमेव समीचीनम्।

यथा गरुड़पुराणम्—

ससंस्रवं पात्रं गृहीत्वा ब्राह्मणवामपार्श्वे दक्षिणाग्रकुशो-
परि पितृभ्यः स्थानमसीत्यधोमुखपात्रस्थापनमिति।

अतएव गरुड़पुराणाद्दक्षिणाग्रकुशोपरि न्युब्जीकरणं कार्य्यम्।
अस्य चालनोद्घाटनादिकं न कार्य्यम्।

---

† क पुस्तके [ ] चिह्नितांशः पतितः।
* ख पुस्तके [ ] चिह्नितांशो नास्ति।

यथा यमः—

सृष्टमुद्धृतमन्यत्र नीतमुद्घाटितन्तथा।
पात्रं दृष्ट्वा व्रजन्त्याशु पितरस्तं शपन्ति च ॥

---

## अथ गन्धादिदानम्।

पारस्करगोभिलीयौ—

गन्धपुष्पधूपदीपाच्छादनानां प्रदानमिति।

अत्र द्वन्द्वसमासात्साहित्यावगते गन्धादीनां पञ्चानां साहित्ये-नैवोत्सर्गः।

किञ्च प्रदानमित्यनेन दानप्रकर्षः सूच्यते सचेन्द्रदैवतदधि-पयसोर्दानवत्तत्सत्ताध्यायलभ्यं साहित्येन दानम्। एतेन प्रत्येक-दानवादिनो निरस्ताः।

एवञ्च कदाचित् कस्याप्यभावे यावन्ति विद्यन्ते तावतामेव साहित्येन दानमिति ध्येयम्।

यत्तु—

एष वो गन्ध इत्युक्त्वा गन्धान् दद्याद्यथाविधि।
इदं वः पुष्पमित्युक्त्वा पुष्पाणि विनिवेदयेत् ॥
इदं वो माल्यमित्युक्त्वा दद्यान्माल्यं सुशोभनम्।
अयं वो धूप इत्युक्त्वा तदग्रतो दहेत्ततः ॥

अयं यो दीप इत्युक्ता दीपं द्वयं निवेदयेत्।

एतद्वो वास इत्युक्ता दद्याद्वासोऽहतं तथा॥

इति ब्रह्मपुराणम्। तदुक्तानां गन्धादीनां समर्पणपरम्।

गन्धान् ब्राह्मणसात् कृत्वा पुष्पाण्यृतुभवान्यपि।

इत्यादि छन्दोगपरिशिष्टसमानार्थम्।

अतएव समर्पणे प्रत्येकनिवेदनात् पुष्पमाल्ययोः पृथगुपादानम्।

अत्र च इति बहुवचनमनेकब्राह्मणापेक्षया ज्ञेयम्। श्राद्धीयब्राह्मणेन गन्धानुलेपनादि स्वयं कार्य्यम्।

यथा मनुः—

उपवीती ततः कुर्य्यात् विप्रः श्राद्धेऽनुलेपनम्।

नियुक्तश्च शिखावर्ज्जं माल्यं शिरसि धारयेत्॥

वराहपुराणे—

उपवीतं कटौ कृत्वा कुर्य्यान्मृदालेपनम्।

एकवासा यदश्नीयात् निराशाः पितरो गताः॥

वायुपुराणे—

यज्ञोपवीतं यो दद्यादधृतं श्राद्धकर्म्मणि।

स तत् फलमवाप्नोति ब्रह्मदानस्य यत् फलम्॥

लोके श्रेष्ठतमं यच्चाप्यात्मनश्चापि यत् प्रियम्।

सर्व्वं पितॄणां दातव्यं तदेवाक्षयमिच्छता॥

एतच्च यज्ञोपवीतादिदानमावश्यकं पारस्करादिदृष्टीकृतत्वात् फलश्रवणाच्च।

ॐ गन्धादिदानमच्छिद्रमस्तु संकल्पसिद्धिरस्तु ब्राह्मण-वाचनमिति गरुड़पुराणादेतदपि वाच्यम्।

---

## अथ गन्धः।

विष्णुः—

चन्दनकुङ्कुमकर्पूरागुरुपद्मकान्यनुलेपनाय दद्यात्।

पद्मकं पद्मकाष्ठम्।

ब्रह्मपुराणे—

श्वेतचन्दनकर्पूरकुङ्कुमानि शुभानि च।
विलेपनार्थं दद्याच्च यच्चान्यत् पितृवल्लभम्॥

ब्राह्मे—

नियोजयेत् शुचीन् गन्धान् चन्दनागुरुकुङ्कुमान्।

---

## अथ पुष्पाणि।

ब्रह्मपुराणे—

सिताः सुमनसः श्रेष्ठास्तथा पद्मोत्पलानि च।
गन्धरूपोपपन्नानि यानि चान्यानि कृत्स्नशः॥

पद्मोत्पलानि चेति रक्तान्यपीत्यर्थः पृथगुपादानात् कृत्स्नश इत्यभिधानाच्च।

विष्णुः—

सितानि च सुगन्धीनि कण्टकिजान्यपि दद्यात् रक्तान्यपि जलजानि।

पद्मपुराणे—

सितानि च सुगन्धीनि तथा कण्टकिजान्यपि।
जलजान्यपि रक्तानि प्रशस्तानि सदैव हि॥

यत्तु—

पद्म-बिल्वार्क-धुस्तूर-पारिभद्र-करूपजाः।
न देयाः पितृकार्य्येषु पयश्चाजाविकं तथा॥
इति मत्स्यपुराणवचनं तत् स्थलपद्मविषयम्।

ब्राह्मे—

जाती-चम्पक-कुन्दानि मल्लिकां तुलसीं तथा।
वैवर्न्तीं शतपत्राञ्च गन्धशेफालिकास्तथा॥
कुब्जकं तगरञ्चैव तिलकञ्चापि केतकीं।
यूथिकामतिमुक्तञ्च श्राद्धे देयानि भो द्विजाः॥
कमलं पद्मकुमुदे कह्लारञ्च नियोजयेत्।
कमलं शतपत्रं, पद्मं रक्तपद्मम्।

यत्तु—

जातीदर्शनमात्रेण निराशाः पितरो गताः।
इति वचनं तत्पीतजातीविषयम्।

तथा कूर्म्मपुराणे—

श्राद्धे जात्यः प्रशस्ताः सुमल्लिकाः श्वेतयूथिकाः।
जलोद्भवानि सर्व्वाणि कुसुमानि च चम्पकम्॥

श्वेतयूथिकेत्यनेन पीतयूथिका निषिध्यते॥

स्कन्दपुराणे—

तुलसीगन्धमाघ्राय पितरस्तुष्टमानसाः।
प्रयान्ति गरुड़ारूढ़ास्तत्पदं चक्रपाणिनः॥

तुलसीनिषेधस्तु शाकलेनेति प्रागुक्तम्।

मत्स्यान्याह मनुः—

उग्रगन्धीन्यगन्धीनि चैत्यवृक्षोद्भवानि च।
वर्ज्जनीयानि पुष्पाणि रक्तवर्णानि यानि च॥

ब्राह्मे—

जवादिकुसुमं झिण्टी रूपिका सकुरुण्टका।
पुष्पाणि वर्ज्जनीयानि श्राद्धकर्म्मणि नित्यशः॥

जवादिरक्तकुसुममित्यर्थः, रूपिका अर्कपुष्पं कुरुण्टका पीतझिण्टी।

तथा—

सर्व्वं पर्य्युषितं वर्ज्ज्यं पत्रं पुष्पं जलं तथा।
पवित्रं जाह्नवीतोयं पवित्रं तुलसीदलम्॥

## अथ धूपः।

अथ ब्रह्मपुराणे—

चन्दनागुरुणी चोभे तथैवोशीरपद्मकम्।
तुरुष्कं गुग्गुलुञ्चैव घृताक्तं युगपद्दहेत्॥ *
घृतं न केवलं कुर्य्यात् कुष्ठं वा तृणगुग्गुलुम्।
तुरुष्कं सिह्लकं तृणगुग्गुलुः (१) प्रभेदः।

मनुः—

धूपार्थे गुग्गुलुं दद्यात् घृतयुक्तं मधूत्कटम्।

ब्राह्मे—

गुग्गुलुं चन्दनञ्चैव श्रीवासमगुरुं तथा।
धूपानि पितृयोग्यानि ऋषिगुग्गुलुमेव च॥
श्रीवासः सरलद्रवः, ऋषिगुग्गुलुर्महिषाक्षसंज्ञकः।

विष्णुः—

जीवजं सर्व्वं धूपार्थे न दद्यात्।
जीवजं प्राण्यङ्गजं कस्तूरिकादि।

---

## अथ दीपः।

शङ्खः—

घृतेन दीपो दातव्यस्तिलतैलेन वा पुनः।
ऊर्णासूत्रं प्रदातव्यं कार्पासमथवा नवम्॥

---

* ख पुस्तके पचेत्।

दशां विवर्जयेत् प्राज्ञो यद्यप्याहतवस्त्रजाम्।
आहतञ्च नवाम्बरे इत्यमरकोषः।

कालिकापुराणे—

घृतप्रदीपः प्रथमस्तिलतैलोद्भवस्ततः।
नेत्राह्लादकरः सर्व्विर्दूरतापविवर्ज्जितः॥
सुशिखः शब्दरहितो निर्धूमो नातिह्रस्वकः।
दक्षिणे दीपवृक्षस्य प्रदीपः शोभितस्तथा॥
वृक्षेषु दीपो दातव्यो नतु भूमौ कदाचन॥
न मिश्रीकृत्य दद्यात्तु दीपस्नेहान् घृतादिकान्।
दत्त्वा मिश्रीकृतं स्नेहं तामिस्रं नरकं व्रजेत्॥

---

## अथ वस्त्राणि।

ब्रह्मपुराणे—

वस्त्राभावे क्रिया नास्ति यज्ञा वेदास्तपांसि च।
तस्माद्वासांसि देयानि श्राद्धकाले विशेषतः॥
धनदूलभ्यं यद्वस्त्रं विभवे सति तद्युगम्।
कौषेयं क्षौमकार्पासं दुकूलमहतन्तथा॥
श्राद्धेष्वेतानि यो दद्यात् कामानाप्नोति पुष्कलान्।
कौषेयं क्रिमिकोषोत्थं वल्करादि क्षौमं स्मृतम्।

षट्त्रिंशन्मते ब्रह्मपरिशिष्टे—

ईषद्धौतं नवं श्वेतं सदशं यन्न धावितम्।
अहतं तद्विजानीयात् पितृदैवतकर्म्मणि॥

रजकद्वारा यन्न धावितं किन्तु स्वयमेव धावितमित्यर्थः।

षट्त्रिंशन्मतम्—

धार्यिकेन तु वस्त्रेण मानवः श्राद्धमाचरेत्।
गयाश्राद्धसमं प्रोक्तं पितृभ्यो दत्तमक्षयम्॥
धार्यिकं वै सदा वस्त्रं पवित्रं मुनिसत्तम।
पितृदेवमनुष्याणां क्रियायाञ्च प्रशस्यते॥
धौताधौतं तथा दग्धं छिन्नं वा रजकाहृतम्।
श्वमार्ज्जारमूत्रलिप्तं वा तथापि परमं शुचि॥
अग्निराविकवस्त्रञ्च ब्राह्मणाश्च तथा कुशाः।
पशुपुं न हता दोषा ब्रह्मणा परमेष्ठिना॥

निषिद्धवस्त्रमाह कालिकापुराणे—

निर्दशं मलिनं जीर्णं तथा गात्रावलम्बितम्।
परकीयं ह्यग्निदग्धं सूचीविद्धं तथाऽसितम्॥
उत्केशमधौतञ्च श्लेष्मरक्तादिदूषितम्।
नीलीरक्तमाखुजग्धं दैवे पैत्रे च वर्ज्जयेत्॥

नरसिंहपुराणे—

न रक्तमुल्वनं वासो न नीलञ्च प्रशस्यते।
मलाक्तञ्च दशाहीनं वर्ज्जयेदम्बरं बुधः॥

एवं गन्धादिकं दत्वा ब्राह्मणभोजनार्थं नीवारचूर्णादिभिर्मण्डलानि कुर्य्यात्।

ब्रह्मपुराणे—

मण्डलानि च कार्य्याणि नैवारैश्चूर्णकैः शुभैः।
गौरमृत्तिकया वापि प्रणीतेनाथ भस्मना॥

प्रणीतेन प्रणीताग्निसम्बन्धिनेत्यर्थः असम्भवे वारिणापि कार्य्यम्। मण्डलन्तु ब्राह्मणभोजनार्थं चतुरस्रमेव।

यथा देवलः—

चतुरस्रं त्रिकोणञ्च वर्त्तुलञ्चार्द्धचन्द्रकम्।
कर्त्तव्यमानुपूर्व्व्येण ब्राह्मणादिषु मण्डलम्॥
अकृत्वा मण्डलं ये तु भुञ्जतेऽधमयोनयः।
तेषान्तु यक्षरक्षांसि हरन्त्यन्नस्य तद्बलम्॥

विष्णुपुराणे—

जुहुयाद्व्यञ्जनक्षारवर्ज्जमन्नं ततोऽनले।

मार्कण्डेयपुराणे—

अग्नौ करिष्येऽनुज्ञातः कुरुष्वेति ततो द्विजैः।
जुहुयाद्व्यञ्जनक्षारवर्ज्जमन्नं यथाविधि॥
अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहेति प्रथमाहुतिः।
सोमाय वै पितृमते स्वाहेत्यन्या तथा भवेत्॥
हुतावशिष्टं दद्यात्तु भाजनेषु द्विजन्मनाम्।

व्यञ्जनक्षारेत्युपलक्षणं किन्तु घृततिलमात्रसहितमन्नं होतव्यम्।

यथा ब्राह्मे—

तनोऽग्राह्नं समादाय सर्पिस्तिलसमन्वितम्।

याज्ञवल्क्यः—

अग्नौ करिष्ये आदाय पृच्छत्यन्नं घृतप्लुतम्।
कुरुष्वेत्यभ्यनुज्ञातो हुत्वाग्नौ पितृयज्ञवत् * ॥

गोभिलः—

उद्धृत्य घृताक्तमन्नं पृच्छति अग्नौ करिष्यामीति।

पारस्करः—

उद्धृत्य घृताक्तमन्नं पृच्छति अग्नौ करिष्ये इति।
कुरुष्वेत्यनुज्ञातः पिण्डपितृयज्ञवज्जुहोति।

पृच्छति पितृब्राह्मणमिति शेषः। घृताक्तमन्नं गृहीत्वा पितृब्राह्मणं पृच्छेत्।

ॐ अग्नौ करिष्ये ॐ कुरुष्वेति तेनोक्ते।

इति गरुड़पुराणवचनात्।

सर्व्वत्र प्रश्नेषु पङ्क्तिमूर्द्धन्यं पृच्छति।

इति पारस्करोक्तेश्च।

प्रश्नस्तु करिष्यामीति सामगानां वाजसनेयिनान्तु करिष्ये इति। गोभिलपारस्कराभ्यां तथैवोपदेशात्।

अत्र च अग्नाविस्तुतरक्षाघातोऽहवनार्थता सर्व्वेषां मुनीनां

* स पुस्तके पितृयज्ञे।

तयैव प्रयोगात्। यथा करिष्ये यतिष्ये इत्यर्थः स च यज्ञोऽर्थाद्धोम-विषयक एवेति।

एवञ्च पारस्करायुक्तप्रश्नः प्रधानाग्निहोमाभिप्रायेण, विप्र-पाण्यादिहोमपक्षे लक्षण्य*धिकरणताबाधात् तत्र बाधः किन्त्वग्नौ-करणं करिष्य इत्येव प्रश्नः।

आमश्राद्धं यदा कुर्याद्विधिज्ञः श्राद्धदः सुतः।

हस्तेऽग्नौकरणं कुर्याद्ब्राह्मणस्य विधानतः॥

इति व्यासवचने—

अग्नौकरणमेयन्तु पित्रे तु प्रतिपादयेत्।

इति यमवचने रूढ्या अग्नौकरणपदस्य श्राद्धाङ्गहोमे दर्श-नात् † योदसानिहत्याम्यमग्नौकरणं करिष्य इति लिखितम्। आधुनिकास्तु—

पारस्करादिषु अग्नावित्यत्राग्नौकरणहोमलक्षणा ततश्च जलादिहोमपक्षेऽप्यग्नौ करिष्ये इति पारस्करायुक्तप्रश्न एवेत्याहुः। तन्न—लक्षणायां प्रमाणाभावात्।

किञ्चाग्निपद एव लक्षणा वाच्या नतु सप्तम्यां सुप्विभक्तौ लक्षणा इति सिद्धान्तविरोधात् ततश्च सप्तम्यान्वितेन होमेन क्रियान्वयोऽनुपपन्न एवेति।

अग्न्यभावे साग्नेर्ब्राह्मणपाणिर्मुख्यः प्रतिनिधिस्तदभावे जलादिः।

---

* ख पुस्तके तत्राधिकरणता।

† ख पुस्तके होमदर्शनात्।

अन्नाभावे तु विप्रस्य पाणावेवोपपादयेत् ।

इति मनुवचने एवकारात् ।

मत्स्यपुराणेऽपि —

अग्न्यभावे तु विप्रस्य पाणावथ जलेऽपि वा ।
अजकर्णेऽश्वकर्णे वा गोष्ठे वापि शिवान्तिके ॥

इत्यत्राग्नित्यनेन विप्रपाण्यभावे जलादिविधानात् निरग्नेस्तु ब्राह्मणपाणिर्मुख्यकल्पो जलादिः * प्रतिनिधिः ।

यथा छन्दोगपरिशिष्टम्—

पित्र्ये यः पङ्क्तिमूर्द्धन्यस्तस्य पाणावनग्निमान् ।

इति साग्नेरप्यामश्राद्धे विप्रपाणावेवाग्नौकरणम् । आमश्राद्धं यदा कुर्य्यादिति प्रागुक्तव्यासवचनात् ।

अन्यथा निरग्नेः सर्व्वदैव प्राप्तत्वादामश्राद्धविशेषविधानमसङ्गतं स्यादिति ।

पक्वेनामेन वा येन श्राद्धं क्रियते तज्जातीयेनैव द्रव्येण पिण्डमग्नौकरणञ्च कार्य्यं न तु विजातीयेन—

यत् प्रकुर्य्यात्तु विप्रेभ्यः शृतं वा यदि वाऽशृतम् ।
तेनाग्नौकरणं कुर्य्यात् पिण्डांस्तेनैव निर्व्वपेत् ॥

इति व्यासवचनात् ।

पारस्करे—पिण्डपितृयज्ञवद्धुत्वा इत्यनेन प्राचीनावीती

---

* ख पुस्तके हस्तकलजलादि ।

दक्षिणामुख ॐ अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा सोमाय पितृमते स्वाहा इत्याहुतिद्वयं जुहुयादित्यतिदिष्टमित्यध्वर्य्यूणाम्।

सामगानान्तु चरुं समादाय मेक्षणेनोपघातं जुहुयात् स्वाहा सोमाय पितृमते इति पूर्व्वां स्वाहा अग्नये कव्यवाहनाय इत्युत्तरामित्यन्वष्टकाश्राद्धे गोभिलवचनात्—

स्वाहादिमन्त्रद्वयेनाहुतिद्वयं। तत्रापि स्वाहान्ते आहुतिं प्रक्षिप्य पश्चान्मन्त्रशेषः पठनीयः।

यथा छन्दोगपरिशिष्टम्—

स्वाहा कुर्य्यान्न मन्त्रान्ते न चापि जुहुयाद्धविः।
स्वाहाकारेण हुत्वाग्नौ मन्त्रशेषं समापयेत्।
नोङ्कुर्य्याद्धोममन्त्राणां पृथगादिषु कुत्रचित्॥

द्वितीयाहुतिमन्त्रादौ प्रणवं नोच्चारयेदित्यर्थः।

यच्च—

आहुतित्रितयं दद्यात् सोमायाग्नेर्यमाय च।

इति ब्रह्मपुराणं तच्छाखिविशेषव्यवस्थापितम्। अयञ्च होमो यज्ञोपवीतिना प्राचीनावीतिना वा कार्य्यः।

यथा छन्दोगपरिशिष्टम्—

अग्नौ कव्यहोमस्य कर्त्तव्य उपवीतिना।
प्राङ्मुखेनैव देवेभ्यो जुहोतीति श्रुतिश्रुतेः॥
अपसव्येन वा कार्य्यो दक्षिणाभिमुखेन तु।
निरूप्य हविरन्यस्मै अन्यस्मै नहि हूयते॥

यतः पित्रुद्देशेन हविर्निर्वापणं कृत्वा देवोद्देशेन न ह्रयते होमनिर्वापयोः सामान्योद्देश्यत्वात् अन्यथा निर्वापस्य होमार्थत्वानुपपत्तेः।

यत्तु—अग्नौकरणमुक्त्वा अत ऊर्द्धं प्राचीनावीतिना वाग्यतेन कार्य्यमिति गोभिलोक्तम्।

तत् पूर्व्वमग्नौकरणे नियमाभावार्थं स एव सूत्रस्वरसलब्धो नियमाभावो व्यक्तीकृतः परिशिष्टकृतेति।

अयञ्च विकल्पो गोभिलीयानामेव एकेनैव मुनिना परिशिष्टकृता द्वयोरेव स्वरसिकत्वात्। अन्येषान्तु स्वगृह्योक्तविशेष एव यथायथं मन्तव्यः।

अतएव मत्स्यपुराणम्—

स्वगृह्योक्तेन विधिना चाग्नौ कुर्य्यादतःपरम्।

वाजसनेयिनां पारस्करे पिण्डपितृयज्ञातिदेशात् प्राचीनावीतित्वं दक्षिणामुखत्वञ्च नियतम्।

तैत्तिरीयशाखायान्तु आपस्तम्बः—

अथ पुनरुपवीती दक्षिणं जान्वाच्य मेक्षणेनावदाय दक्षिणाग्नौ जुहोति।

वैजवापगृह्यम्—

यज्ञोपवीतीत्वग्नौ करवाणीत्यासन्नाग्नौकरणम्।

बह्वृचविषये शौनकः—

प्राचीनावीती समाधाय मेक्षणेनावदाय जुहुयादिति यथायथमूह्यम्।

कल्पतरुकारेणापि शाखिभेदव्यवस्थितविकल्प इत्युक्तम्।

भोजनपात्राण्याह विष्णुः—

तैजसानि पात्राणि विशेषतो राजतानि।

मनुः—

राजतैर्भाजनैरेषामथवा रजतान्वितैः।

वार्य्यपि श्रद्धया दत्तमक्षयायोपकल्पते॥

दैवे तु रजतं निषिद्धं पूर्व्वोक्तमत्स्यपुराणवचनात्।

वृद्धशातातपः—

पात्रे तु मृन्मये यस्तु श्राद्धे भोजयते पितृन्।

तत्र दाता पुरोधाश्च भोक्ता च नरकं व्रजेत्॥

तत्र च मनुः—

न भिन्नभाण्डे भुञ्जीत न भावप्रतिदूषिते॥

* [ वर्ज्जयेदित्यनुवृत्तौ पैठीनसिः—

लौहानां सीसकायसानि पाषाणक्षीणपात्राणि भग्नपात्राणि च।

लौहानां तैजसानाञ्च मध्य इत्यर्थः।

पाषाणविधिस्त्वर्घपात्रे मन्तव्यः, क्षीणमतिक्षुद्रं, ] भग्नवर्ज्जनञ्च सौवर्णादिव्यतिरिक्तम्।

सुवर्ण-रूप्य-ताम्राश्म-शङ्ख-स्फाटिक-शुक्तयः।

भिन्नान्यपि हि योज्यानि पितृदैवतकर्म्मणि॥

---

* ख पुस्तके [ ] चिह्नितांशो नास्ति।

इति ब्रह्मपुराणवचनात्।

कदलीदलस्य चापि वर्ज्जयित्वायवम्लरीम्।

इति ब्रह्मपुराणवचनादस्फुटिता कदलीमञ्जरी निषिद्धा।

कांस्यपात्रन्तु कुत्रापि न निषिद्धमिति तत्रापि श्राद्धं कार्य्य-मिति बोद्धव्यः।

परिवेषकपात्राण्यपि भोजनपात्रतुल्यानि विहित—निषि-द्धानि ज्ञेयानि।

भविष्ये—

आयसेन तु पात्रेण यदन्नमुपनीयते।

भोक्ता विष्ठाशनं भुङ्क्ते दाता च नरकं व्रजेत्॥

पारस्करगौभिलीयौ—

हुतशेषं दत्वा पात्रमालभ्य जपति—

पृथिवी ते पात्रं द्यौः पिधानं ब्राह्मणस्य मुखेऽमृतेऽमृतं जुहोमि स्वाहेति।

अत्र सामान्योपदेशात् दैवादिक्रमेण हुतशेषं देयम्।

तथा यमः—

अग्नौकरणशेषन्तु पित्र्ये तु प्रतिपादयेत्।

प्रतिपाद्य पितॄणान्तु न दद्याद्वैश्वदेविके॥

अत्र न दद्याद्वैश्वदेविक इत्यनेनैव निषेधसिद्धौ यत् प्रति-पाद्य पितॄणामित्युक्तं तत् पित्रादिक्रमेण दानं निषिध्य दैवादि-क्रमेण दानं बोधयति अन्यथा तदनर्थकं स्यात् तेन दैवपात्रेऽपि हुतशेषं देयम्।

केचित्तु—

पित्रे तु पितृपच एव न तु दैवे तत्र हेतुमाह होमेन पितृभ्यः प्रतिपाद्य दैवेन दीयते यत इति व्याचक्षते।

तन्मन्दं—न स्यादिति विध्यनुपपत्तेः, वक्ष्यमाणगरुड़पुराण-वचने दैवपक्षे पात्रालम्भनविधानाव्यवानुपपत्तेश्च पित्रेऽपीति पाठे निर्विवाद एवार्थः।

तत्र पितृपदेन मातामहादीनामपि ग्रहणम्।

विप्रपाणौ होमपक्षे तत्पात्रे हुतशेषं न देयम्।

पित्र्ये यः पङ्क्तिमूर्द्धन्यस्तस्य पाणावनग्निमान्।

हुत्वा मन्त्रवदन्येषां तूष्णीं पात्रेषु निक्षिपेत्॥

इति छन्दोगपरिशिष्टे अन्येषामित्यनेन व्यावृत्तेः, ततश्च तस्मिन् पात्रे हुतशेषदानाभावात् पात्रालम्भबाधोऽपीति ध्येयम्।

अग्न्यादिहोमपक्षे तु—सर्व्वपात्रेष्वेव हुतशेषदानं पिण्डार्थञ्च किञ्चिदवशेषयेत्।

यमः—

अग्नौकरणशेषन्तु पिण्डार्थमवशेषयेत्।

हारीतः—

हुतोच्छिष्टं ब्राह्मणेभ्यः प्रदाय पिण्डार्थं पात्रेषु प्रदायेत्यर्थः।

गारुड़े—

हुतावशिष्टस्यार्द्धं पिण्डार्थं स्थापयेदपरमर्द्धं पात्रेषु निक्षिपेत्।

याज्ञवल्क्यः—

हुतशेषं प्रदद्यात्तु भाजनेषु समाहितः।
यथालाभोपपन्नेषु रौप्येषु च विशेषतः॥
दत्त्वान्नं पृथिवी पात्रमिति पात्राभिमन्त्रणम्।
कृत्वेदं विष्णुरित्यन्ने द्विजाङ्गुष्ठं निवेशयेत्॥

दत्त्वान्न सर्व्वमन्नं परिवेष्येत्यर्थः। अन्नं दत्त्वा इति क्त्वा-प्रत्ययात् परिवेषणानन्तरमेव पात्रालम्भनम्।

न च ब्राह्मणमुखेऽमृतेऽमृतं जुहोमीति मन्त्रस्य हुतशेष-वाचकामृतपदलिङ्गात् हुतशेषदानानन्तर्यं युक्तमिति वाच्यम्॥

दत्तहुतशेषस्यान्नादिपरिवेषणेनासञ्जातबाधत्वात् मन्त्रस्या समेतार्थत्वाभावात्।

न च हुतशेषं दत्त्वा पात्रमालभ्य जपतीति पारस्करविरोध इति वाच्यम्।

हुतशेषदान-पात्रालम्भनयोर्वैदिकयोरेव द्वयोरानन्तर्यं क्त्वा-प्रत्ययो बोधयति तत्रार्थबललभ्येन परिवेषणेन न विहन्यते।

अन्यथा हस्तप्रक्षालनादिनाप्यानन्तर्य्यबाधप्रसङ्गः, किन्त्वा-नन्तर्य्येण वैदिकक्रियान्तरव्यवधानमेव व्यवच्छिद्यते।

किञ्च ब्राह्मेऽपि परिवेषणानन्तरं पात्रालम्भनमुक्तम्।

यथा—

हुत्वाग्निशेषमन्नन्तु पितृपात्रेषु विक्षिपेत्।
ततोऽन्नं षड्रसं स्वादु ददौ पायसपूर्व्वकम्॥

प्रत्ययमेकदा शिवमपर्य्युषितमुत्तमम्।

मन्त्रितं पृथिवीत्येवं मधुवातेत्यृचं जगौ॥

तथा गारुडे—

दैवपात्रे सर्व्वमन्नादि निधाय तत्र भूमिसंलग्नं कुशं दत्त्वा अधोमुखाभ्यां पाणिभ्यां पात्रं गृहीत्वा ॐ पृथिवी ते पात्रमिति पात्रमभिमन्त्रयति।

* [ ततः सव्यञ्जनं सघृतमन्नं पित्रादिपात्रेषु निधाय तत्र भूमिसंलग्नं कुशं दत्त्वा उत्तानपाणिभ्यां पात्रं गृहीत्वा —

ॐ पृथिवी ते पात्रमित्यभिमन्त्रयमिति। ]

यत्तु—

भाजनालम्भनं कृत्वा दत्त्वा चान्नं यथाविधि।

यथासुखं जुषध्वं भो इति वाच्यमनिष्ठुरम्॥

इति मार्कण्डेयपुराणेऽन्नं दत्तेत्युक्तम्। तदन्नोत्सर्गपरम्। अतएव यथासुखं जुषध्वमित्युक्तम्।

ततश्च कल्पतरुश्रीदत्तादिलिखितं पितृदयितादिलिखितं पात्रालम्भनानन्तरं परिवेषणं प्रमादकृतमेव।

गारुडे—

भूमिसंलग्नं कुशं दत्त्वेत्यनेन पात्रसाद्गुण्यपर्य्यन्तं स्पर्शनं कुशेन कार्य्यं ततश्च वामहस्तपाद्ये दक्षिणहस्तं निधाय दैवपात्रस्पा-

* क ग पुस्तकद्वये [ ] चिह्नितांशो नास्ति।

धोमुखाभ्यां हस्ताभ्यां विधायवस्य तूत्तानहस्ताभ्यामालभनं कार्य्यम्।

दक्षिणं वामतो बाह्यमात्माभिमुखमेव च।
करं करस्य कुर्व्वीत करणे न्यञ्चकर्म्मणः॥

इति छन्दोगपरिशिष्टे भूम्यालभने तथैव दर्शनात् न्यञ्चकर्म्मणो भूम्यालभनस्येत्यर्थः।

परिवेषणमाह मनुः—

पाणिभ्यान्तूपसंगृह्य स्वयमन्नस्य वर्द्धितम्।
विप्रान्तिके पितॄन् ध्यायन् शनकैरुपनिक्षिपेत्॥
उभयोर्हस्तयोर्मुक्तं यदन्नमुपनीयते।
तद्विप्रलुम्पन्त्यसुराः सहसा दुष्टचेतसः॥
गुणांश्च सूपशाकाद्यान् पयो दधि घृतं मधु।
विन्यसेत्प्रयतो विद्वान् भूमावेव समाहितः॥
भक्ष्यं भोज्यञ्च विविधं मूलानि च फलानि च।
उपनीय तु तत्सर्व्वं शनकैः सुसमाहितः॥
परिवेषयेत् प्रयतो गुणान् सर्व्वान् प्रचोदयन्।
यथाद्रोचेत विप्रेभ्यस्तत्तद्दद्यादमत्सरः *॥

अन्नस्य वर्द्धितमन्नेन पूरितमित्यर्थः करणे पूरणतृप्त्यर्थयोरिति करणे षष्ठी विप्रेष्वन्तु हुतशेषसहितं भोजनपात्रं विप्रान्तिके पूर्व्वकृतचतुरस्रमण्डलोपरि स्वयं क्षिपेत् स्थापयेत्। उभयो-

* च पुस्तके चमत्सरो।

र्हस्तयोर्युक्तमेकहस्तेन दत्तमित्यर्थः। गुणान् अप्रधानान् भोजने ऽन्नस्य प्राधान्यात्। भूमाविवेति भोजनपात्रोपरीत्यर्थः। एतेन व्यञ्जनादीनि पात्रान्तरे कृत्वा अन्नसमीपे स्थापनीयानीत्यायातम्। भक्ष्यं शष्कुल्यादि भोज्यं पायसादि।

पूर्व्वोक्तपरिवेषणस्य परिपाटीमाह उपनीयेति—

शनकैः क्रमेण समाहितमानसो गुणान् सर्व्वान्

इदं मधुरमिदमम्लमित्यादि रसान् प्रचोदयन् उपदिशन् स्वयं परिवेषणासम्भवे पत्नीपुत्रादिद्वारा परिवेषयेत्।

दारिद्र्योपहता दीना न कार्य्याः परिवेषकाः।

इति ब्रह्मपुराणनिषेधात्।

तथा यमः—

ब्राह्मणार्थं ददच्छूद्रः शूद्रार्थं ब्राह्मणो ददत्।
तयोरन्नमभोज्यन्तु भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्॥

ददत् उपनयन्नित्यर्थः।

वशिष्ठः—

हस्तदत्तास्तु ये स्नेहा लवणं व्यञ्जनानि च।
दातारं नोपतिष्ठन्ते भोक्ता भुङ्क्ते च किल्बिषम्॥
तस्मादन्तरितं देयं पात्रेण च दर्व्वेण च।

नोपतिष्ठन्ते दातारं फलेन न योजयन्तीत्यर्थः।

देवलः—

माक्षिकं फाणितं शाकं गोरसं लवणं घृतम्।
हस्तदत्तानि भुक्त्वा च दत्त्वा चान्द्रायणं चरेत्॥

पङ्क्त्या चैवोपविष्टेभ्यः समं गन्धादिभोजनम्।
न पङ्क्त्यां विषमं कुर्य्यान्न याचेन्न च दापयेत्॥

न याचेत् भोक्तेत्यर्थः।

याज्ञवल्क्यः—

अन्नमिष्टं हविष्यञ्च दद्यादक्रोधनोऽत्वरः।
यद्यदिष्टतमं लोके तत्तत्कुर्य्यात्प्रयत्नतः॥

कार्ष्णाजिनिः—

यदिष्टं जीवतश्चासीत्तत्तद्दद्यादमत्सरः।

मनुः—

उष्णमन्नं द्विजातिभ्यः श्रद्धया विनिवेदयेत्।
अन्यान्न फलमूलेभ्यः पानकेभ्यश्च पण्डितः॥

महाभारते—

असताय च यद्दत्तं यच्च श्रद्धाविवर्जितम्।
सर्व्वं तदसुरेन्द्राय ब्रह्मा भागमकल्पयत्॥

दानधर्म्मे—

तिलैर्विरहितं श्राद्धं कृतं क्रोधवशेन यत्।
यातुधानाः पिशाचाश्च विप्रलुम्पन्ति तद्धविः॥

कूर्म्मपुराणे—

घृतेन भोजयेद्विप्रं घृतं भूमौ समुत्सृजेत्।
तथा घृतं देयं यथा भूमौ स्रवतीत्यर्थः।

तथा—

सतसु स्रोत आपनं न हस्तेनोन्मृजितृतम् ।
उभावपि हि वर्चेतां दाता भोक्ता न संशयः ॥

मनुः—

नास्रमापातयेज्जातु न कुप्येन्नानृतं वदेत् ।
न पादेन स्पृशेदन्नं न चैवमवधूनयेत्* ॥

वस्त्रं शोकाश्रु नावधूनयेत् न कम्पयेदिति कश्चित् ।

अन्ये तु—

वाससा चावधूतानि वर्ज्यानि श्राद्धकर्मणि ।

इति ब्रह्मपुराणवचनादवधूननमुपरिवस्त्रवीजनमित्याहुः ।

देवलः—

अश्रूणि पातयेन्नैव न जल्पेन्न हसेन्मिथः ।
न विस्मयेत च क्रुध्येन्नोद्विजेन्नाश्रयेत् क्वचित् ॥
प्राप्तेऽपि कारणे श्राद्धे नैव कोपं† प्रकाशयेत् ।

नाश्रयेत् नावलम्बेत् कारणे क्रोधस्येत्यर्थः ।

एवं परिवेषणं कृत्वा उक्तविधिना पात्रालम्भनं विधाय इदं विष्णुरिति द्विजाङ्गुष्ठं निवेशयेदित्युक्तं याज्ञवल्क्ये ।

ब्रह्मपुराणे—

पृथिवी ते पात्रमित्यन्नममृतं चिन्तयेत् बुधः ।
क्षण अक्षय्यमिदं रक्ष मदीयमिति कीर्त्तयेत् ॥

---

* मूलपुस्तके नचैतदवधूनयेत् ।   † ख पुस्तके कोपम् ।

पारस्करः—

वैष्णव्यर्चा यजुषा चाङ्गुष्ठमन्नेऽवगाह्य अपहता इति तिलान् विकीर्य उष्णमन्नं स्विष्टं दद्यात्।

इदं विष्णुरिति वैष्णवी ऋक् ॐ विष्णो हव्यं रक्षस्वेति वैष्णवं यजुः।

स ग्रन्थः समुच्चयार्थो न विकल्पार्थः।

गोभिले-वैष्णव्यर्चा यजुषा चाङ्गुष्ठमन्नेऽवदायेति चकार-करणात्।

तथा दैवे—

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदं समूढमस्य पांशुले।
ॐ विष्णो हव्यं रक्षस्व।

इति मन्त्रस्योपरि अधोमुखद्विजाङ्गुष्ठनिवेशनम्। अपहता इति यवविकिरणम्।

एवं पैत्रे—

इदं विष्णुरिति विष्णो कव्यं रक्षस्वेति अन्नोपरि उत्तानं द्विजाङ्गुष्ठं निवेशयेत्।

अपहतेति तिलविकरणम्।

इति गरुड़पुराणेऽपि समुच्चयावगमाच्च श्रीदत्तादिभिरपि समुच्चयेन लिखितम्।

एतेन—

अन्नेदं विष्णुरित्यन्ने द्विजाङ्गुष्ठं निवेशयेत्।

इति याज्ञवल्क्यवचनं वैष्णवमन्त्रद्वयोपलक्षकं न तु तन्मात्र-परं श्रुतिद्वयकल्पनागौरवात् वाक्यभेदाच्च।

अथ *पितृहविषः कव्यपदवाच्यत्वात् मन्त्रे हव्यपदस्थाने कव्यपदोहः कार्यः "मन्त्रोहश्च यथान्यायमिति वचनात्" गारुड़े तथा दर्शनाच्च।

अत्र तिलान् विकीर्य्येति पितृपेक्षया मन्तव्यं दैवे तु यव-विकिरणमेव मन्त्रोऽप्ययमहतः इत्येव पूर्व्वोक्तगरुड़पुराणात्।

यत्तु—

ततो मधुघृताक्तन्तु तोयमन्नं तिलान्वितम्।
गृहीत्वा दैवतीर्थेन प्रणवेनैव तत् पुनः॥
एतद्वोऽन्नमिति युक्त्वा विश्वेदेवांश्च संयजेत्।

इति ब्रह्मपुराणे दैवपात्रं तिलान्वितमुक्तं तत् शाखान्तरीय-मिति श्राद्धचिन्तामणिमतम्।

वस्तुतस्तु गरुड़पुराणादौ यवविकिरणस्यैव नियमात् तिल-संस्कृतोपकरणान्वितमित्यर्थः।

तथाच ब्रह्मपुराणे—

यद्ददाति तिलोन्मिश्रान् गुड़ान् वा श्राद्धकर्म्मणि।
मधु वा मधुमिश्रं वा अक्षयं सर्व्वमेव तत्॥

स्पष्टं भोजनमिष्टं दद्यादुत्सृजेदित्यर्थः। ब्राह्मणाभावे स्वाङ्गुष्ठ-निवेशनमपि कार्य्यमिति प्रागेव विहितम्।

* क पुस्तके पितृ-।

श्राद्धकाण्डे पैठीनसिः—

इदं हविरित्येवं साङ्गुष्ठमन्यविधं ब्राह्मणेभ्यो दद्यात्।

साङ्गुष्ठं निवेशितद्विजाङ्गुष्ठं अन्यविधमन्यप्रकारं पायसादिरूपं सर्व्वमिदं हविरित्येवं क्रमेण इदं हविरिदं परमान्नमिदं व्यञ्जनमिमा आप इत्यादिप्रकारेण ब्राह्मणेभ्यो दर्शयित्वा दद्यात्। यथाविधिवाक्येन उत्सृजेदित्यर्थः।

तथा मनुः—

परिवेषयेत् प्रयतो गुणान् सर्व्वान् प्रचोदयन्।

पाश्चात्यास्तु—

सर्व्वेष्वेव द्रव्येषु इदं हविरित्येवं क्रमेण दर्शयन् मन्त्रेणाङ्गुष्ठनिवेशनं कारयित्वा दद्यादित्याहुः।

यत्तु श्रीदत्तेन—ॐ इदं विष्णुरिति ॐ विष्णो हव्यं रक्षस्वेति मन्त्रद्वयं पठित्वा द्विजाङ्गुष्ठं गृहीत्वा इदमन्नमित्यन्ने इमा आप इत्यप्सु इदं हविरिति हविषि निवेशयेदित्यन्नजलहविःषु त्रिषु अङ्गुष्ठनिवेशनमुक्तम्। तत् प्रमाणशून्यमेव।

यत्तु—

पितृभ्यश्च ततो दद्यादन्नमामन्त्रणेन च।
अमुकामुकगोत्रैतत्तुभ्यमन्नं स्वधा नमः॥
तिलमिश्रं च पानीयं सकुशं तेषु चाग्रतः।
विकिरेत् पितृभ्यस्तेभ्यो जपन्नपहता इति॥

ब्रह्मपुराणे सतिलपानीयदानमुक्तं तदावश्यकं पितृतृप्त्यानां प्रीतिफलकत्वात्।

याज्ञवल्क्यः—

सव्याहृतिकां गायत्रीं मधुवाता इति तृचम्।
जप्त्वा यथासुखं वाच्यं भुञ्जीरंस्तेऽपि वाग्यताः॥

सव्याहृतिकां गायत्रीं प्रणवाद्यन्तामिति ज्ञेयम्।
ओँकारं पूर्व्वमुच्चार्य्य भूर्भुवःस्वस्ततःपरम्।
गायत्री प्रणवश्चान्ते जप्ये ह्येवमुदाहृता॥

इति योगियाज्ञवल्क्यवचनात्।

मधुवाता इति तृचमित्यत्र मधुमक्षिति विर्जपोऽपि मन्तव्यः।

गरुड़पुराणवचनैकवाक्यतावशात् यथार्थोऽस्मभिक्तरं तत्रैव गायत्रीं मधुवाता इति मधु मधु मक्षिति च विर्जपित्वा यथायथं वाग्यता भुञ्जध्वमिति ब्रूयादिति।

तथाच छन्दोगपरिशिष्टे—

मधुमक्षिति यस्तत्र त्रिर्जपोऽशितुमिच्छताम्।
गायत्र्यनन्तरं सोऽत्र मधुमन्त्रविवर्ज्जितः॥

इति पार्व्वणे गायत्र्यनन्तरं मधुवातेति मधुदामसन्त्रसहितो मक्षिति यस्त्रिर्जपः स एव मधुवातेति मधुदामसन्त्रवर्ज्जितो नान्दीमुखेऽप्यनुज्ञायत इति।

यथा मिताचरालिखितषट्‌त्रिंशद्वचनञ्च—

गायत्रीं त्रिः सकृद्वापि जपेद्व्याहृतिपूर्व्विकाम्।
मधुवातेति तृचं मध्वित्येव त्रिकम्।

तथा चयच्च मधुवातासहितो मध्विति त्रिर्जपोऽन्ने मध्वभि-घारणसहितः कार्य्यः।

यथा यमः—

> अन्नं मधुमयं कृत्वा मधुमन्त्राभिमन्त्रितम्।
> अन्नहीनं क्रियाहीनं विधिहीनञ्च यद्भवेत्॥
> तत् सर्व्वमच्छिद्रमस्त्वित्युक्त्वा यत्नेन भोजयेत्॥

मधुनो दानमन्त्रेण मधुवातेत्यनेनाभिमन्त्रितं यथा स्यात् तथा मधुमयं कृत्वेत्यर्थः।

यद्यपि मधुवाता इति जप्त्वा यथासुखं वाच्यमिति याज्ञवल्क्य-निर्द्देशस्तथापि यमेन अन्नं मधुमयं कृत्वा अन्नहीनमित्यादि-निर्द्देशात् मधुदानानन्तरमच्छिद्रम् प्रतीयते दानसमाप्तावेवा-च्छिद्रस्योचितत्वाच्च।

यत्नेन भोजयेदिति यमेन यदुक्तं तत्र विधिमाह याज्ञवल्क्यः यथासुखं वाच्यमिति।

यथासुखमिति क्रियाविशेषणं तत्र पूर्व्वोक्तगरुड़पुराणादि-वचनैकवाक्यतया जुषध्वमिति क्रियामपेक्षते।

तथाच मार्कण्डेये—

> यथासुखं जुषध्वं भो इति वाच्यमनिष्ठुरम्।
> भुञ्जीरंश्च ततस्तेऽपि तच्चित्ता मौनिनः सुखम्॥

अत्र मौनिन इत्यभिधानात् गरुड़पुराणे वाग्यता इति विशेषोपादानाच्च तदपि वाच्यं एकवाक्यत्वपक्षे तु जुषस्वेत्येक-वचनोहः कार्य्यः।

अत्र

तत्रोऽयं सुष्टमत्यर्थमभीष्टमतिसंस्कृतम्।

दत्वा जुषध्वमिच्छातो वाच्यमेतदनिष्ठुरम्॥

इति विष्णुपुराणादिच्छात इत्यनेन सह यथासुखमित्यस्य विकल्पो मन्तव्यः।

एतेन यथासुखं वाग्यताः स्वदतेति केषाञ्चित् स्वकल्पितं लिखनमशुद्धमेव स्वदधातोरात्मनेपदित्वेन स्वदतीत्यस्यासाधुत्वाच्च।

ततश्च—

तेभ्यो दद्यादपोशानं भवन्तः प्राशयन्त्विति।

ब्रह्मपुराणवचनात् भोजनप्राक्क्षण एव भवन्तः प्राशयन्त्वित्युक्त्वाऽपोशानजलं ब्राह्मणेभ्यो यथाक्रमं दद्यात्।

अयञ्च क्रमो वाजसनेयिनामेव सामगानान्तु-अन्नोत्सर्गात् पूर्वं मध्वाहूतिगायत्रीं जपः मधुवातेति त्रिचेन चान्नं मधुमयं कृत्वाऽन्नोत्सर्गः। ततश्चान्नहीनं क्रियाहीनमित्यादिमच्छिद्रमवधार्य यथासुखं वाग्यता जुषध्वमित्युक्त्वा भवन्तः प्राशयन्त्वित्युक्त्वाऽपोशानजलदानमिति क्रमोऽवगन्तव्यः।

न च वाजसनेयितुल्य एव सामगानामपि क्रमो विशेषे प्रमाणाभावात् इत्यादि आधुनिकोक्तमुपादेयं गोभिलवचनविरोधात्।

यथा गोभिलः—

मैथाम्यर्चा यजुषा चाङ्गुष्ठमन्नेऽवदाय अपहता इति तिलान्

विकीर्य्य शिष्टमुष्णमन्नं दद्यात् सकृत् सकृदपो दत्त्वा गायत्रीञ्च जपित्वा अग्रतस्तु जपेद्व्याहृतिपूर्व्विकां सावित्रीं पित्र्यां च संहितां मधुच्छन्दसीञ्च स्वर्गलोके महीयते दत्तं चाक्षयं भवतीति।

अत्र गायत्रीञ्चेति चकारान्मधुवाता मध्विति त्रिकञ्च गृह्यते। परिशिष्टे—

मधु मध्विति यस्तत्र त्रिर्जपोऽशितुमिच्छताम्।
गायत्र्यनन्तरं सोऽत्र मधुमन्त्रविवर्ज्जितः॥

इति गायत्रीजपानन्तरं मधुवाता मध्विति त्रिकेण मधुदानावगमात्।

अत्र सकृत्सकृदपो दत्त्वा गायत्रीञ्च जपित्वा उष्णमन्नं दद्यादित्यभिसम्बन्धात् अन्नोत्सर्गात् प्रागेव गायत्रीजपः समन्त्रकमधुदानञ्च विधीयते।

न च गायत्रीञ्च जपित्वेत्यस्य अग्रतस्तु जपेत् व्याहृतिपूर्व्विकां सावित्रीमिति परेणाभिसम्बन्ध इति वाच्यम्।

अग्रतस्त्वित्यनेनैवानन्तर्य्यप्राप्तौ जपित्वेति क्त्वावैयर्थ्यप्रसङ्गात् भावसप्तम्या पृथग्वाक्यताप्रतीतेश्च।

ततो मधुघृताक्तन्तु सोष्णमन्नं तिलान्वितम्।
इति ब्रह्मपुराणमपि सङ्गच्छते।

अतो गोभिलसूत्रविच्छेदमनाकलय्याधुनिकेन गौड़मैथिलसंग्रहकाराभिहितश्रीदत्तादीनां विरुद्धं भट्टमाधवादीनामसम्मतञ्चोक्तं हेयमेव।

---

## अथ भोजनविधिः।

मनुः—

यद्वेष्टितशिरा भुङ्क्ते यद्भुङ्क्ते दक्षिणामुखः।
सोपानत्कश्च यद्भुङ्क्ते तद्वै रक्षांसि भुञ्जते॥
चण्डालश्च वराहश्च कुक्कुटः श्वा तथैव च।
रजस्वला च षण्ढश्च नेक्षेरन्नश्नतो द्विजान्॥
योऽप्रसन्नमना भुङ्क्ते सोपानत्कोऽपि वा पुनः।
प्रलापशीलः क्रुद्धो वा स विप्रः पितृदूषकः॥
प्रहसन्नपि यो भुङ्क्ते स नाप्याययते पितॄन्॥

वायुपुराणे—

न तदश्नन्ति पितरो यच्चाशब्दं समश्नुते।

शङ्खलिखितौ—

ब्राह्मणा गुणदोषौ न वदेयुर्न चान्योन्यं प्रशंसेयुर्न च गर्हयेयुरन्नपानं प्रभूतमिति न ब्रूयुः।

नारदीये—

पाकादि न प्रशंसेरन् वाग्यता धृतभाजनाः।
यदि पात्रं त्यजेदन्तुं ब्राह्मणः श्राद्धभोजनः॥
श्राद्धहन्ता स विज्ञेयो नरकायोपपद्यते॥

भाजनधारणं पात्रस्पर्शनं कुर्यादेवेति गरुडपुराणवचने प्रागुक्तम्।

मनुः—

न च द्विजातयो ब्रूयुर्दात्रा पृष्टान् हविर्गुणान् ।
यावदुष्मा भवत्यन्ने यावदश्नन्ति वाग्यताः ।
तावदश्नन्ति पितरो यावन्नोक्ता हविर्गुणाः ।

वाग्यतत्वेनैव प्राप्तौ हविर्गुणोक्तिनिषेधो हस्तसंज्ञादिनाभिधानविषयः * ।

तथा च यमः—

यस्तु भुक्त्वा पुनर्भुङ्क्ते यश्च तैलाभिघारितम् ।
रजस्वलाभिर्दृष्टं यच्चान्ने रक्षांसि भुञ्जते ॥

तैलाभिघारितनिषेधः सार्षपादितैलविषयः ।

गव्यं पयो दधि घृतं तैलञ्च तिलसम्भवम् ।
सैन्धवं सागरोत्थञ्च लवणं सारसन्तथा † ।

इति ब्रह्मपुराणे तिलसम्भवतैलविधानात् । अतएवात्र तिलसम्भवमिति विशेषणम् ।

अन्ये तु—तैलनिषेधो घृतसम्भवविषय इत्याहुः ।

शातातपः—

‡अर्द्धभुक्ते तु यो विप्रस्तस्मिन् पात्रे जलं पिबेत् ।
यद्भुक्तं तत् पितॄणान्तु शेषं यत् खात्तदासुरम् ॥

अर्द्धपीते पानपात्रेऽवशिष्टजलं पुनर्न पेयमित्यर्थः ।

---

* ख पुस्तके विधानविषय ।
† ग पुस्तके मागसन्तथा ।
‡ ख पुस्तके अर्द्धं सुक्ते ।

तथाच—

पीतशेषं पिबेच्च चेति ब्रह्मपुराणम्।

तथा—

भुञ्जानेषु तु विप्रेषु अन्योन्यं संस्पृशेद्यदि।
तदन्नमत्यजन् भुक्त्वा गायत्र्यष्टशतं जपेत्॥

अष्टशतं अष्टाधिकशतमित्यर्थः।

वाराहे—

एकवासा यदश्नीयान्निराशाः पितरो गताः।

वृहस्पतिः—

न स्पृशेद्वामहस्तेन भुञ्जानोऽन्नं कदाचन।
न पादौ न शिरो वस्तिं न पदा भाजनं स्पृशेत्॥

ब्रह्मपुराणे—

यस्तु पाणितले भुङ्क्ते यस्तु फुत्कारसंयुतम्।
प्रसृताङ्गुलिभिर्यस्तु तस्य गोमांसभक्षणम्॥

शातातपः—

न बहिर्जानुरुक्तवया नान्यचित्तो न चोत्कटः।
आसने पादमारोप्य न भुञ्जीत कदाचन॥

पारस्करः—

अश्नंस्तु जपेद्व्याहृतिपूर्व्विकां गायत्रीं त्रिः सकृद्वा रक्षोघ्नीः पितृमन्त्रान् पुरुषसूक्तमन्यानि पवित्राणि चेति।

अत्र गायत्रीजपानन्तरं मधुवातेति जपोऽपि कार्य्यः।

श्राद्धेषु पवित्राणि जप्त्वा पूर्व्वजपं तथा ।

इति याज्ञवल्क्यवचनात् पूर्व्वजपश्च सव्याहृतिकां गायत्रीं मधुवातेति त्र्यृचमिति तेनैवोक्तः। गोभिलेनापि मधुच्छन्दसोश्चेत्यनेन मधुवाताजप उक्तः, रक्षोघ्नीः रक्षोहनसूक्तानि पित्र्यमन्त्रान् कृष्णपक्ष आयान्तु नः पितर इत्यादीनि अन्यानि च पवित्राणि रुचिस्तवादीनि।

तथा च मनुः—

स्वाध्यायं श्रावयेत् पित्रे धर्म्मशास्त्राणि चैव हि ।
आख्यानानीतिहासांश्च पुराणानि खिलानि च ॥

धर्म्मशास्त्राणि मन्वादीनि आख्यानानि सौपर्णादीनि खिलानि सूक्तानि शिवसंकल्पादीनि।

नारदीये—

जपेच्च पौरुषं सूक्तं नाचिकेतत्रयं तथा ।
त्रिमधु त्रिसुपर्णञ्च पावमानीर्यजूंषि च ॥
भुञ्जीरन् ब्राह्मणा यावत् तावदेव जपद्बीजः ।

तथा ब्राह्मे—

यतः प्रकारमखिलं नाचिकेतं ततो जगौ ।
त्रिमधु त्रिसुपर्णञ्च बृहदारण्यकन्तथा ॥
जजाप चैव सौम्यञ्च सूक्तं सौरं सपौरुषम् ।

मात्स्ये—

ब्रह्मविष्ण्वर्करुद्राणां स्तोत्राणि विविधानि च ।
इन्द्रसोमेशसूक्तानि पावमानीश्च शक्तितः ॥

गारुड़े—

भुक्तवत्सु सतव्याधार्दिकं पितृस्तोत्रं जपेत्।

विष्णुपुराणे—

रक्षोघ्नमन्त्रपठनं भूमेरास्तरणं तिलैः।
कृत्वा ध्येयाश्च पितरस्तएव हि द्विजोत्तमाः॥
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः।
मम तृप्तिं प्रयान्त्वद्य विप्रदेहेषु संस्थिताः॥
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः।
मम तृप्तिं प्रयान्त्वग्निहोमाप्यायितमूर्त्तयः॥
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः।
तृप्तिं प्रयान्तु पिण्डेन मया दत्तेन भूतले॥
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः।
तृप्तिं प्रयान्तु मे भक्त्या यन्मयैतदुदाहृतम्॥

मातामहस्तृप्तिमुपैतु तस्य
तथापि तातस्य पिता तथान्यः।
विश्वे च देवा परमां प्रयान्तु
तृप्तिं प्रणश्यन्तु च यातुधानाः॥
यज्ञेश्वरो हव्यसमस्तकव्य-
भोक्ताऽव्ययात्मा हरिरीश्वरोऽत्र।
तत्सन्निधानादपयान्तु सद्यो
रक्षांस्यशेषाण्यसुराश्च सर्व्वे॥

ब्रह्मपुराणे—

वेणुवीणाध्वनिश्चैव विप्रेभ्यः सन्निवेदयेत् ।

अयञ्च जपः कृताञ्जलिना दर्भेष्वासीनेन प्राचीनावीतिना दक्षिणामुखेन कार्य्यः ।

पवित्रान्जलिपाणिर्दर्भेष्वासीनो जपेत् ।

इति शङ्खवचनात् ।

सर्व्वकर्म्मणाञ्च पितुरुद्देशतया तत्प्राधान्येनोपदेशात् दक्षिणामुखत्वादेः पैत्रधर्म्मस्यैवोचितत्वात् । गोभिलेनापि यत्र क्वचित् प्राचीनावीतिना कृत्यमिति सामान्योपदेशाच्च ।

विष्णुपुराणेऽपि—

पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ।

तृप्तिं प्रयान्तु मे भक्त्या यन्मयैतदुदाहृतम् ॥

इति जपस्य पितृकार्य्यत्वेनोपदेशाच्च । अतएव पितृब्राह्मणाभिमुख्येनैव जपः ।

एवञ्च पिण्डे पित्रावाहनमन्त्रस्य अनुव्रजने आमावाजस्येत्यस्य च श्राद्धस्यादावन्ते पिण्डदाने च देवताभ्यः पितृभ्य इत्यस्य जपः पैत्रधर्म्मेण कार्य्यः ।

पितरः क्षिप्रमायान्ति राक्षसाः प्रद्रवन्ति च ।

इति पूर्व्वोक्तब्रह्मपुराणवचनाच्च ।

एतेन प्राङ्मुखत्वोपवीतित्वादिधर्म्मेण सर्व्वत्र मन्त्रजपनिरूपणं प्रमाणशून्यम् मैथिलानां निरस्तम् ।

पारस्करः—

तृप्तिं ज्ञात्वा अन्नं प्रकीर्य्य सकृत् सकृदपो दत्वा पूर्ब्ववत् गायत्रीं जपित्वा मधुमतीं मधुमध्विति च तृप्ताः स्थेति पृच्छति तृप्ताः स्म इत्यनुज्ञातः शेषमन्नमनुज्ञाप्येति ।

एतच्चान्नविकिरणमुच्छिष्टसन्निधौ भूमौ दक्षिणाग्रकुशद्वयोपरि तिलान् विकीर्य्य जलेन सह कार्य्यम् ।

मात्स्ये—

भुक्तवत्सु ततस्तेषु भोजनोपान्तिके नृप ।
सार्व्ववर्णिकमन्नाद्यं सन्नीयाप्लाव्य वारिणा ॥
समुत्सृजेत् भुक्तवतामग्रतो विकिरं भुवि ।
अग्निदग्धाश्च ये जीवा येऽप्यदग्धाः कुले मम ।
भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु तृप्ता यान्तु परां गतिम् ॥
येषां न माता न पिता न बन्धु-
र्नैवान्नसिद्धिर्न तथान्नमस्ति ।
तत्तृप्तयेऽन्नं भुवि दत्तमेतत्
प्रयातु लोकाय सुखाय तद्वत् ॥
असंस्कृतप्रमीतानां त्यागिनां कुलयोषिताम् ।
उच्छिष्टं भागधेयं स्याद्दर्भेषु विकिरश्च यः ॥
तस्मात् साम्बोदकं दद्यात् सकृत् विप्रकरे तदा ।

सार्व्ववर्णिकं सर्व्वप्रकारकमित्यर्थः । दर्भेषु विकिरश्च य इत्यनेन दर्भोपरिविकिरणमायातं भुवि दत्तमेतदिति मन्त्रलिङ्गात् येषां न मातेति पाठो विकरणानन्तरं मन्तव्यः ।

ततः—येषां न मातेति पाठस्त्वाचारमात्रमित्याधुनिकोक्तं विशेषादर्शनादेवेति।

बृहस्पतिः—

सोदकं विकिरेदन्नं मन्त्रश्चैव समुच्चरेत्॥

अग्निदग्धायेत्यादि ययञ्च मन्त्रो वक्ष्यमाणब्रह्मपुराणोक्त-मन्त्रेण सह वैकल्पिको मन्तव्यः।

यथा तत्र—

अथ दर्भांस्तु तान् ज्ञात्वा भूमावन्नं जलं क्षिपेत्।
उच्छिष्टे सतिलान् दर्भान् दक्षिणाग्रान् निधाय तु॥
यदाविधेदिदं किञ्चित् पितृभ्यश्चापि तत्र च।
तस्मात्तस्यात्र भागन्तु स्वधोक्ता पतसे शुभे॥
येऽग्निदग्धेषु पितरो लुप्तपिण्डोदकक्रियाः।
ये चाप्यकृतचूडास्तु ये च गर्भाद्विनिःसृताः॥
येषां दाहो न क्रियते येऽग्निदग्धास्तथा परे।
भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु तृप्ता यान्तु परां गतिम्॥
ततः प्रक्षाल्य हस्तौ तु तथाचम्य हरिं स्मरेत्।
एवं सर्वेषु पानीयं दद्यादाचमनं तथा॥

उच्छिष्टे उच्छिष्टसमीपे इत्यर्थः। अत्र च अग्निदग्धाय ये जीवा इत्यपपाठः।

मरुत् सकृदपो दद्यादिति एतच पुनरापोशानार्थं जलदानं पित्रादिक्रमेण कार्य्यम्।

तथा विष्णुधर्म्मोत्तरे—

वैश्वदेवोपविष्टानां चरमं हस्तधारणम्।

तथा विष्णुः—

तृप्ताः स्थेति पृष्टे उदङ्मुखेभ्याचमनमादौ ततः प्राङ्मुखेषु।

अयञ्चाचमनात् प्राक् तृप्तिप्रश्नः आमगमामिति वक्ष्यते पूर्व्ववदिति सव्याहृतिमणवामित्यर्थः मधुमतीं मधुवाता इति त्र्यृचमित्यर्थः।

तृप्ताः स्थेति पृच्छतीति, एकब्राह्मणपक्षे तु तृप्तोऽसीत्येकवचनोहः कार्य्यः।

तृप्ताः स्थेति प्रश्नस्तु पितृपक्ष एव दैवे तु रुचितमिति प्रश्नः।

पित्र्ये स्वदितमित्येवं वाच्यं गोष्ठेषु * सुशृतम्।
सम्पन्नमित्यभ्युदये दैवे रुचितमित्यपि॥

इति मनुवचनात्।

पित्र्ये पितृमातृश्राद्धे एकोद्दिष्टे इत्यर्थः।

अत्राधुनिकाः—

सम्पन्नमित्यभ्युदये इत्यादिमुख्यसमभिव्याहारात् दैवे रुचितमित्यपीति वचनं दैविकं दशमं घृतमिति दैवश्राद्धविषयं पार्व्वणे विश्वदेवपक्षेऽपि तृप्ताः स्थेत्येव प्रश्नः, रुचितमिति त्वाचारमात्रमिति वदन्ति। तन्मन्दं—

---

* कल्पतरौ गोष्ठे च।

विश्वदेवपक्षस्यापि देवश्राद्धत्वेन रुचितमित्येव न्याय्यं दैवे रुचितमित्यपीति सामान्योक्तिरन्यथा सङ्कोचः स्यात्।

किञ्च गरुड़पुराणे तु स्पष्टमेवोक्तं यथा—

ॐ अग्निदग्धेति भूमौ कुशोपरि जलप्लुतं घृतमन्नं विकिरेत्। ततः पितृब्राह्मणक्रमेण गण्डूषं दत्वा पूर्ववत् सव्याहृतिकां गायत्रीं मधुवातेति मधु मध्विति त्रिवारं जपित्वा रुचितं भवद्भिरिति देवब्राह्मणप्रश्नः।

सुरुचितमिति तैरुक्ते तृप्ताः स्थेति पितृब्राह्मणप्रश्नः।

तृप्ताः स्म इति तैरुक्ते शेषमन्नमस्तीति प्रश्नः।

इष्टैः सह भुज्यतेति तैरुक्ते मातामहब्राह्मणेऽपि तथैव प्रश्न इति।

अतएव मातामहब्राह्मणेऽपि पृथक्त्वमिमग्नौ न तु तन्त्रतेति ध्येयम्।

मत्स्यपुराणे—

> स मानाद्य पुनः शेषं तु देयं चावमित्यपि।
> इष्टैर्भो दीयतामेतदिति समावदन्ति ते॥

अयञ्च क्रमो वाजसनेयिनामेव सामगानान्तु मुक्तवत्सु ब्राह्मणेषु प्रथमं तृप्तिप्रश्नस्ततो दर्भेष्वन्नविकरणं,तत आचम्य हरिं स्मृत्वा पित्रादिक्रमेण जलं दत्वा शेषानुज्ञापनमिति क्रमः।

यथा गोभिलः—

यदि भुक्ता अथ प्रश्नोऽथ अग्निदग्धाइति शेषमन्नमनुज्ञाप्य

सर्व्वमन्त्रमेकवीकृत्य उच्छिष्टसमीपे दर्भेषु मधुमधुमधीमदनेति जपित्वा त्रींस्त्रीन् पिण्डान् * दद्यादिति।

अत्राग्निदग्धाश्चेत्यन्तं प्रकीर्य शेषमवमनुज्ञाप्य पिण्डान् दद्यादिति ग्रन्थनिर्देशस्यानन्तर्य्यबाधभिया तृप्तिं ज्ञात्वेत्यत्रैवाकाङ्क्षिततया च तृप्तिप्रश्नस्यार्थलभ्यत्वम् अयमेवार्थो मार्कण्डेयपुराणेऽपि स्पष्टस्थितः।

यथा तत्र—

तृप्तैस्तृप्तैव तृप्ताः स्थ तृप्ताः स्थ इति वादिभिः।
अनुज्ञातो नरस्त्वन्नं विकिरेद्भुवि सर्व्वतः॥
तद्वत्तांश्चमनार्थाय दद्यादापः सकृत् सकृत्।

तृप्तैर्विप्रैस्तृप्ताः स्थेति पृष्टैस्ततस्तृप्ताः स्म इति वादिभिरनुज्ञातः सन्नन्नं विकिरेदित्यर्थः।

एतेन पारस्करदर्शनात् विकरणानन्तरं तृप्तिप्रश्नः सामगानामपीत्याधुनिकोक्तं निरस्तम्।

यच्च श्रीदत्तमतानुसारिणा प्राचीनाचारदूषणपण्डितेन पारस्करसूत्रतुल्यमग्निदग्धाश्चेत्यनन्तरं पुनर्मधुवाता मध्विति च त्रिर्जप्त्वा गोभिलसूत्रं धर्म्मलोपाय लोकद्वयविरुद्धमाधुनिकेन कल्पितं तत् सर्व्वदेशीयगोभिलपुस्तकेष्वदृष्टत्वात् भट्टभाष्यादीनामसम्मतत्वाच्चोपहसनीयमेव।

---

* ख पुस्तके पिण्डानवनेनिज्य दद्यात्।

† ख पुस्तके दद्यादाचमनार्थाय।

एतेन सामगानामपि विकरणानन्तरं पुनर्गायत्री मधुवातादि पाठो निरस्तः।

एवञ्च पितृदयितालिखितं शेषानुज्ञानन्तरं विकरणं प्रमाद-कृतमेव इति।

यच्च —

अन्नमादाय तृप्ताः स्थ शेषं चैवानुमान्य च।

तदन्नं विकिरेद्भूमौ दद्याच्चापः सकृत् सकृत् ॥

इति याज्ञवल्क्यवचनं तत् यजुर्वेदि*शाखिव्यवस्थितम्।

देवलः—

पुरस्तादुपविश्यैषां पिण्डावापं निवेदयेत्।

एषां ब्राह्मणानां पिण्डावापं पिण्डनिर्वपणं निवेदयेत् अनुज्ञापयेदित्यर्थः।

तथा मार्कण्डेये—

ततोऽनुज्ञां गृहीत्वा तु यतवाक्कायमानसः।

सतिलेन ततोऽन्नेन पिण्डांश्च पितृयज्ञवत्।

पितृनुद्दिश्य दर्भेषु दद्यादुच्छिष्टसन्निधौ ॥

गारुडे—

ततः पितृश्राद्धे पिण्डदानं करिष्ये ॐ कुरुष्वेत्यनुज्ञात उच्छिष्टाग्रतो भूम्यभ्युक्षणं मण्डलचतुष्कोणञ्च कृत्वेति ॥

उच्छिष्टाग्रत इति पितृमातामहब्राह्मणयोर्मध्ये उच्छिष्टाग्र-भूमावित्यर्थः।

* क पुस्तके यजुर्वेदिपाठाम्।

तथा ब्रह्मपुराणे—

ततो दक्षिणपूर्व्वस्यां कार्य्या वेदी यथाविधि ।
हस्तमात्राश्रया भूमेयतुरङ्गुलमुच्छ्रिता ॥
पिण्डनिर्व्वपणार्थाय रक्षणीया विशेषतः ।

पितृब्राह्मणस्य दक्षिणभागे पूर्व्वस्यां दिशि पितामहप्रपितामह-ब्राह्मणयोः सम्मुखस्थमध्यभाग इत्यर्थः ।

याज्ञवल्क्यः—

उच्छिष्टसन्निधौ पिण्डान् प्रदद्यात् पितृयज्ञवत् ।

देवलः—

मण्डलं चतुरस्रञ्च दक्षिणाप्रवणन्तथा ।
पवित्रपाणिश्च जपेमन्त्रं रक्षोघ्नमुत्तमम् ॥
निहन्मि सर्व्वं यदमेध्यवद्भवेत्
हताश्च सर्व्वेऽसुरदानवा मया ।
रक्षांसि यक्षाः सपिशाचसङ्घा
हता मया यातुधानाश्च सर्व्वे ॥"
एकदर्भेण तन्मध्यमुल्लिख्याभ्युक्ष्य तं त्यजेत् ।

आदौ मण्डलाकारं कृत्वा तदुपरि चतुरस्रं कुर्य्यादित्यर्थः । अभ्युक्ष्य वेदीमिति शेषः तं दर्भमित्यर्थः ।

ब्रह्मपुराणे—

निहन्मि सर्व्वमित्यादिर्येस्मिन्देशे च पठ्यते ।
एव मन्त्रस्तु तं देशं राक्षसा वर्ज्जयन्ति हि ॥

अनेन मन्त्रेण च संयतात्मा
वेदीं समग्रां पुनरुल्लिखेच्च ।

पुनरिति मण्डलकाले एतं मन्त्रं पठित्वा पुनरनेन मन्त्रेणोल्लिखनं कुर्य्यात् ।

पिण्डपितृयज्ञे कात्यायनः—

दक्षिणेनोपलिप्तमपहता इत्यपरेणोल्मुकं परस्तात् करोति ये रूपाणीति । अथोदपात्रेणावनेजयत्यपसव्यमसावक्नेनिक्ष्वेति यजमानस्य पितृप्रभृतींस्त्रीनुपमूलं सकृदाच्छिन्नान् कुशान् रेखायां कृत्वा यथावनिक्तं पिण्डान् ददात्यसावेतत्त इति ।

अस्यार्थः—दक्षिणेन हस्तेनेत्यर्थः, एकदर्भेण तन्मध्यमिति पूर्व्वोक्तदेवलवचनादेकदर्भेणैवोल्लेखनं कार्य्यम् ।

छन्दोगानान्तु दर्भपिञ्जल्या हस्तद्वयेनैवोल्लेखनम् ।

पिञ्जल्याग्रिमसंलग्न दक्षिणेतरात् करात् ।
अन्वारभ्य च सव्येन कुर्य्यादुल्लेखनादिकम् ॥

इति छन्दोगपरिशिष्टवचनात् ।

तत्रैकश्रुतिमूलत्वाद्ब्रह्मपुराणवचनमपि छन्दोगविषयमेव ।

यथा—

गृहीत्वा दर्भपिञ्जलीं ततो वामेन पाणिना ।
सव्येतराभ्यां हस्ताभ्यां कुर्य्यादुल्लेखनं द्विजः ॥

परिशिष्टे पठितमुक्तम्—

एतदेव हि पिञ्जल्या लक्षणं समुदाहृतम् ।

इत्युक्तत्वात् पवित्ररूपैव पिप्पली ग्राह्या। अपहता इति मन्त्रेणो-
ल्लिखति दक्षिणायां रेखामिति शेषः।

तथा गोभिलः—

सव्येन पाणिना दर्भपिञ्जलीं गृहीत्वा दक्षिणायां रेखामुल्लि-
खेदपहता असुरा रक्षांसि वेदिषद इति।

कात्यायनगोभिलाभ्यामपहता इति मन्त्राभिधानाविरा-
काङ्क्षतया मिहन्ति मन्त्रो द्विजानां नास्ति किन्तु शूद्रस्यैवेत्याधु-
निकोक्तं न ग्राह्यम्। पौराणिकविधेः सामान्यशीलात्।

अनेन मन्त्रेण समुल्लिखेदिति रत्नाकरधृतपाठेनोल्लेखनविधानात्
* [ शूद्रपक्षे तदाधाय ततः सम्मुखयाद्याद्यदयेनैवोल्लेखनम्।
अपरेणेति मामकस्येनेत्यर्थः।

यथा गोभिलः—

सव्येन पाणिनोल्मुकं ] गृहीत्वा पर्युषामूर्ते निदध्यात् ये
रूपाणि प्रतिमुञ्चमाना इति।

अथ पितॄनावाहयति एत पितर इति।

छन्दोगपरिशिष्टम्—

सव्येन पाणिनेत्येवं यदत्राचक्षदीरितम्।
परिग्रहणमात्रं तत् मध्यमादिगतिः मतम्॥

एतयोल्मुकआमणं निरस्नेनोभित।
अनाहिताग्निरित्यधिकृत्य नात्रोल्मुकनिधानं न स्तरः

* ख पुस्तके [ ] चिह्नितांशो नास्ति।

नाञ्जनाभ्यञ्जने न सुरभीति गोभिलनिषेधात्तुल्यन्यायादाञ्जने-
ष्विनामपि निरग्नीनां तन्निवृत्तिः।

अथोदपात्रेणेति यजमानस्य पितृप्रभृतीँस्त्रीनुद्दिश्यावनि
जयति सिञ्चयति रेखामिति शेषः।

असाविति सम्बोधनान्तनामनिर्देशः।

अत्र केचित्—

एतदर्थमादवनेनिक्ष्वेतावन्मात्रेणावनेजनमाचरन्ति।

तन्मन्दं—युष्मदर्थस्य निजधातोर्मध्यमपुरुषात्मनेपदान्तस्य
दानार्थत्वाभावात् पितृप्रभृतीँस्त्रीनुद्दिश्य इत्यनेन तिलोदकदान-
स्यैव प्रशस्तत्वात्।

गरुड़पुराणे—

अमुकगोत्र पितरमुकशर्म्मन्नेतत्ते जलमवनेनिक्ष्व स्वधेति
विशेषविधानाच्च।

अतएवात्र देवद्रव्यस्य जलस्याभिलापो दुर्निवारः।

अपुष्यं जलमादाय तेषां पृष्ठे पृथक् पृथक्।

अमुकामुकगोत्रैतत्तुभ्यमम्भः स्वधा नमः॥

इति ब्रह्मपुराणवचनाच्च।

तथा गोभिलः—

अथ पितृनाह्वयति एत पितर इति सव्येन पाणिनोदपात्रं
गृहीत्वा दर्भेषु निनयेत्। पितुर्नाम गृहीत्वा असावेतत्तेऽवने-
निक्ष्व ये चात्र त्वामनु यांश्च त्वमनु तस्मै ते स्वधा अथ उपस्पृश्य
एवमेवेतरयोरिति।

अत्र एतत्त इत्यनेन विशेषस्य जलस्याधिपलभ्यता, इतरयोः पितामहप्रपितामहयोरित्यर्थः।

उपमूलमिति मूलसमीपे सकृदाच्छिन्नान् आहरणसमय एव छिन्नान् न पुनरित्यर्थः। रेखायां रेखोपरि कृत्वा दक्षिणाग्रान् कुशान् आस्तीर्येत्यर्थः।

अत्र कपिञ्जलाधिकरणन्यायेन कुशांस्त्रींस्त्रीनिति श्रीदत्तः। तन्मन्दम्।

यत्रवास्तुनि मुख्याद्य स्तम्बे दर्भवटी तथा।
दर्भसंख्या न विहिता विष्टरास्तरणेषु च॥

इति छन्दोगपरिशिष्टविरोधात्।

एवञ्चोक्तक्रमानुरोधादाजवनेयिनामास्तरणात्प्रागवनेजनं मन्तव्यम्।

अत्र श्राद्धचिन्तामणिः—

पारस्करे दर्भेषु त्रींस्त्रीन् पिण्डानवनिज्य दद्यात् इति पार्व्वणसूत्रे दर्भेष्ववनिज्येत्यन्वयादादौ दर्भास्तरणमित्याह। तन्मन्दम्।

पिण्डान् दद्यादिति मुख्यक्रियान्वयस्यैव न्याय्यत्वादुभयक्रियान्वये वाक्यभेदगौरवात् पिण्डपित्र्ययज्ञवदुपचार इत्यनेन तत्रैव तदुक्तक्रमातिदेशाच्च।

न चातिदेशाद्दर्भेषु पिण्डदानप्राप्तौ पुनर्दर्भेष्विति वैफल्यभिया अवनेजनान्वयः* इति वाच्यम्।

---

* क पुस्तके अवनेजनम्।

नानामुनिवचनेषु पितृयज्ञातिदेशप्राप्तद्रव्यान्वयादिदर्शनात्। पारस्करसूत्रेऽपि तथैवावगमात् पितृयज्ञोक्तक्रमलङ्घनस्याध्यात्वात्।

यथा मार्कण्डेयपुराणे—

सलिलेन ततोऽन्येन पिण्डांश्च पितृयज्ञवत्।
पितृनुद्दिश्य दर्भेषु दद्यादुच्छिष्टसन्निधौ॥

मात्स्ये—

निधाय दर्भान् विधिवान् दक्षिणाग्रान् प्रयत्नतः।
सर्वर्णान्नेन वै दद्यात् पिण्डांश्च पितृयज्ञवत्॥

पार्व्वणे गोभिलः—

पिण्डपितृयज्ञवदुपचार इत्यनन्तरं उच्छिष्टसमीपे दर्भेषु मधुमध्वन्नमीमदन्त इति जपित्वा त्रींस्त्रीन् पिण्डान् दद्यात्।

किञ्च—उपमूलं सकृदाच्छिन्नान् कुशान् रेखायां कृत्वेत्यनेन पितृयज्ञे उपमूलसकृदाच्छिन्नदर्भविशेष उक्तः।

पार्व्वणे दर्भेष्वित्यनेनाविशेषितदर्भाभिधानाद्दर्भमात्रस्यैवोपयोगोऽभिहित इति पुनरुक्तिः।

एतदेव मत्स्यपुराणे—

निधाय दर्भान् विधिवानित्युक्तम्।

ब्रह्मपुराणेऽपि—

समूलान् दक्षिणाग्रांश्च रेखायां प्रस्तरेत् कुशान्।

इति समूलत्वमुक्तम्।

एवञ्च पूर्व्वोक्तवचनेषु दर्भेष्विति सफलं भवति।

किञ्च—अग्निपुराणादौ दर्भास्तरणात् प्रागवनेजनमुक्तम्।

यथाग्निपुराणे—

शेषमन्नमनुप्राप्य सर्व्वमन्नं तथैव च *।
उद्धृत्योच्छिष्टपार्श्वे तु कृत्वा चैवावनेजनम्।
दद्यात् कुशेषु त्रीन् पिण्डान् पितॄणामपसव्यवत्॥

ब्राह्मे—

वराहो भूमयोक्षिप्य समुत्सृज्य कुशैरपि।
दक्षिणाग्रान् कुशान् दत्त्वा तेषामुपरि वै तिलान्॥
समुत्सृज्य जलमिति शेषः।

सामगानान्तु—

उदपात्रं गृहीत्वा दर्भेषु निनयेदिति पूर्व्वोक्तगोभिलसूत्राद-वनेजनात् प्राक्दर्भास्तरणम्।

तथाच नान्दीमुखे छन्दोगपरिशिष्टे—

प्रागग्रेष्वथ दर्भेषु आद्यमामन्त्र्य पूर्व्ववत्।
अपः क्षिपेन्मूलदेशेऽवनेनिक्ष्वेति निश्चिताः॥

तत इत्येकश्रुतिमूलत्वात्।

समूलान् दक्षिणाग्रांश्च रेखायां प्रस्तरेत् कुशान्।
तथा वै चमसादिभ्यस्त्वर्घ्यपात्रेभ्य एव च॥
अपुष्पं जलमादाय तेषां पृष्ठे पृथक् पृथक्।
अप्रदक्षिणं नेनिज्यात् गोत्रनामानुमन्त्रितम्॥

---

* क पुस्तके तथैव तु।

अमुकामुकगोत्रैतत्तुभ्यमन्नं स्वधा नमः।
अवनेनिक्ष इत्यन्ते जपेच्च सुसमाहितः॥

इति ब्रह्मपुराणवचनं सामगपरं मन्तव्यम्।

अतःपरं सर्व्वशाखिसाधारणो देवताध्य इति विशेषः।

आद्यावसाने श्राद्धस्य त्रिराहत्य जपेत् सदा।
पिण्डनिर्व्वपणे चैव जपेदेतत् समाहितः॥

इति ब्रह्मपुराणात् पिण्डनिर्व्वपणे इति पिण्डदानाव्यवहितकाले इत्यर्थः।

अत्र केचित्—

वाजसनेयिभिः कुशेन नीवी दृढीकार्य्या पितृयज्ञे प्रत्यवनेजनात् परं नीवीं विस्रंसेत्यभिधानात् पिण्डात् पूर्व्वं नीवीदृढीकरणमाक्षिप्यते इति वदन्ति।

अथ पितृनाह्वयति अत्र पितर इति गोभिलोक्तं पिण्डे पित्रावाहनं सामगानामेव न तु वाजसनेयिनाम्।

यन्नाम्ना स्वशाखोक्तं यस्य यावत् प्रकीर्त्तितम्।
तस्य तावति शास्त्रार्थे कृते सर्व्वः कृतो भवेत्॥

इति छन्दोगपरिशिष्टवचनात्।

तच्च सामगैर्दर्भास्तरणात् परमवनेजनात् प्राक् कार्य्यं गोभिले तथा क्रमात्।

तथा दर्भेषु मध्वत्रमीमदन्त इति जपित्वा त्रींस्त्रीन् पिण्डान् दद्यादिति गोभिलोक्तो मधुवाता अत्रमीमदन्त-

जपोऽपि सामगानामेव अन्येषां न च जपः सकृदिति केचित्।
प्रतिपिण्डदानमित्यपरे।

कात्यायनः—

यथावनिक्तं पिण्डान् दद्यादसावेतत्त इति।

पिण्डानिति पितृपक्षे त्रीन् मातामहपक्षे च त्रीन्।

पारस्करे—*

दर्भेषु त्रींस्त्रीन् पिण्डानवनेज्य दद्यादिति वीप्सानिर्देशात्।

तथा ब्रह्मपुराणे—

मातामहानामप्येवं ददौ पिण्डानि शूकरः।

असाविति सम्बोधनान्तनामनिर्देशः—एतदिति नपुंसकलिङ्गपिण्डपदनिर्देशः।

यथावनिक्तमवनेजनानुक्रमेण दर्भस्य मूलमध्याग्रदेशेष्वित्यर्थः।

तथाच ब्रह्मपुराणम्—

मध्वाज्यतिलसम्मिश्रं सर्व्वव्यञ्जनसंयुतम्।
उच्चासादाय पिण्डन्तु कृत्वा बिल्वफलोपमम्॥
दद्यात् पितृभ्यस्तेभ्यो दर्भमूलाद्यथाक्रमम्।

दर्भमूलमेवारभ्येत्यर्थः। अत्र मध्वादियुक्तमुच्चमन्नमादाय बिल्वफलोपमं कृत्वेत्यन्वयात् मध्वादिभिः पिण्डघटना प्रतीयते।

देवलः—

मधुसर्पिस्तिलैर्युक्तान् त्रीन् पिण्डान् निर्व्वपेद्बुधः।

---

* अ पुस्तके पारस्कर।—

अग्नौकरणशेषसिग्धान्नन्तु प्रागुक्तमेव।

वायुपुराणे—

सव्येतराभ्यां पाणिभ्यां प्रथमं पिण्डमावपेत्।

दक्षिणहस्तेन पिण्डग्रहणादर्थात् वामहस्तस्थितसतिलजल-प्रक्षेपणोत्सर्गादावन्यहस्तस्य वारणता न तु हस्तद्वयेन पिण्डनिर्वापः।

श्राद्धे हवनकाले च पाणिनैकेन निर्वपेत्।

तर्पणे तूभयं कुर्य्यादेष एव विधिः स्मृतः॥

इत्यादिपुराणविरोधात्।

प्रत्येकपिण्डदानानन्तरं जलस्पर्शन कार्य्यम्।

यथा गोभिलः—

पसावेव ते पिण्डो ये चात्र त्वामनु यांश्च त्वमनु तस्मै ते स्वधा। पप उपस्पृश्य एवमेवेतरयोरिति।

मनुः—

न्युप्य पिण्डांस्ततस्तांस्तु प्रयतो विधिपूर्व्वकम्।

तेषु दर्भेषु तं हस्तं निमृज्याल्लेपभागिनाम्॥

उदकं निनयेच्छेषं शनैः पिण्डान्तिके ततः।

शेषं पिण्डशेषं पिण्डान्तिके निनयेदित्यर्थः। उदकञ्च प्रत्यव नेजनार्थं निनयेत्।

विष्णुपुराणे—

दर्भमूले लेपभुजः प्रीणयेल्लेपघर्षणैः।

तच्च पितृपक्ष एव कार्य्यं न तु मातामहपक्षे।

लेपभाजश्चतुर्थाद्याः पित्राद्याः पिण्डभागिनः।

इति ब्रह्मपुराणे प्रपितामहादीनां त्रयाणामेव लेपभागित्व-कथनात् ।

गारुडे—

ततः पिण्डशेषविकिरणं पिण्डान्तिके ॐ लेपभुजः प्रीयन्ता-मिति स्तरणकुशेन हस्तसम्मार्जनं प्रक्षालितपिण्डपात्रोदकेन प्रतिपिण्डसेचनं कृताञ्जलिश्च पितरो मादयध्वं यथाभाग-मावृषायध्वमिति जपः ।

अयञ्च प्रत्यवनेजनक्रमः सामगानामेव । वाजसनेयिनान्तु—अमीमदन्त इति जपानन्तरं प्रत्यवनेजनं कात्यायनो वक्ष्यति । एवञ्च ब्रह्मपुराणवचनमपि सामगपरमेव ।

यथा ब्रह्मपुराणे—

ततो दर्भेषु विधिवत् सम्मार्ज्य च करं ततः ।
प्रक्षाल्य च जलेनाथ हिरण्यस्य हरिं स्मरेत् ॥
तेभ्यः संस्रवपात्रेभ्यो जलेनैवावसेचनम् ।
दत्त्वा च पितरश्चेति पठित्वोदङ्मुखस्ततः ॥
सञ्चिन्तयेत् पितॄंस्तत्र * सर्व्वान् भास्करमूर्त्तिकान् ।

हिरण्यस्येति मैथिलाः पठन्ति वयन्तु [illegible] दक्षिणकर्म्मणः । करप्रक्षालनन्तु पिण्डपात्रोपरि कृत्वा हिरण्यस्य हरिं स्मृत्वा तत्-पात्रक्षालने प्रत्यवनेजनं कार्य्यं "तेभ्यः संस्रवपात्रेभ्यः" इत्यनेन करक्षालनजलकथनात्, एवकारोऽप्यत एव ।

---

* ख पुस्तके सदा ।

गरुड़पुराणे—

प्रक्षालितपिण्डपात्रोदकेन प्रतिपिण्डसेचनमित्युक्तत्वाच्च।

तत्पात्रक्षालनेनाथ पुनरप्यवनेजयेत्।

इति छन्दोगपरिशिष्टवचनाच्च।

नचैतन्नान्दीमुखमात्रपरमिदं वचनं प्रकरणादिति मैथिलोक्तमुपादेयम्।

छन्दोगपरिशिष्टे—

गन्धादीन् निक्षिपेत्तूष्णीं तत आचामयेद्द्विजान्।

अन्यत्राप्येष एव स्यादयवादिरहितो विधिः॥

इत्यनेन परवचनेन नान्दीमुखेतिकर्त्तव्यतायाः पार्वणेऽप्यतिदेशात्।

एतेन पूर्व्ववदवनेनिक्ष्वेति कात्यायनवचनात् समुच्चयजलान्तरेण प्रत्यवनेजनं नतु पिण्डपात्रप्रक्षालनजलेनेति यदुक्तमाधुनिकैस्तदपास्तम्।

अत्र—

तथैव च बुधः कुर्य्यात् पुनः प्रत्यवनेजनम्।

इति मत्स्यपुराणे पुनः प्रत्यवनेजनोक्तेः प्रत्यवनेनिक्ष्वेति वाच्यम्।

वाजसनेयिनान्तु—पिण्डपात्रे जलं प्रक्षाल्य तज्जलं प्रत्यवनेजनार्थं स्थापयित्वा हिरापसव्य इति स्मृत्वा अत्र पितर इति जपित्वा उदक् परावृत्य श्वासं विधृत्य षड़्तून् नमस्कृत्य पुनः प्रत्यावृत्य अमीमदन्त इति जपित्वा प्रत्यवनेजनं कार्य्यमिति।

यथा पितृयज्ञे कात्यायनः—

अत्र पितर इत्युक्ता उदगास्ते आतमनादावृत्य * अमीमद-
न्तेति जपति अवनेनिज्य पूर्ब्बवत् नीवीं विस्रंस्य।

अस्यार्थः—

अत्र पितर इत्युक्ता अपितेत्यर्थः। पूर्ब्बोक्तगरुड़पुराणादये
जपः कृताञ्जलिना कार्य्यः। उदक् उदङ्मुखीभूय तमनं ग्लानिः
तत्र प्राणायामकालमेव तत्पर्य्यन्तमास्ते तिष्ठेदित्यर्थः। उदङ्मुख-
भवनन्तु आवृत्तेनैव।

यथा गारुड़े—

वामेन परावृत्य उदङ्मुखः प्राणांस्त्रिः संयम्य ॐ षड्भ्य
ऋतुभ्यो नमः, ॐ पितृभ्यो नमः। पुनः परावृत्य दक्षिणा-
मुखः—अमीमदन्त पितरो यथाभागमावृषायीषतेति जपति।
अत्र प्राणायामशक्तौ यथाशक्ति श्वासधारणं कार्य्यम्।

पुरोच्छ्वासादिति वक्ष्यमाणगोभिलवचनात्।

अत्र प्राणायामात्परं षड्ऋतुनमस्कारः कार्य्यो गरुड़पुराणात्।

तथाच मनुः—

आचम्योदक् परावृत्य त्रिरायम्य शनैरसून्।
षड्ऋतूंश्च नमस्कुर्य्यात् पितॄनेव च मन्त्रवत्॥

ऋतुनमस्कारमन्त्रस्तु वसन्तायेत्यादिः, पितृनमस्कारमन्त्रस्तु

---

* क पुस्तके आचमनादावृत्य।

अमीमदन्तेति। अमायां तु षड्भ्य ऋतुभ्यो नमः* इति गरुड़पुराणोक्तः।

मत्स्यपुराणेऽपि—

तेषु दर्भेषु तं हस्तं निमृज्याल्लेपभागिनाम्।
तथैव च बुधः कुर्यात् पुनः प्रत्यवनेजनम्॥
षड्भ्यृतून् नमस्कुर्य्यात्तत्र पितरस्त्विति।

आहृत्यामीमदन्तेति जपतीति आहृत्य तेनैव पथेत्यर्थः। अत्राहृत्येत्यभिधानादाहरणानन्तरं वाजसनेयिनां जपः।

सामगानान्तु आहृतिसमय एव जपः, गोभिले वर्त्तमाननिर्द्देशात्।

यथा गोभिलः—

अथ जपति अत्र पितरो मादयध्वं यथाभागमावृषायध्वमिति। अपपर्य्याहृत्य पुरोच्छ्वासादभिपर्य्यावर्त्तमानो जपेदमीमदन्त पितरो यथाभागमावृषायिषतेति।

अपपर्य्याहृत्य वामावर्त्तेनाहृत्येत्यर्थः। अभिपर्य्यावर्त्तमानः प्रदक्षिणक्रमेणावर्त्तमानो जपेदित्यर्थः।

तथा छन्दोगपरिशिष्टम्—

आहृत्य मादयध्वञ्च पितॄन् ध्यायन् यथार्हतः।
जपंस्तेनैव चाहृत्य ततः श्वासं विमोचयेत्॥

तत्राधुनिकाः—

---

* ख पुस्तके पितृभ्यो नमः पूर्वमिव।

षडृतुनमस्कारो वाजसनेयिनां नास्ति यतः कात्यायनेन ऋतुनमस्कारो नोक्तः किन्तु तत्स्थाने नमो वः पितर इत्यादिना षडञ्जलिकरणम्। अतश्छन्दोगानामेव ऋतुनमस्कार-स्तेषां षडञ्जलिविधानाभावात् सोऽपि वासःसूत्रदानानन्तरमेव ब्रह्मपुराणीयक्रमानुरोधादिति वदन्ति।

तन्मन्दम्—

ऋतुनमस्कारस्थाने षडञ्जलिविधानमित्यत्र प्रमाणाभावात् वसन्तादिपाठ-षडञ्जलिकरणयोर्ऋतुनमस्कार-पितृनमस्कारनियुक्तयोर्भिन्नविषयत्वाच्च पारस्करासुक्तत्वेऽपि ऋ[ऋतुनमस्कारस्य पुरा-णोक्तत्वेन सर्वशाखिसाधारणत्वात् सामगानामिव वाजसनेयि-नामप्यनिवार्य्यत्वाच्च।

अन्यथा—गोभिलासुक्तत्वेन सामगानां कथं तत्राभिः ब्रह्मपुराण एवोभयोः षडञ्जलि]ऋतुनमस्कारयोर्विहितत्वाच्च।

तथा ब्रह्मपुराणे—

नीवीं विसंस्य च जपेन्नमो वः पितरस्त्विति।
अत्र षट्सुवसन्ताद्य मन्त्रं कृत्वा कृताञ्जलिः॥
एतद्वः पितरो वास इति जप्यन् पृथक् पृथक्।
अमुकामुकगोत्रैतत्तुभ्यं वासः पठेत्ततः॥
दद्यात् क्रमेण वासांसि श्वेतवस्त्रभवा दशाः।
क्षौमं सूत्रं नवं दद्यात्कार्पं † कार्पासमेव वा॥

---

* ख पुस्तके [ ] चिह्नितांशो नास्ति।

† क पुस्तके क्षामं।

गते वयसि रूढानि स्वानि लोमानि चापि वा।

मधु पाद्यं अन्नं पुष्पं दीपं धूपविलेपनम्॥

बलिं दद्याच्च विधिवत् पिण्डोऽष्टाङ्गो भवेद्यथा।

पूजयित्वा च पिण्डस्थान् पितॄनथ यजेदृतून्॥

वसन्ताय नमस्तुभ्यं ग्रीष्माय च नमो नमः।

वर्षाभ्यश्च शरत्संज्ञऋतवे च नमः सदा॥

हेमन्ताय नमस्तुभ्यं नमस्ते शिशिराय च।

मासमंवत्सरेभ्यश्च दिवसेभ्यो नमो नमः॥

अत्र षट्पुरुषात्मक मन्त्रमित्यनेन षडञ्जलिकरणमुक्तं ऋतुनमस्कारोऽपि इत्युक्तः।

एतच्च नीवीविस्रंसनं वाजसनेयिनामेव नतु सामगानां कात्यायनवचनैकवाक्यत्वात्। षडञ्जलिविधानमाश्चर्य्याच्च नीवीविस्रंसनात् परमाचमनद्वयं हिराचमनमकरणे नीवीं विस्रंस्य परिधाय चेति बौधायनवचनात्।

बलिं मांसमन्नादिकं मध्वाद्यष्टकेनाष्टाङ्गः पिण्डो यथा भवेदित्यर्थः।

गन्धधूपादिकं दद्यात् कृत्वा * प्रत्यवनेजनम्।

दीपप्रज्वालनं कुर्य्यात् तद्वत् पुष्पार्चनं बुधः॥

इति मत्स्यपुराणे चादिपदात् ब्रह्मपुराणोक्तमध्वादीनां ग्रहणे दीपपुष्पयोः पुनरुपादानं तदग्राह्यौ चतुर्भिः क्रमोक्तैर्गन्धपुष्पधूपदीपैरवश्यं पूजनमिति बोधयति।

---

* च पुनर इत्वा।

एतच्च तूष्णीमेव गन्धादीन् निक्षिपेत्तूष्णीमिति परिशिष्ट-वचनात्।

अथच्च पिण्डपूजानन्तरमृतुनमस्कारक्रमः पूर्व्वलिखितमत्स्य-पुराणगरुड़पुराण*मनूक्तक्रमेण सङ्केच्छाविकल्पितो मन्तव्यः।

पितृयज्ञे कात्यायनः—

नमो व इत्यञ्जलीन् करोति एतद्व इत्युपास्यति सूत्राणि प्रतिपिण्डमूर्णां वा वयस्युत्तरे यजमानस्य लोमानि वा ऊर्ज्ज-मित्यपो निषिञ्चति अवदाय जिघ्रति।

अस्यार्थः—

अञ्जलीनिति बहुवचनात् पूर्व्वोक्तमत्स्यपुराणवचनैकवाक्यतया च षडञ्जलिकरणं मन्तव्यम्।

अत्र मन्त्रे पितर इति सर्व्वत्र बहुवचनात् समुदितषट्-पितॄनुद्दिश्य प्रत्येकमञ्जलिर्मन्त्रयः, न तु यथासंख्यम्। अतएव पितृतावैकोद्दिष्टे बहुवचने एकवचनोह इति।

सामगानान्तु—

नमो वः पितरः पितरो नमो व इति पितृषट्कोद्देश्यकम-ञ्जलिद्वयं ततश्च गृहान्नः पितरो दत्त इति गृहावेक्षणं कृत्वा सदोवः पितरो देष्म इति पिण्डानामुदीक्षणं कार्य्यम्।

यथा गोभिलः—

अथाञ्जलिकृतो जपति नमो वः पितरः पितरो नमो व

* अत्र पुस्तके गरुड़पुराणवचनं नास्ति।

इति गृहानवेक्षते गृहाणः पितरो दत्त इति पिण्डानवेक्षते सदोयः पितरो देष्म इति ॥

अञ्जलिकृतः कृताञ्जलिरित्यर्थः किञ्चित् सङ्कुचितं संयुत-पाणिद्वयमञ्जलिः ।

तथाचामरः—द्वौ युतावञ्जलिः पुमानिति ।

अत्र श्रोदत्तादयः—

अनाहिताग्नेर्नीवोपकल्पकनिधानमित्याद्यभिधाय वासस् निदध्यादिति गोभिलेन निरग्नेर्वासोविधानात् तत् पूर्व्वोक्तानां नमो वः पितर इत्यादीनां निवृत्तिरित्याहुः ।

तन्मन्दं—सव्येन पाणिना सूत्रतन्तुं गृहीत्वा पूर्व्वस्यां कर्व्वां पिण्डे वासो निदध्यात् पितुर्नाम गृहीत्वा अमायेतत्ते वासो ये चेत्यादि अप उपस्पृश्य एवमेवेतरयोः । इति कर्व्वां वासोवि-धानात् निरग्नेः कर्व्वभावे वासोनिवृत्तौ प्राप्तायां वासो निदध्यादिति विधेरव्यर्थासिद्धराऽतिदेशप्राप्तस्य नमो वः पितर इत्यादेरनिवार्य्यत्वात् ।

एतद इति जैतपप्रभवा दशा इति ब्रह्मपुराणवचनैकवाक्य-तया सूत्राणि दशोद्भवानि देयानि असम्भवे तु कार्पासगणसूत्राणि ऊर्णादिकं वा अन्यत् देयं प्रतिपिण्डमुपास्यति उपक्षिपतीत्यर्थः ।

अत्र प्रतिपिण्डमेतद इति मन्त्रविनियोगाद्बहुवचनस्या-भ्यर्हार्थतया विकृतायेकोद्दिष्टेऽपि नोहः ।

अत्राधुनिकाः—

एतद्वः पितरो वास इत्यादिः पितरो दत्त इत्यन्तः सर्व्वमन्त्र एव पठनीयः, अन्यथा गृहाण इत्यस्य विनियोगाभावेन वैफल्यादित्याहुः। तदशुद्धं—

एतद्वः पितरो वास इति ब्रह्मपुराणे एतत्प्रकारेण तत्स्वरूपमात्रग्रहणात्। अन्यथा एतद्व इत्येतावन्मात्रमुच्यते इत्यर्थके वासःसूत्रदानमन्त्रे गृहाण इत्यस्यासमवेतार्थत्वेन बाधितत्वाच्च गृहाण इत्यस्य गृहादेर्वर्णी सामगानां पृथक् नियुक्तत्वाच्च।

ऊर्ज्जमिति—अत्र मैथिलाः—

कात्यायने गोभिले च पितृयज्ञे सूत्रदानात्परं ऊर्ज्जमिति यः पिण्डसेक उक्तः स तु ब्राह्मणाभावात्तत्रैवयुक्तः पार्व्वणश्राद्धे तु ब्राह्मणाचमनाद्यभिधाय स एव पिण्डसेकः स्वधावाचनात् परं पारस्कर—गोभिलाभ्यामुच्यते न तु पृथगिति नास्ति पार्व्वणे सूत्रदानात्परं पिण्डसेकः। अतएव वाजसनेयिनां पिण्डोत्तोलनमपि तस्मिन्नवसर एवेत्याहुः।

तदसत् पार्व्वणेऽनिर्दिष्टप्राप्तः स एव पिण्डसेकः स्वधावाचनात्परमुच्यते न पृथगित्यत्र प्रमाणाभावात्।

अथवा लाघवमेव प्रमाणं अन्यथा श्रुतिद्वयकल्पनागौरवं स्यादिति चेन्न गौरवस्य प्रमाणसिद्धत्वात्।

यथा गरुड़पुराणे—

एतद्वः पितरो वास इत्युच्चार्य्य अमुकगोत्र पितरमुकदेवशर्म्मन्नेतत्ते वासः स्वधेति सूत्रदानं वामेन पाणिना उदपात्रं गृहीत्वा ऊर्ज्जं वहन्तीरिति पिण्डानामुपरि वारिधारात्यागः

पिण्डेषु गन्धादिदानमित्यारभ्य गोत्रं नो वर्द्धतामित्यन्तमुक्ता पिण्डेषु अर्घ्यसम्बन्धान् कुशान् पवित्राणि चास्तीर्य्य पितृब्राह्मण-मापृच्छ्य स्वधां वाचयिष्ये वाच्यतामिति तेनोक्ते पितृपिता-महेभ्यः स्वधोच्यतामस्तु स्वधा इत्युक्ते ऊर्ज्जं वहन्तीरिति पिण्डोपरि वारिधारा दद्यादिति पुनः पिण्डसेक उक्तः । अस्मादेव वचनात् पिण्डपूजनात् प्राक् पिण्डसेको मन्तव्यः ।

तथा विष्णुपुराणे—

उदकेनैकेनैव दत्त्वा सर्व्वाणेन भूतले ।
सतिलेन ततः पिण्डान् सम्यक् दद्यात् समाहितः ॥
पितृतीर्थेन सतिलान् दद्याद्दूर्द्ध्वं जलाञ्जलीन् ।
*मातामहेभ्यश्च तथा पिण्डांस्तेनैव निर्वपेत् ॥

तेनैव पितृतीर्थेनेत्यर्थः । अत्र जलाञ्जलिविधानात् हस्तद्वयेन वारिधारादानम् ।

किञ्च —एतेन पिण्डपितृयज्ञो व्याख्यातः ।

इत्यनेनाष्टकायाहैतिकर्त्तव्यता पिण्डपितृयज्ञे गोभिले नातिदिश्यते † सैव पार्व्वणेऽपि पिण्डपितृयज्ञवदुपचार इत्यनेनातिदिश्यते ।

अन्वष्टकाश्राद्धे च सव्येन पाणिना उदपात्रं गृहीत्वा पिण्डान् सिञ्चेत् ऊर्ज्जं वहन्तीरित्यनेन सूत्रदानात् परं पिण्डसेक उक्तः

* ख पुस्तके पितामहेभ्यश्च ।
† ख पुस्तके अतिदिश्यताम् ।

स कथमन्यथा भवितुमर्हति ततश्च पार्श्वणोक्तः स्वधावाचनात् परः पिण्डसेकः पृथगेवेति।

अवदाय जिघ्रतीति। अवदाय गृहीत्वा पिण्डानिति शेषः।

मनुः—

अवजिघ्रेच्च तान् पिण्डान् यथान्युप्तान् समाहितः।

यथान्युप्तान् पितृपिण्डानुक्रमेणेत्यर्थः। एतच्च पितृयज्ञोक्तक्रमानुरोधात् पिण्डसेकपूजानन्तरमेव कार्य्यं विरोधाभावात्।

नच—

पवित्रान्तर्हितान् पिण्डान् सिञ्चेदुत्तानपात्रकृत्।

इति छन्दोगपरिशिष्टविरोध इति वाच्यम्।

तस्य छन्दोगविषयत्वात्।

अतएव पारस्करे दर्भानास्तीर्य्य स्वधां वाचयिष्ये इति पृच्छती त्यादिना स्वधावाचनमुक्त्वा एषणी निषिञ्चतीति केवलदर्भेष्वेव जलसेक उक्तः। पिण्डोपरि सकलकर्म्माङ्गतया प्राप्तत्वाद्दर्भास्तरणमपि भूम्यामेव।

तथा याज्ञवल्क्योऽपि—

सुप्रोक्षितमस्त्वित्युक्ते भूमौ सिञ्चेत्ततो जलम्।

इत्यनेन भूमौ जलसेको वाजसनेयिनामपीति मैथिलानां भ्रमो हेय एव।

पिण्डोत्तोलनमाघ्राणञ्च सामगानां नास्ति, गोभिलानुक्तत्वात् पवित्रान्तर्हितान् पिण्डानिति वचनाच्च।

किन्तु पितृश्राद्धे पिण्डाः सम्पन्ना इति प्रश्नः सुसम्पन्नाः सन्त्वित्युक्ते पिण्डे क्षीरधारां दत्वा पिण्डचालनमिति गरुड़पुराण-वचनात् पिण्डसम्पन्नप्रश्नं कृत्वा पिण्डचालनमात्रं कार्य्यम्।

वाजसनेयिनान्तु पिण्डसम्पन्नप्रश्नात्परं पिण्डोत्तोलनमेवेति क्षीरधारादानञ्च फलातिशयार्थम्।

पारस्करः—

आचान्तेषूदकं सुमनस्याक्षतानि अक्षय्योदकञ्च दद्यात्। अघोराः पितरः सन्त्वित्युक्ता विप्रैः सन्त्वित्युक्ते गोत्रं नो वर्द्धतां वर्द्धतामित्युक्ते—

दातारो नोऽभिवर्द्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च।
श्रद्धा च नो मा व्यगमद्बहु देयञ्च नोऽस्त्विति॥
अन्नञ्च नो बहु भवेदतिथींश्च लभेमहि।
याचितारश्च नः सन्तु मा च याचिष्म कञ्चन॥

इत्याशिषः प्रतिगृह्य स्वधावाचनीयान् दर्भानास्तीर्य्य स्वधां वाचयिष्ये इति पृच्छति, वाच्यतामित्यनुज्ञातः पितृभ्यः पितामहेभ्यः प्रपितामहेभ्यो मातामहेभ्यः प्रमातामहेभ्यो वृद्धप्रमातामहेभ्यश्च स्वधोच्यतामित्यस्तु स्वधेत्युच्यमाने एष्वपो निषिञ्चति उत्तानं पात्रं कृत्वा यथाशक्ति दक्षिणां दद्यात् विश्वे देवाः प्रीयन्तामिति दैवे च वाचयित्वा वाजे वाज इत्यनया विसृज्या-मावाजस्येत्यनुव्रज्य प्रदक्षिणीकृत्य प्रविशेत्।

आचान्तेषु ब्राह्मणेष्वित्यर्थः, आचमनार्थमुदकादिकं ब्राह्मणेभ्यो दद्यादिति तात्पर्य्यम्।

यथा विष्णुपुराणे—

पिण्डैर्मातामहांस्तद्वत् गन्धमाल्यादिसंयुतैः।
पूजयित्वा द्विजाग्र्याणां दद्यादाचमनं ततः॥
पितृभ्यः प्रथमं भक्त्या तन्मनस्को नरेश्वर।

पश्चाद्दैवब्राह्मणेभ्य इति शेषः।

द्विजाचमनात् परं स्वयमप्याचम्य ब्राह्मणाग्रभूमिसेकः कार्य्यः।

यथा ब्राह्मे—

तत आचामयेद्विप्रान् पैत्रानादौ ततः सुरान्।
आचम्याभ्युक्ष्य तां भूमिं दत्वाथ सुमनोऽक्षतान्॥

तथा मात्स्ये—

तथाचान्तेषु चाचम्य वारि दद्यात् सकृत्सकृत्।
तथा पुष्पाक्षतान् पश्चादक्षय्योदकमेव च॥

तथा छन्दोगपरिशिष्टम्—

तथाग्रभूमिमासिञ्चेत् सुसम्प्रोक्षितमस्त्विति।
शिवा आपः सन्त्विति च युग्मानेवोदकेन तु॥
सौमनस्यमस्त्विति च पुष्पदानमनन्तरम्।
अक्षतञ्चारिष्टञ्चास्त्वित्यक्षतान् प्रतिपादयेत्॥

विप्राग्रभूमिसेचनं हरिविषयमिति मैथिलाः। छन्दोगविषयमित्याधुनिकाः। तदुभयमेव हेयम्—

अन्यत्राप्येष एव स्याद्यवादिरहितो विधिः।

इति परिशिष्टोक्तत्वात्।

ब्राह्मगरुड़ादिपुराणोक्तत्वेन सर्व्वशाखिसाधारणत्वाच्च। अक्षता अत्र यवाः।

यथा वायुपुराणे—

आचान्तेषूदकं दद्यात् पुष्पाणि सयवानि च।

यथा गारुड़े—

ॐ सुसम्प्रोक्षितमस्त्विति भूमिमभ्युक्ष्य—

अपां मध्ये स्थिता देवा अप्सु सर्व्वं प्रतिष्ठितम्।
ब्राह्मणस्य करे न्यस्ताः शिवा आपो भवन्तु नः॥

इति जलदानम्।

लक्ष्मीर्वसति पुष्पेषु लक्ष्मीर्वसति पुष्करे।
लक्ष्मीर्वसेत् सदा गोष्ठे सौमनस्यं सदाऽस्तु मे॥

इति पुष्पदानम्।

अक्षतञ्चास्तु मे पुण्यं शान्तिः पुष्टिर्धृतिश्च मे।
यद्यच्छ्रेयस्करं * लोके तत्तदस्तु सदा मम॥

इति यवतण्डुलदानम्।

अयञ्च छन्दोगपरिशिष्टेन सह मन्त्रविकल्पो मन्तव्यः।

अन्ये तु—उभयमेव मिलित्वा वाच्यमित्याहुः।

एतच्चोदकपुष्पादिदानं पारस्करादिष्वर्घ्यदानसाहचर्य्यात् पितृद्देशकमेव ब्राह्मणस्तु प्रतिपत्तिस्थानम्। अतएव ब्राह्मणस्य करे न्यस्ता इत्युक्तं न तु ब्राह्मणाय दत्ता इति।

---

* श्व पुस्तके यथा श्रेयस्करम्।

ततश्चाब्राह्मणकश्राद्धेऽप्येतत् कार्य्यम्। अक्षय्योदकञ्च दद्यादिति।

तत्र विधिमाह छन्दोगपरिशिष्टम्—

अक्षय्योदकदानञ्च अर्घ्यदानवदिष्यते।
षष्ठ्यैव नित्यं तत् कुर्य्यान्न चतुर्थ्यां कदाचन॥

अर्घ्यदानवदिति नान्दीमुखे ज्येष्ठोत्तरकरत्वातिदेशार्थम्।

षष्ठ्यैवेति सम्बुद्धिस्थाने षष्ठीविधानं न चतुर्थ्येति चतुर्थ्यन्तसुधाशब्दनिषेधः।

अतएव गोभिले शर्म्मणोऽक्षय्यकाले त्विदुक्तम्।

नित्यमिति न केवलं प्रकरणान्नान्दीमुखे पार्व्वणेऽपीत्यर्थः।

अत्र केचित्—

अक्षय्योदकदानमिति वचनात् अक्षय्योदकञ्च दद्यादिति पारस्करे दानविधानाच्च अमुकशर्म्मणोऽमुकगोत्रस्याक्षय्योदकमिदं स्वधेति वाक्यमाहुः।

तन्न—शिवा आपः सन्त्वित्यादि प्रश्नप्रकरणगतत्वेन त्यागवाक्यानुपपत्तेः।

अतएव—

प्रार्थनासु प्रतिप्रोक्ते सर्व्वास्वेव द्विजोत्तमैः।
पवित्रान्तर्हितान् पिण्डान् सिञ्चेदुत्तानपात्रकृत्॥

इति परिशिष्टम्।

किञ्च—

अमुकगोत्राणां पितृ-पितामह-प्रपितामहानाममुकशर्म्मणां सर्व्वं दत्तमिदमन्नपानादिकमक्षय्यमस्त्विति यथाक्रमं पित्रादि-ब्राह्मणहस्ते सतिलजलदानं सर्व्वत्रास्त्विति ब्राह्मणवचनमिति गरुड़पुराणे स्पष्टमेवोक्तम्।

अत्र यथाक्रममिति वचनात् अर्घ्योदके चैव इति वचनाच्च प्रत्येकं देयं अमुकगोत्राणामित्यादि बहुवचनन्तु लिपिसंक्षेपार्थम्।

एतेन इदमुदकमक्षय्यमस्त्वित्यपि मतं निरस्तम्।

ततश्च—दत्तानामेव श्राद्धीयानामक्षय्यकार्य्यार्थमुदकं दद्या-दितिपेदित्यर्थः सम्पन्नः।

ब्राह्मे—

*सतिलान्तु पितृभ्यादौ दत्वा देवेषु साक्षतम्।
अक्षय्यमस्त्विति पितृषु प्रीयन्तामिति दैवते॥

पश्चाद्देवेषु साक्षतं यवोदकं दद्यादिति शेषः।

तत्र विधिमाह—अक्षय्यमस्त्विति।

देवाक्षय्यन्तु पारस्करे गोभिले च विश्वेदेवाः प्रीयन्तामित्यनेन दक्षिणानन्तरं विधानात् तदैव कार्य्यम्।

यच्च—

अक्षय्यं वाचयेत् विप्रान् चरमं क्षतिलोदकम्।

इति दैवलवचनम्।

तस्यायमर्थः—चरममन्नपानादिदानानां यथादत्तमेयमक्षय्यं

* क पुस्तके वर्त्तिनाश्व।

पितरान् ब्राह्मणान् याचयेत्। तिलोदकप्रक्षेपसहितं यथा स्यादिति नतु देवब्राह्मणविधया चरमसिति।

वैयर्थ्यात् सर्व्वचैव देवादित्वप्राप्तेः पूर्व्वोक्तवचनविरोधाच।

आशीःप्रार्थनमाह—अघोरा इति।

एतच प्राङ्मुखेनोपवीतिना कार्य्यम्।

यथा मात्स्ये—

कृत्वा स्वधावाचनकं विश्वेदेवेषु चोदकम्।
दत्त्वाशीः प्रतिगृह्णीयात् द्विजेभ्यः प्राङ्मुखो बुधः॥
अघोराः पितरः सन्तु सन्त्वित्युक्तश्च तैः पुनः।
गोत्रं तथा वर्द्धतां नस्तथेत्युक्तः पुनश्च तैः॥
दातारो नोऽभिवर्द्धन्तामन्नञ्चेत्यमुदीरयेत्।
एताः सत्याशिषः सन्तु सन्त्वित्युक्तश्च तैः पुनः॥

तथा मनुः—

विसृज्य ब्राह्मणांस्तांस्तु नियतो वाग्यतः शुचिः।
दक्षिणां दिशमाकाङ्क्षन् याचेतेमान् वरान् पितॄन्॥

प्राङ्मुखः सन् दक्षिणां दिशमाकाङ्क्षन् तिर्य्यक् चक्षुषा पश्य-न्नेव प्रार्थयेदित्यर्थः।

कुल्लूकभट्टेन तु—

आकाङ्क्षन् वीक्षमाण इति व्याख्यातम्।

न तु न सम्यगर्थ इति।

* क पुस्तके नास्तीदं

अन्ये तु मनुवचनं शाखान्तरीयं ब्राह्मणविसर्जनानन्तरमाशी-विधानादित्याहुः ।

अत्र पारस्करे गोभिले च—

अघोराः पितरः सन्तु विप्रैः सन्त्वित्युक्ते गोत्रं नो वर्द्धता-मित्युक्ते इत्यनेन प्रत्येकं ब्राह्मणप्रत्युत्तरमुक्त्वा दातारो नोऽभि-वर्द्धन्तामित्यादौ सर्व्वत्र प्रत्युत्तरदानानभिधानात् ।

मत्स्यपुराणे च—

एताःसत्याशिषः सन्तु सन्त्वित्युक्तश्च तैः पुनः ।

इत्यनेनैकदैव तन्त्रेण शेषे प्रत्युत्तरदानविधानात् दातार इत्यादिकमुक्त्वा एताः सत्याशिषः सन्तु इत्युक्ते ब्राह्मणैः सन्त्वित्येक-दैव प्रत्युत्तरं देयं न तु प्रत्येकमिति ।

मा च याचिष्म कञ्चनेत्यन्तमाशीःप्रार्थनं वाजसनेयिनां पारस्करे तावन्मात्राभिधानात् । गोभिले तु माच याचिष्म कञ्चन इत्यस्मात् परं—

अन्नं प्रवर्त्ततां नित्यं दाता शतं जीवतु । येभ्यः सङ्कल्पिता हिजास्तेषामक्षया तृप्तिर्भवतु ।

इत्यभिधानादेतत्पर्य्यन्तमाशीःप्रार्थनं सामगैः कार्य्यम् ।

यद्यत् वा स्वाद्गृह्योक्तं यस्य यावत् प्रकीर्त्तितम् ।

तस्य तावति शास्त्रार्थे कृते सर्व्वः कृतो भवेत् ॥

इति वचनात् ।

अत्र सामगैः—अघोरा इत्यादि गोत्रं न इत्यादिद्वयमुक्त्वा स्वधावाचनादि विश्वेदेवाः प्रीयन्तामित्यन्तं समाप्य दातारो-

नोऽभिवर्द्धन्तामित्यादिनाशीःप्रार्थनं कार्य्यं गोभिले तथाभिधानात्।

यथा गोभिलः—

आचान्तेषूदकं पुष्पाण्यक्षतानक्षय्योदकञ्च दद्यात्, अघोराः पितरः सन्तु, सन्त्वित्युक्ते गोत्रं नो वर्द्धतां वर्द्धतामित्युक्ते स्वधानिनयने दर्भान् अपवित्रानास्तीर्य्य स्वधां वाचयिष्ये इति पृच्छति वाच्यतामित्यनुज्ञातः पितृभ्यः पितामहेभ्यः प्रपितामहेभ्यो मातामहेभ्यः प्रमातामहेभ्यो वृद्धप्रमातामहेभ्यश्च स्वधेत्युच्यमाने धारां दद्यादूर्ज्जं वहन्तीरिति उत्तानं कृत्वा यथाशक्ति दक्षिणां दद्यात् विश्वेदेवाः प्रीयन्तामिति दैवे वाचयित्वा—

दातारो नोऽभिवर्द्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च।
श्रद्धा च नो मा व्यगमद्बहु देयञ्च नोऽस्त्विति॥
अन्नञ्च नो बहु भवेदतिथींश्च लभेमहि।
याचितारश्च नः सन्तु मा च याचिष्म कञ्चन॥
धर्म्मं प्रवर्द्धतां नित्यं दाता शतं जीवतु।
येभ्यः सङ्कल्पिता द्विजास्तेषां तृप्तिरक्षया भवतु॥

इत्याशिषः प्रतिगृह्य वाजे वाजे इत्येतया ऋचा विसृज्य आमावाजस्येत्यनुव्रज्य प्रदक्षिणीकृत्याभिवाद्य च वामदेव्यं गीत्वा प्रविशति।

स्वधानिनयने दर्भान् अपवित्रानास्तीर्य्येति—स्वधा नियते यस्मिन् स्वधानिनयनं पिण्डाधाराः तत्र दर्भानास्तीर्य्येत्यर्थः।

स्वधानिनयनं व्यक्तीकरोति परिशिष्टम्—

पवित्रान्तर्हितान् पिण्डान् सिञ्चेदुत्तानपात्रकृत्।

स्वधानिनयने वारिधारां दद्यादिति स्वधानिनयने आस्तृतदर्भे पिण्डोपरीत्यर्थः।

पारस्करे—

स्वधा वाचनीयेति। अर्थात् प्रकृतकर्म्मोपयुक्तभूमौ दर्भाना-स्तीर्य्य स्वधा विप्रैर्वाचयितव्येत्यर्थः। दर्भानित्युपलक्षणं पवित्राण्यपि। यथाग्नेये—

वाचनीया स्वधा दर्भानास्तीर्य्य सपवित्रकान्।

तत्र दर्भान् पवित्राणि चार्घसम्बन्धीन्येव।

यथा गारुड़े—

पिण्डेषु अर्घसम्बन्धान् कुशान् पवित्राणि चास्तीर्य्य पित्रादि-ब्राह्मणमापृच्छ स्वधां वाचयिष्ये वाच्यतामित्यादि।

अर्घसम्बन्धकुशान् अर्घ्याच्छादनकुशान् अर्घ्यसम्बन्धपवित्राणीत्यर्थः।

तथा ब्राह्मे—

अर्घ्यपात्राणि पिण्डानामन्तरे सपवित्रकान्।

निक्षिप्योर्जं वहन्तीति कोकातीयमयोजयत्॥

अर्घ्यपात्राणि अर्घपात्रस्थानि पवित्राणि पिण्डानामन्तरे निक्षिप्य ऊर्ज्जं वहन्तीरिति अनेन कोकानामनघास्तोयम-योजयदित्यर्थः।

एतेनार्घपवित्राणां विनियुक्तविनियोगविरोधात् पृथक् पवित्रे-णास्तरणमिति श्रीदत्तादिमतं निरस्तम्।

पिण्डोपरि पवित्रास्तरणस्य सामगपरमेवेति प्रागुक्तम्। अत्र पितृभ्य इत्यादावेकस्मिन् बहुवचनं साधुत्वमात्रार्थम्। सेकस्तु हस्तद्वयेन जलधारया कार्य्यः। ऊर्ध्वं वहन्तीरिति पिण्डोपरि-जलधारां दद्यादिति गरुड़पुराणात्।

पारस्करे गोभिले च—वृद्धप्रपितामहेभ्यश्चेत्यत्र चकारात् प्रत्येकं स्वधावाचनं मन्तव्यम्—

तन्त्रस्य विनिवृत्तिः स्यात् स्वधावाचन एव च।

इति तन्त्रताभिधानाच्च।

पारस्करे गोभिले च—

उत्तानं पात्रं कृत्वा यथाशक्ति दक्षिणां दद्यात्।

इति न्युब्जीकृतमर्घ्यपात्रमुत्तानं कृत्वेत्यर्थः।

परिशिष्टे—

पवित्रान्तर्हितान् पिण्डान् सिञ्चेदुत्तानपात्रवत्।

इति। अनन्तरमुत्तानपात्रवत् स्यादित्यर्थः। यथाशक्ती-त्यनेन दक्षिणाया आवश्यकत्वमुक्तम्।

बृहस्पतिः—

हतमश्रोत्रियं दानं हतो यज्ञस्त्वदक्षिणः।

तस्मात् पर्णं काकिणीं वा फलं पुष्पमथापि वा॥

प्रदद्यात् दक्षिणां यज्ञे तया स सफलो भवेत्।

काकिणी पणचतुर्थभागः *।

---

* ख पुस्तके पणचतुर्थभागः।

मात्स्ये—

वित्तशाठ्येन रहितं दद्याच्छक्त्या तु दक्षिणाम्।

ब्राह्मे—

स्वस्तित्युक्ते ब्राह्मणांस्तु देवान् हैमा वितर्य्य च।

रजतं दक्षिणां दत्त्वा पैत्रान् देवो गदाधरः॥

मार्कण्डेये—

राजतन्तु तथा पात्रं शस्तं श्राद्धेषु पुत्रक।

रजतस्य कथा कुर्य्याद्दर्शनं दानमेव च॥

रजते हि स्वधां दुग्धा पितृभिः श्रूयते मही।

तस्मात् पितॄणां रजतमतीव प्रीतिवर्द्धनम्॥

मात्स्ये—

शिवनेत्रोद्भवं यस्मात्तस्मात्तत् पितृवल्लभम्।

अमङ्गलं तद्यत्नेषु देवकार्य्येषु वर्जितम्॥

अत्र पारस्करे गोभिले च—विश्वेदेवाः प्रीयन्तामिति दैवे वाचयित्वेत्यभिधानाद्दिग्भिरापि विश्वेदेवाः प्रीयन्तामिति वक्तव्यम्। तथा याज्ञवल्क्यः—

विश्वेदेवाः प्रीयन्तां विप्रैः प्रोक्ते इदं जपेत्।

अतःपरं वाजसनेयिनां देवताभ्य इति विजपः कार्य्यः।

सामगैस्तु दातार इत्याद्याशिषो गृहीत्वा देवताभ्य इति विजपः कार्य्यः। स्वाध्यायमाने स्वाहस्येति वचनात् विसर्जनेनैव श्राद्धसमाप्तेस्तत्पूर्व्वकालस्यैवास्य्यत्वात्।

* वृषपृष्ठे यथा।

देवलः—

पश्चाच्च वैश्वदेवाख्यान् विप्रानुत्थापयेत्ततः।
एते हि पूर्व्वमासीनाः समुत्तिष्ठन्ति पश्चिमम्॥

याज्ञवल्क्यः—

वाजे वाजे इति प्रीतः पितृपूर्व्वं विसर्ज्जयेत्।
*[पितृपूर्व्वमित्यनेन पित्रादीनामेवेदं विसर्ज्जनम्।
तस्मा यात पथिभिर्देवयानैरिति मन्त्रलिङ्गाच्च।

तथा विष्णुपुराणे—

पश्चाद्विसर्ज्जयेद्देवान् पितॄन् पूर्व्वमहामते।]
मातामहानामप्येवं सह देवैः क्रमः स्मृतः॥
विसर्ज्जयेत् प्रीतिवचःसम्मानाभ्यर्च्चितांस्ततः।
निवर्त्तेताभ्यनुज्ञात आद्वारात्ताननुव्रजेत्॥

मातामहानामप्येवमित्यनेन मातामहादीनामपि पृथक् विसर्ज्जनमुक्तं नतु तन्त्रता इत्यर्थः।

ततो विसर्ज्जनमाह विसर्ज्जयेदिति—प्रीतिवचनं भवद्भिरहं कृतार्थीकृत इत्यादि, सम्मानञ्च पाणिग्रहणादिः।

यथा छन्दोगपरिशिष्टे—

युग्मानेव स्वस्ति वाच्यानङ्गुष्ठग्रहणं सदा।
कृत्वा धूर्य्यस्य विप्रस्य प्रणम्याथ विसर्ज्जयेत्॥

दक्षिणादानेन स्वस्ति वाचयित्वा धूर्य्यश्च पङ्क्तिमूर्द्धन्यस्य

---

* क पुस्तके [ ] चिह्नितांशो नास्ति।

ब्राह्मणस्यानङ्गुष्ठपाणिग्रहणं सदा नान्दीमुखे पार्व्वणेऽपि कृत्वा विप्रान् विसर्ज्जयेदित्यर्थः।

यत्र च मत्स्यपुराणादौ ब्राह्मणमात्रविसर्ज्जनं श्रूयते तत्र द्विजाङ्गे पित्रादीनामधिष्ठानेनाभेदाध्यासात् द्विजविसर्ज्जनेन पित्रादीनां विसर्ज्जनमुक्तमिति ध्येयम्।

तेनाब्राह्मणकर्त्तृकेऽपि वाजे वाजे इति पित्रादिविसर्ज्जनं कार्य्यं प्रीतिवचनहस्तधारणादिकन्तु बाधितमेवेति।

मत्स्यपुराणे—

ततस्तानग्रतः स्थित्वा प्रतिगृह्योदपात्रकम्।
वाजे वाजे इति जपन् कुशाग्रेण विसर्ज्जयेत्॥
बहिः प्रदक्षिणं कुर्य्यात् पदान्यष्टावनुव्रजेत्।

तान् ब्राह्मणानित्यर्थः।

यथोदकग्रहणादवारिधारावेष्टनेन विसर्ज्जनमिति केचित्।
वारिधारया प्रदक्षिणीकरणार्थमुदपात्रग्रहणमिति प्राञ्चः।
अदृष्टार्थमित्यपरे।

कुशाग्रेण पितॄन् कुशमूलेनार्थाद्देवान् विसर्ज्जयेदिति। ग्रहाद्बहिरित्यर्थः पदान्यष्टाविति विष्णुपुराणोक्तद्वारपर्य्यन्तानुव्रजनेन सह विकल्पः।

अनुव्रजनन्तु मिलितानामेव सर्व्वेषां विसर्ज्जनस्यैव दैवान्तत्वनियमात्।

पारस्करे गोभिले च आमावाजस्येत्यनुव्रज्येत्युक्तत्वात् ब्राह्मणाभावेऽनुव्रजनाभावादामावाजस्येति मन्त्रबाधः प्रदक्षिणोक्त्याभि-

वायेति ब्राह्मणानिति शेषः। जलधारया प्रदक्षिणीकरणमिति प्राञ्चः। ब्राह्मणाभावे प्रदक्षिणीकरणाभिवादनयोर्बाधः।

ततो ब्राह्मणानुज्ञातो गृहं प्रविश्य सर्व्वकर्म्मसाधारणमच्छिद्रमवधार्य्य श्रीविष्णुं स्मरेत्।

यथा—

* प्रमादात् कुर्व्वतां कर्म्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत्।
स्मरणादेव तद्विष्णोः संपूर्णं स्यादिति श्रुतिः॥

ततः पिण्डसमर्पणम्।

मनुः—

पतिव्रता धर्म्मपत्नी पितृपूजनतत्परा।
मध्यमन्तु ततः पिण्डमद्यात् सम्यक् सुतार्थिनी॥
आयुष्मन्तं सुतं सूते यशोमेधासमन्वितम्।
धनवन्तं धार्म्मिकञ्च सात्त्विकञ्च बहुश्रुतम्॥

मात्स्ये—

पत्नीन्तु मध्यमं पिण्डमाशयेद्विनयान्विताम्।
आधत्त पितरो गर्भं इाममन्त्रः सुतवर्द्धनम्॥

ब्रह्मपुराणे—

अन्यदेशगता पत्नी रोगिणी गर्भिणी तथा।
तदा तं जीर्णछागभञ्जगो वा भोक्तुमर्हति॥ —

---

* अ पुस्तके विष्णुस्मरणश्लोको नास्ति।

ब्राह्मणस्यानङ्गुष्ठपाणिग्रहणं सदा नान्दीमुखे पार्व्वणेऽपि क्षात्वा विप्रान् विसर्ज्जयेदित्यर्थः।

यत्र च मत्स्यपुराणादौ ब्राह्मणमात्रविसर्ज्जनं श्रूयते तत्र द्विजाङ्गे पित्रादीनामधिष्ठानेनाभेदाध्यासात् द्विजविसर्ज्जनेन पित्रादीनां विसर्ज्जनमुक्तमिति ध्येयम्।

तेनाब्राह्मणकश्राद्धेऽपि वाजे वाजे इति पित्रादिविसर्ज्जनं कार्य्यं प्रीतिवचनहस्तधारणादिकन्तु बाधितमेवेति।

मत्स्यपुराणे—

ततस्तानग्रतः स्थित्वा प्रतिगृह्योदपात्रकम्।
वाजे वाजे इति जपन् कुशाग्रेण विसर्ज्जयेत्॥
बहिः प्रदक्षिणं कुर्य्यात् पदान्यष्टावनुव्रजेत्।

तान् ब्राह्मणानित्यर्थः।

अथोदकग्रहणाद्वारिधारावेष्टनेन विसर्ज्जनमिति केचित्।
वारिधारया प्रदक्षिणीकरणार्थमुदपात्रग्रहणमिति प्राञ्चः।
अदृष्टार्थमित्यपरे।

कुशाग्रेण पितॄन् कुशमूलेनार्थाद्देवान् विसर्ज्जयेदिति। गृहाद्बहिरित्यर्थः पदान्यष्टाविति विष्णुपुराणोक्तद्वारपर्य्यन्तानुव्रजनेन सह विकल्पः।

अनुव्रजनन्तु मिलितानामेव सर्व्वेषां विसर्ज्जनस्यैव दैवान्तत्व-नियमात्।

पारस्करे गोभिले च आमावाजस्येत्यनुव्रज्येत्युक्तत्वात् ब्राह्मणा-भावेऽनुव्रजनाभावादामावाजस्येति मन्त्रपाठः प्रदक्षिणीकृत्याभि-

वाचयेति ब्राह्मणानिति शेषः । जलधारया प्रदक्षिणीकरणमिति प्राप्तः । ब्राह्मणाभावे प्रदक्षिणीकरणाभिवादनयोर्लोपः ।

ततो ब्राह्मणानुज्ञातो गृहं प्रविश्य सर्व्वकर्म्मान्तसाधारणमच्छिद्रमवधार्य्य श्रीविष्णुं स्मरेत् ।

यथा—

* प्रमादाद्यदि वा मोहात् प्रच्यवेताध्वरेषु यत् ।
स्मरणादेव तद्विष्णोः संपूर्णं स्यादिति श्रुतिः ॥

ततः पिण्डसमर्पणम् ।

मनुः—

पतिव्रता धर्म्मपत्नी पितृपूजनतत्परा ।
मध्यमन्तु ततः पिण्डमद्यात् सम्यक् सुतार्थिनी ॥
आयुष्मन्तं सुतं सूते यशोमेधासमन्वितम् ।
धनवन्तं धार्म्मिकञ्च सात्त्विकञ्च बहुश्रुतम् ॥

मात्स्ये—

पत्नीन्तु मध्यमं पिण्डमाशयेद्विनयान्विताम् ।
आधत्त पितरो गर्भं ह्यामन्त्र्य सुतवर्द्धनम् ॥

ब्रह्मपुराणे—

अन्यदेशगता पत्नी रोगिणी गर्भिणी तथा ।
तदा तं श्रोत्रियोऽभ्यागतो वा भोक्तुमर्हति ॥ —

---

* ख पुस्तके विष्णुस्मरणश्लोको नास्ति ।

याज्ञवल्क्यः—

पिण्डांश्च गोऽजविप्रेभ्यो दद्यादग्नौ जलेऽपि वा ।

यमः—

अप्स्वेकं प्लावयेत् पिण्डमेकं पत्न्यै निवेदयेत् ।
एकञ्च जुहुयादग्नौ त्रयः पिण्डाः प्रकीर्त्तिताः ॥

प्लावयेत् जले क्षिपेत् ।

ब्राह्मणाभावे श्राद्धप्रतिपत्तिमाह बृहद्यमः—

अग्नौ तु जुहुयात् पिण्डमप्सु वा तत् प्रवेशयेत् ।
भूमौ दर्भेषु वा दद्याद्विना पात्रं कथञ्चन ॥

पात्रं ब्राह्मणं विना श्राद्धे इत्यर्थः ।

भूमौ खातं कृत्वा तत्र दर्भानास्तीर्य्य निदध्यात् । वामदेव्यं गीत्वेति गोभिलवचनात् शान्तिं कृत्वा, रक्षार्थदीपं हस्तेन निर्वाप्य पाणी पादौ च प्रक्षाल्याचामेत् ।

देवलः—

निवृत्ते पितृयज्ञे तु दीपं प्रच्छाद्य पाणिना ।
पाणी प्रक्षाल्य चाचम्य ज्ञातीन् शेषेण भोजयेत् ॥

यमः—

श्राद्धं भुक्त्वा य उच्छिष्टं वृषलाय प्रयच्छति ।
स मूढो नरकं याति कालसूत्रमवाक्शिराः ॥

मात्स्ये—

तावदुच्छेषणं तिष्ठेद्यावद्विप्रा विसर्ज्जिताः ।

उच्छेषणं भूमिगतमजिह्मस्याशठस्य च ।

दासवर्गस्य तत्पित्र्ये भागधेयं प्रचक्षते ॥

यत्तु—

श्राद्धे नोद्वासनीयानि उच्छिष्टान्यादिनक्षयात् ।

श्च्योतन्ते हि सुधाधारास्ताः पिबन्त्यकुतोभयाः ॥

इति वशिष्ठवचनम् ।

तत् फलातिशयार्थं दिवापर्य्यन्तमुच्छिष्टस्थापनपरं न तु दिवोच्छिष्टमार्जननिषेधकं मत्स्यपुराणविरोधात् ।

ब्रह्मपुराणे—

अस्तङ्गते ततः सूर्य्ये विप्रपात्राणि चाम्भसि ।

निक्षिपेत् प्रयतो भूत्वा सर्व्वाण्यधोमुखान्यपि ॥

बृहस्पतिः—

वन्दिभ्यश्चैवमर्थिभ्यश्चान्यार्थिभ्योऽभ्यर्थितः ।

यदि तत्र न दद्याच्च विफलं शक्तितो भवेत् ॥

अर्थितः सन् शक्तितोऽसमर्थिभ्यो याचकेभ्यः, धनार्थिभ्यो दरिद्रेभ्यश्च यदि न दद्यात् तदा श्राद्धं विफलं भवेदित्यर्थः ।

मात्स्ये—

निहत्य प्रणिपत्याथ पर्य्युक्ष्याग्निं स मन्त्रवित् ।

वैश्वदेवं प्रकुर्व्वीत नैत्यिकं बलिमेव च ॥

*विष्णुपुराणे—

ततस्तु वैश्वदेवाख्यां कुर्य्यान्नित्यक्रियां बुधः ।

* क पुस्तके विष्णुपुराणे पदं नास्ति ।

याज्ञवल्क्यः—

पिण्डांश्च गोऽजविप्रेभ्यो दद्यादग्नौ जलेऽपि वा।

यमः—

अप्स्वेकं प्लावयेत् पिण्डमेकं पत्नीं निवेदयेत्।

एकञ्च जुहुयादग्नौ त्रयः पिण्डाः प्रकीर्त्तिताः॥

प्लावयेत् जले क्षिपेत्।

ब्राह्मणाभावे श्राद्धप्रतिपत्तिमाह वृहद्यमः—

अग्नौ तु जुहुयात् पिण्डमप्सु वा तत् प्रवेशयेत्।

भूमौ दर्भेषु वा दद्याद्विना पात्रं कथञ्चन॥

पात्रं ब्राह्मणं विना श्राद्धे इत्यर्थः।

भूमौ खातं कृत्वा तत्र दर्भानास्तीर्य्य निदध्यात्। वामदेव्यं गीत्वेति गोभिलवचनात् शान्तिं कृत्वा रक्षार्थदीपं हस्तेन निर्वाप्य पाणी पादौ च प्रक्षाल्याचामेत्।

देवलः—

निवृत्ते पितृयज्ञे तु दीपं प्रच्छाद्य पाणिना।

पाणी प्रक्षाल्य चाचम्य ज्ञातीन् शेषेण भोजयेत्॥

यमः—

श्राद्धं भुक्त्वा य उच्छिष्टं वृषलाय प्रयच्छति।

स मूढो नरकं याति कालसूत्रमवाक्शिराः॥

मात्स्ये—

तावदुच्छेषणं तिष्ठेद्यावद्विप्रा विसर्ज्जिताः।

उच्छेषणं भूमिगतमजिह्मस्याशठस्य च।

दासवर्गस्य तत्पित्र्ये भागधेयं प्रचक्षते ॥

यत्तु—

श्राद्धे मोदासनीयानि उच्छिष्टान्यादिनक्षयात्।

शीतन्ते हि सुधाधारास्ताः पिबन्त्यकुतोभयाः ॥

इति वशिष्ठवचनम्।

तत् फलातिशयार्थं दिवापर्य्यन्तमुच्छिष्टस्थापनपरं न तु दिवोच्छिष्टमार्ज्जननिषेधकं मत्स्यपुराणविरोधात्।

ब्रह्मपुराणे—

चस्तङ्गते ततः सूर्य्ये विमयात्राणि चाम्भसि।

निक्षिपेत् प्रयतो भूत्वा सर्व्वाण्यधोमुखान्यपि ॥

बृहस्पतिः—

वन्दिभ्यश्चैवमर्थिभ्यश्चयाचार्थिभ्योऽवमर्षितः।

यदि तत्र न दद्याच्च विफलं शक्तितो भवेत् ॥

चर्थितः सन् शक्तितोऽथमर्थिभ्यो याचकेभ्यः, चर्थार्थिभ्यो दरिद्रेभ्यश्च यदि न दद्यात् तदा श्राद्धं विफलं भवेदित्यर्थः।

मात्स्ये—

निहत्य प्रणिपत्याथ पर्य्युष्याग्निं स मन्त्रवित्।

वैश्वदेवं प्रकुर्व्वीत नैत्यिकं बलिमेव च ॥

*विष्णुपुराणे—

ततस्तु वैश्वदेवाख्यां कुर्य्यान्नित्यक्रियां बुधः।

---

* च पुस्तके विष्णुपुराणे पदं नास्ति।

यच्च—

पितॄन् सन्तर्प्य विधिवत् बलिं दद्याद्विधानतः।
वैश्वदेवं ततः कुर्य्यात्पश्चाद्ब्राह्मणभोजनम्॥

इत्यादिविष्णुपुराणवचनम् वैश्वदेवं कुर्य्यात्ततो बलिमिति तस्यार्थः।

मार्कण्डेयपुराणे—

ततो नित्यक्रियां कुर्य्याद्भोजयेच्च तथातिथीन्।
नित्यक्रियां पितॄणान्तु केचिदिच्छन्ति सत्तमाः।
न पितॄणां तथैवान्ये शेषं पूर्व्ववदाचरेत्॥

नित्यक्रियां नित्यश्राद्धं पितृवत्तरातिशयार्थं विधिः। न पितॄणामित्यावश्यकत्वनिषेधपरमिति व्यवस्था।

पार्व्वणेनैव पितृतृप्तेर्जातत्वेन प्रत्यवायपरीहारस्य *प्रसिद्धत्वात् न पितॄणामिति पुनः पितृग्रहणं सनकादीनां श्राद्धाभ्यनुज्ञानार्थं पार्व्वणेन तेषां तृप्तेरजातत्वात्।

न च देवश्राद्धवत् सनकादिश्राद्धमङ्गं प्रमाणाभावात्। प्रत्युत छन्दोगपरिशिष्टे—

पितृभ्योऽथ मनुष्येभ्यो दद्यादहरहर्द्विजे।

इत्यत्राधित्यनेन स्वातन्त्र्य प्रमाणाच्च। शेषं वैश्वदेवादिकं पूर्व्ववत् प्रात्यहिकवदित्यर्थः।

देवलः—

---

* क पुस्तके परीहारस्याविद्धत्वात्।

ततो ज्ञातिषु भुक्तेषु स्वान् भृत्यानपि भोजयेत् ।
पश्चात् स्वयञ्च पत्नीभिः पितृशेषमुदाहरेत् ॥

भृत्यान् भरणीयान् उदाहरेदभ्यवहरेदित्यर्थः ।

याज्ञवल्क्यः—

प्रदक्षिणमनुव्रज्य भुञ्जीत पितृसेवितम् ।

किमयं विधिर्नियमः परिसंख्या वा एतत्प्रकारत्रयात्मकत्वाद्विधिवाक्यस्य ।

तदुक्तं भट्टपादैः—

विधिरत्यन्तमप्राप्तौ नियमः पाक्षिके सति ।
तत्र चान्यत्र च प्राप्तौ परिसंख्येति गीयते ॥

अत्यन्तं प्रकृते रागतः प्रमाणान्तरेण चाप्राप्तौ विधिः । पाक्षिके सतीति—रागस्येच्छाधीनत्वात् पक्षे प्राप्तौ पक्षे चाप्राप्तौ कर्त्तव्यस्यावश्यकत्वं नियमविधिः । तत्र च प्रकृतेऽन्यत्र चाप्रकृते प्राप्तिमनूद्याप्रकृते निरासः परिसंख्या ।

*अयं तावन्नियम्यतेऽनेनेति व्युत्पत्त्या नियमो द्विविधो विधिः परिसंख्या च ।

यत्र क्रियासम्बन्ध एवकारः प्रकृते स्वायोगे व्यवच्छेदकस्तत्र नियमविधिः । यत्र तु कारकसम्बन्धं एवकारोऽन्ययोगव्यवच्छेदकस्तत्र परिसंख्येति । तत्र सम्भवति नियमविधौ परिसंख्या न युज्यते स्वार्थहान्यस्वार्थकल्पनाप्राप्तबाधरूपदोषत्रयदुष्टत्वात् । विधिर्यथा—

---

* क पुस्तके अयं पाठः ।

अहरहः सन्ध्यामुपासीतेत्यादिः ।

नियमविधिर्यथा—

ऋतुकालाभिगामी स्यादित्यादिः ।

अतएव—अगच्छन् स्त्रियमाप्नोति भ्रूणहत्यामृतावृतौ ।

इति निन्दा ।

परिसंख्या यथा—

प्रोक्षितं भक्षयेन्मांसमित्यादिः ।

अत्र हि—

नाद्यादविधिना मांसं विधिज्ञो नापदि द्विजः ।

इति वचनैकवाक्यतया प्रोक्षितमेव मांसं भुञ्जीत नाप्रोक्षितमिति परिसंख्यैव युक्ता नियमविधौ मूलभूतश्रुतिभेदकल्पनाप्रसङ्गात् क्रियान्तरकल्पनभिया गङ्गायां घोषादावस्वार्थपरत्वस्य स्वार्थत्यागेनैव दृष्टत्वात् । अतएव रागप्राप्तबाधोऽपि नात्र दूषणं वचनान्तरेणैव बाधितत्वादिति ।

तथाच—

श्वाविधं शल्यकं गोधां खड्गकूर्मशशांस्तथा ।

भक्ष्यान् पञ्चनखेष्वाहुरनुष्ट्रांश्चैकतोदतः ॥

इति मनुवचनात् एतान् भक्ष्यानित्यनेन सिद्धे यत् पञ्चनखग्रहणं यच्च निर्द्धारणसप्तमीविधानं तत् परिसंख्यार्थमेव ।

एवञ्च यत्र प्रमाणान्तरादन्ययोगव्यवच्छेदकता प्रतीयते तत्र तदनुरोधात् * परिसंख्यैव अन्यत्र तु नियमविधिरिति ।

---

* क पुस्तके तत्तदनुरोधात् ।

यत्र तूभयथैव प्रमाणान्तरमस्ति तत्रोभयमेव।

यथा याज्ञवल्क्यः—

स्वदारनिरतश्चैव स्त्रियो रक्ष्या यतः स्मृताः।

अत्र परदारांश्च गच्छेदित्येकवाक्यतया परिसंख्या, स्त्रियो रक्ष्या यतः स्मृता इति हेतुनिगदात् त्यागिनां कुलयोषिता-मित्यादिनिन्दाश्रवणाच्च नियमविधिरपीति ॥

यथा च—याजनाध्यापनप्रतिग्रहैर्ब्राह्मणो धनमर्ज्जयेदित्यत्र याजनादिभिरवश्यं धनमर्ज्जयेदेवेति नियमविधिः।

अतएव—

अकृत्वा भैक्ष्यचरणमसमिध्य च पावकम्।

अनातुरः सप्तरात्रमवकीर्णिव्रतं चरेत् ॥

इति मनुना सत्यपि पित्रादिधने ब्रह्मचारिणो भिक्षाचरण-प्रतिग्रहेण विना प्रायश्चित्तमुक्तम्।

तथा च—

न्यायागतधनस्तत्त्वज्ञाननिष्ठोऽतिथिप्रियः।

श्राद्धकृत् सत्यवादी च गृहस्थोऽपि हि मुच्यते ॥

इति याज्ञवल्क्येन न्यायतो धनार्ज्जनस्य मोक्षसाधनत्वमुक्तम् ॥ तथा वशिष्ठादीनां निस्पृहाणामपि याजनादिभिर्धनार्ज्जनप्रयत्नः पुराणादौ श्रूयते।

एवञ्च धनार्ज्जननियमस्य पुरुषार्थत्वे तदतिक्रमात् पुरुषः परं प्रत्यवायी स्यात्, पित्रमितादिलब्धधनेन तु कृतनिष्पत्तिरविगुणै-वेति।

तथा याजनादिभिरेव धनमर्ज्जयेन्नान्यवृत्तिभिरिति परिसंख्यापि । क्षत्रियादिवृत्तिभिर्जीवतां प्रायश्चित्तोपदेशात् ।

यथा याज्ञवल्क्यः—

क्षात्रेण कर्म्मणा जीवेद्विशां वाप्यापदि द्विजः ।
निस्तीर्य्य तां समुत्सृज्य पाव्यात्मानं न्यसेत् पथि ॥

तामापदं निस्तीर्य्य समुत्सृज्य क्षत्रादिवृत्त्युपार्ज्जितं धनमिति शेषः पाव्य प्रायश्चित्तं कृत्वा आत्मानं पथि स्ववृत्तौ याजनादौ न्यसेत् स्थापयेदित्यर्थः ।

मनुरपि—

यद्गर्हितेनार्ज्जयन्ति कर्म्मणा ब्राह्मणा धनम् ।
तस्योत्सर्गेण शुध्यन्ति जप्येन तपसैव च ॥

अत्रान्यवृत्त्यर्ज्जितधनस्य त्यागविधानात् तेन कर्म्मनिष्पादनमपि विगुणं भवतीति प्रतिपादितम् ।

अतएव विष्णुः—

अन्यायाधिगतां दत्वा सकलां पृथिवीमपि ।
श्रद्धावर्ज्जमपात्राय न किञ्चिद्गतिमाप्नुयात् ॥

तथाच मार्कण्डेये—पितृणां रुचिस्तवफलकथने—

अन्यायोपात्तवित्तेन यदि वा कृतमन्यथा ।
अयाद्यार्त्तैरपहृतैरपहारैस्तथा कृतम् ॥
अस्माकं तृप्तये श्राद्धं तथाप्येतदुदीरणात् ।
तदासां विस्तरः प्रकृतं विविच्यते ।

नायं पितृशेषभोजनविधिः भोजनस्य रागप्राप्तत्वात्, नापि परिसंख्या सा हि पितृशेषमेव भुञ्जीत नान्यदित्येवंरूपा सा च सम्भवति नियमविधौ दोषत्रयामादरणीया।

नापि पितृशेषमवश्यं भुञ्जीतैवेति नियमः। एकादश्यामुपवासभङ्गप्रसङ्गात्।

सर्व्वस्मात् मासावराईमश्नीयादित्यापस्तम्बवचने सर्व्वस्मृतेर्यावज्जीवनिरामिषप्रतिज्ञस्यापि पर्व्वण्यपि मांसभोजनप्रसङ्गाच्च।

अत्र श्राद्धविवेकः—

भक्ष्यं भोज्यं तथा पेयं यत्किञ्चित् पच्यते गृहे
न भोक्तव्यं पितृणान्तदनिवेद्य कथञ्चन॥
यत्किञ्चित् पच्यते गेहे भक्ष्यं भोज्यमथापि वा।
अनिवेद्य न भुञ्जीत पिण्डमूले कदाचन॥

इति यमगर्ग्गाभ्यां पितृभ्योऽर्पितमेव भुञ्जीतेत्यवगमात्तदेकवाक्यतया परिसंख्येयम्।

नियमविधौ मूलमूलन्तुतिभेदकल्पनाप्रसङ्गात् अतएव स्वदारनिरतश्चेत्यत्र परदारांश्च गच्छेदित्येकवाक्यतया परिसंख्योक्ता।

अस्तु वा नियमविधिः—पिण्डशेषमिष्टेभ्यो दद्यात् स्वयञ्च भुञ्जीत इत्युशनोवचनेन पितृशेषप्रतिपत्त्योपयुक्तशेषप्रतिपत्तिरूपत्वात् प्रतिपत्तेश्च सत्येव शेषेऽङ्गत्वबोधनात् प्रतिपत्तेस्तथा स्वभावात्।

ततश्चोपवासे पर्व्वणि यावज्जीवनिरामिषप्रतिज्ञायाश्चोपवासादिधर्म्मानुरोधादन्नमांसादीनां तथोपयोगः कर्त्तव्यो यथा श्राद्धमिष्टभोज्यञ्च निष्पाद्यापरं किञ्चिन्नच्चणार्थं नावशिष्यते।

न च भक्षणप्रतिपत्त्यनुरोधाच्छेषमपि खाद्यमिति वाच्यम्।

न हि प्रतिपत्तिः प्रतिपाद्यं प्रयोजयति प्रतिपाद्यगुणभूतत्वात् प्रतिपत्तेर्गुणस्य च प्रधानाप्रयोजकत्वमिति।

वस्तुतस्तु—कुटुम्बादिभोजनार्थं यत्किञ्चिद्गेहे पृथक् पच्यते तच्चातीयं पितृणामनिवेद्य न भुञ्जीतेति रागप्राप्तभक्षणनिषेध एव यमशङ्खवचनयोरर्थः। तदा च प्रमाणाभावात् श्राद्धशेषभोजनं न परिसंख्या किन्तु नियम एव श्राद्धशेषः किं कर्त्तव्य इत्याकाङ्क्षायां भुञ्जीतैव इति विधानात् शेषाभावे निराकाङ्क्षत्वाद्विधानानवसरस्ततः शेषाभावे भोजनाभावोऽपि न दोषाय इति।

एवञ्च सति श्राद्धशेषे भुञ्जीतैवेति नियमविधिः सम्पन्नः।

यत्तु—

दन्तधावनताम्बूलं तैलाभ्यङ्गमभोजनम्।
रत्यौषधपरान्नञ्च श्राद्धकृत् परिवर्ज्जयेत्॥

तथा—

उपरागे तथा श्राद्धे पुत्री नोपवसेद्गृही।

इत्यादिवचनं तदनियतोपवासविषयम्।

चन्द्रे तु—

श्राद्धशेषमाघ्राय उपवासः कार्य्य इति वदन्ति वचनञ्च पठन्ति।

उपवासो यदा नित्यः श्राद्धं नैमित्तिकं भवेत् ।
उपवासं तदा कुर्य्यादाघ्राय पितृसेवितम् ॥

काशीखण्डे—

श्राद्धं कृत्वा परश्राद्धे योऽश्नीयाद्‌ज्ञानदुर्ब्बलः ।
दातुः श्राद्धफलं नास्ति भोक्ता किल्बिषभाग्भवेत् ॥
अन्ये चाध्वमैथुनत्यागादयो नियमाः प्रागेवोक्ताः ॥

ब्राह्मे—

द्वितीयेऽहनि भाण्डानां सर्व्वेषां चालनं भवेत् ।
अनन्ता जायते तृप्तिः पितृणामेव सर्व्वदा ॥

भाण्डानां श्राद्धपाकपात्राणां श्राद्धदिने चालनमकृत्वा द्वितीयदिने चालनेन तृप्तिरनन्ता स्यादित्यर्थः ।

---

## अथ वाजसनेयिनां श्राद्धकर्मसङ्क्षेपः ।

निमन्त्रणं स्वागतञ्च पाद्यमर्घ्यादिकं द्विजे ।
द्विजोपवेशनं दीपो विष्णोरर्च्चा हरिस्मृतिः ॥
तिलसर्षपविक्षेपो द्वारमध्ये च सर्व्वतः ।
रक्षाजलञ्च गायत्री देवताऽनु च सप्तमम् ॥
द्विजपाणौ जलं दर्भासनमावाहनं ततः ।
अर्घ्यो न्युब्जश्च गन्धादि तथाग्नौ हुतशेषकम् ॥

हरिर्विधेयपक्ष पृथिवी इदमापहता तिलम्।
इदमन्नमथोत्सर्गी गायत्री मधुदानकम्॥
अच्छिद्रञ्च यथासुखमापोऽयानं जपेत्ततः।
गायत्रीं मधुवातादि तथा वै पितृसंहिताम्॥
अग्निदग्धा स्वधावच्च हरिं स्मृत्वा हिजे जलम्।
गायत्री मधुवाता च मधुत्रिकजपो हिजे।
तृप्तिप्रश्नः शेषमन्नं पिण्डमन्त्रोऽथ मण्डलम्॥
रेखावनेजनं दर्भास्तरो नीवी च देवता।
पिण्डा लेपभुजः शेषः पात्रिचालनमाचमः॥
हरिं स्मृत्वाऽत्र पितरो वसन्ताय नमो ततः।
प्रत्यवने नीवीमोक्षः षड्ञ्जलि च सूत्रकम्॥
जलं पिण्डार्चनं पिण्डोत्तोलाघ्राणद्विजाचमाः।
सुप्रोक्षितं शिवा पापः सौमनस्यं तथाक्षतम्॥
अक्षय्याघोरगोत्रं नो दातारोऽथ स्वधावचः।
पुनरूर्जं न्युब्जोत्थानं दक्षिणा विसर्जनम्॥
देवता वाज आमेति हिजानुगमनं नतिः।
अच्छिद्रविष्णुस्मरणपिण्डार्पणमिति क्रमः॥

---

## अथ यजुर्वेदिनां पार्व्वणश्राद्धप्रयोगः।

तत्र श्राद्धपूर्व्वदिने वस्त्रशुद्धिं विधाय स्नानशुद्धिं क्षौरं तिलकल्कादिना मलापकर्षणेन देहशुद्धिञ्च विधाय कृतस्नानादिक्रियः सति भोजने निरामिषमेकवारं भुक्त्वा प्रदोषान्ते प्रतिब्राह्मणगृहं गत्वा सति सम्भवे एकत्र वा कुशयोलसम्बन्धायमिथो यूनः पातित्यश्वित्रत्वादिदोषरहिताक्षनसगोत्रप्रवरान् कृतभोजनान् द्वौ पित्रादिदेवतार्थे द्वौ मातामहादिदेवतार्थे च प्रत्येकमेकैकं वा तन्त्रेण वा द्वावेवोभयत्र दैवे प्रत्येकमेकं वा पित्रादौ च त्रीनयत्नादेकैकं वा निमन्त्रयेत्।

तत्र प्रक्षालितपाणिः समाचान्तः गोमयोपलिप्तस्थाने प्राङ्मुखं दैवब्राह्मणमुपवेश्य स्वयमुदङ्मुख उपवीती दर्भपाणिर्वामो विप्रदक्षिणजानु धृत्वा—

ॐ अद्येत्यादि अमुकगोत्रस्य पितुरमुकशर्म्मण एवं पितामहस्य एवं प्रपितामहस्य श्वः कर्त्तव्ये श्राद्धे पुरूरवोमाद्रवसोर्विश्वेषां देवानां श्वः श्राद्धं कर्त्तुं त्वामहं निमन्त्रये।

निमन्त्रितोऽस्मीति ब्राह्मणवचनं एकत्र ब्राह्मणद्वयपक्षाचे प्राप्नवामिति प्रयोगः।

एवं मातामहदैवेऽपि तन्त्रेणैकत्रोभयदैवसमावेश एकदैव पश्चात् पितृणामुल्लेखः कार्य्यः।

प्रक्षालितपादमाचान्तं पितृब्राह्मणमुदङ्मुखं स्वयं दक्षिणामुखः प्राचीनावीतो दर्भपाणिर्दक्षिणजानु कृत्वा—

ॐ अद्येत्यादि अमुकगोत्रस्य पितुरमुकदेवशर्म्मणः श्वः पार्व्वणश्राद्धं कर्त्तुं त्वामहं निमन्त्रये एवं पितामहप्रपितामहमातामहादित्रिकाणां षट् ब्राह्मणान् निमन्त्रयेत् ॥

एकत्र सर्व्वब्राह्मणसद्भावे—

अमुकगोत्रस्य पितुरमुकदेवशर्म्मण एवं पितामहस्य एवं प्रपितामहस्य श्वःश्राद्धं कर्त्तुं युष्मानहं निमन्त्रये। एकब्राह्मणपक्षे तु त्वामिति विशेषः। एवं मातामहपक्षेऽपि निमन्त्रिताश्च प्रत्येकं निमन्त्रितोऽस्मीति प्रतिवदेयुः।

ततः—

*सर्व्वपापविनिर्मुक्तैः कामक्रोधविवर्ज्जितैः।
भवितव्यं भवद्भिर्नः श्वोभूते श्राद्धकर्म्मणि ॥

इति नियमान् श्रावयेत्।

विप्राश्च—

यद्यविघ्नेन रजनी याति तदा सर्व्वमेतत् करिष्ये।

इति ब्रूयुः।

पूर्व्वेद्युर्निमन्त्रणागतौ तस्यां रात्रौ योषित्प्रसङ्गनिवारणाय सजातीयदारा श्वःश्राद्धं करिष्ये तत्रभवन्तो निमन्त्रयितव्या

---

* क पुस्तके नास्तीदम्।

इति निवेदनं कृत्वा श्राद्धदिने प्रातः श्वःपदपरिहारेण पूर्ववन्निमन्त्रयेत् ।

तदसम्भवे श्राद्धारम्भसमये यतीन् ब्रह्मचारिणो भिक्षार्थमागतान् तदलाभे अन्यानपि मोक्षलक्षणान् निमन्त्रयेत् ।

तदर्थनिमन्त्रणे तु—

अक्रोधनैः शौचपरैः सततं ब्रह्मचारिभिः ।
भवितव्यं भवद्भिश्च मया च श्राद्धकर्मणि ॥

इति नियमान् श्रावयेत् कुशमयब्राह्मणपक्षे तु निमन्त्रणाभावः ।

ततो निमन्त्रितः श्राद्धकर्त्ता च पूर्व्वेद्युः श्राद्धदिने च अधःशायी ब्रह्मचारी शुचिः सत्यवादी क्षमी पुनर्भोजनं वेदवेदाङ्गाध्ययनं श्रमं हिंसां क्रोधं त्वरां भारोद्वहनं कलहं द्यूतं चौर्य्यं दूरगमनं नौकाश्वादियानारोहणं मैथुनं प्रमादं दिवास्वप्नं प्रतिग्रहं मांसभक्षणञ्च वर्ज्जयेत् ।

श्राद्धकर्त्ता निमन्त्रितमदुष्टं न प्रत्याचक्षीत यदि च विस्मरणवशादतिक्रामति तदा पश्चात् प्रसादयेत् ।

दन्तकाष्ठं तैलाभ्यङ्गं ताम्बूलञ्च वर्ज्जयेत् ।

श्राद्धं कृत्वा परश्राद्धे न भुञ्जीत । स्वीकृतान्यनिमन्त्रणश्च पराद्धिमतिं न कुर्य्यात् । नान्यदत्तं प्रतिगृह्णीयात् । अन्यत्र गमनादिना श्राद्धकालं नातिक्रमेत् । न याचितः श्राद्धं भुञ्जीत ।

श्राद्धकर्त्ता प्रातःकृतस्नानः शुक्लवस्त्रद्वयपरिधानः कृतनित्य-

क्रियो दक्षिणां दिशं गत्वा कुम्भानाहृत्य श्राद्धार्थमपरकीयमपर्य्युषितमदुर्गन्धमफेनिलमशूद्रसंस्पृष्टं जलमाहरेत्।

स्वल्पजलाशयस्थमन्त्यजजलाशयस्थमप्रतिष्ठितजलाशयस्थं परकीयं दाविरगृहीतं याचितलब्धं चाम्बु वर्ज्जयेत्।

नूतनपात्रेषु यथाशक्ति नानाप्रकारव्यञ्जनाद्युपकरणसहितमन्नं पत्नीद्वारा स्वयमशक्तौ सपिण्डस्त्रीद्वारा वा पाचयेत्।

तत्र त्रुटितकर्णीमिमातृपितृवंशजां रजस्वलां वीभत्साम शुचिं मत्तां धूर्त्तां नीलवसनाञ्च वर्ज्जयेत्।

श्राद्धभूमिञ्च दक्षिणनतां कृत्वा गौरमृत्तिकयाच्छाद्य गोमयेनोपलिप्य पञ्चगव्येन संप्रोक्ष्य ज्वलदग्निभ्रामणेन संशोध्य वेष्टयित्वा *[ सर्व्वतस्तिलान् वपेत्।

तिलान् सर्षपांश्च अपहता इति मन्त्रेण सर्व्वतो विकिरेत्।

धूलियुक्तं पङ्किलं क्रिमियुतं सङ्कीर्णं दुर्गन्धान्वितमनिष्टगन्धञ्च देशं वर्ज्जयेत्। ]

ततः श्वावृष्टद्वयतो ब्राह्मणपादप्रक्षालनार्थं गोमयोपलिप्तायां भूमौ गोमूत्रेण मण्डलं कृत्वा यवैः मधुभिरर्च्चयेत्।

वाराणस्यान्तु भूमिसंस्कारो नास्ति गोमयोपलेपनन्तु तत्रापि। यदि च परकीयभूमौ श्राद्धं चिकीर्षति तदा तद्भूमिस्वामिपितृभ्यः श्राद्धीयाग्रभागमुत्सृज्य दद्यात्।

जीवतां मूल्यं वा दद्यात्।

ततः श्राद्धदेशमाहृत्य हीनाङ्गाधिकाङ्ग-काण-खञ्ज-कैकर-

* अयं पुस्तके चिह्नितांशो नास्ति।

श्वित्रि-कुष्ठि-पतितास्वाज वृषलीपति शूद्र रजस्वला षण्ड कुक्कुट वराह विड़ाल काकादीन् श्राद्धस्थानादपसारयेत्।

ततः प्रवृत्ते मध्याह्ने श्राद्धीयब्राह्मणेभ्यः तैलमुद्वर्त्तनं स्नानोपकरणञ्च नानाविधं ताम्रपात्रे कृत्वा स्वयमुपागम्य देवब्राह्मणपूर्व्वकं दद्यात्।

ततः स्नात्वा निवृत्तान् स्वयञ्च कृतस्नानः शुक्लवासाः दक्षिणामुखेन कृतपादप्रक्षालनो यथाविध्याचान्तः शुचिः प्राङ्गणे कृताञ्जलिर्दर्भेषु तिष्ठन् स्वागतमिति पृच्छेत्। सुस्वागतमिति प्रतिवचनम्।

ततः प्रागुपलिप्तायां भूमौ देवब्राह्मणपूर्व्वकं क्रमेण सविनयं पुनः पुनरभिमन्त्र्य स्वयमेव देवधर्म्मेण देवब्राह्मणपादौ पितृधर्म्मेण पितृब्राह्मणपादौ च प्रक्षाल्याचमनीयं दूर्व्वाक्षतं गन्धं पुष्पञ्च दद्यात्। स्वयञ्चाचामेत्।

यदि पूर्व्वं निमन्त्रणं न कृतमस्ति तदा तत्रैव प्राङ्गणे पूर्व्ववत् ब्राह्मणान् निमन्त्र्य अक्रोधनैरिति नियमं श्रावयेत्।

कुशब्राह्मणे तु स्वागतप्रश्नपाद्यादिदाननिमन्त्रणानां बाधः। ततो ब्राह्मणसहितो गृहं प्रविश्य यथाद्यभिप्रायेण सिद्धमित्युक्त्वा पूर्व्वापदर्भद्वययुक्ते प्राङ्मुखे आसने प्राङ्मुखं देवब्राह्मणं दक्षिणाग्रकुशयुक्ते दक्षिणामुखे आसने पित्रादिब्राह्मणानुदङ्मुखान् यथाक्रममासनं स्पृशन्—प्रत्येकमिदमासनमत्रासध्वमित्युक्त्वा दक्षिणहस्ते धृत्वा उपवेशयेत्।

तेषाञ्च पादयोरधस्तात् कुशानास्तरेत्। प्रत्यासनसमीपे

घृतेन तिलतैलेन वा श्राद्धसमाप्तिस्थायिनो दीपान् स्थापयेत्। तेषामुत्तेजनादि तु तैर्द्विजैरेव कर्त्तव्यम्। ततः शालग्रामशिलादिकं सन्निधीकृत्य तत्र यज्ञेश्वरमभ्यर्च्य—

ओँ यज्ञेश्वरो हव्यसमस्तकव्य-
भोक्ताऽव्ययात्मा हरिरीश्वरोऽत्र।
तत्सन्निधानादपयान्तु सद्यो
रक्षांस्यशेषाण्यसुराश्च सर्व्वे॥

इति पठित्वा—

ओँ अपहता असुरा रक्षांसि वेदिषदः।

इति द्वारदेशे गृहान्तरे च सर्व्वतस्तिलान् सर्षपांश्च विकीर्य्य—

ओँ विष्णुः ओँ पुण्डरीकाक्षः ओँ हरिरिति स्मरेत्। रक्षार्थं जलं प्रतिब्राह्मणसमीपे स्थाप्यम्। ततो गायत्रीजपमहं करिष्ये इति द्विजान् पृष्ट्वा कुरुष्वेति तैरनुज्ञातः प्रणवव्याहृतित्रयसहितां गायत्रीं जपित्वा—

ओँ देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च।
नमः स्वधायै स्वाहायै नित्यमेव नमो नमः॥

इति त्रिर्जपेत्।

तत उदङ्मुख उपवीती—

ओँ अद्यामुके मासि अमुकपक्षे तिथावस्मिन् विशिष्टभारतवर्षीयपुण्यभूप्रदेशे वह्निब्राह्मणचरणसन्निधौ अमुकगोत्रस्य पितुरमुकदेवशर्म्मणः एवं पितामहस्य एवं प्रपितामहस्य पार्व्वणश्राद्धे

पुरोरवोमाद्रवसोर्विश्वेषां देवानां श्राद्धमयेन सोपकरणेन युवयोरहं करिष्ये। कुरुष्वेति प्रतिवचनम्।

एकब्राह्मणपक्षे तु त्वयीति प्रयोगः, एवं मातामहदैवेऽपि।

मन्त्रेष्वेकत्रोभयदैवसमावेशे एकदैव यथा पितृणामुल्लेखः कार्यः।

ततो दक्षिणामुखः प्राचीनावीती—

ओं अद्यामुके मासि अमुकपक्षेऽमुकतिथौ भारतवर्षाख्यपुण्यभूदेशे वह्निब्राह्मणचरणसन्निधौ अमुकगोत्रस्य पितुरमुकशर्मण एवं पितामहस्य एवं प्रपितामहस्य पार्वणश्राद्धमयेन सोपकरणेन युष्मास्वहं करिष्ये। एकब्राह्मणपक्षे त्वयीति प्रयोगः।

कुशब्राह्मणपक्षे तु युष्मच्छब्दप्रयोगो न कार्यः किन्तु कुशब्राह्मणे करिष्ये इति। प्रतिवचनन्तु सन्निधापितब्राह्मणा एव कुर्युः। एवं मातामहपक्षेऽपि।

ततो मृज्जलेन सर्वाण्यन्नादीनि श्राद्धसाधनानि प्रोक्षयेत्। ततः—

सप्त व्याधा दशार्णेषु मृगाः कालञ्जरे गिरौ।
चक्रवाकाः शरद्वीपे हंसाः सरसि मानसे॥
तेऽभिजाताः कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणा वेदपारगाः।
प्रस्थिता दूरमध्वानं यूयं तेभ्योऽवसीदथ॥

इति पितृब्राह्मणाभितः पठेत्।

# अथ श्राद्धपरिभाषा ।

सर्व्वत्र प्रश्नेषु पङ्क्तिमूर्द्धन्यं पृच्छेत् ।

श्राद्धद्रव्याणि उत्तरदिशा वेदां प्रवेशनीयानि । दक्षिणदिशा निःसारणीयानि समाप्तिपर्य्यन्तं पवित्रपाणिरासीनः स्यात् ।

दैवं कर्म्मोत्तरामुखेन पातितदक्षिणजानुनोपवीतिना दक्षिणोपचारेण कार्य्यम् । उत्सर्गस्तु ऋजुकुशत्रयेण यवोदकेन देवतीर्थेन नमःपदेन कार्य्यः ।

*पैत्रन्तु पातितवामजानुना प्राचीनावीतिना दक्षिणामुखेन वामोपचारेण कार्य्यमुत्सर्गस्तु पितृतीर्थेन द्विगुणभुग्नकुशत्रयेण सतिलोदकेन स्वधापदेन कार्य्यः ।

सर्व्वमेव श्राद्धीयद्रव्यं मोक्षितमेव दद्यात् । दैवपूर्व्वञ्च सर्व्वं कर्म्म कार्य्यम् । आचमनविसर्ज्जने तु पितृपूर्व्वमिति ।

ततो दैवादिक्रमेण करप्रक्षालनार्थं ब्राह्मणकरेषु जलं दद्यात् । कुशब्राह्मणे तु प्रक्षालनजलदानबाधः ।

ततः—ॐ पुरोरवोमाद्रवसौ विश्वेदेवा एतद्वः कुशासनं नम इति ऋजुकुशत्रयात्मकमासनमुत्सृज्य कृतपाद्यासनोपरि दद्यात् ।

ॐ अमुकगोत्र पितरमुकशर्म्मन् एवं पितामह एवं प्रपितामह एतत्ते कुशासनं स्वधेति द्विगुणभुग्नकुशत्रयात्मकमासनमुत्सृज्य कृतपाद्यासनोपरि दद्यात् ।

---

* च पुस्तके पैत्रमित्यादि चक्रिकार्थं पतितम् ।

एवं मातामहपंक्तावपि ।

शूद्रस्य एतत्तुभ्यं कुशासनं नम इति प्रयोगः ।

ततः कृताञ्जलिः—ओं विश्वान् देवानावाहयिष्ये इति पृष्ट्वा आवाहयेत्यनुज्ञातो द्विजाङ्गुष्ठं धृत्वा—

ॐ विश्वेदेवास आगत शृणुता म इमं हवं इदं बर्हिर्निषीदत । इत्यावाह्य—

ओं अपहता इति मन्त्रेण यवान् विकीर्य—

ॐ विश्वेदेवाः शृणुतेमं हवं
येमे अन्तरीक्षे य उपद्यवि ष्ठ ।
ये अग्निजिह्वा उतवा यजत्रा
आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वम् ॥

इति जप्त्वा—

ॐ आगच्छन्तु महाभागा विश्वेदेवा बरप्रदाः ।
ये यत्र विहिताः श्राद्धे सावधाना भवन्तु ते ॥

इति मन्त्रं पठेत् ।

कुशब्राह्मणे द्विजाङ्गुष्ठग्रहणं नास्ति ।

ततः पितॄनावाहयिष्ये इति पृष्ट्वा आवाहयेत्यनुज्ञातः ।

ॐ उशन्तस्त्वा निधीमह्युशन्तः समिधीमहि ।
उशन्नुशत आवह पितॄन् हविषे अत्तवे ॥

इत्यावाह्य ॐ अपहता इति मन्त्रेण तिलान् विकीर्य—

ॐ आयान्तु नः पितरः सौम्यासो
अग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः ।

अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तो

ऽधिब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥

इति मन्त्रं जपेदित्यावाहनम् ।

शूद्रस्तु ब्राह्मणद्वारा मन्त्रं पाठयन् नम इति जपेत् । ततो देवब्राह्मणाग्रभूमौ उत्तराग्रकुशोपरि अर्घ्यपात्रमुत्तराग्रं संस्थाप्य गर्भशून्यकुशपत्रद्वयात्मकपवित्रं "ॐ पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ" इति मन्त्रेण नखव्यतिरेकेण प्रादेशप्रमाणं छित्वा ॐ विष्णोर्मनसा पूते स्थ इत्यभ्युक्ष्यार्घपात्रे निधाय—

ॐ शन्नो देवीरभीष्टये

आपो भवन्तु पीतये

शंयोरभिस्रवन्तु नः ।

इत्यपो दत्वा ॐ यवोऽसि यवयास्मद्द्वेषो यवयारातीः । इति मन्त्रेण यवान् तूष्णीं दत्वा गन्धपुष्पदूर्वा निक्षिप्य तत्पात्रं दर्भान्तरेण पाच्छाद्य अच्छिद्रोऽयमर्घ्योऽस्तु इति वदेत् । तत्वता-भावपक्षे मातामहदैवेऽप्येवम् ।

ततः पितृब्राह्मणाग्रतः पात्रत्रयं मातामहब्राह्मणाग्रतः पात्रत्रयमुपर्युपरिक्रमेण दक्षिणाग्रकुशोपरि संस्थाप्य पूर्ववत् पवित्रच्छेदनादिकं कृत्वा षट्पवित्राणि यथाक्रमं पात्रेषु दत्वा शन्नो देवीरिति मन्त्रेकशः त्रिधा—

ॐ तिलोऽसि सोमदैवत्यो गोसवो देवनिर्मितः ।

प्रत्नमद्भिः पृक्तः स्वधया पितॄन् लोकान् प्रीणाहि नः स्वाहा ॥

इति प्रतिपात्रं तिलान् दत्त्वा तूष्णीं गन्धपुष्पदूर्व्वा निधाय कुशान्तरेणाच्छाद्य अच्छिद्रोऽयमर्घ्योऽस्त्विति प्रत्येकमुक्त्वा दैवे पैत्रे च दर्भानुद्धाय हस्ताभ्यां दैवपात्रमुत्थाप्य वामहस्ते कृत्वा तत्रस्थं पुष्पं पवित्रञ्च प्रागग्रं ब्राह्मणहस्ते दत्त्वा जलान्तरं पुष्पान्तरञ्च दत्त्वा—

या दिव्या आपः पयसा सम्बभुवु-
र्या आन्तरीक्षा उत पार्थवीर्य्याः।
हिरण्यवर्णा यज्ञियास्ता न आपः
शिवाः शंस्योना सुहवा भवन्तु॥

इति मन्त्रं पठित्वा—

ॐ पुरोरवोमाद्रवसो विश्वेदेवा एष वोऽर्घ्यो नमः।

इति दक्षिणहस्तेन विप्रकरे पवित्रोपरि जलं दद्यात्।

ततः पित्रर्घपात्रं हस्ताभ्यामुत्तोल्य वामहस्ते कृत्वा तत्रस्थं पवित्रं पुष्पञ्चोत्तराग्रविप्रहस्ते निधाय जलान्तरं * दत्त्वा ॐ या दिव्या इति पठित्वा—

ॐ अमुकगोत्र पितरमुकशर्म्मन् एष तेऽर्घ्यः स्वधा इति दक्षिणहस्तेन पितृतीर्थेन विप्रकरे पवित्रोपरि तिलोदकं दद्यात्।

ततो जलं स्पृष्ट्वा एवं पितामह-प्रपितामह-मातामहत्रयाणां प्रत्येकं जलस्पर्शपूर्व्वकं ब्राह्मणकरेऽर्घ्यं दद्यात्।

---

* अत्र पुस्तके पुष्पान्तरञ्च इत्यधिकः पाठः।

शूद्रस्तु—अत्रस्थाने नम इति जपन् ब्राह्मणद्वारा मन्त्रं पाठयन् नमोऽमुकगोत्र पितरमुकदास एष तुभ्यमर्घ्यो नम इत्यर्घ्यं दद्यात्।

ततः पितामहादिपात्राणां पात्रस्थतिलपुष्पजलानि पितृपात्रे निधाय प्रपितामहपात्रेण तत्पात्रमाच्छाद्य ॐ पितृभ्यः स्थानमसीति पितृब्राह्मणवामे दक्षिणाग्रकुशोपरि न्युब्जीकृत्य स्थापयेत्।

तत्तु दक्षिणादानपर्यन्तं नोद्धरेत् नापि चालयेत् न च स्पृशेत्।

ब्राह्मणहस्तदत्तपवित्राणि तु स्वधावाचनार्थं यथाक्रमं पृथक् स्थापयेत्

ततो दैवे—ओं पुरोरवोमाद्रवसौ विश्वेदेवा एतानि वो गन्धपुष्पधूपदीपाच्छादनानि नम इत्युत्सृज्य एष वो गन्ध इत्यादिक्रमेण ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत्।

पैत्रे—ओं अमुकगोत्र पितरमुकशर्म्मण् एवं पितामह प्रपितामह एतानि गन्धपुष्पधूपदीपाच्छादनानि स्वधेत्युत्सृज्य एष वो गन्ध इत्यादिक्रमेण ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत्।

एकब्राह्मणपक्षे तु एष त इति, एवं मातामहपक्षेऽपि।

शूद्रस्य तु—एतानि तुभ्यं गन्ध-पुष्प-धूपदीपाच्छादनानि नम इति भेदः।

ततश्च—ब्राह्मणेनोपवीतिना सता स्वयं गन्धानुलेपनं कार्यं मन्त्रश्च शिखावर्ज्जं शिरसि धार्य्यम्। अग्निनवघ्नरे फ्लान

यज्ञोपवीतताम्बूलादिकं देवादिक्रमेण देयम्। एतच्च नावश्यकम्। ओं गन्धादिदानमस्त्विति वदेत् अस्त्विति ब्राह्मणवचनम्।

ततो नीवारचूर्णैर्गौरमृत्तिकया वा होमभस्मना वाऽसम्भवे वारिणापि पात्रपातनाय चतुरस्रमण्डलानि कुर्य्यात्।

ततः आज्यपभागं सघृततिलमन्नं पात्रान्तरे गृहीत्वा पितृब्राह्मणं पृच्छेत्।

निरग्निः—

ओं अग्नौकरणमहं करिष्ये इति कुरुष्वेत्यनुज्ञातः पितृब्राह्मणपादे जले वा पैत्रधर्मेण ओं अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा सोमाय पितृमते स्वाहा इत्याहुतिद्वयं जुहुयात्।

साग्निस्तु—अग्नौ करिष्ये इति पृष्ट्वा कुरुष्वेत्यभ्यनुज्ञातो दक्षिणाग्नावसभ्याग्नौ वाहुतिद्वयं जुहुयात्। शूद्रास्तु नमःपदेन जुहुयुः।

ततोऽग्नौकरणशेषं देवादिक्रमेण सर्व्वेषु पात्रेषु दत्त्वा पिण्डार्थं किञ्चिदवस्थापयेत्। विप्रपाणौ होमपक्षे तत्पात्रे हुतशेषं न देयम्। ततोऽन्नमिष्टान्नपूरितपात्राणि देवादिक्रमेण स्व स्व ब्राह्मणसमीपे पूर्व्वकृतचतुरस्रमण्डलोपरि स्वयं स्थापयेत्। तत्समीपभूमावेव व्यञ्जनादीन्युपकरणानि पात्रान्तरे कृत्वा स्थापयेत्।

ततोऽन्नेषु घृतं तथा दद्यात् यथा घृतं स्रवतीति।

ततो भूमिलग्नं कुशं दत्त्वा ब्राह्मणयोः स्पर्शं कारयित्वा

वामहस्तशाखे दक्षिणहस्तं विधाय अधोमुखहस्ताभ्यां दैवपात्रमासाद्य—

ॐ पृथिवी ते पात्रं द्यौः पिधानं।

ब्राह्मणस्य मुखे अमृते अमृतं जुहोमि स्वाहा।

इति जपित्वा क्षण कव्यमिदं रवेत्युक्त्वा—

ओं इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्।

समूढमस्य पांशुले॥

ओं विष्णो हव्यं रक्षस्व॥

इति मन्त्रद्वयेन अधोमुख * द्विजाङ्गुष्ठाभावे स्वाङ्गुष्ठमपि निधाय ओं अपहता इति यवान् विकीर्य—

इदमन्नमिदं हविरिमा आप इदं मधु एतान्युपकरणानि इति सर्वद्रव्याणि ब्राह्मणाय निवेद्य—ओं पुरोरवोमाद्रवसौ विश्वेदेवा एतद्वोऽन्नं घृताद्युपकरणसहितं नम इत्युत्सृजेत्।

ततः सव्याहृतिगायत्रीं जपित्वा मधुवाता इति त्र्यचं मध्विति त्रिकञ्च पठन् मधुनाभिवारयेत्।

ततः—मन्त्रहीनं क्रियाहीनं विधिहीनञ्च यद्भवेत्।

तत्सर्वमच्छिद्रमस्तु। इत्युक्त्वा यथासुखं वाग्यता जुषध्वमिति वदेत्।

एकब्राह्मणपक्षे तु जुषस्वेति प्रयोगः। ब्राह्मणाभावेऽस्य बाधः।

ततो भवन्तः मागयन्त्वित्युक्त्वा आपोशानजलं दद्यात्।

---

* क पुस्तके द्विजाङ्गुष्ठमिति पदं नास्ति।

ततः पितृपक्षे पैत्रविधिना भूमिलग्नं कुशं दत्त्वा पात्र-ब्राह्मणयोः सव्येन कारयित्वा वामहस्तबाह्ये दक्षिणहस्तं निधाय उत्तानहस्ताभ्यां पितृपात्रमालभ्य "ओँ पृथिवी ते इति जपित्वा कृष्ण कव्यमिदं रक्षेत्युक्त्वा—ओँ इदं विष्णुरिति ओँ विष्णो कव्यं रक्षस्वेति मन्त्रद्वयेन उत्तानद्विजाङ्गुष्ठं 'द्विजाभावे स्वाङ्गुष्ठमपि' निधाय—ओँ अपहता इति तिलान् विकीर्य्य इदमन्नं इदं हविरिमा आप इदं मधु एतान्युपकरणानीति सर्व्वाणि द्रव्याणि ब्राह्मणाय निवेद्य—ओँ अमुकगोत्र पितरमुकशर्म्मन् एवं पितामह एवं प्रपितामह एतत्तेऽन्नं एताद्युपकरणसहितं सोदकं स्वधेत्युत्सृजेत् । शूद्रस्य तु एतत्तुभ्यमन्नं नम इति प्रयोगः ।

ततः सव्याहृतिकां गायत्रीं जप्त्वा मधुवातेति तृचं मध्विति त्रिकञ्च पठन् मधुनाऽभिघारयेत् ।

ततः—

मन्त्रहीनं क्रियाहीनं विधिहीनञ्च यद्भवेत् ।
तत् सर्व्वमच्छिद्रमस्तु ।
इत्युक्त्वा यथासुखं वाग्यता जुषध्वमिति वदेत् ।

एकब्राह्मणपक्षे तु जुषस्वेति प्रयोगः । ब्राह्मणाभावेऽस्य बाधः । ततो भवन्तः प्राश्नन्त्वित्युक्त्वा आपोशानं जलं दद्यात् । एवं मातामहपक्षेऽपि ।

* ख पुस्तके द्विजाङ्गुष्ठमिति पदं नास्ति ।

ततः विष्णुपुराणोक्तं पठित्वा वेणुवीणाध्वनिभिर्ब्राह्मणान् आह्लाद्य तृप्तेषु ब्राह्मणेषु उच्छिष्टसन्निधौ दर्भानास्तीर्य सर्व्वप्रकारमन्नं सतिलं गृहीत्वा—

अग्निदग्धाश्च ये जीवा येऽप्यदग्धाः कुले मम।
भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु तृप्ता यान्तु पराङ्गतिम्॥

निधाय—नाम्नाय विकीर्य कृताञ्जलिः—

येषां न माता न पिता न बन्धु-
र्नैवान्नसिद्धिर्न तथान्नमस्ति।
तत्तृप्तयेऽन्नं भुवि दत्तमेतत्
प्रयान्तु लोकाय सुखाय तद्वत्॥

ततः सव्याहृतिं सदक्षौ दक्षिणकर्णे वा सकृत् हरिं विकल्प्य पठन् मधुमान्

ततः— ब्राह्मणेभ्यो गण्डूषान् पुनरापोशानार्थं हितां सावित्रीं मधुवातेति मधु मध्विति

अवहीनं

तं भवद्भिरिति दैवे पैत्रे तृप्ताः स्थ इति पृच्छेत्। ते तृप्ताः स्म इति प्रत्युत्तरम्। एकब्राह्मणपक्षे तृप्तोऽसीति

अब्राह्मणश्राद्धे त्रिमधुत्रयाणां गण्डूषदानबाधः।

ततः शेषमन्नमस्त्विति सर्व्वान् पृच्छेत् ते सर्व्वं इष्टैः सह भुज्यतामिति ब्रूयुः।

ततः पिण्डमहं करिष्ये इति पृष्टा कुरुष्वेत्यनुज्ञातः पितृमातामहब्राह्मणयोः मध्यस्थलमध्यभागे उच्छिष्टसन्निधौ कम-

मात्रपरिमितां, चतुरङ्गुलोच्छ्रितां, दक्षिणप्रवणां वेदीं कृत्वा,
जलेनाभ्युक्ष्य पिण्डस्थाने—

ओं— निहन्मि सर्वं यदमेध्यवद्भवे-
हताश्च सर्वे सुरदानवा मया।
रक्षांसि यक्षाः सपिशाचसङ्घा
हता मया यातुधानाश्च सर्वे॥

इति पठित्वा मण्डलं तद्वहिश्चतुरस्रञ्च कृत्वा एकदर्भमूलेन दक्षिणहस्तेन ओं अपहता इति निम्नकीत्यनेन दक्षिणायां रेखामुल्लिख्य जलेनाभ्युक्ष्य दक्षिणस्यां दिशि दर्भं त्यजेत्। एवं तद्वामभागे मातामहादीनामपि मण्डलरेखाकरणाभ्युक्षणानि कार्य्याणि।

ततः सतिलपुष्पं जलपात्रं वामहस्ते धृत्वा ओं अमुकगोत्र पितरमुकशर्म्मन् एतत्ते जलमवनेनिक्ष्व स्वधेति रेखामूलेऽवनेजनं दत्वा जलं स्पृष्ट्वा एवमेव पितामहाय रेखामध्ये प्रपितामहाय रेखाग्रेऽवनेजनं दद्यात्। एवं मातामहादीनामपि मध्ये मध्ये जलं स्पृष्ट्वाऽवनेजनं देयम्।

ततः समूलान् सकृदाच्छिन्नान् दक्षिणाग्रान् कुशान् रेखायामास्तीर्य्य देवताभ्य इति विलेपित्वा सर्व्वस्मात् श्राद्धशेषात् किञ्चित् किञ्चिदुद्धृत्य घृतमधुतिलान्नमौकरणशेषञ्च दत्वा विल्वफलोपमं पित्रादीनां मातामहादीनाञ्च पिण्डषट्कं कृत्वा दक्षिणहस्तेन भुग्नकुशत्रयसहितं पिण्डं गृहीत्वा वामहस्तास्थितजलपात्रेण ओं अमुकगोत्र पितरमुकशर्म्मन्नेतत्ते पिण्डं स्वधेति

दर्भमूले पिण्डं दत्वा मलं सृष्ट्वा एवं पितामहाय दर्भमध्ये एवं प्रपितामहाय दर्भाग्रे दद्यात्। एवं मातामहादीनामपि।

ततः पिण्डान्तिके पिण्डशेषं विकीर्य पित्र्यपात्रस्थजलकुशमूलेन ओं लेपभुजः प्रीयन्तामिति हस्तं सम्मार्ज्य पिण्डपात्रे हस्तं प्रक्षाल्य तज्जलं प्रत्यवनेजनार्थं स्थापयित्वा द्विराचम्य हरिं स्मरेत्*।

आचमनाशक्तौ दक्षिणश्रवणस्पर्शः।

ओं अत्र पितरो मादयध्वं यथाभागमावृषायध्वं इति जपित्वा वामावर्त्तेनोदङ्मुखो भूत्वा प्राणायामत्रयं कृत्वा अशक्तौ यथाशक्ति श्वासं विधृत्य—

ओं— वसन्ताय नमस्तुभ्यं ग्रीष्माय च नमो नमः।
वर्षाभ्यश्च शरत्संज्ञऋतवे च नमः सदा॥
हेमन्ताय नमस्तुभ्यं नमस्ते शिशिराय च।
माससंवत्सरेभ्यश्च दिवसेभ्यो नमो नमः॥

इति ऋतून् नमस्कृत्य पितॄन् भास्करमूर्त्तिकान् ध्यात्वा पुनस्तेनैव पथा प्रत्यावृत्य—

ओं अमीमदन्त पितरो यथाभागमावृषायिषत।

इति जपेत्।

ततः पात्रक्षालनजलं वामहस्ते गृहीत्वा—

ओं अमुकगोत्र पितरमुकदेवशर्म्मन्नेतत्ते जलं प्रत्यवनेनिक्ष्व स्वधेति पितृपिण्डे दत्वा जलं † स्पृशेत्।

---

* अ पुस्तके स्मृत्वाचामेत्। † ख पुस्तके प्रत्यवनेज्य।

एवं पितामह प्रपितामह-मातामहादित्रिकाणामवनेजनं दत्वा नीवीं विस्रंस्य चाचामेत्। अयमत्रो दक्षिणश्रवणस्पर्शः।

ततः समुदितषट्पितृनुद्दिश्याञ्जलिषट्कं दद्यात्।

श्रीं नमो वः पितरः शुष्माय नमो वः पितरस्तपसे।
नमो वः पितरो यज्जीवन्तस्मै नमो वः पितरो रसाय।
नमो वः पितरो घोराय मन्यवे स्वधायै वः पितरो नमः॥

ततः शुक्लवस्त्रोऽथवा दशा असम्भवे सूत्रमात्रं मेषलोमानि वा वामहस्ते गृहीत्वा एतद्वः पितरो वास इति मन्त्रं जप्त्वा—

श्रीं अमुकगोत्र पितरमुकदेवशर्म्मन्नेतत्ते वासः स्वधेत्युत्सृज्य दक्षिणहस्तेन दद्यात् एवमेवं प्रत्येकं जलस्पर्शपूर्व्वमेतद्व इति मन्त्रं पठित्वा पितामहादिभ्यः पञ्चभ्यः पिण्डेषु दद्यात्।

ततः— ऊर्ज्जं वहन्तीरमृतं घृतं
पयः कीलालं परिस्रुतम्।
स्वधा स्थ तर्पयत मे पितॄन्।

इति पिण्डेषु हस्तद्वयेन जलाञ्जलिधारां दद्यात्। एवं मातामहादिपिण्डेष्वपि।

ततः प्रत्येकं जल-घृत-गन्ध-मधु-पुष्प धूप-दीप-ताम्बूलैरष्टभि-र्द्रव्यैस्तूष्णीं पिण्डान् पूजयित्वा पितॄन् भास्करमूर्त्तिकान् ध्यात्वा पिण्डानि सम्पन्नानीति पितृब्राह्मणं पृच्छेत्। सुसम्पन्नानि सन्त्विति तेनोक्ते किञ्चिन्नम्रीभूय पिण्डानुत्तोल्याघ्राय च पात्रे स्थापयेत्। तत आचमनार्थमुदकं पित्रादिक्रमेण ब्राह्मणेभ्यो दद्यात्।

अत्राब्राह्मणकश्राद्धे तु उदकादिदानबाधः स्वयमभ्याचक्ष्य ससुप्रोक्षितमस्त्विति विप्राग्रभूमिमभिषिच्य

ओं अपां मध्ये स्थिता देवा अप्सु सर्व्वं प्रतिष्ठितम्।
ब्राह्मणस्य करे न्यस्ताः शिवा आपो भवन्तु नः॥

इति मन्त्रेण शिवा आपो भवन्त्वित्यनेन वा द्विजकरेषु जलं दैवादिक्रमेण दद्यात्। सन्त्विति प्रत्युत्तरम्।

लक्ष्मीर्वसति पुष्पेषु लक्ष्मीर्वसति पुष्करे।
लक्ष्मीर्वसते सदा गोष्ठे सौमनस्यं सदाऽस्तु मे॥

इति मन्त्रेण ॐ सौमनस्यमस्त्वित्यनेन वा यवदूर्व्वां दद्यात्। अस्त्विति प्रतिवचनम्।

अक्षतं चास्तु मे पुण्यं शान्तिः पुष्टिर्धृतिश्च मे।
यद्यच्छ्रेयस्करं लोके तत्तदस्तु सदा मम॥

इति मन्त्रेण ओं अक्षतञ्चारिष्टञ्चास्त्वित्यनेन वा यवदूर्व्वां दद्यात्। अस्त्विति प्रतिवचनम्।

ततः—ओं अमुकगोत्रस्य पितुरमुकशर्म्मणः सर्व्वं दत्तमिदमन्नपानादिकमक्षय्यमस्तु—इति ब्राह्मणकरे सतिलोदकं दद्यात्। एवं पितामहादीनां षण्णां प्रत्येकं देयं सर्व्वत्रास्त्विति प्रतिवचनम्।

ततः प्राङ्मुख उपवीतो दक्षिणां दिशं कटाक्षेणावलोकयन् ओं अघोराः पितरः सन्त्विति पृच्छेत् सन्त्विति ब्राह्मणोत्तरम्। ओं गोत्रं नो वर्द्धतामिति पृच्छेत् वर्द्धतामिति प्रत्युत्तरम्।

ओं दातारो नो विवर्द्धन्तां* वेदाः सन्ततिरेव च।
श्रद्धा च नो मा व्यगमद्बहुदेयञ्च नोऽस्त्विति॥
अन्नञ्च नो बहु भवेदतिथींश्च लभेमहि।
याचितारश्च नः सन्तु माच याचिष्म कञ्चन॥

एताः सत्या आशिषः सन्त्वित्युक्ते विप्रैः सन्त्वित्येवादेव प्रत्युत्तरं देयम्।

ततः पवित्राणि अर्घ्यसम्बन्धीनि भूमावास्तीर्य्य पित्रादिब्राह्मणमापृच्छेत्।

ओं स्वधां वाचयिष्ये वाच्यतामित्यनुज्ञातः ओं पितृभ्यः स्वधोच्यतां अस्तु स्वधेति प्रत्युत्तरम्।

एवं पितामहेभ्यः स्वधोच्यतां प्रपितामहेभ्यः स्वधोच्यतां मातामहेभ्यः स्वधोच्यतां प्रमातामहेभ्यः स्वधोच्यतां वृद्धप्रमातामहेभ्यः स्वधोच्यताम्। सर्व्वत्रास्तु स्वधेति प्रत्युत्तरम्।

ततं ऊर्ज्जं वहन्तीरिति हस्तद्वयेन वारिधारया सेकः। एवं मातामहपक्षेऽपि। ततो न्युब्जीकृतमर्घपात्रमुत्तानीकृत्य दैवे रजतवर्ज्जं यथाशक्ति दक्षिणां दद्यात्।

ओं अद्येत्यादि पुरोरवोमाद्रवसोर्विश्वेषां देवानां कृतैतत् पार्व्वणश्राद्धप्रतिष्ठार्थं दक्षिणामिदं काञ्चनमग्निदैवतं काञ्चनमूल्यं वा अमुकगोत्रायामुकशर्म्मणे ब्राह्मणाय तुभ्यमहं ददे।

ओं अद्येत्यादि अमुकगोत्रस्य पितुरमुकशर्म्मणः एवं पिता-

---

* अ पुस्तके ऽभिवर्द्धन्ता।

महस्य प्रपितामहस्य च सतैतत्पार्व्वणश्राद्धकर्म्मणः प्रतिष्ठार्थं दक्षिणामिदं रजतं पितृदैवतं रजतमूल्यं वा अमुकगोत्रायामुकशर्म्मणे ब्राह्मणाय तुभ्यमहं ददे।

एवं मातामहपक्षेऽपि। स्वस्तीति सर्व्वेच ब्राह्मणा ब्रूयुः। अभावे रजतस्य दर्शनं कथामपि कुर्य्यात्।

ओं विश्वेदेवाः प्रीयन्तामिति ब्रूहीति पृष्टा देवब्राह्मणहस्ते यवोदकं क्षिपेत्। विश्वेदेवाः प्रीयन्तामिति तेनोक्ते देवताभ्य इति विर्जपेत्।

ततः—

ओं वाजे वाजेऽवत वाजिनो नो
धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः।
अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं
तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः॥

इति मन्त्रेण कुशाग्रेण पितृमातामहांश्च विसृज्य कुशमूलेन देवान् विसर्ज्जयेत्।

ततो भवद्भिरहं सतार्थीकृत इति प्रियवचनमुक्ता पङ्क्तिमूर्द्धन्यस्यानङ्कृतपाणि गृहीत्वा पित्रादिक्रमेण ब्राह्मणानुत्थाप्य उदग्रार्थं गृहीत्वा—

ओं आमा वाजस्य प्रसवो जगम्या
देवे द्यावापृथिवी विश्वरूपे।
आ मागन्तां पितरामातरा
चुक्ममा सोमो अमृतत्वाय गम्यात्॥

इत्यनेनाष्टौ पदानि द्वारपर्य्यन्तं वा अनुव्रज्य बहिःस्थांस्तान् वारिधारया प्रदक्षिणीकृत्याभिवाद्य च तेनानुज्ञातो गृहं प्रविश्या-च्छिद्र कुर्य्यात् श्रीविष्णुञ्च स्मरेत्।

अत्राद्यपकश्राद्धे तु भवद्भिरहं कृतार्थीकृत इति प्रीतिवचन पाणि ग्रहणोत्थापनामावाजयेत्यनुव्रजन-प्रदक्षिणीकरणाभिवाद-नाना बाधः।

ततः पुत्रार्थी साध्वीत्स्नाता पत्नीं मध्यमं पिण्डं

श्री—आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम्।

यथेह पुरुषोऽसत्।

इति मन्त्रेणाभिमन्त्र्य भोजयेत्।

अन्यांश्च पिण्डान् गोऽजविप्रेभ्यो दद्यादग्नौ जलेऽपि वा क्षिपेत्।

अब्राह्मणकश्राद्धे तु—

श्राद्धाधमन्नो जले वा क्षिपेत् भूमौ दर्भेषु वा निखनेत् ब्राह्मणाय दद्यात्।

ततः शान्तिं कृत्वा रक्षार्थदीपं हस्तेन निर्वाप्य पाणी पादौ च प्रक्षाल्याचम्य सूर्यं प्रणमेत् ब्राह्मणविसर्ज्जनानन्तर-मुच्छिष्टापनयनं दिवापर्य्यन्तसाधनन्तु पितृप्रीत्यतिशयार्थम्। प्रसङ्गते सूर्यं भोजनपात्राणामधोमुखानामभ्यसि प्रक्षेपः। ततो वैश्वदेवं बलिं नित्यश्राद्धञ्च कृत्वा ज्ञातीन् भोजयित्वा स्वयञ्च भुञ्जीत। सति शेषे श्राद्धशेषमवश्यं भुञ्जीत।

———

## अथ सामगानां श्राद्धक्रमसङ्क्षेपः ।

निमन्त्रणं स्वागतञ्च पाद्यमर्घ्यादिकं द्विजे ।
द्विजोपवेशनं दीपो विष्णोरर्च्चा हरिस्मृतिः ॥
तिलसर्षपविक्षेपो मध्ये द्वारे च सर्व्वतः ।
रक्षाजलञ्च गायत्री देवतासु च* सूक्तलम् ॥
द्विजपाणौ जलं दर्भासनमावाहनं ततः ।
अर्घे न्युब्जञ्च गन्धादि तथाग्नौ हुतशेषकम् ॥
परिवेषणञ्च पृथिवी इदञ्चापहता तिलम् ।
पाणौ जलञ्च गायत्री मधुवातेति तै मधु ॥
इदमन्नमन्नोत्सर्गो अच्छिद्रञ्च यथासुखम् ।
गायत्रीं मधुवातेति जपेच्च पितृसंहिताम् ॥
तृप्तिप्रश्नोऽग्निदग्धाश्च तथाचम्य हरिस्मृतिः ।
पाणौ जलं शेषमन्नं पिण्डप्रश्नोऽथ मण्डलम् ॥
रेखास्तरावनेजनदेवतापिण्डदानकम् ।
लेपः शेषः करचालस्तथाचम्य हरिस्मृतिः ॥
पवनेजनाश्च पितरो वसन्ताय नमो ततः ।
अञ्जलिर्वास ऊर्ज्जञ्च पिण्डार्च्चा च द्विजाचमः ॥
सुप्रोक्षितं शिवा आपः सौमनस्यं तथाक्षतम् ।
अक्षय्याघोरगोत्रं नो स्वधावचनमूर्ज्जकम् ॥
न्युब्जोत्थानं दक्षिणा च स्विष्टे दातार एव च ।

* च पुस्तके देवतांश्च ।

देवता वाज आमेति द्विजानुगमनं नतिः।
अच्छिद्रविष्णुसरणपिण्डार्पणमिति क्रमः॥

इति शेषे श्राद्धशेषमवश्यं भुञ्जीत। एवं पार्व्वणविधिना नवान्नोपरागयुगाद्यादिश्राद्धानि सर्व्वाण्येव कार्य्याणि।

*[ यथामावस्याश्राद्धमभिधाय मनुः—

सहपिण्डक्रियायान्तु कृतायामस्य धर्म्मतः।
अनयैवावृता कार्य्यं पिण्डनिर्व्वपणं सुतैः॥

---

## अथावश्यकश्राद्धकालाः।

विष्णुः—

अमावस्यास्तिस्रोऽष्टकास्तिस्रोऽन्वष्टका माघी प्रौष्ठपद्यूर्द्ध कृष्णा त्रयोदशी व्रीहियवपाकौ च।

एतांस्तु श्राद्धकालान् वै नित्यानाह प्रजापतिः।
श्राद्धमेतेष्वकुर्व्वाणो नरकं प्रतिपद्यते॥ ]

अमावस्या इति सामान्यविधानात् प्रतिमासमनुष्ठेयाः।

तथा विष्णुपुराणे—

मासि मास्यसिते पक्षे पञ्चदश्यां नरेश्वर।

प्रतिमासामावस्यायां मासत्रयस्यावश्यकत्वमाह मत्स्यपुराणे—

अनेन विधिना श्राद्धं त्रिरब्दस्येह निर्व्वपेत्।
कन्याकुम्भवृषस्थेऽर्के कृष्णपक्षेषु सर्व्वदा॥

---

* क पुस्तके [ ] चिह्नितांशो नास्ति।

अनाद्यशक्तौ सकृत् कर्त्तव्यमित्याह देवलः—

अनेन विधिना श्राद्धं कुर्य्यात् संवत्सरं सकृत्।
त्रिरृतुर्वा यथाशक्ति मासे मासे दिने दिने॥

सकृत्करणपक्षः कन्यायामेवातिप्रशस्तत्वात् दिने दिने इति प्राशस्त्यार्थमिति प्रागुक्तम्।

अत्यन्तायन्नाहाह विष्णुपुराणम्—

अन्नेन वा यथाशक्ति कालेऽस्मिन् भक्तिनम्रधीः।
भोजयिष्यति विप्राग्र्यान् तन्मात्रविभवो नरः॥
असमर्थोऽन्नदानस्य धान्यमामं स्वशक्तितः।
प्रदास्यति द्विजाग्रेभ्यः स्वल्पां वा पितृदक्षिणाम्॥
तत्राप्यसामर्थ्ययुतः कराग्राग्रस्थितांस्तिलान्।
प्रणिपत्य द्विजाग्राय कस्मैचिद्भूप दास्यति॥
तिलैः सप्ताष्टभिर्वापि समवेताञ्जलाञ्जलीन्॥
भक्तिनम्रः समुद्दिश्य भुव्यस्माकं प्रदास्यति।
यतः कुतश्चित् संप्राप्य गोभ्यो वापि गवाह्निकम्।
अभावे प्रीणयन्नस्मान् श्रद्धायुतः प्रदास्यति॥
सर्व्वाभावे वनं गत्वा कक्षामूलप्रदर्शकः।
सूर्य्यादिलोकपालानामिदमुच्चैः पठिष्यति॥
नमेऽस्ति वित्तं न धनं नचान्य-
च्छ्राद्धोपयोग्यं स्वपितॄन् नतोऽस्मि।

* ख पुस्तके चमेति।

तृप्यन्तु भक्त्या पितरौ मयैतौ
चिरौ भुजौ वर्त्मनि मारुतस्य ॥

तस्मादुत्सर्गः पितृद्देशेन कार्य्यः अस्माकं समुद्दिश्येत्युपसंहारात् स चान्नोत्सर्गकाण्डपरिपाट्या तस्यैव श्राद्धानुकल्पिकत्वादन्यथा कल्पनागौरवाच्च। पितृदक्षिणां रजतमत्यल्पं धान्यदानाशक्तौ देयं चाकारात्।

गवाह्निकं गवां दिनभक्ष्यं वित्तं काञ्चनादि धनं धान्यादि श्राद्धोपयोग्यं फलमूलादि।

साग्नेस्तु पार्व्वणश्राद्धाशक्तौ विशेषमाह निगमः—

आहिताग्नेः पित्रर्थं पिण्डैरेव ब्राह्मणान् भोजयेदिति पूर्व्वस्मृतेः।

पूर्व्वमन्नदानं श्राद्धे ब्राह्मणभोजनमन्नदानमात्रं अतोऽशक्तौ तन्नावश्यकं किन्तु पिण्डपितृयज्ञ एवावश्यं कार्य्यः शक्तौ तूभयमेवेत्यर्थः।

तिस्रोऽष्टका इत्यष्टकान्तरस्य नित्यत्वव्युदासार्थम्।
संख्याया न्यूनाधिकत्वव्यवच्छेदात्।

तथाच वायुपुराणे—

पितृदानाय * मूले स्युरष्टकास्तिस्र एव च।
कृष्णपक्षे वरिष्ठा हि पूर्व्वा चैन्द्री विभाव्यते ॥
प्राजापत्या द्वितीया स्यात्तृतीया वैश्वदेविकी।
आद्या पूपैः सदा कार्य्या मांसैः कार्य्या तथापरा ॥

* ख पुस्तके पितृदानाय।

शाकैस्तृतीया कर्त्तव्या एष द्रव्यगतो विधिः ।
अन्वष्टका पितृणान्तु नित्यमेव विधीयते ॥
या चाप्यन्या चतुर्थी स्यात्ताञ्च कुर्य्याद्विशेषतः ॥
आसु श्राद्धं द्विजः कुर्य्यात्सर्व्वास्वेनापि नित्यशः ।
क्षिप्रं प्राप्नोति श्रेयांसि परत्रेह च मोदते ॥
पितरः पर्व्वकालेषु तिथिकालेषु देवताः ।
सर्व्वे गृहस्थमायान्ति निपानायेव ० धेनवः ॥
यस्य ते प्रतिगच्छेयुरष्टकास्वप्यपूजिताः ।
मोघास्तस्य भवन्त्याशाः परत्रेह च नित्यशः ॥

अत्र प्रधानत्वानि अमावस्या हि प्रधानं तत्स्थाने इत्यर्थः । अत्रापि नित्यएवेत्येवकारात् तिसृणामेव नित्यत्वम् । *[अतएव या चाप्यन्या चतुर्थी स्यात् ताञ्च कुर्य्याद्विशेषतः । इत्यनेन विशेषतः फलातिशयार्थमित्युक्तं अन्यथा पृथगुपादानवैफल्यं स्यात् ।] अतएव आसु श्राद्धमित्यनेन तिसृणां नित्यत्वं प्रतिपाद्य क्षिप्रं प्राप्नोतीत्यनेन चतुर्थ्याः काम्यत्वं क्रमेण प्रतिपादितम् ।

सा च वर्षासु कर्त्तव्या—

वर्षास्वक्षेध्यशाकेन चतुर्थ्यामेव सर्व्वदा ।

इति ब्रह्मपुराणवचनात् ।

न च सर्व्वदेत्यनेन नित्यत्वमस्या इति वाच्यम् । पूर्व्वोक्तविरोधेन सर्व्वदेत्यस्याभिध्याशाकैरित्यनेन सम्बन्धात् । वर्षास्वपि

प्रौष्ठपद्या ऊर्द्धं प्रौष्ठपद्यामतीतायामष्टका त्वं भविष्यसीति वरदान-श्रवणात्।

अत—

आग्रहायण्यामतीतायां कृष्णास्तिस्रोऽष्टकास्तथा।

इति विष्णुधर्मोत्तरवचनादाग्रहायण्या ऊर्द्धं गौणचान्द्रव्यवस्थया पौषादिषु त्रिषु मासेषु तिस्रोऽष्टका ज्ञातव्याः।

अतएव छन्दोगपरिशिष्टम्—

शाकन्तु फाल्गुनाष्टम्यां स्वयं पत्न्यपि वा पचेत्।

वास्तुशाकादिहोमश्च कार्य्योऽपूपाष्टकाहृता॥

तथा कात्यायनः—

आग्रहायण्या ऊर्द्धं तिस्रोऽष्टकास्तिस्रोऽन्वष्टकाः क्रमेणापूपमांसशाकैर्विकीर्षेदिति।

अष्टका अष्टम्यो मांसैः पशोरिति शेषः।

यदि वास्ततरसम्भारः स्यादपि पशुनैव कुर्व्वीत।

इत्यष्टकायां गोभिलदर्शनात्। पशुरपि छागएव छागोऽनादेशे पशुरिति ग्रन्थान्तरवचनात्।

यद्यपि पारस्करेण गौरव विहिता तथापि

अग्निहोत्रं गवालम्भं सन्यासं पलपैतृकम्।

देवरेण सुतोत्पत्तिं कलौ पञ्च विवर्ज्जयेत्॥

इत्यनेन कलौ गोमांसेन पितृकर्म्मनिषेधादनादेश एवेति।

छागाभावे स्थालीपाकोऽनुकल्पः।

अपिवा स्थालीपाकं कुर्व्वीत अपिवा गोग्रासमाहरेत् नत्वेवं न कुर्व्वीतेति गोभिलवचनात्।

स्थालीपाके विशेषश्छन्दोगपरिशिष्टे—

स्थालीपाकं पशुस्थाने कुर्य्याद्यद्यानुकल्पिकम्।
श्रपयेत्तं सवत्सायास्तरुण्या गोः पयस्यथ॥

सवत्साविधिरत्र श्लाघ्यार्थो विवत्सादुग्धपाननिषेधस्तु पुरुषार्थ इत्यदोषः।

एतेन गोभिलीय पारस्करीययोः स्वग्रन्थस्तुल्यत्वाद्वायुपुराणोक्त एव द्रव्यविधिः। ब्रह्मपुराणोक्तकल्पस्तु शाख्यन्तरीयो मन्तव्यः। यथा—

ऐन्द्र्यान्तु प्रथमायां वै शाकैः सन्तर्पयेत्पितॄन्।
प्राजापत्यां द्वितीयायां मांसैः ऋद्धैस्तु तर्पयेत्॥
वैश्वदेव्यां तृतीयायामपूपैस्तु यथाक्रमम्।
अर्पोस्तमेध्यशाकैस्तु चतुर्थ्यामेव सर्व्वदा॥

तिस्रोऽन्वष्टका इति अष्टकाया अष्टम्या अनु पश्चात् तिथिर्नवमीत्यर्थः तिथिप्रकरणात्। अतएव तिस्र इति स्त्रीलिङ्गनिर्देशः। अन्यथा परदिनमात्रपरत्वे अन्वष्टकमेव स्यात्।

तथा विष्णुः—

अन्वष्टकास्वष्टकावदुद्दा इति।

वायुपुराणे—

अन्वष्टका पितॄणान्तु नित्यमेव विधीयते।

यत्तु—

स्त्रीऽन्वष्टक्यमिति गौतमवचनं तत्र प्रायः परदिने नवमीसम्बन्धात् स्त्रदिति मन्तव्यम्। उक्तयुक्तेः।

अतएव स्त्रीऽन्वष्टक्यं परस्त्री वा इति गोभिले उक्तं। कदाचिदपराह्नविहितस्याष्टकाश्राद्धस्य तृतीयदिने विहितकाले पूर्व्वाह्णे नवमीलाभादिति।

तिस्र इत्यष्टकानवरग्रहाद्युदासार्थम्।* वस्तुतस्तु विधानाभावादेव व्युदासः।

इदन्तु गोभिलीयेतरविषयं गोभिलीयानान्तु मध्यमायामेवान्वष्टकायां श्राद्धम्।

अन्वष्टक्यं मध्यमायामिति गोभिलगौतमौ।
वार्कखण्डिश्च सर्व्वासु कौत्सो मेनेऽष्टकासु च॥

इति छन्दोगपरिशिष्टकर्त्ता मध्यमायामेव बहुसम्मतिदर्शनात्।

अन्वष्टकाश्राद्धञ्च मातृपूर्व्वं कर्त्तव्यम्।

यथा ब्रह्मपुराणे—

अष्टकासु च कर्त्तव्यं श्राद्धं नैमित्तिकेषु च।
अन्वष्टकासु क्रमशो मातृपूर्व्वं तदिष्यते॥

विष्णुः—

अन्वष्टकास्वष्टकावदुद्दा मात्रे पितामह्यै प्रपितामह्यै देवपूर्व्वान् ब्राह्मणान् भोजयेदिति।

---

* क पुस्तके इत्यष्टकास्वष्टकायद्वाद्युदासार्थं।

माढकश्राद्धन्तु छन्दोगैर्न कर्त्तव्यम्।

न योषिद्भ्यः पृथग्दद्यादवसानदिनादृते।

इति छन्दोगपरिशिष्टवचनात्।

एवञ्च—

कर्षूसमन्वितं मुक्ता* तथाद्यं श्राद्धषोड़शम्।

प्रत्याब्दिकञ्च शेषेषु पिण्डाः स्युः षडिति स्थितिः॥

इति तदीयवचने षट्पिण्डनिषेधान्मातामहादिश्राद्धमपि तेन कार्य्यं किन्तु त्रैपुरुषिकमेव।

तत्राग्निसाध्यत्वान्निरग्नेर्नाधिकार इति केचित्।

अग्न्यभावे विप्रपाण्यादौ होमविधानात्—

एतच्चानुपनीतोऽपि प्रवासस्थोऽपि नित्यशः।

इति मत्स्यपुराणे सर्व्ववर्णगोचरत्वे चानुपनीतशूद्रादीनामप्यधिकारप्रतिपादनाच्च कथं निरग्नेर्नाधिकारः। माघी प्रौष्ठपद्यूर्द्धं कृष्णत्रयोदशीति।

माघी मघायुक्तेति त्रयोदशीविशेषणमिति केचित्।

कल्पतरुकारादयस्तु—

विष्णुधर्म्मोत्तरवचनैकवाक्यतया माघी पौर्णमासीत्याहुः।

यथा विष्णुधर्म्मोत्तरे—

व्रीहिपाके च कर्त्तव्यं यवपाके तथैव च।

न तावाद्यौ महाराज विना श्राद्धं कथञ्चन॥

---

* च पुस्तके पाठः।

पौर्णमासी तथा माघी श्रावणी च नरोत्तम।
प्रौष्ठपद्यामतीतायां तथा कृष्णत्रयोदशी।
एतान् श्राद्धकालान् वै नित्यानाह प्रजापतिः।

यत्तु—

श्रावण्याग्रहायण्योरष्टकासु च पितृभ्यो दद्यात्।

इति वशिष्ठनाम्ना वचनं पठित्वा श्रावण्याग्रहायण्या अपि नित्यत्वं केचिदाहुः। तदमूलं कल्पतरुकामधेनुश्राद्धविवेकादिभिः प्रामाणिकसङ्ग्रहकारैरलिखितत्वात्। मघात्रयोदशी तु विवेचयिष्यते।

ब्रीहियवपाकौ चेति—एतान् श्राद्धकालान् वै इत्यनेन चालोपसङ्गारात् व्रीहिपाककालो यवपाककालश्चेत्यर्थः।

स च शरदसन्तौ। यथा परिशिष्टप्रकाशधृता श्रुतिः—

शरदमेधो व्रीहियवाभ्यां शरदसन्तयोर्यजेत श्यामाकैर्वर्षासु।

यद्यप्यत्र पाकपदेन कालो लक्ष्यते तथापि विशेषणस्य पाकस्यैव निमित्तत्वं प्राधान्यात्।

अन्यथा नानामुनिवचनेषु व्रीहिपाकपदेनाभिधानमसमञ्जसं स्यात्।

अतएव—शुक्लपक्षे नवं धान्यं पक्वं ज्ञात्वा सुशोभनम्।

इति ब्रह्मपुराणम्।

व्रीहिः शरत्कधान्यं न तु शालिधान्यमन्यथा * [ व्रीह्यप चारे शालिप्रतिनिधिदर्शनं पृथगुपादानञ्च नोपपद्येत ।

छन्दोगपरिशिष्टे—

यथोक्तवस्त्वसम्पत्तौ ग्राह्यं तदनुकारि यत् ।
यवानामिव गोधूमा व्रीहीणामिव शालयः ॥ ]

वामनपुराणे—

हविषा संस्कृता ये तु यवा गोधूमशालयः ।
तिलमुद्गादयो माषा व्रीहयश्च प्रिया हरेः ॥

अतएव कामधेनुलता—

शुक्लपक्षे नवं धान्यं पक्वं ज्ञात्वा सुशोभनम् ।
गच्छेत् क्षेत्रे विधानेन गीतवाद्यपुरःसरः ॥

इत्युपक्रम्य—

तेन देवान् पितॄंश्चैव तर्पयेद्धर्षयेत्तथा ।

इति ब्रह्मपुराणवचनमाश्विनमासीयनियतत्वे निरस्तम् । अस्मादेव वचनाच्छुक्लपक्ष एवैतच्छ्राद्धं व्रीह्यभावे हैमन्तिकग्रामा-कादिनापि चावश्यकत्वात् ।

अतएव बौधायनः—

आ व्रीहिपाकाद्यवपाकं गायेति आ यवपाकाद्व्रीहिपाक-मिति ।

तथा छन्दोगपरिशिष्टे—

---

* ख पुस्तके [ ] चिह्नितांशो नास्ति ।

शरद्वसन्तयोः केचिन्नवयज्ञं प्रचक्षते ।

धान्यपाकवशादन्ये श्यामाको वनिनः स्मृतः ॥

एतत्तुल्यन्यायाच्छ्राद्धमपि ।

केचिद्धान्यान्तरेण श्राद्धे प्रत्यवायपरिहारस्य जातत्वेऽपि सङ्ग्रहेण श्राद्धस्य जातत्वाल्लक्षणार्हता नास्त्येव

न तावाप्यो महाराज विना श्राद्धं कथञ्चन ।

इति विष्णुधर्म्मवचनादित्याहुः ।

तथा नैमित्तिकधान्यपाकेऽपि श्राद्धान्तरमावश्यकम् ।

यथा ज्योतिषे वराहसंहितायां—

वृश्चिके शुक्लपक्षे तु नवान्नं भक्षते बुधः ।

अपरे क्रियमाणं हि धनुष्येव कृतं भवेत् ॥

यत्कृतं धनुषि श्राद्धं मृगनेत्रासु रात्रिषु ।

पितरस्तन्न गृह्णन्ति नवान्नामिषकाङ्क्षिणः ॥

अत्र इत्यनेन वृश्चिकस्य मुख्यकालता दर्शिता । अपरे कृष्णपक्षे मुख्यकालाभावे कालान्तरविधौ धनुषोऽपि प्रसक्तौ निषेधमाह यत्कृतमिति । मृगनेत्रास्विति मृगो मृगशीर्षनक्षत्रं नेता गमको यासां रात्रीणां राजादित्वादप्रत्ययः । मृगनक्षत्रं सायं सन्ध्यायामुदयात् प्रातश्चास्तगमनाच्च यासां रात्रीणां समापकमित्यर्थः । तास्तु वृश्चिकस्थयोर्विंशद्दिनादूर्द्ध्वं भवन्ति ।

यथा ज्योतिषे—

दिनत्रयाधिके विंशे रवेर्मासस्य वै गते ।

मृगनेत्रा रात्रयः स्युर्नवान्नं तत्र वर्जयेत् ॥

तत्र शालिपदं शालुपलक्षितदिवापरं रात्रौ श्राद्धनिषेधात्।

प्रत्यक्षकृतव्रीहिपाकश्राद्धेन तु व्रीहिपाकनवान्नागमनिमित्तं श्राद्धं करिष्य इति सङ्कल्प तन्त्रेणैकं श्राद्धं कार्यमिति।

अत्राधुनिकाः—

हैमन्तिकधान्यपाकेन नवान्नागमनिमित्तं पृथक् श्राद्धं नास्ति किन्तु व्रीहिपाकनिमित्तस्यैव श्राद्धस्य कौशलाभादिना स्वकालेऽकरणे आनुकल्पिकी द्वितीयः कालो धान्यान्तरेणाप्यनुष्ठेयमानत्वञ्च विधीयते, अन्यथा मूलभूतश्रुतिद्वयकल्पनागौरवं स्यादित्याहुः। तन्नन्दं

द्वयिवे नवान्नं प्राश्नाति इति विरोधात् आनुकल्पिकस्य प्रशस्तत्वासम्भवात् वराहसंहितायां व्रीहिपाकनिमित्तकश्राद्धस्यानुकल्पेन तदानुकल्पिककालकल्पनाया अन्याय्यत्वाच्च। व्रीहिश्राद्धमनूद्य कालद्रव्योभयविधौ वाक्यभेदापत्तेश्च।

किन्तु—

अष्टकासु च कर्त्तव्यं श्राद्धं हैमन्तिकेषु च।
अन्वष्टकासु क्रमशो मातृपूर्व्वं तदिष्यते॥
ग्रहणे च व्यतीपाते शालिधान्यसमागमे।
जन्मर्क्षग्रहपीड़ायां श्राद्धं पार्व्वणमुच्यते॥

इति ब्रह्मपुराणे शालिपदवाच्यस्य हैमन्तिकधान्यस्य समागमनिमित्तं स्वातन्त्र्येण श्राद्धविधानात्।

तथा श्राद्धचिन्तामणौ—

अकृताग्रयणश्चैव धान्यजातं नरेश्वर।
राजमाषानणूंश्चैव मसूरांश्च विवर्ज्जयेत्॥

इति विष्णुपुराणे—

अकृताग्रयणम् अकृतनवान्नमागमनश्राद्धं धान्यजातं शरत्पक्व-हैमन्तिकादिरूपधान्यसमूहं वर्ज्जयेदित्यभिधानादन्यथाजातपद-वैयर्थ्यात्। हैमन्तिकसंस्कारार्थं नवमेव श्राद्धमावश्यकमित्युक्तम्॥

तथा श्राद्धविवेके नवान्नागमननिमित्तमपि नित्यमिति वक्ष्यत इत्यनेन पृथक् श्राद्धमुक्तं। तस्मात् सर्व्वैशिष्टैरङ्गीकृतं सर्व्वदेशेषु पारम्पर्य्यक्रमागतमाचारमुन्मूलयितुमिच्छतामाधुनिकानां वचसि नादरः कार्य्यः।

इदञ्च नन्दादौ न कार्य्यम्।

ज्योतिषे—

नवान्नं नैव नन्दायां न च सुप्ते जनार्द्दने।
न कृष्णपक्षे धनुषि तुलायां न कदाचन॥

तथा—

नन्दायां भार्गवदिने त्रयोदश्यां त्रिजन्मनि।
अत्र श्राद्धं न कुर्व्वीत पुत्रदारधनक्षयात्॥

इति ज्योतिषे सावकाशश्राद्धनिषेधाच्च।

एवं नान्दिमुखश्राद्धमपि नन्दादौ न कार्य्यम् नापि कृष्णपक्षे।
यथा कामधेनुलिखितभविष्यपुराणवचनम्—

कृष्णपक्षे वृद्धिश्राद्धं न कुर्य्याद्वुद्धिमान्नरः।
पितरस्तत्र गच्छन्ति दाता च नरकं व्रजेत्॥

श्राद्धचिन्तामणौ तु—

पौषे चैत्रे कृष्णपक्षे नवान्नं नाचरेद्बुधः।
भवेज्जन्मान्तरे रोगी पितॄणां नोपतिष्ठते॥

इति नामशून्यवचनेन चैत्रे नवान्नं निषिध्य तुल्यन्याया-
न्नवान्नश्राद्धमपि चैत्रे निषिद्धम्।

नैमित्तिकश्राद्धमप्यावश्यकं विष्णुपुराणे अकृताग्रयणश्चैवेति
वचनेनाकृतश्राद्धस्य नैमित्तिकस्यापि वर्ज्जनात्।

तथा शातातपः—

सर्व्वस्वेनापि कर्त्तव्यं श्राद्धं वै राहुदर्शने।
अकुर्व्वाणस्तु तच्छ्राद्धं पङ्के गौरिव सीदति॥
नवोदके नवान्ने च गृहप्रच्छादने तथा।
पितरः स्पृहयन्त्यन्नमष्टकासु मघासु च॥
तस्माद्दद्यात् सदा युक्तो* विद्वत्सु ब्राह्मणेषु च॥

सर्व्वस्वेनापीति यस्याल्पवित्तस्य श्राद्धसामग्रीसम्पादनेनैव
सर्व्वस्वक्षयो भवति तेनापि कर्त्तव्यमित्यर्थः।

यत्तु—

सन्ध्यारात्र्योर्न कर्त्तव्यं श्राद्धं खलु विचक्षणैः।
तयोरपि च कर्त्तव्यं यदि स्याद्राहुदर्शनम्॥
राहुदर्शनदत्तं हि श्राद्धमाचन्द्रतारकम्।
गुणवत् सर्व्वकामीयं पितॄणामुपतिष्ठते॥

---

* क पुस्तके सदोद्युक्तः।

इति विष्णुवचने फलं श्रूयते तत् पञ्चयज्ञादौ प्रायश्चयादि-वदानुषङ्गिकमेवेति नवोदके वर्षारम्भे आर्द्रानक्षत्रस्थरवाविति यावत्।

अश्विन्यादि च मिलेषु विवाहे कृत्तिकादि तु।

वर्षाकाले तथार्द्रादि नक्षत्रगणनं स्मृतम्॥

इति रुद्रयामलवचनादार्द्रायां वर्षारम्भप्रसरः। अतएवा-सम्भवत्कालान्तरकत्वाकलमासेऽपि एतच्छ्राद्धं कार्यम्। नवावे नवावागमे इषिक इति यावत्। यवगच्छादने सति नवगृह-प्रवेश इत्यर्थः। दारग्रहस्नभक्षायाम्दो नित्यबहुवचनान्तः।

मघासु मघायुक्तत्रयोदश्यामित्यर्थः।

त्रयोदश्यां प्रयत्नेन वर्षासु च मघासु च॥

इति ब्रह्मपुराणवचनेन सहैकमूलस्मृतिकल्पमालाघवात्। विद्वत्सु ब्राह्मणेषु विशिष्टब्राह्मणप्राप्तावित्यर्थः। सुतो यज्ञवान् सदेति च नित्यतार्थम्।

हारीतः—

अष्टकामाघ्यभ्युदयास्तीर्थपात्रोपपत्तयः।

पितॄणामतिरेकोऽयं मासिकान्माद्भुवः स्मृतः॥

तीर्थे द्रव्योपपत्तौ च सद्यः श्राद्धं विधीयते।

पात्रं च ब्राह्मणं प्राप्य न कालमवधारयेत्॥

माघी पौर्णमासीत्यर्थः। अभ्युदयो विवाहादिः। तत्र वृद्धि-श्राद्धस्य कर्माङ्गत्वेनाकरणे कर्मवैगुण्यप्रसङ्गात्।

यत्तु व्यतीपाते जन्मर्क्षमभ्युदयेति विष्णुराह तत्राभ्युदय-

पदेन पुत्रजन्मोच्यते तन्निमित्तकश्राद्धस्य स्वतन्त्रस्य पितृप्रीतिफलत्वेन युगाद्यादिवत् काम्यत्वात्। तथा तीर्थयात्राश्राद्धमप्याभ्युदयिकम् न च तत् पार्व्वणधर्म्ममिति मैथिलोक्तमुपादेयम्।

सेतुदृहागतटाकानां प्रतिष्ठासु विशेषतः।

तीर्थयात्राद्यपोत्सर्गे वृद्धिश्राद्धं विधीयते॥

इति कूर्म्मपुराणवचनात् गणेशादिदेवतापूजासमभिव्याहारेण मङ्गलहेतुत्वाच।

यथा ब्रह्मपुराणे—

यो यः कश्चित्तीर्थयात्रां तु गच्छेत्

सुसंयतः स तु पूर्व्वं गृहेषु।

कृतोपवासः शुचिरप्रमत्तः

सम्पूजयेद्भक्तिनम्रो गणेशम्॥

*[ देवान् पितॄन् ब्राह्मणांश्चैव साधून्

धीमान् प्रीणयन् वित्तशक्त्या प्रयत्नात्।

प्रत्यागतश्चापि पुनस्तथैव

देवान् पितॄन् ब्राह्मणान् पूजयेच्च॥ ]

अत्रापि प्रयत्नादित्यनेन नित्यत्वं दर्शितं पूर्व्वं गृहेष्वित्यनेन प्राक्कर्त्तव्यत्वञ्च। पुनस्तथैवेत्यनेन पूर्व्वमिति कृतोपवास इति प्रयत्नादिति चयमनुकृष्यते। तेन प्राक्कर्त्तव्यत्वं नित्यत्व प्रवेशश्राद्धस्यापीति। पुनरपि देवान् गणेशादीनित्यर्थः। तेनेदमपि वृद्धिश्राद्धमेवेति। इदं श्राद्धं घृतप्रधानकं कार्य्यम्।

* [ ] चिह्नितश्लोक कपुस्तके नास्ति।

यथा भविष्ये—

गच्छन् देशान्तरं यस्तु श्राद्धं कुर्य्यात्तु सर्पिषा।
यात्रार्थमिति तत्प्रोक्तं प्रवेशे च न संशयः॥

यात्रार्थश्राद्धमित्यभिधानात् कृततीर्थयात्रेणैव प्रवेशश्राद्धं कार्य्यं नेतरेण यात्रानिमित्तकत्वश्चास्य यात्रासमापकतयेति। अतएव यात्राश्राद्धमष्टमं प्रोक्तमिति विश्वामित्रेण प्रवेशश्राद्धस्यापि यात्रान्तर्भावो दर्शितः।

तीर्थप्राप्त्युपपत्तय इति—तीर्थं गङ्गादि पात्रं विद्वद्ब्राह्मणः उपपत्तिः श्राद्धीयविशिष्टद्रव्यलाभो यदनन्तफलत्वेनोक्तम्। मासिकाश्राद्धमावश्यकश्राद्धादधिकोऽयमष्टकादिश्राद्धगणो ध्रुव आवश्यक इत्यर्थः।

तत्र विशेषमाह—

तीर्थे इति सद्यस्तीर्थप्राप्तिश्च एव कालममावस्यापराह्णादिकं नावधारयेत् न नियमेत्। योऽयममावस्यापराह्णादिनियमस्तदतिरिक्तेऽपि यदैव तीर्थप्राप्तिस्तदैव श्राद्धमवश्यं * कार्य्यमित्यर्थः।

निषिद्धन्तु रात्र्यादिकं वर्जयेदेव वचनस्योक्तगत्यान्यथोपपत्तौ निषेधप्राधान्यत्वात्।

अतएव देवीपुराणे—

तीर्थेषु काम्यं नैव परीक्षेत कदाचन।
श्राद्धन्तु तत्र कर्त्तव्यमर्घ्यावाहनवर्जितम्॥

* च पुस्तके श्राद्धमवश्यम्।

यत्प्रध्वाङ्क्षकाकानां नैव दृष्टिहतञ्च तत्।
अकालेऽप्यथवा काले तीर्थे श्राद्धं तथा नरैः॥
प्राप्तैरेव सदा कार्य्यं कर्त्तव्यं पितृतर्पणम्।
पिण्डदानन्ततः शस्तं पितॄणाञ्चातिवल्लभम्॥
विलम्बो नैव कर्त्तव्यो नैव विघ्नं समाचरेत्।
सक्तुभिः पिण्डदानञ्च सयवैः पायसेन वा॥
कर्त्तव्यमृषिभिर्जुष्टं पिण्याकेन गुडेन च॥

अकाले अमावस्याऽपराह्णादिभिन्नस्तत्कालादन्यस्मिन्नपीत्यर्थः कालेऽमावस्यापराह्णादौ प्राप्तैरेवेति प्राप्त्यनन्तरमविलम्बेनैतत्काले इत्यर्थः।

तेन रात्र्यादौ वा तीर्थेऽशौचे वा जाते मलमासे वा तदनन्तर*भाविशुद्धकाल एवाविलम्बेन श्राद्धं कार्य्यम्॥

प्राप्तैरित्यनेन प्राप्तिनिमित्तकमेव श्राद्धमित्युक्तं तेन यथा यात्राभेदे श्राद्धावृत्तिः प्राप्तिभेदेऽपि तथेति।

पिण्डदानन्त्विति श्राद्धाङ्गत्वेन पिण्डदानप्राप्तौ यत्पुनः पिण्डदानवचनं तद्द्रव्यान्तरसम्पत्त्या श्राद्धासामर्थ्ये पिण्डमात्रं देयमित्येवंपरं गयापिण्डदानवत्।

तथा कूर्म्मपुराणे—

गङ्गायाञ्च गयायाञ्च पिण्डदाने समं फलम्।
विशेषतः कलियुगे गङ्गापिण्डः प्रशस्यते॥

---

* ख पुस्तके कलियुगे।

प्राप्तिरेवेत्येवकारव्यावृत्तिं दर्शयति विलम्बो नैवेति इच्छया न कार्य्य इत्यर्थः। एतच्चामश्राद्धमिति प्रागेव दर्शितम्। गयायां मात्रादीनामपि श्राद्धं कार्य्यम्।

शङ्खः—

अन्वष्टका-गया-हविश्राद्धं चैव मृताहनि।
एकोद्दिष्टं तथा मुक्ता मातुर्नान्यत् पृथग्भवेत्॥

तथा—

षड्दैवतं वा कुर्व्वीत नवद्वादशदैवतम्।
गयाश्राद्धमथामश्रौ पिण्डदानमपि स्मृतम्॥

षड्दैवतं पातृपुरुषिकं तदेव मात्रादित्रिकसहितं नवदैवतं तदेव मातामह्यादित्रिकसहितं द्वादशदैवतं यथाक्री पूर्व्वं पूर्व्वं श्रेयं किन्तु तत्रापि पिण्डदानमवश्यमिति।

तच्च श्राद्धं हविश्राद्धविधिनेति केचित् तन्न प्रमाणाभावात् सामान्यतः पार्व्वणातिदेशाच्च।

तथाग्नेये—

पित्रादि नवदैवत्यं तथा द्वादशदैवतम्॥

---

## अथ मघात्रयोदशी।

अत्र केचित्—

त्रयोदश्यां विधिः, मघायोगः फलातिशयार्थो मनुविष्णुभ्यां केवलत्रयोदशीविधानात्।

यथा मनुः—

अपि नः स कुले जायाद्यो नो दद्यात्त्रयोदशीम्।
पायसं मधुसर्पिर्भ्यां प्राक्छाये कुञ्जरस्य च॥

दद्यात् ददातीत्यर्थः प्राक्छाये प्राच्यां दिशि गतायां हस्तिच्छायायाञ्चेत्यर्थः।

विष्णुः—

अपि जायेत सोऽस्माकं कुले कश्चिन्नरोत्तमः।
प्रावृट्कालेऽसिते पक्षे त्रयोदश्यां समाहितः॥
मधुप्लुतेन यः श्राद्धं पायसेन समाचरेत्।

तत्र—एतयोर्मनुविष्णुवचनयोः पितृगाथात्वेनार्थवादतया स्वतः प्रामाण्याभावात् अर्थवादस्य हि विध्येकवाक्यतयैव प्रामाण्यमित्युक्तमर्थवादाधिकरणे।

तत्र कॢप्तविधिशेषत्वे सम्भवति कल्प्यविधिशेषत्वमन्याय्यं कॢप्तविध्यनुरूपैव स्तुतिरनेन क्रियते। विधौ च मघायोगः श्रूयते। यथा शङ्खः—

प्रौष्ठपद्यामतीतायां मघायुक्तां त्रयोदशीम्।
प्राप्य श्राद्धन्तु कर्त्तव्यं मधुना पायसेन च॥

प्रौष्ठपद्यां भाद्रपौर्णमास्यामित्यर्थः।

ब्रह्मपुराणे—*

श्राद्धं तेनापि कर्त्तव्यं तैर्द्रव्यैः सुमन्त्रितैः।
त्रयोदश्यां प्रयत्नेन वर्षासु च मघासु च॥

---

* क पुस्तके ब्रह्मपुराणवचनं दलितम्।

वर्षामघाशब्दौ दारशब्दवन्नित्यबहुवचनान्तौ।

मनुः—

यत्किञ्चिन्मधुना मिश्रं प्रदद्यात्तु त्रयोदशीम्।
तदप्यक्षयमेव स्याद्वर्षासु च मघासु च॥

वर्षासु मघासु च त्रयोदशीकाले यत्किञ्चिदल्पमपि मधुना मिश्रं दद्यात् दाने हेतुमाह तदप्यक्षयमेवेति॥ अन्यथा मनुवचने त्रयोदशीमात्रश्रवणात् माघट्कालोऽपि फलातिशयार्थः स्यात्।

तथाच विष्णुवचने माघट्साक्षश्रुतेः प्रौष्ठपदमन्तरितत्वमपि फलातिशयार्थम्। अथ वाक्यभेदकल्पनभिया शङ्खादिवचनैकवाक्यतया मनुविष्णुवचनयोरपि प्रौष्ठपदमन्तरितत्वं सम्बन्ध्यमिति चेत् किमपराद्धं मघायोगेनेति।

न च विष्णुधर्म्मोत्तरे—

प्रौष्ठपद्यामतीतायां तथा कृष्णत्रयोदशी।
एतांस्तु श्राद्धकालान् वै नित्यानाह प्रजापतिः॥

इति नित्यकालविधायकवाक्ये केवलत्रयोदशीविधानमिति वाच्यम्।

उपदेशविधिमुपजीव्यैवाङ्गविधिप्रवृत्तेः शङ्खाद्युक्तमघाविशिष्टोपदेशविध्यनुरूपमेव कालरूपमङ्गमनूद्य तस्य नित्यताऽनेन वचनेन विधीयते। इत्यत्रापि मघाविशिष्टत्वमूहनीयम्।

न च—

वर्षात्रयोदशी नभस्ये या कृष्णा तस्यां समर्चयेत्।
पितॄन् पायसदानेन मधुना सर्पिषा तथा॥

इति संवत्सरप्रदीपादिलिखितवचने केवलत्रयोदश्यामपि विधिः श्रूयते इति वाच्यम्।

एतस्य वचनस्यामूलत्वात् समूलत्वेऽपि त्रयोदश्यां श्राद्धमेको विधिरपरश्च मघायोगे फलातिशयार्थ इति कल्पनागौरवात् बहुवाक्यादराच्च एकदेशकीर्त्तनपरमेव वचनं मन्तव्यम्॥

तस्माच्छातातपवचनैकवाक्यतया मघायुक्तायां प्रौष्ठपद्यनन्तरितकृष्णत्रयोदश्यां पायसादिद्रव्येण श्राद्धं कुर्य्यादिति शास्त्रोक्त एवैको विधिः।

तथा महाभारतादिवचनेष्वर्थवादरूपेष्वपि मघायोगः श्रूयते। यथा महाभारते—

अपि नः स कुले जायाद्यो नो दद्यात्त्रयोदशीम्।
मघासु सर्पिषा युक्तं पायसं दक्षिणायने॥
अजेन सर्वलोहेन मघासु च यतव्रतः।
हस्तिच्छायासु विधिवत् कर्णव्यजनवीजितम्॥

दक्षिणायने प्रवृत्ते वर्षास्वित्यर्थः। सर्वलोहेन सर्वतो लोहितेन। मघास्विति पुनरुपादानं सर्वलोहितच्छागस्य मघात्रयोदश्यां फलातिशयार्थे हस्तिच्छायास्विति देशपरं न तु कालप्रकरणात् कुञ्जरच्छायाख्यकालपरं कर्णव्यजनवीजितमित्यभिधानात् प्राक्छाये कुञ्जरस्येति मनुवचनाच्च।

उपप्लवनिमित्तेषु छायायां कुञ्जरस्य च।

* क पुस्तके पाठोऽयं नास्ति।

इति विष्णुधर्म्मोत्तरे दैवप्रकरणाभ्यानाच ।

छायायां करिणः श्राद्धं तत्कर्णपरिवीजितम् ।

दशकल्पायुतानीह न क्षीयेत युधिष्ठिर ॥

इति वनपर्व्ववचनाच ।

याज्ञवल्क्यः—

यद्ददाति गयास्थश्च सर्व्वमानन्त्यमश्नुते ।
भवेन्मघायां संस्थे च शशिन्यर्के करे स्थिते ॥
आश्वयुज्याञ्च कृष्णायां त्रयोदश्यां मघासु च ।
प्रावृड्‌ऋतौ यमः प्रेतान् पितृंश्चाथ यमालयात् ॥
विसर्ज्जयति मानुष्ये कृत्वा शून्यं स्वकं पुरम् ।
क्षुधार्त्ताः कीर्त्तयन्तश्च दुष्कृतञ्च स्वयं कृतम् ॥
काङ्क्षन्तः पुत्रपौत्रेभ्यः पायसं मधुसंयुतम् ।
तस्मात्तान् तत्रविधिना तर्पयेत् पायसेन च ॥
मध्वाज्यतिलमिश्रेण तथा शीतेन चाम्भसा ।
ग्रासमात्रं परग्रहादयत्नं यः प्राप्नुयान्नरः ॥
भिक्षामात्रेण यः प्राणान् सन्धारयति चान्वहम् ।
यो वा सम्यग्विदेहं प्रत्यहं स्वाजमित्रयात् ॥
श्राद्धं तेनापि कर्त्तव्यं तैस्तैर्द्रव्यैः सुसञ्चितैः ।
नाश्नात् परतरः कालः श्राद्धेष्वन्यत्र विद्यते ॥
यत्र साक्षात्तु पितरो गृह्णन्त्यमृतमुत्तमम् ।

मघात्रयोदश्यामित्यत्र मघाग्रहणं ख्यातिसूचकम् आश्वयुज्याञ्च कृष्णायामित्यनेन वक्ष्यमाणे मघात्रयोदशीलेन ख्याते काले कुञ्जर-

च्छायसंज्ञितोऽपरो योगः पितृप्रीत्यतिशयसाधनोपायः। करे हस्तानक्षत्रे स्थितेऽर्के शशिनि तु मघर्क्षे स्थिते सति भवेदित्यन्वयः।

तथा चामरकोषः—

योगः सन्नहनोपायध्यानसङ्गतियुक्तिषु।

तत्र मघात्रयोदश्यां पृथगेवायं कुञ्जरच्छायाख्यो गुणफलविधिर्न तु कुञ्जरच्छायामात्रविधिरित्यायातं मघायामित्येतावन्मात्रे पुनर्मघोपादानं रोहिण्यष्टम्यादिवन्मघर्क्षस्योपलक्षणत्वशङ्कानिरासार्थम्।

कन्यायां दशदिवसोपरि विंशतिदण्डाधिकत्रयोविंशतिदिनपर्य्यन्तं हस्तावस्थानमर्कस्येति।

मघात्रयोदशीमेव विशिनष्टि आश्वयुज्यामिति। आश्वयुजी आश्विनत्रयोदशी पौर्णमास्यन्तमासेन प्रौष्ठपद्याममावास्यायामिति शङ्खवचनात्। प्रावृट्‌तुरत्र चान्द्रसंवत्सरमतेन मन्तव्यः॥ कन्यास्थे रवौ मघात्रयोदशीकुञ्जरच्छायायोगयोः प्रतिपादनात्।

ऋतुव्यवस्था तु सौरमानेनैवेति शुद्धिकौमुद्यां प्रपञ्चितमस्माभिः। प्रेतान् विकिरणभागिनः।

तानाह मनुः—

असंस्कृतप्रमीतानां त्यागिनां कुलयोषिताम्।

उच्छिष्टं भागधेयं स्याद्दर्भेषु विकिरश्च यः॥

यमालयादिति यम्यते पापिनोऽस्मिन्निति यमालयः कारागारं, कौरीयमतो मनुष्यलोकमायान्तीति शेषः। तस्मादत्र मघा-

त्रयोदश्यां सूत्रविधिना गृह्योक्तविधिना श्राद्धेन तर्पयेदित्यर्थः। श्राद्धं तेनापि कर्त्तव्यमिति पुनर्मघात्रयोदशीविधानं श्राद्धस्याना-वश्यकत्वप्रदर्शनार्थम्। पिण्डदानञ्चात्र ज्येष्ठपुत्रिणा न कार्य्यम्।

यथा देवीपुराणे—

> कन्यास्थे च रवाविष्टे पूजनीया यथाविधि।
> भौजङ्गीं तिथिमासाद्य यावच्चन्द्रार्कसङ्गमम्॥
> तत्रापि महती पूजा कर्त्तव्या पितृदैवते।
> कार्य्ये पिण्डप्रदानन्तु ज्येष्ठपुत्री विवर्ज्जयेत्॥

इषे पौर्णमास्यन्ताश्विने तत्रैव मघायुक्तत्रयोदशीसम्भवात् न मुख्याश्विने तथा सौराश्विनपरत्वमिषशब्दस्य वैयर्थ्यात्।

तत्र कन्यास्थे रवाविति कन्यास्थत्वेनाश्विनकृष्णपक्षस्य ग्रहणमुपलक्षणं भौजङ्गी पञ्चमी चन्द्रार्कसङ्गमोऽमावस्या पूज-नीयाः पितर इति शेषः। यथाविधि गृह्योक्तविधिनेत्यर्थः।

तत्राप्याश्विनमध्ये पितृदैवते मघायुक्ते पृथक्श्रुतिकल्पन-भिया पूर्व्वोक्तयमादिवचनैकवाक्यतया मघायुतत्रयोदश्यामित्यर्थः। महती पूजा मधुपायसादिद्रव्यैः पञ्चयागात् पृथगेव श्राद्धं कर्त्तव्यमित्यर्थः।

अथ मैथिलाः—

भौजङ्गीमित्यादेः परेण सहान्वयं कृत्वा पञ्चम्यादिषु महती पूजा कार्य्या तत्रैव पञ्चयागे यस्यां कस्याञ्चित्तिथौ मघानक्षत्रे पिण्डदानं ज्येष्ठपुत्री विवर्ज्जयेदित्याहुः।

अत्राधुनिकाः—

एकवचनोपात्तप्रत्यासत्तेरन्तरङ्गत्वात् पूर्व्वेणैवान्वय इति वदन्ति।

वस्तुतस्तु पूजामङ्गलविधौ श्रुत्यन्तरकल्पनापत्तिर्दोषः। श्राग-स्तौ तु मघात्रयोदश्यां महती पूजा वचनान्तरेणैव क्लृप्तेति।

किञ्च पिण्डनिषेधोऽयं पक्षश्राद्ध एवावश्यं वाच्यः प्रस्तुतत्वात् अन्यथा सांवत्सरिकेऽपि पिण्डनिषेधप्रसङ्गः। तदा च पक्षश्राद्धा-दधिके मघात्रयोदशीश्राद्धे पिण्डदानप्रसङ्गो दुर्निवारः।

अन्ये तु—

पृथक्श्रुतिकल्पनाभिया पक्षश्राद्धान्तर्गतमघात्रयोदशीश्राद्ध-मेव मघायोगे प्रशस्तं न तु पृथक् श्राद्धान्तरमित्याहुः।

तदपि मन्दं—ग्रहादिनानाश्रुतिवचनानां पक्षश्राद्धमनपेक्ष्य चतुर्थ्यष्टकावत् स्वातन्त्र्येण प्रवृत्तेः। पक्षान्तर्गतत्रयोदशीश्राद्ध-मनूद्य मघानक्षत्रकाल-पायसादिद्रव्यरूपगुणत्रयविधानेन उप-सङ्क्रमयिष्यतीति वाक्यभेदापत्तेश्च।

यत्तु—

उत्तरादयनात्श्राद्धे श्रेष्ठं स्याद्दक्षिणायनम्।
चातुर्मास्यञ्च तत्रापि प्रसुप्ते केशवे हितम्॥
प्रौष्ठपद्याः परः पक्षस्तत्रापि च विशेषतः।
पञ्चम्यूर्द्धञ्च तत्रापि दशम्यूर्द्धं ततोऽप्यति।
मघायुक्ता च तत्रापि शस्ता राज्ञंस्त्रयोदशी॥

सर्व्वस्वेनापि कर्त्तव्यं श्राद्धमत्र नराधिप।

पराम्नभोजी त्वपचः श्राद्धमत्र तु कारयेत्॥

इति विष्णुधर्म्मोत्तरवचनं तज्जातीयानां तत्तद्विधिबोधित-श्राद्धकालानामेकस्यान्यापेक्षया पितृतृप्तिविशेषजनकत्वेन प्राशस्त्य-कथनमात्रपरं न तु श्राद्धविधायकम्।

अतएव

उत्तरादयनाच्छ्राद्धं श्रेष्ठं श्राद्धविधायकम्।

इति प्रथमत एवोक्तम्।

ततश्च—दयास्यूर्द्धं ततोऽप्यधिकमुक्ता तस्मादपि तत्तद्विधि-बोधितस्य पृथक्श्राद्धस्य मघात्रयोदशीकालः प्रशस्त इति न कश्चिद्दोषः।

अतएव तत्र विध्यपेक्षायां सर्व्वस्वेनापि कर्त्तव्यमित्यनेन पृथग्विधिरुक्तः अन्यथा पुनर्विधानवैफल्यं स्यादिति।

ज्येष्ठपुत्रीति मतुपो नित्ययोगार्थत्वेन ज्येष्ठपुत्रसद्भावएव पिण्डदाननिषेधादन्येषामप्रतिषेधात् पिण्डदाने कर्त्तव्यमेव अन्यथा ज्येष्ठपुत्रीति विशेषणं व्यर्थं स्यादव्यावर्त्तकत्वात्।

* अत्र च पिण्डस्थानकरणादि सर्व्वमेव पिण्डोपकरणं न कार्य्यं यिवा चाय: सल्लिलादि तु कार्य्यमेव। एष च मघा-त्रयोदशीविहितश्राद्ध एव निषेधो न तु पक्षान्तर्गतत्रयोदश्यादि तद्दिनविहितसांवत्सरिकश्राद्धवदिति ध्येयम्।

* ख पुस्तके अतएव।

यदा पूर्व्वदिनेऽपराह्ने तिथिलाभः परदिने च पूर्व्वाह्ने नक्षत्रयुक्ततिथिलाभस्तदा पूर्व्वदिने पक्षश्राद्धं परदिने च मघात्रयोदशीश्राद्धं कार्य्यं रात्र्यादिनिषिद्धकालेतरस्यैव श्राद्धकालत्वात्।

एवञ्चैकदिने पूर्व्वाह्ने मघायोगोऽपराह्ने च त्रयोदशीमात्रं तदा पूर्व्वाह्ने ज्येष्ठपुत्रिणाऽपिण्डकं मघाश्राद्धं विधायापराह्ने सपिण्डकं पक्षश्राद्धं कर्त्तव्यमेव। एवञ्च मघायोगालाभे तस्मिन्नब्दे मघाश्राद्धाभाव एव। यदा त्वपराह्ने मघात्रयोदशीयोगस्तदा तन्त्रेणैकं श्राद्धं तच्चापिण्डकमेव मघाश्राद्धे पिण्डनिषेधात्।

पक्षश्राद्धे तु "नित्येऽपि किञ्चिदङ्गहानिः श्रव्या न तु काम्येऽपि" इति न्यायात् पिण्डाभावस्याकिञ्चित्करत्वाद्दोषगौरवाच्चेति बहवः।

अन्ये तु—

समानाङ्गकयोरेव तन्त्रतानियमात् पक्षश्राद्धमेव सपिण्डकं कार्य्यं प्रसङ्गान्मघाश्राद्धमपि गतार्थमिति वदन्ति।

वस्तुतस्तु तन्त्रतान्यायाभावान्मघाश्राद्धस्यातिमार्गस्याच पृथगेव सपिण्डकापिण्डकं श्राद्धद्वयमिति प्रतीमः।

तथा पूर्व्वदिनापराह्ने मघातिथिलाभेऽपि परदिन एव कुञ्जरच्छायायोगे पूर्व्वाह्नेऽपि तच्छ्राद्धं फलातिशयहेतुत्वात्स्येति।

अत्र श्राद्धचिन्तामणिः—

सूतके मृतके चैव अस्तयोश्चन्द्रसूर्य्ययोः।
छायायां कुञ्जरस्याथ भुक्त्वा च नरकं व्रजेत्॥

प्रमादाद्ब्राह्मणो भुक्त्वा तत्र चान्द्रायणं चरेत्।

इति ब्रह्मपुराणवचनात् कुञ्जरच्छायायोगे श्राद्धभोजनं ब्राह्मणैर्न कर्त्तव्यमित्याह।

तन्मन्दं कुञ्जरच्छायादीनां समस्तपदानामेव योगाभिधायित्वादसमस्तेन छायायाः कुञ्जरस्येत्यनेन छायायुक्तप्रदेशे मृतकादिवदिच्छाभोजननिषेधात्।

एतच्च श्राद्धमविभक्तैरपि सर्व्वैरेव भ्रातृभिः पृथक् पृथक् कार्य्यम्।

यथा शङ्खः—

अविभक्ता विभक्ता वा कुर्य्युः श्राद्धमदैवतम्।
मघासु च ततोऽन्यत्र नाधिकारः पृथग्विना॥

अदैवतं सांवत्सरिकश्राद्धं मघासु च विहितं श्राद्धं सर्व्वे पृथक् कुर्य्युः। अतोऽन्यत्रामावस्यादौ पृथग्भूतं विभक्तं विना अविभक्तानां सर्व्वेषां नाधिकारः किन्त्वेकस्यैवेत्यर्थः।

किञ्च—

नास्मात् परतरः कालः श्राद्धेष्वन्यश्च विद्यते।
यत्र साक्षात्तु पितरो गृह्णन्त्यमृतमुत्तमम्॥

इति ब्रह्मपुराणे साक्षादमृतपदानुवादेन स्वयमेवानुष्ठानमुचितमिति।

## अथाश्वयुक्कृष्णपक्षः।

ब्रह्मपुराणे—

आश्वयुक्कृष्णपक्षे तु श्राद्धं कुर्य्याद्दिने दिने।
त्रिभागहीनं पक्षं वा त्रिभागन्त्वर्द्धमेव वा॥
न सन्ति पितरश्चेति कृत्वा मनसि यो नरः।
श्राद्धं न कुरुते तत्र तस्य रक्तं पिबन्ति ते॥
यावच्च कन्यातुलयोः क्रमादास्ते दिवाकरः।
तावच्छ्राद्धस्य कालः स्याच्छून्यं प्रेतपुरं तदा॥

अत्राश्वयुक्शब्दः पौर्णमास्यन्तमासपरः। न तु मुख्यचान्द्रपरः, ब्रह्मपुराणे पौर्णमास्यन्तमासीयेन समस्ततिथिकृत्याभिधानात्। निर्णीतञ्च—भाद्रयुग्ये च कृष्णायां त्रयोदश्यां मघासु च।

इति ब्रह्मपुराण एवाश्वयुक्शब्दस्य पौर्णमास्यन्तपरत्वम्। दर्शान्ताश्विने मघायोगासम्भवात् प्रौष्ठपद्यूर्द्ध्वं कृष्णत्रयोदशीत्यादिवचनाच्च।

तथाच विष्णुधर्म्मोत्तरे—

उत्तरादयनाच्छ्राद्धे श्रेष्ठं स्याद्दक्षिणायनं।
चातुर्म्मास्यञ्च तत्रापि प्रसुप्ते केशवे हितम्॥
प्रौष्ठपद्याः परः पक्षस्तत्रापि च विशेषतः।
पञ्चम्यूर्द्ध्वञ्च तत्रापि दशम्यूर्द्ध्वं ततोऽप्यति॥

इत्यत्र प्रौष्ठपद्याः परः पक्ष इत्यनेन पौर्णमास्यन्ताश्विन-

मासीयकृष्णपक्षत्वं व्यक्तमुक्तम्। एतेन सौरवादिनोऽपि निरस्ताः।

तथाच कार्ष्णाजिनिः—

शक्रध्वजनिपाताद्धो यः स्यात् पक्षस्तु पञ्चमः।
स विज्ञेयोऽपरः पक्षस्तत्र श्राद्धं विधीयते॥
पुत्त्रमायुर्धनं धान्यमारोग्यं भूतिमेव च।
प्राप्नोति पञ्चमे दत्त्वा श्राद्धं कामांस्तथापरान्॥
एतानेव हि हिंसन्ति पञ्चमं यो व्यतिक्रमेत्।
तस्मात्तांतिक्रमेद्विद्वान् पञ्चमे पैतृकं विधिम्॥

भाद्रशुक्लद्वादश्यां शक्रध्वजोत्थानं तदनन्तरं कृष्णचतुर्थ्यां शक्रध्वजनिपातः।

यथा वराहः—

द्वादश्यान्तु सिते पक्षे मासि भाद्रपदे तथा।
शक्रमुत्थापयेद्राजा विश्वश्रवणवासवे॥

विश्वमुत्तराषाढ़ा वासवं धनिष्ठा।

तथा—

वैष्णवादिपदे चन्द्रे शक्रमुत्थापयेद्दिवा।
भरण्यन्तपदे रात्रौ चतुर्थ्यान्तु विवर्जयेत्॥

वैष्णवस्य श्रवणाया आदिपदस्थे चन्द्रे इत्यर्थः। एतानेव हि हिंसन्तीत्यनेन नित्यत्वं दर्शितं हिंसन्ति पितर इति शेषः।

जाबालः—

अगतेऽपि रवौ कन्यां श्राद्धं कुर्वीत यत्नतः।
आषाढ़्याः पञ्चमः पक्षः प्रशस्तः पितृकर्मणि॥

जातूकर्णः—

आषाढ़ीमवधिं कृत्वा यः स्यात् पक्षस्तु पञ्चमः।
श्राद्धं तत्र प्रकुर्व्वीत कन्यां गच्छतु वा नवा॥

अत्र मध्येऽधिमासपातेऽपि तस्याधिकत्वाच्छ्राद्धानर्हत्वाच्च तं मासं विहाय पञ्चमः पक्षो मन्तव्यः।

गृह्यपरिशिष्टम्—

मलिम्लुचस्तु मासो वै मलिनः पापसम्भवः।
गर्हितः पितृदेवेभ्यः सर्व्वकर्म्मसु तं त्यजेत्॥

कन्यां नवा गच्छत्विति यदुक्तं पक्षस्य कन्यासम्बन्धेऽपि श्राद्धयोग्यकालस्य कन्यायामलाभे तन्मन्तव्यम्। अन्यथा सिंहे सकलपक्षसम्प्राप्तौ तस्य मलमासान्तःपातादसयुक्तत्वापञ्चत्वाभावः स्यात्। तेन कन्यां गच्छतु वा न वेत्यनेन कन्यागतरविसम्बन्धेन पञ्चमपक्षस्य प्राशस्त्यं ध्वनितम्।

यथा भविष्यपुराणम्—

कन्यां गते सवितरि पितरो यान्ति सत्सुतान्।
तावत् प्रेतपुरी शून्या यावद्वृश्चिकदर्शनम्॥
ततो वृश्चिक आयाते निराशाः पितरो नृप।
पुनः स्वभवनं यान्ति शापं दत्त्वा सुदारुणम्॥
हंसे वर्षासु कन्यास्थे शाकेनापि गृहे वसन्।
पञ्चम्या उत्तरे दद्यादुभयोर्वंशयोर्ऋणम्॥

हंसे सूर्य्ये ऋणमिव ऋणं पितृमातृकुलस्यावश्यं परिशोध्यमित्यर्थः। एतच्च श्राद्धान्तरकल्पने विधिगौरवभिया अप्रयुक्

कृष्णपक्षे तिथ्यादिना ब्रह्मपुराणोक्तपक्षश्राद्धे कन्यागतत्वस्य गुणफलविधित्वम्।

कन्यायां कृष्णपक्षे तु पूजयित्वार्द्रभे दिवा।
नवम्यां बोधयेद्देवीं गीतवादित्रनिस्वनैः॥

इति देवीपुराणवचनाद्देवीबोधने कन्यामध्यश्रवदिति। न चात्र वैपरीत्याशङ्का भविष्यपुराणे कन्याविधौ पक्षपुरस्कारेण प्रत्यवायविधानाभावात् कन्यां गच्छतु वा नवा इत्यादिवचनाच्च पृथग्विधिरिति वाच्यम्। पुराणभेदेन प्रत्यवायस्य पृथगुक्तेरौचित्यात् न तु वास्तवं प्रसक्तत्वात्तां विस्तरः।

दिने दिने इति दिनपदमत्र तिथिपरं न त्वहोरात्रपरं चान्द्रमासावयवस्य कृष्णपक्षस्य पञ्चदशतिथ्यात्मकत्वेन तत्सम्बन्धितयोपन्यस्तस्य दिनपदस्य तिथिपरत्वनियमात्।

यथा विष्णुधर्मोत्तरे—

तिथिनैकेन दिवसश्चान्द्रमासे प्रकीर्त्तितः।
अहोरात्रेण चैकेन सावनो दिवसः स्मृतः॥

अन्यथा मुनीनां परिभाषाविधानमनर्थकं स्यात्।

सौरसंवत्सरस्यान्ते मानेन शशिजेन तु।
एकादशातिरिच्यन्ते दिनानि भृगुनन्दन॥

इत्यादयः प्रयोगाः। पञ्चेरकादशैस्त्रयोदशभिः पक्षस्य विभजनेन तिथिपर्य्यवसानाच्च।

अतएव—

पक्षमूर्द्धं तथापि दशम्यूर्द्धं ततोऽप्यति।

इति विष्णुधर्मोत्तरे तिथिमादाय कल्पव्यवस्थोक्ता। अन्यथा अम्बुघटश्राद्धवदहरहःक्रियमाणतया नित्यत्वादर्घ्यावाहनादिवर्जन-प्रसङ्गः स्यात्।

एतेन तिथिह्रासादेकस्मिन् पक्षे चतुर्दशत्वादश्नां चतुर्दश-श्राद्धानि तिथिवृद्धावष्टमृद्धौ षोड़श स्युः। तत्र कदाचिदेकस्यां तिथौ श्राद्धद्वयं कदाचिच्च श्राद्धाभाव इति श्रीदत्तादीनां मत-मपास्तम्।

ततश्च पौर्णमास्याः पञ्चदशतिथिष्वेव पञ्चदशश्राद्धानि अत्र चैकस्मिन् दिने तिथिद्वयलाभे श्राद्धद्वयं कदाचिद्दिनद्वयेऽप्येक-तिथिलाभे एकदिने श्राद्धाभाव इति।

चतुर्दश्योश्राद्धं चात्र कर्त्तव्यमिति प्रागेव विधिनिरूपणे दर्शितम्।

यत्तु—

दिव्यभौमान्तरीक्षाणि चराणि स्थावराणि च।
पिण्डमिच्छन्ति पितरः कन्याराशिगते रवौ॥
कन्यां गते सवितरि यान्यहानि तु षोड़श।
क्रतुभिस्तानि तुल्यानि देवो नारायणोऽब्रवीत्॥
राजसूयाश्वमेधाभ्यां यदीच्छेत् महत्फलम्।
अप्यम्बुमूलशाकाद्यैः पितॄन् कन्यागतेऽर्चयेत्॥

इति ब्रह्मपुराणवचनं तत् सूर्य्यसिद्धान्तवचनैकवाक्यतया कन्यायामष्टदशदिनादूर्द्धं येषु सौरषोड़शदिनेषु कृष्णपक्षमाधारदेषु काम्यश्राद्धान्तरविधायकं निश्चलं प्रमाणाभावात् प्रत्युत्तय।

यथा सूर्यसिद्धान्ते—

> तुलादिषडशीत्यंशे षड़शीतिमुखं दिनम्।
> तच्चतुष्टयमेव स्याद् द्विस्वभावेषु राशिषु॥
> षड़्विंशे धनुषो भागे द्वाविंशेऽनिमिषस्य तु।
> मिथुनेऽष्टादशे भागे कन्यायास्तु चतुर्दशे॥
> अत ऊर्द्ध्वं कन्याया यान्यहानि तु षोड़श।
> क्रतुभिस्तानि तुल्यानि पितृभ्यो दत्तमक्षयम्॥

एकस्मिन्नब्दे षष्ट्यधिकशतत्रयसंख्यका भवन्ति तत्र तुलासंक्रममारभ्य षड़शीतिगणनया चतुष्टयमापूर्य्य कन्यांशेषषोड़शांशा अवशिष्यन्ते द्विस्वभावेषु द्व्यात्मकेषु। तत्र षड़शीतीनां पूरणस्थानमाह षड़्विंश इति। अनिमिषो मीनः। त्रिभागहीनमिति तृतीयो भागस्त्रिभागः त्रिभागहीनं पञ्चादिकल्पः त्रिभागमेकादश्यादिकल्पः अत्र कालात्यन्तसंयोगे द्वितीया तेन प्रतितिथि-श्राद्धम्।

अत्र केचित्—

> पञ्चमीप्रभृति वा कृष्णपक्षस्य इति गौतमवचनात्।
> कृष्णपक्षे दशम्यादौ वर्ज्जयित्वा चतुर्द्दशीम्।

इति मनुवचनाच्च किञ्चिन्न्यूनाधिके त्रिभागपादात् पञ्चम्यादिदशम्यादिकल्पावाहुः। तत्र—गौतममनुवचनयोः सामान्यकृष्णपक्षोपक्रमात् नाश्वयुक्कृष्णपक्षपरत्वम्। ततो वीजाभावेन लक्षणाभावात् पञ्चम्यादेस्त्रिभागहीनादिपदार्थत्वानुपपत्तिरिति।

अतएव विष्णुधर्मोत्तरे—

प्रीतयन्ताः परः पक्षस्तत्रापि च विशेषतः ।

पञ्चम्यूर्द्धं ततापि दशम्यूर्द्धं ततोऽप्यति ॥ इत्युक्तम् ।

यच—

प्रोष्ठपद्यां तिथिमासाद्य इति देवीपुराणवचनं तदशक्तपक्षे पञ्चम्यादिषु कन्यास्थार्केण श्राद्धस्य प्रागपकर्षणमात्रपरं न तु कन्याविधायकं पक्षादिकल्पान्तराणामनुक्तत्वात्* । पक्षमिति विभागार्थे यथोदग्न्यादिकल्पः । न तु पक्षार्द्धमष्टम्यादीति केचित्तदसाम्प्रतं पूर्वं प्रतिपादितेन विभागस्य युक्तत्वात् ।

न च विभज्यमानतया युक्तिमोक्षस्य पक्षस्य परित्यागे को हेतुरिति वाच्यम् ।

उत्तरोत्तरमयुक्तत्वोपदेशस्यैव हेतुत्वात् ।

अतएव एव पैत्र्यनैमित्तिकात्यन्ताशक्तकल्पत्वं सूचितम् ।

अतएव विष्णुधर्मोत्तरे—प्रकरणभेदेन पञ्चम्यूर्द्धं ततापि दशम्यूर्द्धं ततोऽप्यतीति यथोक्तस्यादिकल्पान्तरं गौणम् ।

एवञ्च एतेषामेव कल्पानां दर्शनात् केषाञ्चिदमावास्यामात्रकरणपक्षो निरस्तः । किन्तु प्रतिमासविहितं पार्वणं कर्त्तव्यमेव प्रकरणभेदेन प्रतिमासविधेरप्रयुक्तविधिभिन्नत्वात् ।

अपोह्यविधायकाद्या समुच्चयमनुसारणाभावात् ।

न च यदाहवनीयवत् विशेषदर्शनात् सामान्यशास्त्रस्य तद्वि-

* ख पुस्तके अयुक्तत्वात् ।

तरपरत्वमस्त्विति वाच्यं प्रतिमासविधेरमावस्याविषयकत्वेनाश्व-युक्‌विधेस्तु पक्षविषयकत्वेन भिन्नविषयत्वात् सामान्यविशेषा-भावात्। अमावस्याविधिस्तु प्रागेव निरूपितः।

किञ्च प्रकरणभेदेन विधिभेदात् उपजीव्योपजीवकभावाभावा-द्भिन्नविषयता।

अन्यथा पौषादिमासत्रयेऽष्टकाविधिदर्शनात् प्रतिमासविधे-स्तदितरत्वप्रसङ्गः।

एवञ्च पक्षश्राद्धे कृते प्रतिमासे विहितं पार्व्वणमनुपङ्गेण गतार्थं तत्रैवामावस्यायां कर्त्तव्यमिति ध्येयम्।

न सक्नोति—अकरणे प्रत्यवायाभावत्वं दर्शितम्। अत्र सम्भवति लघूपाये गुरूपायस्याननुष्ठानलक्षणाप्रामाण्यभिया पक्ष-श्राद्धादिस्थानामिच्छाविकल्पासम्भवाच्छक्तितारतम्येन व्यव-स्थितो विकल्पः। शक्तस्य समस्तः पक्षः, अशक्तस्य त्रिभागहीनः पक्षः, अशक्ततरस्य त्रिभागः, अशक्ततमस्य तदर्द्धमिति। एतेन शक्तिभेदात् समस्तपक्षाकरणेऽपि प्रत्यवायाभावो वचनादिति ध्येयम्।

शक्तिश्च शरीरपाटवश्राद्धोचितद्रव्यसम्पदादिः, एवं च यो यत्र शक्तस्तदकरणे तस्य प्रत्यवाय एव।

यथा मनुः—

> प्रभुः प्रथमकल्पस्य योऽनुकल्पेन वर्त्तते।
> न साम्परायिकं तस्य दुर्मतेर्विद्यते फलम्॥

साम्परायिकं पारलौकिकम्।

न चात्र फलभूमकल्पनया कल्पव्यवस्था पक्षविधिमुपजीव्यैव विभागहीनादिकल्पविधिप्रवृत्तेः।

एतानेव हि हिंसन्ति पञ्चमं यो व्यतिक्रमेत्।

इत्यादिवचनैः पक्षश्राद्धाकरणे प्रत्यवायश्रवणाच्च। तस्मात्-च्छक्तितारतम्येनैव कल्पव्यवस्थितिः।

अत्र केचित्—

आरब्धे पक्षश्राद्धे कुत्रचिद्दिने श्राद्धविघ्ने सति पक्षश्राद्धानिष्पत्त्यान्येऽपि कल्पा न कर्त्तव्याः। विकल्पदर्शनेनैकतरनिश्चयादन्यनिरासेन पुरुषप्रवृत्तेरित्याहुः।

तदन्ये न सहन्ते—उभयोर्युगपदुपस्थितत्वादिच्छाविकल्प एव नैकतरनिश्चयः प्रवृत्तौ हेतुः, व्यवस्थितविकल्पे तु न तथा व्यवस्थापकशक्तेरुभयोर्युगपदुपस्थितत्वाभावात् किन्त्वत्र शक्तितारतम्यान्मुख्यकल्पानुकल्पभावेन व्यवस्था तस्याश्च क्रमिकत्वात् मुख्यकल्पासम्भवे स्वयमेवानुकल्पो व्यवतिष्ठते। अतो मुख्यकल्पविघ्ने कल्पान्तरं कर्त्तव्यमेवेति।

अभियुक्तास्तु—

दिने दिने इति वीप्साश्रुत्या-

दद्यादहरहः श्राद्धमन्यैर्नोदकेन वा।

इति मन्त्रानित्यश्राद्धवत् प्रतितिथौ पृथक् पृथक् श्राद्धावगमात् "श्राद्धं न कुरुते तत्र" इति प्रतितिथौ श्राद्धाकरणे पृथक् प्रत्यवायावगमाच्च अनुष्ठानश्राद्धदर्शादिनवमीदोषांश्च पृथक्-पृथक्त्वात्र पक्षश्राद्धानां व्यासतोऽपि सिद्धे पाक्षिकश्राद्धेन पुंसा

कदाचिन्मध्येऽशौचचतजादिना विघ्ने सत्यधिकाराभावादकरणेऽप्यजातप्रत्यवायेन तदितरदिनेषु कृतेषु श्राद्धेषु यावज्जीवकर्त्तव्यनित्यश्राद्धवत् पक्षश्राद्धमप्यविरुद्धम्।

न च पृथक्कल्पविधानं तर्हि व्यर्थमिति वाच्यं द्रव्याद्यसम्पत्त्या सकलश्राद्धाशक्तौ प्रत्यवायपरीहारार्थं कल्पान्तरविधानमिति। युक्तञ्चैतत्।

आश्वयुक्कृष्णपक्षे एकस्य कालस्याप्यसत्त्वे किं स्यादित्यत आह यावच्च कन्यातुलयोरिति। अत्र विध्यन्तरकल्पनाभिया कन्यादिवाकरस्थित्या तत्सम्बन्धस्यावश्यकत्वेनाश्वयुक्कृष्णपक्ष उपलक्ष्यते तुलास्थित्यापि कार्त्तिककृष्णपक्ष उपलक्ष्यते

कार्त्तिकं सकलं वापि प्राक्छाये कुञ्जरस्य च।

इति विष्णुवचनेन सहैकवाक्यत्वात्। अन्यथा विध्यन्तरगौरवात्। सकलं कृष्णपक्षमित्यर्थः। आश्वयुक् *[ कृष्णपक्षानुकल्पतया तत्रासत्कृष्णपक्षबाधानौचित्यात्। †

प्राकृट्कालेऽसिते पक्षे त्रयोदश्यां समाहितः।
मधुप्लुतेन यः श्राद्धं पायसेन समाचरेत्॥

इति पूर्व्ववचने कृष्णपक्षव्यवधाच।

अत्र कन्यातुलयोर्दिवाकरस्थितेः] क्रमसिद्धत्वात् क्रमाच्छ्राद्धस्य काल इत्यन्वयादश्वयुक्कृष्णपक्षे श्राद्धाकरणे कार्त्तिककृष्णपक्षे यस्यां कस्याञ्चित्तिथौ श्राद्धं कार्य्यम्।

---

* क पुस्तके [ ] चिह्नितांशः पतितः।

† ग पुस्तके विधानौचित्यात्।

न चात्रापि कल्पव्यवस्था प्रमाणाभावात् त्रयोदश्यादिकल्पस्याप्यशक्तावत्यन्तापत्कल्पतया कार्त्तिकविधानाच्च अतएवामावस्यायामतिप्राशस्त्यमुक्तम्।

भविष्यपुराणे—

येयं दीपान्विता राजन् ख्याता पञ्चदशी भुवि।
तस्यां दद्यान्नचेद्दत्तं पितृणाञ्च महालये॥

पितृणां महस्य उत्सवस्यालयो महालयोऽश्वयुक्कृष्णपक्षः पञ्चदशी अमावस्या न तु पौर्णमासी भुवि पृथिव्यां दीपान्वितेति ख्याता ख्यातिकथनात्।

तथाचामावस्यामधिकृत्य ब्रह्मपुराणे—

दीपमालाश्च कर्त्तव्याः शक्त्या देवगृहेषु च।
रथ्यापणश्मशानेषु नदीपर्व्वतसानुषु॥

तथा—

यमलोकं परित्यज्य आगता ये महालयम्।
उज्ज्वलज्योतिषा वर्त्म प्रपश्यन्तो व्रजन्तु ते॥

इति कार्त्तिकामावस्यायामुल्कादानमन्त्रलिङ्गाच्च।

अयञ्च प्रतिमासपार्व्वणस्य आश्वलेऽप्यश्वयुक्कृष्णपक्षाकरणेऽशक्तस्याप्यनुष्ठानार्थं पुनः कार्त्तिकविधिः। अथवा सर्व्वेष श्राद्धद्वयविधानार्थं पुनर्व्विधिरिति।

---

## अथ शस्त्रहतचतुर्द्दशी।

वायुपुराणे—

युवानस्तु गृहे यस्य मृतास्तेषान्तु दापयेत्।
शस्त्रेण तु हता ये वै तेषां दद्याच्चतुर्द्दशीम्॥

युवान एव पित्रादयो मृता इत्यर्थः यौवनं त्रिंशद्वर्षपर्य्यन्तं ज्योतिःशास्त्रोक्तम्।

आदिपुराणे—

प्रायोऽनशनशस्त्राग्निविषोद्बन्धमृतां तथा।
चतुर्द्दश्यान्तु कर्त्तव्यं तृप्त्यर्थमिति निश्चयः॥
प्रायो महापथगमनम्।

वृद्धमनुः—

सर्पैर्हता मृगैर्व्याघ्रैः कुम्भीरैश्च गजैर्वृषैः।
उत्पातवातवर्षैश्च श्राद्धं तेषां चतुर्द्दशीम्॥

देवीपुराणे—

पक्षिकीटमृगैर्ये तु शृङ्गिदंष्ट्रिनखैर्हताः।
पतनानशनप्रायैर्व्याघ्राग्निविषबन्धनैः॥
मृता जलप्रवेशेन न ते शस्त्रहताः स्मृताः।

मरीचिः—

विषशापदशस्त्राद्यैः तिर्य्यग्ब्राह्मणघातिनाम्।
चतुर्द्दश्यां क्रिया कार्य्या अन्येषान्तु विगर्हिता॥

घातोऽस्यास्तीति घाती तेन विषादिभिर्हतानामित्यर्थः।

न च ब्राह्मणघातीति कर्त्तरि णिनिविधादिभिरनन्वयात् ब्राह्मणहतत्वं शायकहतमेव न तु शस्त्रहतं तस्य ग्रहणात्। अन्येषामशस्त्रहतानाम्।

विष्णुः—

शस्त्रहतानां श्राद्धकर्म्मणि चतुर्द्दशी प्रशस्ता।

एषां वचनानां सामान्यलक्षणपक्षप्रकरणपाठात् तत्प्राप्तं श्राद्धमनूद्य शस्त्रहतानां प्रशस्ततया चतुर्द्दशी विधीयते न तु श्राद्धान्तरविधिर्गौरवात् अन्येषां विगर्हितेति अशस्त्रहतानां निन्दाश्रवणाच्च, अन्यथा शस्त्रादिहतोद्देशेन श्राद्धान्तरविधौ अशस्त्रहतानां विधानाभावादेव निषेधप्रसक्तिविषयाभावान्निन्दैव नोपपद्येत।

अतएव मनुवचने सामान्यलक्षणपक्षगोचरचतुर्द्दशीवर्ज्जनं शस्त्रादिहतेतरविषयम्। एवञ्चादिपुराणे ह्यसमर्थमिति दर्शनात् श्राम्यमिदमिति मैथिलोक्तं निरस्तम्।

ह्यसमर्थमित्यस्य प्राशस्त्यपरत्वात्। ततश्च पित्रादित्रयदैवतं पार्व्वणं सकललक्षणपक्षसाधारणञ्चेदं श्राद्धम्।

न चान्येषां विगर्हितेति निन्दाश्रवणात् कथं त्रैपुरुषिकविधिरिति वाच्यम्।

यस्य त्रयः पुरुषाः शस्त्रहतास्तस्य त्रैपुरुषिकविधिरुपपद्यत एव यस्य तु द्वौ वा एको वा शस्त्रहतस्तेनापि सदैवतं त्रैपौरुषिकं पार्व्वणं कार्य्यम् जीवत्पितृकश्राद्धवदिति। त्रैपुरुषिकनियमस्तु पार्व्वणस्योत्सर्गो विशेषवचनेन बाध्यते।

यानि चतुर्द्दश्यामेकोद्दिष्टविधायकानि वचनानि।

यथा भविष्यपुराणम्—

समत्वमागतस्यापि पितुः शस्त्रहतस्य च।
चतुर्द्दश्यान्तु कर्त्तव्यमेकोद्दिष्टं न पार्व्वणम्॥

गार्ग्यः—

चतुर्द्दश्यान्तु यत् श्राद्धं सपिण्डीकरणे कृते।
एकोद्दिष्टविधानेन तत् कार्य्यं शस्त्रघातिने॥

यमः—

*सपिण्डीकरणादूर्द्ध्वं यत् पितृभ्यः प्रदीयते।
एकोद्दिष्टविधानेन प्रदेयं शस्त्रघातिने॥

शङ्खः—सपिण्डीकरणादूर्द्ध्वमृते कृष्णचतुर्द्दशीम्।
प्रतिसंवत्सरादन्यदेकोद्दिष्टं न कारयेत्॥

तान्यमूलानि समूलत्वेऽपि पार्व्वणाप्रसक्तविषयाण्येतानि पूर्व्वोक्त-विष्ण्वादिवचनेषु पार्व्वणावगमादिति श्राद्धविवेकः।

वस्तुतस्तु आश्वयुक्कृष्णपक्षीयचतुर्द्दशीमृतस्य शस्त्रहतस्य सांवत्सरिकश्राद्धे पार्व्वणविधिप्राप्तौ तं निषिध्य एकोद्दिष्टविधायकान्येतानि। समयप्रकाशे तु एकोद्दिष्टं न पार्व्वणमित्यत्र एकोद्दिष्टं महालये इति व्याख्यातं तदा च व्यक्तमेवायमर्थः।

शङ्खवचनस्य त्वयमर्थः—कृष्णचतुर्द्दशीमिति कालकर्म्म आश्वयुक्कृष्णपक्षे चतुर्द्दश्यां शस्त्रहतस्य यत्प्रतिसंवत्सरश्राद्धं तस्मादृते तत्रैवाश्वयुक्कृष्णपक्षेऽन्यत्प्रतिसंवत्सरश्राद्धं एकोद्दिष्टं न कारयेत् किन्तु पार्व्वणमेवेति। अथवा सकलकृष्णचतुर्द्दश्यां शस्त्रहतस्य प्रतिसंवत्सरश्राद्धे शङ्खविषयाणि सर्व्वाणि वचनानीति।

यत्र—प्रायानशनेत्यादिना, सकलकृष्णपक्षसाधारणं शस्त्रहतपित्रादीनां श्राद्धमभिधाय पुनरप्याश्विनकृत्यमध्ये मघात्रयोदश्यनन्तरं—तर्पणीयाश्चतुर्दश्यां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः । इत्युक्तम् ।

तच्छस्त्रहतभ्रात्रादीनामप्याश्विनकृष्णचतुर्दश्यां बोधयति ।

लुप्तपिण्डोदकक्रिया विषशस्त्रादिमृता अपतिताः पतितानां निषेधात् तत्तुल्यप्रकरणासन्नपाठेभ्यः ।

एतच्च श्राद्धमेकोद्दिष्टविधिना कार्य्यम् ।

यानि पञ्चदशाद्यानि अपुत्रस्येतराण्यपि ।
एकस्यैव तु दातव्यमपुत्रायाश्च योषितः ॥

इति परिशिष्टे अपुत्रस्य पार्व्वणविधिकश्राद्धनिषेधात् ।
विधानबलान्निषेध इति चेन्न,

विधानस्यैकोद्दिष्टपरतयैवोपपत्तेरिति । तदपि काम्ये नित्यत्वे प्रमाणाभावात् तर्पणीया इत्यभिधानाच्चेति ।

इदञ्च चतुर्दशीश्राद्धं विषशस्त्रापद्यमस्त्रादिमृतानां तत्तद्वचनोपात्तानामेवेति गौड़वृद्धाः ।

श्रीदत्तादयस्तु रोगव्यतिरिक्तमरणमनुगमकं कृत्वा प्रसूमृतायाः प्रसवमृतायाश्च शस्त्रहतत्वमाहुः ।

तन्मन्दं न योषिद्भ्यः पृथक् दद्यादिति निषेधात् रोगमृतस्य यूनश्चतुर्दशीश्राद्धविधानादननुगमतादवस्थ्याच्च तद्वचनबोधितानामननुगमस्यादोषत्वाच्च ।

ननु— शस्त्रविप्रहतानाञ्च शृङ्गिदंष्ट्रिसरीसृपैः ।
आत्मनस्त्यागिनाञ्चैव श्राद्धमेषां न कारयेत् ॥

इति छागलेयेन श्राद्धनिषेधात् कथमेषां श्राद्धमिति। -

अत्र श्राद्धचिन्तामणिः—अस्मादेव विशेषवचनादित्याह। तन्नन्दं वचनस्यान्यथोपपत्तेः।

श्राद्धविवेकस्तु—श्राद्धनिषेधो बुद्धिपूर्व्वकहतविषयः, तेषां पतितत्वात्। असंहतश्राद्धविधानन्तु प्रमादहतविषयम्।

यथाङ्गिराः—

अथ कश्चित् प्रमादेन म्रियतेऽग्न्युदकादिभिः।

अशौचं तस्य कर्त्तव्यं कर्त्तव्या च जलक्रिया॥

अबुद्धिपूर्व्वमपि शृङ्गादिभिः क्रीड़ां कुर्व्वतां हतानां न कर्त्तव्यम्।

ब्रह्मपुराणे—

शृङ्गि-दंष्ट्रि-नखि-व्याल-विष वह्नि-स्त्रिया जलैः।

आदरात् परिहर्त्तव्यः कुर्व्वन् क्रीड़ां मृतस्तु यः॥

तथा शास्त्रानुमत्या बुद्धिपूर्व्वहतानामपि कर्त्तव्यम्।

यथा गार्ग्यः—

वृद्धः शौचस्मृतेर्लुप्तः प्रत्याख्यातभिषक्क्रियः।

आत्मानं घातयेद्यस्तु भृग्वग्न्यनशनादिभिः॥

तस्य त्रिरात्रमशौचं द्वितीये त्वस्थिसञ्चयः।

तृतीयेतूदकं कृत्वा चतुर्थे श्राद्धमिष्यते॥

इति युक्तमुक्तवान्। एवञ्च विप्रयाधेनापराधहतानां श्राद्धनिषेधोऽनपराधहतानाञ्च श्राद्धमिति सर्व्वं समञ्जसम्।

---

## अथ काम्यश्राद्धकालाः ।

तत्तद्वचनोक्तस्वगतधनपुत्त्रादिलाभकामनायत्ता यथाभिलाषं श्राद्धं कार्य्यम् ।

यथा दानधर्म्मे—

पितॄनर्च्चयन् प्रतिपदि प्राप्नोति स्वगृहे स्त्रियः ।
अभिरूपप्रजायन्यो दर्शनीया बहुप्रजाः ॥
स्त्रियो द्वितीयां जायन्ते तृतीयायान्तु वन्दिनः ।
चतुर्थ्यां क्षुद्रपशवो भवन्ति बहवो गृहे ॥
पञ्चम्यां बहवः पुत्त्रा जायन्ते कुर्व्वतां नृप ।
कुर्व्वाणास्तु नराः षष्ठ्यां भवन्ति द्यूतभागिनः ॥
कृषीभागी भवेच्छ्राद्धं कुर्व्वाणः सप्तमीं नरः ।
अष्टम्यान्तु प्रकुर्व्वाणो वाणिज्ये लाभमाप्नुयात् ॥
नवम्यां कुर्व्वतः श्राद्धं भवत्येकशफं बहु ।
विवर्द्धन्ते तु दशमीं गावः श्राद्धानि कुर्व्वतः ॥
कुप्यभागी भवेन्मर्त्यः कुर्व्वन्नेकादशीं नृप ।
ब्रह्मवर्च्चस्विनः पुत्त्रा जायन्ते तस्य वेश्मनि ॥
द्वादश्यामीहमानस्य नित्यमेव प्रदृश्यते ।
रजतं बहुवित्तञ्च सुवर्णञ्च मनोरमम् ॥
ज्ञातीनान्तु भवेच्छ्रेष्ठः कुर्व्वन् श्राद्धं त्रयोदशीम् ।
अवश्यं तु युवानोऽस्य प्रमीयन्ते नरा गृहे ॥

युद्धभागी भवेन्मर्त्यः कुर्व्वन् श्राद्धं चतुर्द्दशीम् ।
अमावस्यान्तु निवपन् सर्व्वान् कामानवाप्नुयात् ॥

तस्य वन्दिनः स्तावकाः स्युः सुत्यः स भवतीत्यर्थः । द्यूतभागिनो द्यूते जयभाज इत्यर्थः । कृष्यं ताम्रादियं युमानः प्रायुस्तया वा स्त्रियन्ते । अत्र पुत्रस्य फलान्तरकामस्य त्रयोदश्याम् अधिकार इति कल्पतरुः । अपत्यमात्रार्थिनस्तत्रात्रदीयस्त्वित्थोरत्राधिकार इति श्राद्धविवेकः । युद्धभागी युद्धे जयभागीत्यर्थः शस्त्रहतपितृकस्यैव चतुर्द्दशीश्राद्धाधिकारो नान्येषाम् ।

यथा प्रतिपदादितिथिषु चतुर्द्दश्यफलान्युक्ता याज्ञवल्क्यः—

प्रतिपत्प्रभृतिष्वेतान् वर्ज्जयित्वा चतुर्द्दशीम् ।
शस्त्रेणैव हता ये वै तेभ्यस्तत्र प्रदीयते ॥

तथा कात्यायनः—

ज्ञातिश्रेष्ठं त्रयोदश्यां युवानस्तत्र म्रियन्ते शस्त्रहतस्य चतुर्द्दश्यामिति ।

सर्व्वान् कामान् पूर्व्वोक्तानित्यर्थः । अत्र सर्व्वशब्दस्य प्रकृतवाचित्वात् एकैकस्य काम्यत्वेन प्रक्रान्तत्वादुक्तान्यतमफलस्य दर्शे काम्याधिकारः । एकस्मै कामायान्ये सर्व्वेभ्यो दर्शपौर्णमासावितिवत् ।

कृत्तिकादिनक्षत्रेषु यथाक्रमं फलान्याह याज्ञवल्क्यः—

स्वर्गं ह्यपत्यमोजश्च शौर्य्यं क्षेत्रं बलं तथा ।
पुत्रान् श्रैष्ठ्यञ्च सौभाग्यं समृद्धिं मुख्यतां शुभाम् * ॥

---

* शूद्रपुत्रान्चैव ।

प्रहृत्तचक्रतां कीर्त्तिं * वाणिज्यं प्रभुतां तथा।
अरोगित्वं यशो वीतशोकतां परमां गतिम्॥
†धनं विद्यां भिषक्सिद्धिं कुप्यं गामप्यजाविकम्।
अश्वानायुश्च विधिवद् यः श्राद्धं संप्रयच्छति॥
कृत्तिकादिभरण्यन्तं स कामान् प्राप्नुयादिमान्।
स्वर्गः सुखं प्रहृत्तचक्रता अप्रतिहताज्ञता।

सप्तसु वारेषु काम्यश्राद्धमाह विष्णुः—

आदित्येऽह्नि श्राद्धं कुर्व्वन्नारोग्यमाप्नोति सौभाग्यं चान्द्रे समरविजयं कौजे सर्व्वान् कामान् बौधे विद्यामभीष्टां जैवे धनं शौक्रे चिरजीवितं शनैश्चरे।

पद्मपुराणे—

शुक्लाङ्गारकसंयुक्ता चतुर्थी जायते यदा।
तस्यां श्राद्धकृदिभो न प्रेतो जायते नरः॥
अङ्गारको मङ्गलवारः॥

---

## अथानावश्यकश्राद्धकालाः।

विष्णुः—

आदित्यसंक्रमणं विषुवद्द्वयं विशेषेणायनद्वयं व्यतीपातो जन्मर्क्षमभ्युदयश्चेति।

---

* मुद्रपुस्तके सुतम्। † मुद्रपुस्तके धर्म्मं।

एतांस्तु श्राद्धकालान् वै काम्यानाह प्रजापतिः।
श्राद्धमेतेषु यद्दत्तं तदानन्त्याय कल्पते॥

आदित्यसंक्रमणमिति गोवलीवर्द्दन्यायाद्विषुवायनयोस्तु फलातिशयः।

संक्रान्तिश्राद्धञ्च पिण्डरहितं कार्य्यं—

अयनद्वितये श्राद्धं विषुवद्वितये तथा।
संक्रान्तिषु च कर्त्तव्यं पिण्डनिर्व्वपणादृते॥
वैशाखस्य तृतीयायां नवम्यां कार्त्तिकस्य च।
श्राद्धं कार्य्यञ्च शुक्लायां संक्रान्तिविधिना नरैः॥
त्रयोदश्यां भाद्रपदे माघे चन्द्रक्षयेऽहनि।
श्राद्धं कार्य्यं पायसेन दक्षिणायनवच्च तत्॥

इति ब्रह्मपुराणवचनात्।

संक्रान्तिविधिना पिण्डदानेतरविधिनेत्यर्थः।

न चैतेषां वचनानामनाकरत्वाद्ब्रह्मपुराणाग्निपुराणयोर्दृष्टत्वात् संवत्सरप्रदीपाद्यनेकसंग्रहेषु लिखितत्वाच्च।

अन्ये तु—

ततः प्रभृति संक्रान्तावुपरागादिपर्व्वसु।
त्रिपिण्डमाचरेच्छ्राद्धमेकोद्दिष्टं मृताहनि॥

इति मत्स्यपुराणवचनात् पिण्डदानविधिनिषेधयोर्विकल्पो दाने तु फलातिशय इत्याहुः। तदयुक्तम्।

तत्रैव मत्स्यपुराणे—

ततः प्रभृति पितरः पिण्डसंज्ञान्तु लेभिरे।

इति परिभाषितत्वात् त्रिपिण्डमाचरेदित्यस्य मत्स्यपुराण-वचनस्य त्रयः पिण्डाः पितरो यत्रेति व्युत्पत्त्या त्रिपिण्डं त्रैपुरुषिकं श्राद्धमिति व्याख्यानात्। अतएव एकोद्दिष्टं मृताहनीत्यनेन मृताहे त्रैपुरुषिकोपसंहारः कृतः। व्यतीपातस्तु सूर्य्याचन्द्रमसोः क्रान्तिसाम्ये भवति।

यथा सूर्य्यसिद्धान्ते—

विपरीतायनगतौ चन्द्रार्कौ क्रान्तिलिप्तकाः *।
समास्तदा व्यतीपातो भगणार्द्धे तयोर्युतौ॥
तुल्यांशुजालसम्पर्कात्तयोस्तु प्रवहाहतात्।
तादृक्क्रोधोद्भवो वह्निर्लोकाभावाय जायते॥
व्यतीपातः प्रसिद्धोऽयं संज्ञाभेदेन वैधृतिः।
स्नानं दानं तथा श्राद्धं जपहोमादिकर्म्म च॥
तत्राप्य सुमहच्छ्रेयः कार्य्यमानन्त्यमिच्छताम्।

अन्ये तु—

श्रवणाश्विधनिष्ठार्द्रानागदैवतमस्तके।
अमा वै रविवारेण व्यतीपातः स उच्यते॥

इत्यग्निपुराणवचनात्तिथिनक्षत्रवाराणां योगविशेषमाहुः।

---

* ख पुस्तके लिप्तिकां।

नागदैवतमश्लेषा एषां मस्तके आदिपादे इत्यर्थः। अभ्युदयः पुत्रजन्म।

तथाच मार्कण्डेयपुराणम्—

नैमित्तिकमथो वक्ष्ये श्राद्धमभ्युदयात्मकम्।
पुत्रजन्मनि तत्कार्यं जातकर्मसमं नरैः॥

ब्रह्मपुराणे—

युगाद्येषु युगान्तेषु श्राद्धमक्षयमुच्यते।

विष्णुपुराणे—

वैशाखमासस्य तु या तृतीया
नवम्यसौ कार्त्तिकशुक्लपक्षे।
नभस्यमासस्य तमिस्रपक्षे
त्रयोदशी पञ्चदशी च माघे॥
एता युगाद्याः कथिताः पुराणै-
रनन्तपुण्यास्तिथयश्चतस्रः।
पानीयमप्यत्र तिलैर्विमिश्रं
दद्यात्पितृभ्यः प्रयतो मनुष्यः।
श्राद्धं कृतं तेन समाः सहस्रं
रहस्यमेतत् पितरो वदन्ति॥

अत्र तमिस्रपक्षानुषङ्गान्माघे पञ्चदशी अमावस्या न तु पौर्णमासी अन्यथा वैयर्थ्यात्।

न च—

> वैशाखे शुक्लपक्षे तु तृतीयायां कृतं युगम्।
> कार्त्तिके शुक्लपक्षे तु त्रेता च नवमेऽहनि॥
> तथा भाद्रपदे कृष्णत्रयोदश्यान्तु द्वापरम्।
> माघे च पौर्णमास्यान्तु घोरं कलियुगं स्मृतम्॥

इति मत्स्यपुराणविरोधाच्च तमिस्रपक्षानुपङ्ग इति वाच्यं अग्निपुराणादिवचनैकवाक्यतया अनुपङ्गस्यैव न्याय्यत्वात्।

यथाग्निपुराणे—

> नवम्यां शुक्लपक्षस्य कार्त्तिके निरगात् कृतम्।
> त्रेता सिततृतीयायां वैशाखे द्वापरं युगम्॥
> दर्शे तु माघमासस्य त्रयोदश्यां नभस्यके।
> कृष्णे कलिर्विजानीयात् ज्ञेया मन्वन्तरादयः॥

निरगात् निःशेषेण प्राप्तमित्यर्थः।

तथा वायुपुराणे—

> दर्शे तु माघमासस्य प्रवृत्तं द्वापरं युगम्।
> कलिः कृष्णत्रयोदश्यां नभस्ये मासि निर्गतः॥

तथा ब्राह्मे—

> त्रयोदश्यां भाद्रपदे माघे चन्द्रक्षयेऽहनि।

इति पूर्व्वमुक्तमेव।

विष्णुधर्म्मोत्तरे—

> द्वे शुक्ले द्वे तथा कृष्णे युगाद्ये परिकीर्त्तिते।
> शुक्ले पूर्व्वाह्णिके ग्राह्ये कृष्णे चैवापराह्णिके॥

ब्रह्मपुराणस्य तु केचित् माघे पञ्चदश्यामिति पाठं वदन्ति।
अन्ये तु कल्पभेदेन व्यवस्थामाहुः।

तन्मतेऽपि विष्णुपुराणे चकारस्य वैयर्थ्याभियाऽनुषङ्गस्यावश्यकत्वात् वराहकल्पश्चास्माकमधिकृत्य पराशर इत्यग्निपुराणाद्विष्णुपुराणीयपक्षस्यैवास्मिन् वर्त्तमानवराहकल्पेऽनुष्ठानस्य न्याय्यत्वात् अनेकमुनिसम्मतत्वाच्चामावस्यैव युक्तेति। माघभाद्रमासौ पौर्णमास्यन्तावेव सर्वत्र तथैव तिथितत्त्वेऽभिधानात्।

युगान्तानाह ब्रह्मपुराणे—

सूर्य्यस्य सिंहसंक्रान्त्यामन्तः सत्ययुगस्य तु।
तथा वृश्चिकसंक्रान्त्यामन्तस्त्रेतायुगस्य च॥
ज्ञेयश्च वृषसंक्रान्त्यां द्वापरान्तश्च संज्ञया।
तथाच कुम्भसंक्रान्त्यां कलेरन्तः प्रकीर्त्तितः॥
तथा मन्वन्तरादौ च श्राद्धं ज्ञेयं विजानता।
अश्वयुक्शुक्लनवमी द्वादशी कार्त्तिके तथा॥
तृतीया चैव माघस्य तथा भाद्रपदस्य च।
फाल्गुनस्याप्यमावस्या पौषस्यैकादशी तथा॥
आषाढस्यापि दशमी माघमासस्य सप्तमी।
श्रावणस्याष्टमी कृष्णा तथाषाढी च पूर्णिमा॥
कार्त्तिकी फाल्गुनी चैत्री ज्यैष्ठी पञ्चदशी सिता।
मन्वन्तरादयस्त्वेता दत्तस्याक्षयकारिकाः॥

अमावस्याष्टमीव्यतिरिक्ता द्वादशतिथयः शुक्ला मन्तव्याः।

पुनःपुनस्तयोपादानात् । दृत्तस्वाचयकारिका कृत्वार्थवादिकी पितृतृप्तिः फलम् ।

याज्ञवल्क्यः—

श्राद्धं प्रति रुचिश्चैवं श्राद्धकालाः प्रकीर्त्तिताः ।

यदैव श्राद्धेच्छा भवति तदैवेति नित्यत्वे प्रमाणाभावात् काम्यं फलन्तु पितृतृप्तिरेव ।

---

## अथ श्राद्धवेला ।

तत्र पर्युदस्तकालानाह मनुः—

रात्रौ श्राद्धं न कुर्व्वीत राक्षसी कीर्त्तिता हि सा ।
सन्ध्ययोरुभयोश्चैव सूर्य्ये चैवाचिरोदिते ॥

तत्र दत्तद्रव्यस्य राक्षसप्राप्तिहेतुत्वेन राक्षसीति निन्दा सूर्य्ये चैवाचिरोदिते इति दिवसस्य प्रथममुहूर्त्ते इत्यर्थः ।

न चाद्यमुहूर्त्तद्वय इति श्रीदत्तव्याख्यानं युक्तं मुहूर्त्तद्वयनिषेधे सति ब्रह्मपुराणे प्रातर्वृद्धिनिमित्तकमित्यनेन मुहूर्त्तत्रये वृद्धिश्राद्धविधानमसङ्गतं स्यात् तृतीयमुहूर्त्तमात्रे मुख्यकाले वृद्धिश्राद्धकरणासम्भवादिति ।

अथाचिरोदिते सूर्य्ये श्राद्धं न कुर्व्वीतेत्यनुपदाच्छ्राद्धस्यैव प्रतिषेधो न, न, धानदेवार्च्चादीनामश्रुतत्वात् । नाप्युपलक्षणं, प्रमाणाभावात् ।

अतएव यमः—

स्नानं सन्ध्या जपो होमो देवतानाञ्च पूजनम्।
दिवसस्यादिमे भागे सर्व्वमेतत् समाचरेत्॥

रात्र्यादिषु तु वचनान्तरात् प्रतिषेधः।

यथा यमः—

स्नानं दानं जपः श्राद्धमनन्तं राहुदर्शने।
आसुरी रात्रिरन्यत्र तस्मात्तां परिवर्ज्जयेत्॥

मत्स्यपुराणे—

प्रातःकालो मुहूर्त्तांस्त्रीन् सङ्गवस्तावदेव तु।
मध्याह्नस्त्रिमुहूर्त्तः स्यादपराह्णस्ततःपरम्॥
सायाह्नस्त्रिमुहूर्त्तःस्यात्तत्र श्राद्धं न कारयेत्।
राक्षसी नाम सा वेला गर्हिता सर्व्वकर्म्मसु॥
अह्नो मुहूर्त्ता विख्याता दश पञ्च च सर्व्वदा।
तत्राष्टमो मुहूर्त्तो यः स कालः कुतपः स्मृतः॥
मध्याह्ने सर्व्वदा यस्मान्मन्दीभवति भास्करः।
तस्मादनन्तफलदस्तत्रारम्भो विशिष्यते॥

तावदेव मुहूर्त्तत्रयमित्यर्थः ततः परं त्रिमुहूर्त्तोऽपराह्ण इत्यर्थः। सर्व्वकर्म्मसु स्नानादिष्वपीत्यर्थः। अतएव पञ्चधाविभागाद्दिवसे पञ्चदशमुहूर्त्ताः स्युः। एतेन मुहूर्त्तसंज्ञाप्युक्ता।

तथाच ज्योतिषे—

अह्नः पञ्चदशांशो रात्रेरेवं मुहूर्त्तसंज्ञः स्यात्।

मध्याह्न इति—अह्नो मध्यं मध्याह्न इति व्युत्पत्त्या मध्याह्नेऽष्टम-

एकाहे द्वादशाह वेति द्वादशाहे सर्व्वमासिकादिविधान-मसङ्गतं स्यात् मध्याह्ने सर्व्वमासिककरणासम्भवात् ।

किञ्च विहिततिथौ मध्याह्नायलाभे श्राद्धलोपापत्तिस्तदा च याज्ञवल्क्यादिवचनविरोधः स्यात् वीप्साबाधापत्तेः ।

यथा याज्ञवल्क्यः—

मृताहनि च कर्त्तव्यं प्रतिमासञ्च वत्सरम् ।

प्रतिसंवत्सरञ्चैव आद्यमेकादशेऽहनि ॥

विष्णुपुराणे—

मासिमास्यसिते पक्षे पञ्चदश्यां नराधिप ।

तस्मान्मध्याह्नादिकालानां प्राशस्त्यपरत्वेनोपपत्त्या भागा-न्तरेऽपि श्राद्धप्राप्तौ रात्र्यादिपर्य्युदासात् याज्ञवल्क्यादिविरोध-परीहारः । ।

अयञ्च पर्य्युदास एव न तु निषेधविधिः ।

तथाहि सामान्यशास्त्रप्राप्त्युपजीवी हि निषेधविधिर्बाध्यः । अन्यथा विध्यभावादेव निषेधप्राप्तौ अप्राप्तिप्रापनरूपं विधित्वं निषेधस्य न स्यात् ततश्चोपजीव्यविधिबाध एव दोषः ।

किञ्च अमावास्यादिविधे रात्र्यादौ तात्पर्य्यमस्ति न वा । आद्ये वचनशतेनापि तत्र निषेद्धुं न शक्यते विधेस्तत्र तात्पर्य्य-बाधात् ।

द्वितीये विधित्वव्याहतिर्निषेधस्य स्वतःसिद्धत्वात् । अत्र सत्यपि विधेस्तात्पर्य्ये निषेधबलादेव विकल्पो भविष्यतीति चेत्तथा-प्यंशतो बाधादुपजीव्यबाधः सिद्ध एव ।

किञ्च अमावस्यादौ निषिद्धेतरे दद्यादेव निषिद्धे तु रात्र्यादौ दद्यान्नदद्याच्च इति विधिवैयर्थ्येन वाक्यभेदापत्तिः, तत्तदुपजीव्य बाधाद्वाक्यभेदभिया च पर्युदासलक्षणैव च श्रेयसी। दृष्टा च यजतिषु येयजामहं कुर्य्यान्नानुयाजेष्वित्यत्र* वाक्यभेदभयात्पर्युदासलक्षणा।

अतएव गङ्गाघोषादौ नैकवाक्यतानुरोधेन लक्षणा स्वीकृता अन्यथा पदान्तराध्याहारेण वाक्यभेदमालम्ब्य मुख्यार्थसम्भवात्। अतिरात्रे षोड़शिनं गृह्णातीत्यत्र तु द्वयोरेव †विध्योः सामान्यविशेषभावाभावेन पर्युदसनीयस्याभावादनन्यगत्या निषेधविधित्वसद्भावाद्विकल्प एव। तस्मादमावस्यादिविधेः ‡शेषभूततया रात्र्यादिपर्युदासो व्यवतिष्ठते। रात्र्यादिभिन्नेऽमावस्यादौ श्राद्धं कुर्य्यादित्यर्थः।

एवञ्च सामान्यशास्त्रप्राप्तोपजीविनिषेधे पर्युदास एव रागप्राप्तकलञ्जभक्षणादौ तु निषेधविधिरेव रागतः शास्त्रस्य बलवत्त्वात् तत्र रात्र्यादिपर्युदस्तेतरो भाग एव श्राद्धकालः। तत्र श्राद्धविशेषे प्रशस्तकालमाह ब्रह्मपुराणम्—

पूर्व्वाह्णे मातृकं श्राद्धमपराह्णे तु पैतृकम्।
एकोद्दिष्टन्तु मध्याह्ने प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम्॥

यद्यपि मातृप्रधानं श्राद्धं मातृकमिति व्युत्पत्त्याऽन्वष्टकाश्राद्धं

---

* ख पुस्तके गृह्णाति नातिरात्रे षोड़शिनमित्यधिकः पाठः।

† ख पुस्तके विशेषविध्योः।

‡ ग पुस्तके शेषीभूततया।

वृद्धिश्राद्धमुच्यते तथापि प्रातर्वृद्धिनिमित्तकमिति पृथक्‌वचनात् मातृकमन्वष्टकाश्राद्धम्।

यथा मनुः—

> पित्रादित्रयपत्नीषु भोज्याः मातृः प्रति द्विजाः।
> स्त्रीणामेव तु तद्यस्मान्मातृश्राद्धमिहोच्यते॥

पित्रादित्रयपत्नीः मातृः मनुद्दिश्येत्यर्थः द्वितीयार्थे सप्तमी आर्षप्रयोगात् पित्रादित्रयपत्नीस्त्विति गौडसम्मतः पाठः।

पूर्व्वाह्णे शुक्ले दिनस्य तृतीयभागे।

यथा श्रुतिः—

पूर्व्वाह्णो वै देवानां मध्यन्दिनं मनुष्याणामपराह्णः पितॄणामिति।

न च

> आवर्त्तनात्तु पूर्व्वाह्णो ह्यपराह्णस्ततः परम्।

इति स्कन्दपुराणात् द्विधाविभक्तकालः कथं न गृह्यते इति वाच्यम्।

श्रुतेर्बलवत्त्वात् त्रिधाविभक्तकाल एव शक्तिः स्कन्दपुराणवचनस्याजहत्स्वार्थलक्षणयाप्युपपत्तेः। न च सङ्गवपरतया पूर्व्वाह्णपदव्याख्यानं केषाञ्चिद्युक्तं प्रमाणाभावात् लक्षणाबीजाभावाच्च।

न च प्रातःपदस्य पृथगुपादानमेव लक्षणाबीजमिति वाच्यम्।

प्रातः-पूर्व्वाह्णपदयोर्व्याप्य-व्यापक-भावेनार्थभेदाद्विषय-भेदाच्च विरोधाभावात्।

एकोद्दिष्टमाद्यश्राद्धादि मध्याह्नापराह्णपदद्वयमत्र ब्रह्मपुराणोक्त-पञ्चधाविभक्त पारिभाषिक-मध्याह्नापराह्ण-विषयं प्रातःपद-समभिव्याहारात्।

यत्तु—

पूर्व्वाह्णे दैविकं श्राद्धं कार्य्यमभ्युदयार्थिना।

इति शातातपवचनं तत् प्रातरप्राप्तौ पूर्व्वाह्णविधि*विधायकम्।

यथा भविष्ये—

सर्व्वं प्रदक्षिणं कार्य्यं पूर्व्वाह्णे तूपवीतिना।

पैतृकमिति कृष्णपक्षपार्व्वणविषयम्।

यथा वायुपुराणे—

शुक्लपक्षस्य पूर्व्वाह्णे श्राद्धं कुर्य्याद्विचक्षणः।

कृष्णपक्षापराह्णे तु रौहिणन्तु न लङ्घयेत्॥

यत्र युगाद्याष्टकादौ विशिष्य प्रशस्तकालो नोक्तः तद्विषयमिदं वचनं एकोद्दिष्टद्यान्वष्टकासु तु पूर्व्वोक्त एव विशेषः।

तथा नित्यश्राद्धे—

पञ्चमे च ततो भागे संविभागो यथार्हतः।

इति दक्षेण दिवापञ्चभागो विशिष्योक्तः।

एवञ्च—

---

* ख पुस्तके पूर्व्वाह्णावधि।

शुक्लपक्षे क्रियमाणं पार्व्वणश्राद्धं पूर्व्वाह्णे तुल्यतृतीयभागे कृष्णपक्षेऽपराह्णे तु पैतृकमिति पूर्व्वोक्तवचनैकवाक्यतया ब्रह्मपुराणोक्तपक्षधाविभक्तेऽपराह्नकाले कर्त्तव्यम्।

यच शुक्लकृष्णपुरस्कारेण विहितं श्राद्धमिति कैश्चिदुक्तं तन्नदं साग्निकर्त्तव्यपार्व्वणविधिक सांवत्सरिकश्राद्धे श्रावणपौर्णमास्यादौ च कृष्णशुक्लपक्षपुरस्कारेण विधानाभावात् कालव्यवस्था न स्यात्। अस्मन्मते तु पक्षभेदादस्ति पूर्व्वाह्णापराह्णव्यवस्थितिः।

अपराह्णे तु पूर्व्वाह्णस्योत्तरावधिमपराह्णस्य पूर्व्वावधिमाह रौहिणमिति।

रोहिणीनक्षत्रसम्बन्धिनं नवममुहूर्त्तं ज्योतिःशास्त्रसिद्धं पूर्व्वाह्णश्राद्धकर्त्ता न लङ्घयेत् न त्यजेत् रौहिणमभिव्याप्यैव कुर्य्यात् तत्परकालस्याप्रशस्तत्वात् एवमपराह्णश्राद्धकर्त्ता रौहिणं न लङ्घयेत् रौहिणात् प्रभृत्येव कुर्य्यात् तत्पूर्व्वकालस्याप्रशस्तत्वादित्यर्थः। तेन शुक्लपक्षे प्रथममुहूर्त्तादूर्द्ध्वं यावत्प्रशस्तः कालस्तन्मध्ये पञ्चममुहूर्त्तं यावदतिप्रशस्तः कृष्णपक्षेऽष्टममुहूर्त्तादूर्द्ध्वं मुहूर्त्तचतुष्टयं प्रशस्तं नवममुहूर्त्तात्परं मुहूर्त्तत्रयमतिप्रशस्तमिति।

नच रौहिणमित्यस्यैकोद्दिष्टविषयता एतद्वचनानुपात्तत्वेनैकोद्दिष्टस्याप्रकृतत्वात्।

यत्तु मत्स्यपुराणादावष्टममुहूर्त्तस्यापि प्राशस्त्यमुक्तं तद्विपिवरावशादीतरसामान्यकालापेक्षया प्रशस्त्यं रौहिणापेक्षया तु तस्याप्रकृष्टत्वमेव।

यथा मत्स्यपुराणे –

अपराह्ने च संप्राप्ते अभिजिद्रौहिणोदये।
यदत्र दीयते किञ्चित्तदक्षयमुदाहृतम्॥
अभिजिदष्टममुहूर्त्तः।

तथा दर्शश्राद्धमधिकृत्य ब्रह्मपुराणे—

यतिस्त्रिदण्डी करणा राजतं पात्रमेव च।
दौहित्रं कुतपः कालश्छागः कृष्णाजिनं तथा॥
सर्पिः कृष्णाः सिता रक्तास्तथैव *त्रिविधास्तिलाः।
पितॄणां हृतये सृष्टा दर्शते ब्रह्मणा स्वयम्॥
यतिरेकदण्डी कुतपोऽष्टममुहूर्त्तः।

पार्व्वणश्राद्धप्रकरणे हारीतः—

दिवसस्याष्टमे भागे मन्दोभवति भास्करः।
स कालः कुतपो ज्ञेयः पितॄणां दत्तमक्षयम्॥

वायुपुराणे—

ऊर्द्ध्वं मुहूर्त्तात् कुतपाद्यन्मुहूर्त्तचतुष्टयम्।
मुहूर्त्तपञ्चकं वापि स्वधाभवनमिष्यते॥
अत्र कुतपमादाय मुहूर्त्तपञ्चकं वेदितव्यम्।

न च कुतपादूर्द्ध्वं मुहूर्त्तपञ्चकं वेति व्याख्यानं युक्तं उक्तमत्स्यपुराणादिवचनैकवाक्यतया कुतपादिमुहूर्त्तपञ्चकस्यैव बुध्यमानत्वात्।

किञ्च उक्तरीत्या मध्यपतित मत्यन्तरे मायाद्रत्वेन जिपिरस्य तयोदशमुहूर्त्तस्य वचनवलाद्ग्रहणमन्याय्यमेव।

---

* क पुस्तके वा त्रिधाः।

न च रौहिणन्तु न लङ्घयेदित्यनेन कुतपस्यापि निषिद्धत्वमिति वाच्यम्।

न लङ्घयेदित्यनेन रौहिणापराह्णयोः प्राशस्त्यकथनमुखेन तदपेक्षया कुतपस्यापकर्षकथनात् रात्रिसायाह्नादीतरस्यैव श्राद्धकालत्व*प्रसङ्गात्।

अथ वचनान्तराभावापीति चेद्रूर्द्धं मुहूर्त्तात् कुतपादित्यस्य वैयर्थ्यप्रसङ्गः-अव्यावर्त्तकत्वात्।

केचित्तु—

अपराह्णो मुख्यः कल्पः, रौहिणोऽनुकल्पः, कुतप आपत्कल्पः, निषिद्धेतरभागोऽत्यन्तापत्कल्प इत्युक्ता प्रभुः प्रथमकल्पस्य इति मनुवचनान्मुख्यकाललाभे शक्तस्यान्यत्र फलं नास्त्येव इत्याहुः।

तदयुक्तं—

रात्र्यादिपर्युदासेन तदितरस्य श्राद्धयोग्यकालत्वात् प्राशस्त्यपरतयैवोपपत्तेः। मन्वादिवचनेष्वपराह्णस्य प्राशस्त्यकथनादन्यथा कल्पनस्यान्याय्यत्वाच्च।

मनुः—

यथा चैवापरः पक्षः पूर्व्वपक्षाद्विशिष्यते।
तथा श्राद्धस्य पूर्व्वाह्णादपराह्णो विशिष्यते॥

शातातपः—

दर्शश्राद्धन्तु यत्प्रोक्तं पार्व्वणं तदुदाहृतम्।
अपराह्णे पितृणान्तु तत्र दानं विशिष्यते॥

---

* ख पुस्तके - कालत्वात्।

आपस्तम्बः—

मासि मास्यपरपक्षस्यापराह्णः श्रेयानिति ।

एवञ्च—यस्मिन् दिने प्रशस्तकालप्राप्तिस्तदैव* श्राद्धं निर्विधादमेव प्रशस्तलाभेऽप्रशस्तस्यान्याय्यत्वात् ।

यत्र तूभयदिनएवापराह्णलाभस्तत्राह स्मृत्यर्थसारधृतम्—

यथास्तं सविता याति पितरस्तामुपासते ।

तिथिं तेभ्योऽपराह्णो हि स्वयं दत्तः स्वयम्भुवा ॥

एतच्च कृष्णपक्षपार्वणविषयमेव अपराह्णः स्वयं दत्तः स्वयम्भुवेति हेतुमन्निगदात् ।

उभयदिनेऽपराह्णालाभे तु परदिन एव पूर्व्वदिने निषिद्धसायाह्नमात्रप्राप्तेः ।

अमावस्याव्यवस्था तु पृथक् वक्ष्यते । पूर्व्वाह्णमध्याह्नविहितपितृकृत्ये तु उभयदिने पूर्व्वाह्णमध्याह्नयोरलाभे लाभे वा देवलवचनादेव व्यवस्था ।

यथा—

यां तिथिं समनुप्राप्य उदयं याति भास्करः ।

सा तिथिः सकला ज्ञेया स्नानदानव्रतादिषु ॥

यां तिथिं समनुप्राप्य अस्तं याति च भास्करः ।

सा तिथिः सकला ज्ञेया स्नानदानव्रतादिषु ॥

व्रतादिपदेन वैदिककर्म्ममात्रस्य ग्रहणात् पितृकृत्यस्यापि ग्रहणं प्रकरणाद्यभावेन सङ्कोचे प्रमाणाभावात् ।

* च पुस्तके तत्रैव ।

न च तयाप्यनिर्णय इति वाच्यम्।

> नत्वं देवदेवेश तिथिश्राद्धविनिर्गताम्।
> दृष्टोपवासः कर्त्तव्यः कथं शङ्कर जानता ॥

शङ्कर उवाच—

> सा तिथिस्तदहोरात्रं यस्यामभ्युदितो रविः।
> तया कर्म्माणि कुर्व्वीत ह्रासवृद्धी न कारणम् ॥
> सा तिथिस्तदहोरात्रं यस्यामस्तमितो रविः
> तया कर्म्माणि कुर्व्वीत ह्रासवृद्धी न कारणम् ॥
> शुक्लपक्षे तिथिर्ग्राह्या यस्यामभ्युदितो रविः।
> कृष्णपक्षे तिथिर्ग्राह्या यस्यामस्तमितो रविः ॥

इति विष्णुधर्म्मोत्तरे* शुक्लकृष्णपक्षभेदेन व्यवस्थादर्शनात्तत्तुल्यत्वेन दैवतवचनद्वयेऽपि संशये शुक्लकृष्णभेदादुदयास्तसम्बन्धेन व्यवस्थानियमात्।

न च विष्णुधर्म्मोत्तरवचनैकवाक्यतया दैवतवचनस्यापि दैवत्वपरत्वमस्त्विति वाच्यम्।

विष्णुधर्म्मोत्तरवचनस्य दैवकृत्यमादायैकदेशकीर्त्तनपरत्वेन दैवतवचने चादिपदसङ्कोचे प्रमाणाभावात् यथाश्रुतं संचिता वास्तीति वचनपरिशिष्टेनाप्येकदेशकीर्त्तनपरतया दैवतवचनस्य कृष्णपक्षेऽपिदैवकृत्ये व्यवस्थितत्वाच्च। तिथिद्वैधे पित्र्यकृत्यसंशये विशेषाग्रहणाद्दैवकृत्यवद्व्यवस्थाया न्याय्यत्वाच्च।

* अत्र पुस्तके दैवकृत्ये इत्यधिकः पाठः।

तथाच निगमपरिशिष्टम्—

द्वितीयादिकयुग्मानां पूज्यता नियमादिषु।

एकोद्दिष्टादिहवरादौ ह्रद्धिक्षासेण चोदना ॥

चन्द्रस्य ह्रद्धिक्षासेण शुक्लकृष्णपक्षभेदेन चोदना विधिरित्यर्थः।

तथा पितृकृत्यं प्रकृत्य बौधायनः—

वर्द्धमानेन्दुपक्षस्य उदयात्पूज्यते तिथिः।

यदा चन्द्रः क्षयं याति तदा स्यादस्तकालिकी ॥

एतेन पितृकृत्यसंशये कपालाधिकरणन्यायेन प्रथमोपस्थित-तिथेर्ग्रहणाच्छुक्लपक्षेऽपि पूर्व्वदिन एव श्राद्धमिति मैथिलोक्तं निरस्तम्।

मध्याह्ने पितृकृत्ये त्वयं विशेषः—

दिवसस्याष्टमे भागे मन्दीभवति भास्करः।

स कालः कुतपो ज्ञेयः पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥

इति शातातपवचनात्—

आरभ्य कुतपे श्राद्धं कुर्य्यादारौहिणं बुधः।

विधिज्ञो विधिमास्थाय रौहिणन्तु न लङ्घयेत् ॥

इति गोतमवचनाच्च।

यत्र दिने कुतपरौहिणयोर्विशेषतो लाभस्तद्दिन एकोद्दिष्टम्।

यथा ब्रह्मपुराणे—

तत्राष्टमो मुहूर्त्तो यः स कालः कुतपः स्मृतः।

मध्याह्ने सर्व्वदा यस्मान्मन्दीभवति भास्करः ॥

तस्मादनन्तफलदस्तत्रारम्भो विशिष्यते।

अह्नो मध्यं मध्याह्न इत्यर्थः। यस्मादिति मन्त्रे सवितर्यैत्तयं भवतीति श्रुतिरत्र हेतुरित्यर्थः।

अतएव हारीतः—

मध्याह्नव्यापिनी या तु पूर्व्वा वा यदि वा परा।
तस्यां कर्म्म प्रकुर्व्वीत ह्रासवृद्धी न कारणम्॥

उभयदिने कृतपरौहिणयोर्लाभेऽलाभे वा शुक्लकृष्णपक्षभेदादुदयास्तसम्बन्धेनैकोद्दिष्टमित्युक्तमेव।

नचैतद्वचनं दैवकृत्यविषयमिति वाच्यम्।

त्रिमुहूर्त्तापि कर्त्तव्या पूर्व्वादर्शो च बह्वृचैः।

इत्यनेन पितृकृत्यमुपक्रम्य हारीतेनोक्तत्वात्।

संग्रहे युग्मवचनेन शुक्लपक्षे तिथिर्ग्राह्येत्यादिना च दैवकृत्यस्य यथायथं व्यवस्थापितत्वाच्च।

अन्ये तु पूर्व्वाह्णमध्याह्नानुष्ठेयदैवपितृकृत्यसाधारणं वचनमिदम्। दैवकृत्ये युग्मवचनाविषये खण्डातिथौ पितृकृत्ये त्वेकोद्दिष्टे शुक्लपक्षविहितपार्व्वणे च उभयदिने पूर्व्वाह्णादिलाभे मध्याह्नयोगिन्यामेव तिथौ कार्य्यम्। उभयदिने तु मध्याह्नयोगितिथिलाभे शुक्लकृष्णपक्षभेदादुदयास्तमयसम्बन्धेन व्यवस्थेत्याहुः।

यत्र तु पूर्व्वदिने श्राद्धनिर्णये सति दैवात्तदाकरणं तत्र परदिने मध्याह्नादिलाभेऽपि न श्राद्धम्। वचनेन पूर्व्वदिनस्यैव श्राद्धकालत्वेन निर्णयात् परदिनव्यावृत्तेः।

किन्त्वेकोद्दिष्टं सपिण्डीकरणमेकादशामनुष्ठेयं विप्रपतितत्वात् अष्टकादिपार्व्वणानान्तु बाध एवेति।

सपिण्डीकरणन्तु यद्यपि प्रेतांश एकोद्दिष्टं पित्रंशे च पार्व्वणमिति नरसिंहाकारं तथापि प्रेतोपाधिना पितृत्वाद्वकरणादेकोद्दिष्टमेव प्रधानमिति तत्रापि मध्याह्न एव प्रशस्त इति श्राद्धचिन्तामणिः। तन्नदम्।

सपिण्डीकरणादूर्द्धं प्रेतः पार्व्वणभुक् भवेत्।

इति मत्स्यपुराणात्

ततः प्रभृति वै प्रेतः पितृसामान्यमाप्नुयात्।

इति हारीतवचनाच्च

प्रेतस्य पार्व्वणभागित्वफलतया पार्व्वणस्यैव प्राधान्यादपराह्ण एव सपिण्डनकालः।

अतएव श्राद्धविवेके अपराह्णे सपिण्डनमित्युक्तम्।

अथवा किमत्र काकदन्तान्वेषणेन गरुड़पुराणमेवात्र प्रमाणम्।

यथा तत्र—

सपिण्डीकरणं वक्ष्ये पूर्णेऽब्दे तत्क्षयाहनि।
सपिण्डीकरणं कुर्य्यादपराह्णे तु पूर्व्ववत्॥

पूर्व्ववत् पार्व्वणवदित्यर्थः।

युगाद्यान्नीहिपाकादि सावकाशश्राद्धेषु पर्य्युदासमाह भारते—

नक्षत्रे च न कुर्व्वीत यस्मिन् जातो भवेन्नरः।
न प्रौष्ठपदयोः कार्य्यं तथाग्नेये च भारत॥

दारुणेषु च सर्व्वेषु प्रत्यरौ च विवर्ज्जयेत्।

ज्योतिषे यानि प्रोक्तानि तानि सर्व्वाणि वर्ज्जयेत्॥

प्रौष्ठपद्योरिति पूर्व्वभाद्रपदनक्षत्रस्य द्वितारकत्वाद्द्विवचनं आग्नेयं कृत्तिका।

दारुणमुक्तं ज्योतिषे—

दारुणं चौरगं रौद्रमैन्द्रं नैर्ऋतमेव च॥

चौरगमश्लेषा रौद्रमार्द्रा ऐन्द्रं ज्येष्ठा नैर्ऋतं मूला।

उपनक्षत्रपरतया व्याख्यानन्तु न युक्तं—

नक्षत्राणि तथैवार्द्रादारुणोग्राणि वर्ज्जयेत्।

इति विष्णुधर्म्मोत्तरे भेदेनोपादानात्।

उग्राण्युक्तानि ज्योतिषे—उग्राणि पूर्व्वात्रय मघाश्लेषा इति।

प्रत्यरिः पापतारेत्यर्थः। ज्योतिषे यानि निषिद्धतया प्रोक्तानि नन्दादीनि तानि वर्ज्जयेत्।

यथा—

नन्दायां भार्गवदिने त्रयोदश्यां त्रिजन्मनि।

अत्र श्राद्धं न कुर्व्वीत पुत्रदारधनक्षयात्॥

त्रिजन्मनि तिसृषु जन्मताराखित्यर्थः।

एतच्च न प्रेतषोड़शश्राद्धामावस्याष्टकादिनित्यकाम्यश्राद्ध-विषयं तेषां नैयतकालिकत्वेन तद्दिनाकरणे प्रत्यवायात्। किन्तु नापककाम्यश्राद्धविषयम्। यस्य तद्दिनाकरणे प्रत्यवायाभावस्तत् माघकार्य—नवान्नागम-संक्रान्ति—युगाद्यादिश्राद्धं काम्यतिथि-

श्राद्धत्व तयोपनयनादाङ्गभूतवृद्धिश्राद्धस्य। अङ्गिनां सावकाशत्वेनाङ्गस्यापि सावकाशत्वात्।

अत्र केचित्—

निषेधोऽयं प्रधानश्राद्धविषयो नाङ्गभूतवृद्धिश्राद्धविषय इति वदन्ति। तन्नम्र—

सङ्कोचे प्रमाणाभावात् विनिगमनाविरहेण सावकाशमात्रपरत्वात्।

नचाङ्गबाधे प्रधानस्य बाध *[ इति न्यायात् प्रधानप्रवृत्तौ तदङ्गानामपि प्रवृत्त्या निरवकाशत्वाच्च नन्दादिनिषेध इति वाच्यम्। यत्र नियमेन प्रधानप्रवृत्तिस्तत्रैवाङ्गबाधे प्रधानबाधः। ]

यथाऽमावस्यादिनियतश्राद्धेऽशौचादिना निमन्त्रणगन्धवस्त्राद्यङ्गबाधे प्रधानश्राद्धस्य बाधः यत्र तु प्रधानप्रवृत्तिरनियता अङ्गञ्च बाधितं अत्र च साङ्गस्यैव फलजनकत्वात् प्रधानमेव न प्रवर्त्तते यथा काम्यतिथिश्राद्धादौ गन्धवस्त्राद्यङ्गाप्राप्तौ तस्मिन् दिने प्रधानमेव न प्रवर्त्तते तथेहापि प्रधानप्रवृत्तेरनियतत्वेनाङ्गभूतश्राद्धस्य सावकाशतया नन्दादिनिषेधात्तद्बाधे साङ्गस्यैव फलजनकत्वेन तस्मिन् दिने प्रधानमेवोपनयनादिकं न प्रवर्त्तते इति वृद्धिश्राद्धस्य निरवकाशत्वमिति।

अत्र च यत्र यत्र तत्तच्छब्दोच्चारणेन विशेषविधिरस्ति तत्र तद्विधिवैयर्थ्यभयान्नायं निषेधः प्रवर्त्तते।

---

* क पुस्तके [ ] चिह्नितांशः पतितः।

यथा—

कुर्य्यात्पुंसवनं सुयोगकरणे नन्दे सुभद्रे तिथौ।

इति नन्दायां पुंसवनविधिः।

यथा च सितेन्दुजीवदिवस इति शुक्रवारेऽप्यन्नप्राशनविधिः। यथाच मूलानुराधामघेति वचनात् दारुणोग्रगणत्वेन निषिद्धयोरपि मघामूलयोर्विवाहे विशेषविधिः। एवमन्यत्राप्यूह्यम्। अत्र च तत्तद्विधिवैयर्थ्यभिया प्रधानप्रवृत्तौ बुद्धियादमपि प्रवर्त्तते इति।

अत्र मैथिलाः—

उत्तरात्रितय पूर्व्वरोहिणी

सापि पित्र्य भरणीषु चाग्निभे।

चौरकर्म सकलं विवर्ज्जयेत्

प्रेतकार्य्यमपि बुद्धिमान्नरः॥

इति ज्योतिषवचनात् सपिण्डनायकर्मो निषिद्धनक्षत्रादौ न कार्य्यः कालान्तरसत्त्वेन सावकाशत्वादित्याहुः। तत्र—

आनन्त्यात् कुलधर्म्माणां पुंसां चैवायुषः क्षयात्।

इत्यादि निमित्तसद्भावेऽपकर्षस्यावश्यकत्वेन निरवकाशत्वात् ज्योतिषवचनस्य तु सकलमात्रचौरं नित्यचौरञ्च तथा प्रेतनिमित्तकं कार्य्यमशौचान्तविहितचौरमपि वर्ज्जयेदित्यर्थः। अतएव सावकाशश्राद्धविहितानामुत्तरात्रयरोहिणीनां वर्ज्जनःक्रमप्रतमिति।

ः अयं पुस्तके न दृश्यते।

अन्ये तु प्रेतस्येच्छाश्राद्धं मलमासे वर्ज्जयेदिति व्याचक्षते।

मलमासे पर्य्युदासमाह हारीतः—

> अपिण्डीकरणादूर्द्ध्वं यत् किञ्चित् श्राद्धिकं भवेत्।
> दृष्टं वाऽप्यथवा पूर्त्तं तन्न कुर्य्यान्मलिम्लुचे॥

याद्दमेव श्राद्धिकं सार्थं इकम्। मलमासविवेचनन्तु विशेषतः शुद्धिकौमुद्यां कृतमस्ति विस्तरभयान्नेह प्रस्तूयते तत्रैव तद्द्रष्टव्यमिति।

---

## अथामावास्या।

छन्दोगपरिशिष्टम्—

> पिण्डान्वाहार्य्यकं श्राद्धं क्षीणे राजनि शस्यते।
> वासरस्य तृतीयांशे नातिसन्ध्यासमीपतः॥

दिवसस्य तृतीयभागे।

पूर्व्वाह्णो वै देवानां मध्यन्दिनं मनुष्याणामपराह्णः पितॄणामिति श्रुत्युक्तापराह्णे दशमसुहूर्त्तादूर्द्ध्वं क्षीणे राजनि चन्द्रे पिण्डान्वाहार्य्यकं अमावस्याविहितं श्राद्धं शस्यते प्रशस्तमित्यर्थः।

तेन यदा चतुर्द्दश्येव दिनं समाप्यते परदिने च पराह्णे क्षीयमाणामावस्याष्टमयामलाभस्तदा तत्र चन्द्रक्षयाभावेऽपि केवलामावस्यायामेव श्राद्धम्।

उभयापराह्णलाभे तु चन्द्रक्षयवशात् पूर्व्वदिन एव चन्द्रक्षयस्य

प्राबल्येन न्याय्यत्वात् यदि चेन्दुक्षयः श्राद्धनिमित्तं स्यात् तदोक्त-स्थले क्षयालाभे श्राद्धलोपात् प्रतिमासविधिबाधःस्यात्।

नातिसन्ध्यासमीपत इति सन्ध्यासमीपमेकश्चिन् *[ मुहूर्त्तं कदापि न कर्त्तव्यं यद्यपि सन्ध्यासन्निहितमुहूर्त्तत्रयं निषिद्धं तथापि वक्ष्यमाणव्यवस्थानुरोधेनापरमपि निषिद्धमपि ] मुहूर्त्तद्वय-मनुज्ञातं मतिशब्दबलात् अन्यथा वैफल्यात् द्विमुहूर्त्तोऽपि कर्त्तव्येति वक्ष्यमाणलघुहारीतवचनाच्च।

अत्र मैथिलाः—

एतच्चानुपनीतोऽपि कुर्य्यात्सर्व्वेषु पर्व्वसु।
श्राद्धं साधारणं नाम सर्व्वकामफलप्रदम्॥
भार्य्याविरहितोऽप्येतत् प्रवासस्थोऽपि नित्यशः।
शूद्रोऽप्यमन्त्रवत् कुर्य्यादनेन विधिना बुधः॥

इति मत्स्यपुराणवचनात् साग्निनिरग्निसाधारणं श्राद्ध-निमित्तममावस्या दर्शमात्रतः सिद्धम्। साग्नौ कर्त्तरि चन्द्रक्षय-विशिष्टामावस्या निमित्तं यथा मनुः—

पिण्डान्वाहार्य्यकं श्राद्धं कुर्य्यान्मासानुमासिकम्।

पितृयज्ञं पिण्डपितृयज्ञम्।

तथा च—

पिण्डानां मासिकं श्राद्धमन्वाहार्य्यं विदुर्बुधाः।

इति पिण्डान्वाहार्य्यकपदव्युत्पत्तिरपि दर्शिता। पिण्डानां पिण्डपितृयज्ञानां अनु पश्चात्मासिकं श्राद्धमाहार्य्यमित्यर्थः।

* क पुस्तके [ ] चिह्नितांशः पतितः।

यतः पिण्डान्वाहार्य्यकपदेन साग्निकर्त्तृकश्राद्धमुच्यते तेन साग्नेरेवेन्दुक्षयनिमित्तेन व्यवस्था।

छन्दोगपरिशिष्टे—

पक्षादावेव कुर्व्वीत सदा पक्षादिकं चरुम्।

इत्यनेनान्ते पक्षादिचरावुपसंहाराच्च।

निरग्नेस्तु—

कृष्णपक्षापराह्णे तु रौहिणं तु न लङ्घयेत्।

इति वचनात् सामान्यकृष्णपक्षविहितव्यवस्थैवेत्याहुः। •

गौड़ियास्तु—

अमावास्यामात्रं सर्व्वेषां श्राद्धनिमित्तं साग्निनिरग्निसाधारणी चन्द्रक्षयमात्रस्यानुरोधेन व्यवस्था। मनुवचनस्य साग्निपक्षे पिण्डपितृयज्ञानन्तर्य्यविधायकत्वेनोपपत्तेः।

न च समाख्याविवेचनात् पिण्डान्वाहार्य्यकपदेन साग्निकर्त्तव्यश्राद्धोक्तेः परिशिष्टवचने क्षीणे राजनीति साग्निपरमिति वाच्यम्।

ततः प्रभृति पितरः पिण्डसंज्ञां तु लेभिरे।

इति मत्स्यपुराणवचनात्।

तत्र ते पितरः पूर्व्वं पिण्डसंज्ञां तु लेभिरे।

एषा तस्य स्थितिर्विप्र पितरः पिण्डसंज्ञिताः॥

लभन्ते सततं पूजां वृषाकपिवचो यथा॥

इति वचनाच्च।

पिण्डानां मासिकं श्राद्धमन्वाहार्य्यमिति मनुवचने पिण्डानां पितॄणां मासिकं मासैकदृष्टिजनकमन्वाहार्य्यं पुनःपुनराहार्य्यं श्राद्धममावास्याविहितमिति पिण्डान्वाहार्य्यकपदव्युत्पत्त्या निरग्निपक्षेऽपि संज्ञाप्रवृत्तेः। अन्यथा पितॄणां पिण्डसंज्ञाविधानवैफल्यं स्यात्।

किञ्च यदि पिण्डपितृयज्ञानन्तरकर्त्तव्यमिति व्युत्पत्तिः स्यात् तदा मनुवचने पिण्डान्वाहार्य्यकपदेनैव प्राप्तेः पितृयज्ञन्तु निर्व्वर्त्त्येत्यनर्थकं स्यात्।

तथा मत्स्यपुराणेऽप्यन्यथान्वयो दर्शितः।

यस्मादन्वाहृता मात्रा भक्षयन्ति द्विजातयः।
पिण्डान्वाहार्य्यमित्युक्तं तस्मात्* चन्द्रसंचये॥

अस्यार्थः पिण्डदानानन्तरं ब्राह्मणभोजने तत्र पिण्डेभ्योऽन्वाहृता मात्रा भक्ष्यभागान् विप्रा भक्षयन्ति यस्मिन् श्राद्धे, तस्मात् पिण्डान्वाहार्य्यकममावास्याश्राद्धमुक्तम्। पिण्डानामन्वाहार्य्यं द्विजेभ्य आहरणीयमनेनेति व्युत्पत्तेः।

तथा मनुः—

पिण्डेभ्यः स्वल्पिकां मात्रां समादायानुपूर्व्वशः।
तानेव विप्रानासीनान् विधिवत्पूर्व्वमाशयेत्॥

इति।

---

* च पुस्तके तस्मात्मन्द्‌र।

तत्रामावास्यायाश्चन्द्रक्षये साग्निभिर्निरग्निभिः साधारणं कार्य्यमित्यर्थः। अन्यथा मुनीनामेतादृग्व्युत्पत्तिकथनमनर्थकं स्यात्।

तथा साग्निनिरग्निसाधारणं प्रक्रम्य मार्कण्डेयपुराणे—

कार्य्यं श्राद्धममावस्यां मासि मास्युडुपक्षये।

तथादिपुराणे—

न निर्वपति यः श्राद्धं प्रमीतपितृको द्विजः।
इन्दुक्षये मासि मासि प्रायश्चित्तीयते हि सः॥

अत्र प्रमीतपितृकमात्रस्यैव इन्दुक्षयनिमित्तेन श्राद्धावगमः।

मदनपारिजाते तु अग्निमानित्युपलक्षणं व्याख्यातम्।

न च वासरस्य तृतीयांश इत्यनेन दशममुहूर्त्तत्यागस्य पिण्डपितृयज्ञाङ्गत्वावगमात् साग्निपरत्वमेव निर्णीयत इति वाच्यम्।

साग्नेर्दशममुहूर्त्तस्य पिण्डपितृयज्ञाङ्गत्वेन वासरतृतीयांशस्यान्वयप्राप्तौ वासरतृतीयांशविधानं निरग्नेर्दशममुहूर्त्तत्यागार्थमेवेति।

यत्तु कालविवेके—

सिनीवाली द्विजैः कार्य्या साग्निकैः पितृकर्म्मणि।
स्त्रीभिः शूद्रैः कुहूः कार्य्या तथा चानग्निकैर्द्विजैः॥

इति नामशून्यं वचनं लिखितम्—

यत्र—

सिनीवाली द्विजैर्ग्राह्या साग्निकैः श्राद्धकर्मणि ।
कुहूः शूद्रैस्तथा स्त्रीभिरपि चानग्निकैर्द्विजैः ॥

इति वृहन्नारदीयनाम्ना वचनं पठन्ति ।

तन्नामधेयग्रन्थालिखितत्वादमूलमेव स्त्रीणां दर्शश्राद्धेऽनधिकाराच्च साग्नेरपि वर्त्तमानामावस्यापर्वे कुहूग्रहणाच्च ।

समूलत्वाभिमाने तु उभयदिने कालप्राप्तौ सांवत्सरिकश्राद्धविषयं वचनद्वयम् ।

यत्र—

भूतविद्धाप्यमावस्या प्रतिपन्मिश्रितापि वा ।
पितृकर्मणि विद्वद्भिः ग्राह्या कुतपकालिकी ॥

इति शातातपनाम्ना वचनं

यत्र—

सिनीवाली कुहूश्चैव युगुले पितृकर्मणि ।
स्यातां न चेत्तु* मध्याह्ने श्राद्धादिः स्यात् कार्यं तदा ॥
तिथिक्षये सिनीवाली तिथिवृद्धौ कुहूर्मता ।
साम्येऽपि च कुहूर्ग्राह्या वेदवेदाङ्गवेदिभिः ॥

इति प्रचेतोनाम्ना वचनं पठन्ति तदप्यमूलमेव । वेदवेदाङ्गवेदिभिरित्यभिधानात् ।

समूलत्वाभिमाने तु अमावस्यामतश्राद्धादीनामेकोद्दिष्टविषयं प्रत्याब्दिकत्वात्तां विस्तरः प्रकृतमभिधीयते ।

---

* आदर्शपुस्तके दानाखेत्ये ष ।

तिथिस्त्रिप्रकारा भवति क्षीयमाणा स्तम्भिता वर्द्धमाना च तत्र पूर्व्वतिथ्यपेक्षयाऽल्पकालव्यापिनी क्षीयमाणा तुल्यकालव्यापिनी स्तम्भिता अधिककालव्यापिनी वर्द्धमाना।

तत्र क्षीयमाणामावस्यायामुभयदिने . वासरतृतीयांशलाभे* चन्द्रक्षयानुरोधेन व्यवस्थामाह कात्यायनः—

यदा चतुर्द्दशीयामं तुरीयमनुपूरयेत्।
क्षीयमाणाप्यमावस्या तदैव श्राद्धमिष्यते॥
यदुक्तं यदहस्त्वेव दर्शनं नैति चन्द्रमाः।
तत् क्षयापेक्षया ज्ञेयं क्षीणे राजनि चेत्यपि॥
यथोक्तं दृश्यमानेऽपि तच्चतुर्द्दश्यपेक्षया।
अमावस्यां प्रतीक्षेत तदन्ते वापि निर्व्वपेत्†॥
अष्टमेंऽशे चतुर्द्दश्याः क्षीणो भवति चन्द्रमाः।
अमावस्याष्टमे भागे पुनः किल भवेदणुः॥
आग्रहायण्यमावस्या तथा ज्यैष्ठस्य या भवेत्।
विशेषमाभ्यां ब्रुवते चन्द्रचारविदो जनाः॥

अथेन्दुराद्ये प्रहरेऽवतिष्ठते
चतुर्थभागोनकलावशिष्टः।
तदन्त एव क्षयमेति तत्क्ष-
णेवं ज्योतिषशास्त्रविदो वदन्ति॥

---

* ख पुस्तके अमावस्याया उभय—दृतीयांशे लाभे।
† ख पुस्तके निर्द्दिशेत्।

यस्मिन्नब्दे द्वादशैकत्र यत्र-
स्तस्मिंस्तृतीयया परिदृश्यो नोपजायते।
एवं चारं चन्द्रमसो विदित्वा
क्षीणे तस्मिन्नपराह्णे च दद्यात्॥
सन्मिश्रा या चतुर्द्दश्या अमावस्या भवेत् क्वचित्।
खर्व्वितां तां विजानीयाद्वर्द्धमिति चापरे॥
वर्द्धमानाममावस्यां लक्षयेदपरेऽहनि।
यामांस्त्रीनधिकान् वापि पितृयज्ञस्ततो भवेत्॥

यदा चतुर्द्दशीसमेतपूर्व्वदिनस्य चतुर्थं प्रहरममावस्या पूरयेत् प्रहरत्रयव्यापिनी चतुर्द्दशीत्यर्थः, ततःपरं द्वादशमुहूर्त्तेऽपराह्णे अमावस्या अपरदिनेऽपि तृतीयांशे पूर्व्वतिथ्यपेक्षया क्षीयमाणा-मावस्या लभ्यते तदा पूर्व्वदिन एव श्राद्धम्। तृतीयांशालाभे तु सुतरामेव पूर्व्वदिने परदिने विहितकालालाभादिति।

अथ तुरीयमनुपूरयेदित्यपराह्णप्राप्त्युपलक्षणमन्यथा किञ्चि-न्न्यूनाधिकतुरीययामपूरणे कीदृशी व्यवस्था स्यात्।

न च पूर्व्ववचने चन्द्रक्षये श्राद्धविधानाद्वचनमिदमनर्थक-मिति वाच्यम्।

एतद्वचनाभावे चन्द्रक्षयप्राप्तत्वं किं खर्व्विताविषयं किं वा क्षीयमाणाविषयमित्यनिर्णयः स्यात्। तिथ्यन्तरमस्मिन् वचने चन्द्र-क्षयस्य क्षीयमाणोपसंहारात् पारिशेष्यात् सन्मिश्रेतिवचनं खर्व्विताविषयमित्यदोषः।

अमावस्योदिने श्राद्धे हेतुमाह यदुक्तमिति यदहन्येव चन्द्रमा

न दृश्यतेताममावस्यां कुर्व्वीतेति यद्गोभिलेनोक्तं तत्क्षयाभिप्रायेण ज्ञेयं यस्मिन्नहनि चन्द्रक्षयो भवतीति सूत्रार्थः।

लक्षणावीजन्तु न यत्र चन्द्रमा दृश्येत ताममावस्यां कुर्व्वीतेति पूर्व्वसूत्रेण सह पौनरुक्त्यापत्तिरित्यस्माभिरपि क्षीणे राजनि शस्यत इत्युक्तं चन्द्रक्षयचतुर्द्दश्यष्टमयामात्मकत्वमावास्यासप्तमयामपर्य्यन्तमिति वक्ष्यति चतश्चन्द्रक्षयानुरोधात् पूर्व्वदिन एव श्राद्धमिति तात्पर्य्यार्थः।

यत्तु न यत्र चन्द्रमा दृश्येत ताममावस्यां कुर्व्वीतेति गोभिलपूर्व्वसूत्रं तद्दर्शमात्रापेक्षया ज्ञेयम्।

*[ न च यदा चतुर्द्दशीति श्लोकेन सह यदहस्त्वेव चन्द्रमा न दृश्येतेति ] श्रुतिस्मृतिविरोधमाशङ्क्य परिहरति यदुक्तमिति कल्पतरूक्तं युक्तम्।

दुर्बलस्मृतिविरोधे बलवत्यां श्रुतौ चयलक्षणाया अयोगात् श्रुतिस्तु वर्द्धमानापक्षे योजनीयेति।

ननु तर्हि दृश्यमानेप्येकदेशि गोभिलापरसूत्रमनर्थकम्। सिनीवालीत्वेन पूर्व्वदिने दृश्यमाने चन्द्रमसि चयपुरस्कारेण श्राद्धस्योक्तत्वात् पौनरुक्त्यापत्तेरित्यत आह यच्चोक्तं दृश्यमानेऽपीति पूर्व्वसूत्रममावस्यापदोपादानाच्चन्द्रक्षयविशिष्टामावास्याविषयं इदन्तु चन्द्रक्षयविशिष्टचतुर्द्दशीविषयमिति नानर्थकम्।

---

* क पुस्तके [ ] चिह्नितांशः पतितः।

ततश्च व्यवस्थितो विकल्प इत्याह अमावस्यामिति यदि द्वादश-मुहूर्त्तव्यापिन्यमावस्या लभ्यते तदा श्राद्धार्थममावस्यां प्रतीक्षेत यदा चतुर्दशीयाममिति वचनात्। यदा च द्वादशमुहूर्त्तस्य किञ्चिन्मात्रव्यापितया अमावस्यायाः श्राद्धयोग्यता नास्ति सायाह्नमात्रव्यापिनी वामावस्या तदा परदिनापराह्णेऽमावस्याया लाभेऽलाभे वा उभयथापि तदन्ते चन्द्रक्षयानुरोधात् निर्वपेत् इत्यमानेऽप्येकदेति सूत्रानुसारात्।

अयमर्थः—चतुर्दश्यन्ते श्राद्धमारभ्य किञ्चिच्छेषं सायाह्न-प्रथममुहूर्त्तेऽमावस्यायां समापयेत् समीपस्य इत्युक्तत्वात्।

न चामावस्यायां पितृभ्यो दद्यादिति विधिविरोधात् तथा मावस्यायां पिण्डपितृयज्ञेनाचरन्तीति* श्रुतिविरोधाच्च श्राद्धं तत् प्राक्कर्त्तव्यपिण्डपितृयज्ञस्य कथं चतुर्दश्यामिति वाच्यम्। अपमालाकालाभावविधिरयमिति न दोषः।

अन्येत्वमावस्यापदस्य चन्द्रक्षयपरतया समादधति। तदाह अमावस्याष्टमयामे चन्द्रक्षयाभावात् श्राद्धपितृयज्ञयोर्लोपप्रसङ्गात्।

चन्द्रक्षयकालमाह अष्टमेंऽशे इति—अष्टमेंऽशे अष्टमयामे चतुर्थभागैकलावशिष्टता च येषां वक्ष्यमाणवचनात्।

एवञ्च चतुर्दश्यष्टमयाममारभ्यामावस्याप्रथमयामं यावचन्द्र-क्षयोऽवगम्यते—†

अमावस्याष्टमे भागे पुनः किल भवेदणुः।

* क पुस्तके यदेन चरन्तीति।

† ख पुस्तके भवति।

इति चन्द्रस्य पुनरनुरूपोत्पत्त्यभिधानात्तत्र क्षयाभावात्। एवञ्चामावस्यासप्तमयामान्ते क्षयसञ्चयः प्रतीयते तत्तचतुर्थभागोनान्त्यकलाया अवयवविनाशोत्पत्तिरेव क्षयशब्दार्थ इति।

न चाष्टमयामेऽनुरूपत्वाच्चन्द्रमसः क्षयोऽस्तीति कस्यचिन्मतमादरणीयम्। तदा

अमावस्याष्टमे भागे पुनः किल भवेदणुः।

इत्यभिधानमसङ्गतं स्यात्।

अमावस्याष्टमे यामे क्षयाभावप्रतिपादनार्थमेव हि तदभिधानमन्यथा वैफल्यात्।

किञ्च अमावस्यायाञ्चन्द्रक्षयव्यभिचारे तस्याः क्षयविशेषितत्वेन विधानमफलं स्यात्।

यथा गोभिलः—

यदहस्त्वेव चन्द्रमा न दृश्येत ताममावस्यां कुर्व्वीत।

तथा मार्कण्डेयपुराणे—

कार्य्यं श्राद्धममावस्या मासि मास्युडुपक्षये।

विशेषमाह आग्रहायणमावस्येति—

अत्राग्रहायण्यष्टी पौर्णमास्यन्तमासव्यवस्थयेति परिशिष्टप्रकाशः। सौरमासे तत्प्राप्तेरवश्यम्भावात् चन्द्रचारविदो ज्योतिर्विदः। चन्द्रगतिविलक्षणाद्विलक्षणमित्यर्थः।

अत्रेति अनयोरमावस्ययोरित्यर्थः, आद्ये प्रहरे न तु मासान्तरवत्तुरीयाष्टमयामे चतुर्थभागोनकलावशिष्टः क्षीणः सन्नवतिष्ठते इत्यर्थः।. तदन्ते अमावस्यान्ते क्षयसञ्चयमेति ततो-

ऽत्यामावस्याप्रथमयाममारभ्य अमावस्यासमाप्तिं यावत् चयः प्रतिपत्प्रथमे पुनरनुरूपचन्द्रोत्पत्तिरिति।

अयमभावः—*[तयोर्मासयोर्यद्यपि पूर्व्वदिनापराह्णेऽप्यमावस्याप्रथमयामे चन्द्रक्षयो लभ्यते तथापि परदिनापराह्ण एव श्राद्धं बहुवाक्यानुरोधादिति।]

यदा तु तयोर्मासयोरुभयदिनापराह्णयोरमावस्या न लभ्यते तदा परदिन एव कृतपरीक्षिण्योः श्राद्धं न तु पूर्व्वदिने चतुर्द्दश्यष्टमयामे चन्द्रक्षयाभासाहश्यमानेऽप्येकदेति वचनाविषयत्वादिति ध्येयम्।

अत्रापि विशेषान्तरमाह यस्मिन्निति—

ज्योतिषे चैत्रादिगणनया चान्द्रवर्षनियमाच्चैत्रमासादिके यस्मिन्नब्दे द्वादशैको यद्यो मासः अधिमासपाताच्चयोदशमासाः स्युरित्यर्थः।

तदब्दमध्ये ज्यैष्ठाषाढायणमासस्य प्रथमप्रहरे तृतीयया मात्रया भागेन परिहासो न जायते चतुर्थभागोनकलावशिष्टो न भवति किन्तु आसान्तरचतुर्द्दश्यष्टमयाम एव चतुर्थभागोनकलावशिष्टत्वरूपात् चैवात् प्रथमयामे ततोऽप्यधिकं चोणत्वमिति। तत्र मासान्तरवत्तयोरपि व्यवस्थेति।

उभयत्रापराह्णलाभे स्तम्भितायां व्यवस्थामाह सम्भिन्नेति पूर्व्वतिथेनुग्यकालव्यापिनी याऽमावस्या चतुर्द्दशीमिश्रा पूर्व्वदिनसम्बन्धिनी तां पर्व्विनां नोचां निन्दिताञ्च केचिदाहुः।

* च पुस्तके [ ] चिह्नितांशः पतितः।

अपरे तु—उपेक्ष्य श्राद्धार्थं तामुपगच्छत इति मन्यन्ते। अयञ्च व्यवस्थितो विकल्प इत्याह लघुहारीतः—

त्रिमुहूर्त्तापि कर्त्तव्या पूर्व्वा दर्शा च बह्वृचैः।
कुह्वरध्वर्य्युभिः कार्य्या यथेष्टं सामगीतिभिः ॥

दर्शेत्यापि स्त्रीलिङ्गं बह्वृचैः पूर्व्वा पूर्व्वदिनसम्बन्धिनी चतुर्द्दशी-मिश्राऽमावस्या सायाह्नात्मकमुहूर्त्तत्र्यापिन्यपि कर्त्तव्या श्राद्धार्थं ग्राह्येत्यर्थः।

अपराह्णस्य किञ्चिन्मात्रेऽमावस्यालाभे तत्रारभ्य सायाह्नेऽपि समापयेदिति भावः।

नातिसन्ध्यासमीपत इत्युक्तत्वाच्च। यजुर्वेदिभिस्तु परदिनापराह्ण एव कार्य्या सामगीतिभिश्छन्दोगैस्तु यथेष्टं पूर्व्वदिने परदिने चेत्यर्थः। यथेष्टं सामगीतिभिरित्यभिधानात् स्तम्भिताविषयमिदं वचनं क्षीयमाणावर्द्धमानापचयोः परिशिष्टकृता विशिष्य व्यवस्थापितत्वात् स्तम्भितापचे च नियमानभिधानात्।

यदा त्वेकस्मिन्नेव दिनेऽपराह्णेऽमावस्यालाभस्तदा तत्रैव निःसंशयं श्राद्धं तिथिद्वैधाभावाच्च तत्र व्यवस्थाभेदः।

उभयत्रापराह्णलाभे वर्द्धमानायां व्यवस्थामाह वर्द्धमानामिति—वर्द्धमाना पूर्व्वतिथ्यपेक्षयाऽधिककालव्यापिनीत्यर्थः, तदेव विवृणोति यामांस्त्रीनधिकान् वेति।

तथा वृहन्नारदीये—

अपराह्णद्वयगामिन्यमावस्या तिथिर्य्यदि।
क्षये पूर्व्वा तु कर्त्तव्या वृद्धौ कार्य्या तिथिस्तदा ॥

तत्तथापरदिन एवापराह्णे चन्द्रक्षयालाभेऽपि वचनादेव श्राद्धमिति।

इति पार्व्वणकाण्डं समाप्तम्।

---

## अथैकोद्दिष्टम्।

अतःपरं हृदि न्यस्य श्रीगोविन्दपदाम्बुजम्।
प्रेतश्राद्धक्रियाकाण्डं यथामति विलिख्यते॥

प्रेतश्राद्धे एकोद्दिष्टपदं मुख्यम्।

अथैकोद्दिष्टमेकोऽर्घ एकं पवित्रमित्यभिधाय एतत् प्रेतश्राद्धमिति गोभिलीयोक्तत्वात्।

आदिपुराणेऽपि—

नान्दीमुखास्त्वमूर्त्ताः स्युर्मूर्त्तिमन्तोऽत्र पार्व्वणे।
एकोद्दिष्टाशिनः प्रेताः पितॄणां निर्णयस्त्रिधा॥

इति प्रेतदैवत्यश्राद्धमेकोद्दिष्टमिति व्यक्तमुक्तम्।

अतएव—

घटादिः मृतकाले तु भोजयेदयुजो द्विजान्।
द्वितीयेऽह्नि पुनस्तद्वदेकोद्दिष्टं समाचरेत्॥

इति मत्स्यपुराणे एकादशाहद्वादशाहश्राद्धयोरेकोद्दिष्टत्वमुक्तम्।

तथा ब्रह्मपुराणे—

मृतकान्ते गृहस्थाद्धमेकोद्दिष्टं प्रचक्षते।

द्वादशेऽहनि मासे च त्रिपक्षे च यथाक्रमम्॥

यत्तु—

ततः प्रभृति संक्रान्त्यामुपरागादिपर्व्वसु।

त्रिपिण्डमाचरेच्छ्राद्धमेकोद्दिष्टं मृताहनि॥

इति मत्स्यपुराणे सांवत्सरिके एकोद्दिष्टपदं तद्धीयं तद्धर्म-प्राप्त्यर्थम्।

न चैवामुद्दिश्य यद्दीयते इति व्युत्पत्त्या 'तत्रापि मुख्यमिति वाच्यम्।

प्रतिसंवत्सरं राजन्नेकोद्दिष्टविधानतः।

इति विष्णुपुराणे एकोद्दिष्टधर्म्मातिदेशात्

यस्मिन्नपि पुराणे वा विश्वे देवा न लेभिरे।

इत्याश्वलायनवचनात् बह्वृचकर्त्तव्ये सदैवके नवश्राद्धसंघमे एकादशश्राद्धादावव्याप्तेश्च देवानामप्युद्देश्यत्वात्।

न च दैवश्राद्धस्याङ्गत्वान्न मुख्योद्देश्यत्वमिति वाच्यम्।

ऐकपुरुषिकपार्व्वणेऽतिव्याप्तेश्च।

एवञ्चैकोद्दिष्टविधिना सांवत्सरिकश्राद्धमहं करिष्ये इति सांवत्सरिकश्राद्धवाक्यम्।

एकोद्दिष्टकालमाह छन्दोगपरिशिष्टम्—

श्राद्धमग्निमतः कार्य्यं दाहादेकादशेऽहनि।

ध्रुवाणि तु प्रकुर्व्वीत प्रमीताहनि सर्व्वदा॥

द्वादश प्रतिमास्यानि आद्यं पाण्मासिके तथा।
सपिण्डीकरणञ्चैव इत्येतच्छ्राद्धषोड़शम्॥
एकाहेन तु षण्मासा यदा स्युरपि वा त्रिभिः।
न्यूनः संवत्सरश्चैव स्यातां पाण्मासिके तदा॥

अग्निमतः श्रौताग्निमतो दाहादेकादशेऽहनि श्राद्धं तत्प्रभृति तस्याशौचविधानात्। स्मार्त्ताग्निमतो निरग्नेश्च मरणादेकादशाहे श्राद्धं तयोर्मरणावधेरशौचविधानात्।

यथा शङ्खः—

मरणादेव कर्त्तव्यं संयोगो यस्य नाग्निना।
दाहात्प्रभृत्यशौचन्तु तस्य वैतानिको विधिः॥

अत्राग्निपदं वैतानिकग्रहणात् श्रौताग्निपरं वितानं श्रौतो होमः। एकादशेऽह्नीत्यशौचान्ताऽद्वितीयदिनोपलक्षकं नाना-मुनिवचनैकवाक्यतावशात्।

यथा ब्रह्मपुराणे—

सूतकान्ते द्वितीयाहमेकोद्दिष्टं प्रचक्षते।
यथाऽन्त्यशब्दः समीपवचनः।

मत्स्यपुराणे—

सूतकान्ताद्द्वितीयेऽह्नि शय्यां दद्याद्विलक्षणाम्।
इत्युपक्रम्याद्यश्राद्धविधानात्।

* ख पुस्तके अशौचान्त्यदिनद्वितीय-।

तथादिपुराणे—

> मातामहानां दौहित्राः कुर्व्वन्त्यहनि चापरे।
> तेऽपि तेषां प्रकुर्व्वन्ति द्वितीयेऽहनि सर्व्वदा॥
> मित्राणां तदपत्यानां श्रोत्रियाणां गुरोस्तथा।
> भागिनेयसुतानाञ्च सर्व्वेषामन्यपरेऽहनि॥
> श्राद्धं कार्य्यञ्च प्रथमे स्नात्वा कृत्वा जलक्रियाम्।

अत्र त्र्यहाशौचिनां मातामहादीनां मित्रादीनाञ्चैकाहा-शौचिनां मित्रापत्यादीनाञ्च सद्यःशौचिनां सर्व्वेषामेवाशौचान्तात् द्वितीयेऽहनि श्राद्धं बोधयति। प्रथमेऽशौचान्तद्वितीयदिनात् पूर्व्वाह्णेऽशौचान्तदिने इत्यर्थः। जलक्रियां तर्पणपिण्डदान-क्रियाम्।

तथा च वृद्धगार्ग्यः—

> तत्र त्रिरात्रमशौचं द्वितीये त्वस्थिसञ्चयः।
> तृतीये तूदकं दत्त्वा चतुर्थे श्राद्धमिष्यते॥

तथा विष्णुः—

अशौचव्यपगमे सुस्नातः सुप्रक्षालितपादः स्वाचान्तान् युग्मा-युदङ्मुखान् ब्राह्मणान् गन्धमाल्यादिभिः पूजितान् भोजयेत्।

अत्राशौचव्यपगमपदं पूर्व्वोक्तमत्स्यपुराणादिवचनैकवाक्यतया अशौचान्ताहद्वितीयदिनपरं अन्यथा यावत्कालमशौचव्यपगम-सत्त्वादतिप्रसङ्गात्। तेन साहैकाहसद्यःशौचादिस्थलेऽप्यशौचा-न्ताहद्वितीयदिनस्यैव निमित्तत्वम्।

द्वादश प्रतिमास्यानि आद्यं षाण्मासिके तथा।
सपिण्डीकरणञ्चैव इत्येतच्छ्राद्धषोड़शम्॥
एकाहेन तु षण्मासा यदा स्युरपि वा त्रिभिः।
न्यूनः संवत्सरश्चैव स्यातां षाण्मासिके तदा॥

अग्निमतः श्रौताग्निमतो दाहादेकादशेऽहनि आद्यं तत्प्रभृति तस्याशौचविधानात्। स्मार्त्ताग्निमतो निरग्नेश्च मरणादेकादशाहे आद्यं तयोर्मरणावधेरशौचविधानात्।

यथा मनुः—

मरणादेव कर्त्तव्यं संयोगो यस्य नाग्निना।
दाहादूर्द्ध्वमशौचन्तु तस्य वैतानिको विधिः॥

अत्राग्निपदं वैतानिकग्रहणात् श्रौताग्निपरं वितानं श्रौतो होमः। एकादशेऽहनीत्यशौचान्त्याऽद्वितीयदिनोपलक्षणं नाना-मुनिवचनैकवाक्यतावशात्।

यथा ब्रह्मपुराणे—

सूतकान्ते यदुच्छ्राद्धमेकोद्दिष्टं प्रचक्षते।
अन्तान्तशब्दः समीपवचनः।

मात्स्यपुराणे—

सूतकान्ताद्द्वितीयेऽह्नि शय्यां दद्याद्विलक्षणाम्।
इत्युपक्रम्याद्यश्राद्धविधानात्।

---

* ख पुस्तके अशौचान्त्यद्वितीय-।

दशाह इत्यशौचोपलक्षणं द्वादशिकं द्वादशाहेन गतेन निर्वृत्तं त्रयोदशाहविधेयमित्यर्थः। राज्ञो द्वादशाहाशौचविधानात्, एवं त्रयोदशिकं चतुर्दशाहविधेयमित्यर्थः।

ध्रुवाणीति अपराण्यपि ध्रुवाणि नित्यानि श्राद्धानि प्रमीताहनि मृततिथौ कर्त्तव्यानि सर्व्वाण्येव प्रेतसंस्कारकाणि ध्रुवाणि षोडशश्राद्धानि गणयति।

द्वादश प्रतिमास्यानीति अत्र मासपदं चान्द्रमासपरं मृताहे प्रतिमासं कुर्य्यादिति विष्णादिवचनात्। अन्यथा सावनपरत्वे सौरपरत्वे वा तिथिहृद्धा मृततिथ्यसम्भवात्।

मृताह इत्यत्र अहःपदं तिथिपरं—

तिथिरेकेन दिवसश्चान्द्रमाने प्रकीर्त्तितः।

इति विष्णुधर्म्मवचनात्।

अत्र यद्यपि

चान्द्रः शुक्लादिदर्शान्तः सावनस्त्रिंशता दिनैः।

एकराशौ रविर्य्यावत्कालं मासः स भास्करः॥*

इति सूक्ष्मसिद्धान्तादिविशेषवचनदर्शनात् "ऐन्दवस्तिथिभिस्तद्वत्" इति सामान्यस्य सूर्य्यसिद्धान्तवचनस्य विशेषपरत्वावधारणात् शुक्लप्रतिपदादिदर्शान्ते त्रिंशत्तिथिप्रचये चान्द्रमासो मुख्यः।

तथाप्यत्र मृततिथिमवधिं कृत्वा मृततिथ्यनुसरपर्य्यन्ते त्रिंश-

---

* अ पुस्तके नास्ति।

ततश्चाशौचव्यपगमविहितं श्राद्धं करिष्य इत्याधुनिकोक्त-वाक्यं हेयमेव किन्त्वशौचान्ताहद्वितीयदिनविहितमाद्यैकोद्दिष्ट-श्राद्धं करिष्य इति वाक्यम्।

विस्तारस्तु दानकौमुद्यां द्रष्टव्यः।

तथा मात्स्ये—

तत्र एकादशाहे तु द्विजानेकादशैव तु।
क्षत्रादिः सूतकान्ते तु भोजयेदयुजो द्विजान्॥
द्वितीयेऽह्नि पुनस्तद्वदेकोद्दिष्टं समाचरेत्।

अत्रैकादशाह इति ब्राह्मणानामशौचान्तद्वितीयदिनोपलक्षण-मेकादशब्राह्मणभोजनन्तु फलातिशयार्थम्।

न केवलं ब्राह्मणानामशौचान्ताद्द्वितीयदिने श्राद्धमित्याह क्षत्रादिरिति अतो यस्य यावदशौचं तद्द्वितीयदिने सर्व्वैरेव वर्णैः सम्पूर्णत्र्यहैकाहाशौचसद्यःशौचादिभिराद्यश्राद्धं कार्य्यम्।

एकादशाह इति। द्वितीयेऽह्नीति आद्यश्राद्धदिनद्वितीये-ऽह्नीत्यर्थः।

तेनाशौचान्ततृतीयदिनविहितमेकोद्दिष्टश्राद्धं करिष्ये इति तत्र वाक्यम्। एवञ्च वक्ष्यमाणवचनेष्वप्येकादशाह इति द्वितीय-दिनपरं द्वादशपदञ्चाशौचान्ततृतीयदिनपरं मन्तव्यम्।

अतएव रामायणे—

समतीते दशाहे तु कृतशौचो विधानतः।
चक्रे द्वादशिकं श्राद्धं त्रयोदशिकमेव च॥

दशाह इत्यशौचोपलक्षकं द्वादशिकं द्वादशाहेन गतेन निर्वृत्तं त्रयोदशाहविधेयमित्यर्थः। राज्ञो द्वादशाहाशौचविधानात्, एवं त्रयोदशिकं चतुर्दशाहविधेयमित्यर्थः।

ध्रुवाणीति अपराण्यपि ध्रुवाणि नित्यानि श्राद्धानि प्रमीताहनि मृततिथौ कर्त्तव्यानि सर्व्वाण्येव प्रेतसंस्काराणि ध्रुवाणि षोडशश्राद्धानि गणयति।

द्वादश प्रतिमास्यानीति अत्र मासपदं चान्द्रमासपरं मृताहे प्रतिमासं कुर्य्यादिति विष्णुादिवचनात्। अन्यथा सावनपरत्वे सौरपरत्वे वा तिथिद्वन्द्वा मृततिथ्यसम्भवात्।

मृताह इत्यत्र अहःपदं तिथिपरं—

तिथिरेकेन दिवसश्चान्द्रमासे प्रकीर्त्तितः।

इति विष्णुधर्म्मवचनात्।

अत्र यद्यपि

चान्द्रः शुक्लादिदर्शान्तः सावनस्त्रिंशता दिनैः।
एकराशौ रविर्यावत्कालं मासः स भास्करः॥

इति ब्रह्मसिद्धान्तादिविशेषवचनदर्शनात् "ऐन्दवस्तिथिभिस्तद्वत्" इति सामान्यस्य सूर्य्यसिद्धान्तवचनस्य विशेषपरत्वावधारणात् शुक्लप्रतिपदादिदर्शान्ते त्रिंशत्तिथिप्रचये चान्द्रमासो मुख्यः।

तथाप्यत्र मृततिथिमवधिं कृत्वा मृततिथ्यन्तरपर्य्यन्ते त्रिंश-

* ख पुस्तके नास्ति।

तिथिप्रचये मासशब्दो गौणः पौर्णमासन्तवर्द्दिति। एतच्च शुद्धिकौमुद्यां विस्तृतमस्माभिः।

ततश्च मासि भवं मासिकमिति व्युत्पत्त्या मासान्ते मृततिथौ श्राद्धमिति। एवं त्रैपक्षिकसांवत्सरिकयोरपि।

अतएव एकाहेन तु षण्मासा इति वचनान्मृताहपूर्व्वतिथौ पाण्मासिकश्राद्धम्। तथा संवत्सरान्ते प्रेतायेति विष्णुवचनात् संवत्सरान्ते मृताहे सपिण्डीकरणञ्च सिद्धम्।

अन्ये तु—

मृततिथिमादाय त्रिंशत्तिथिप्रचयस्य मासत्वमङ्गीकृत्य मासेन निमित्तेनानन्तरतिथौ क्रियते इति व्युत्पत्तिं वदन्ति। तदसत्

मृताहनि च कर्त्तव्यं प्रतिमासन्तु वत्सरम्।
प्रतिसंवत्सरञ्चैव आद्यमेकादशेऽहनि॥

इति याज्ञवल्क्यवचने संवत्सरं व्याप्य प्रतिमासविधिबाधः स्यात्। अन्त्यमृताहस्य संवत्सरबहिर्भूतत्वात् तदन्तराभ्यन्तरे द्वादशमासिकासम्भवात् प्रथममासे मृताहाप्राप्तेश्च। आद्यमयौ-श्चात्तद्वितीयाद्दविहितश्राद्धम्। श्राद्धषोड़शमिति श्राद्धानां षोड़शकं समाहारार्थे तु द्विगुः।

यत्तु—

नृणान्तु त्यक्तदेहानां श्राद्धाः षोड़श सर्व्वदा।
चतुर्थे पञ्चमे चैव नवमैकादशे तथा॥

---

* क पुस्तके नास्ति।

ततो द्वादशभिर्मासैः श्राद्धा द्वादशसंख्यया ।

कर्त्तव्याः शुचिभिस्तेषां तत्र विप्रांस्तु तर्पयेत् ॥

इति ब्रह्मपुराणवचनं तच्छाखिविशेषव्यवस्थितम् । श्राद्धा इति पुंलिङ्गं छान्दसम् ।

श्राद्धचिन्तामणिस्तु—

सपिण्डनानधिकारिविषयमित्याह । तन्मन्दम् ।

यानि पञ्चदशाद्यानीति वक्ष्यमाणवचनविरोधात् ।

षाण्मासिकद्वयस्य कालमाह एकाहेन त्विति ।

एकाहेन न्यूनाः षण्मासा एकाहावशिष्टा यस्मिन् काले स्युरित्यर्थः ।

एतेन मृततिथेः प्राक्तिथौ *प्राक्चतुर्थतिथौ वा कार्य्यम् ।

तत्राहःशब्दस्तिथिपरो नाहोरात्रपरः चान्द्रमाससम्बन्धितयोपन्यस्तस्याहःपदस्य तिथिपरत्वनियमात् मृताहसाहचर्य्याच्च ।

यथा विष्णुधर्म्मे—

तिथिनैकेन दिवसश्चान्द्रमाने प्रकीर्त्तितः ।

अन्यथा मुनीनां परिभाषाविधानमनर्थकं स्यात् तेनैकस्मिन् दिने मध्याह्ने तिथिद्वयलाभे षाण्मासिकषष्ठमासिकश्च श्राद्धद्वयं कार्य्यम् ।

तत्र प्रथमषण्मासमध्येऽधिमासपाते आद्याधिमासि†कवत्

---

* ख पुस्तके चाधिकः पाठः ।

† ख पुस्तके मासवत् ।

यथाक्रमगणनया षष्ठे मासेकाहन्यूने षाण्मासिकं न तु मलमासं विहाय षष्ठे मासीति प्रमाणाभावात्।

> नित्यनैमित्तिके कुर्य्यात् प्रयतः सन् मलिम्लुचे।
> तीर्थस्नानं गजच्छायां प्रेतश्राद्धं तथैव च॥

इति बृहस्पतिना मलमासे प्रेतश्राद्धविधानात् मासान्तरपक्षस्यापि प्रक्षतत्वाच। तर्हि द्वितीयषाण्मासिकेऽपि तथेति चेत न्यूनः संवत्सरश्चेति संवत्सरान्ते विधानात् मलमासपाते तु त्रयोदशमासाः संवत्सर इति। अन्यथा न्यूनः संवत्सरश्चेत इत्यनर्थकं स्यात् एतदर्थमेव हि पुनस्तद्विधानम्।

ब्रह्मपुराणे—

> मृतकान्ते गृहश्राद्धमेकोद्दिष्टं प्रचक्षते।
> द्वादशाहनि मासे च त्रिपक्षे च ततःपरम्॥
> मासि मासि च कर्त्तव्यं यावत् संवत्सरं द्विजाः॥

द्वादशाहिकं त्रैपक्षिकञ्च काम्यं नित्यत्वे प्रमाणाभावात् पूर्व्वमाशौचाभ्यन्तरक्रियमाणानां श्राद्धानां बहिर्विधानादशौचपरमादिनात् गृहे क्रियमाणत्वात् गृहश्राद्धव्यपदेशः।

न च वैपरीत्यागहा चकारेण प्रत्यवायकल्पनायां गौरवात् चकारस्यानुगतत्वात्।

अतएव यवनादेकादश्यां द्वादश्यां वा श्राद्धकर्म्मेति बौधायनवचने वाशब्दः समुच्चयार्थो न तु विकल्पार्थो द्वितीयेऽह्नि पुनश्राद्धदिति वचनात्।

विपच इत्यत्र पचपदं चान्द्रमाससाहचर्य्यात् पञ्चदशतिथ्यात्मकचान्द्रपचपरं नतु पञ्चदशाहोरात्रात्मकसाधारणपचपरम्।

तेन मृताहादवधेः* पचत्रयान्ते मरणपचेतरपचीयतिथौ श्राद्धं कार्य्यम्।

यमः—

चतुर्थे पञ्चमे चैव नवमैकादशे तथा।
यदत्र दीयते जन्तोस्तन्नवश्राद्धमुच्यते॥

चतुर्थाहश्राद्धमस्थिसञ्चयनाङ्गं पञ्चमनवमयोः श्राद्धं प्रेतोपकारार्थमावश्यकं नवश्राद्धसंज्ञा तु प्रायश्चित्तार्थतया।

यथा शङ्खः—

चान्द्रायणं नवश्राद्धे पराको मासिके मतः।
पचत्रयेऽतिकृच्छ्रः स्यात् षण्मासे कृच्छ्र एव हि॥
आब्दिके पादकृच्छ्रः स्यादेकाहः पुनराब्दिके।

षाण्मासिके न्यूनषाण्मासिकद्वये आब्दिके सपिण्डीकरणे तस्य च पार्व्वणैकोद्दिष्टांशतया द्व्यात्मकत्वात् पार्व्वणपाकप्रतिग्रहेऽपि पादकृच्छ्रं पुनराब्दिके सपिण्डनानन्तरं क्रियमाणे प्रथमसांवत्सरिके। एतच्च पश्चाद्विवेचयिष्यते। ध्रुवाणि तु प्रकुर्व्वीतेति परिशिष्टवचनात् षोड़शश्राद्धानां नित्यत्वमुक्तमेव।

तथा—

ततःप्रभृति संक्रान्तावुपरागादिपर्व्वसु।
त्रिपिण्डमाचरेच्छ्राद्धमेकोद्दिष्टं मृताहनि॥

---

* ख पुस्तके मृताहादेर्वोधः।

इति मत्स्यपुराणे सपिण्डनानन्तरमेव पार्व्वणाधिकार-विधानादूद्ध्वमेव षोड़शश्राद्धानां नित्यत्वं तेन काम्यत्वमेव षोड़श-श्राद्धानामिति पाश्चात्त्यमतमपास्तम्।

सपिण्डनकालमाह विष्णुः—

संवत्सरान्ते प्रेताय तत्पित्रे तत्पितामहाय दैवपूर्व्वान् ब्राह्मणान् भोजयेत्।

संवत्सरान्तावयवदिने मृताहे इत्यर्थः।

यथा गरुड़पुराणे—

सपिण्डीकरणं वर्षे पूर्णेऽब्दे तत् यथाहनि।
सपिण्डीकरणं कुर्य्यादपराह्ने च पूर्व्ववत्॥

तत्रयाम पूर्णपदं दैवपदसमासपरम्—

शूद्रस्य दशमः पिण्डो मासे पूर्णेऽह्नि दीयते।

इतिवत्।

संवत्सरे तु विज्ञेयं सपिण्डीकरणन्त्विह।
सपिण्डीकरणान्ता हि ज्ञेया प्रेतक्रिया बुधैः॥

इति शातातपवचने संवत्सरस्याधिकरणत्वेनाङ्गत्वावधारणाच्च।

लघुहारीतः—

सपिण्डीकरणं यावत्प्रेतश्राद्धानि षोड़श।
पृथक् नैव सुताः कुर्य्युः पृथक्द्रव्या अपि क्वचित्॥
प्रेतसंस्कारकर्म्माणि यानि श्राद्धानि षोड़श।
यथाकाममन्नु कार्य्याणि नान्यथा मुच्यते ततः॥

सपिण्डीकरणान्तानि षोड़शश्राद्धानि पृथक्धना अपि पृथक् न कुर्य्युर्मिलित्वा एकं श्राद्धं कुर्य्युरित्यर्थः। अत्र ज्येष्ठस्य साक्षात्-कर्त्तृत्वमन्येषां द्रव्यार्पणानुमतित्वादेवेति वक्ष्यते।

षोड़शपदोपादानादम्बुघटश्राद्धं पृथगपि पुत्रैः कार्य्यमिति केचित्। तन्न मत्स्यपुराणे एकोद्दिष्टसमभिव्याहारेणाम्बुघट*विधानात् समानकर्त्तृकत्वावगमात्।

किञ्च—

> अर्व्वाक् संवत्सरात् ज्येष्ठः श्राद्धं कुर्य्यात् समेत्य च।
> सपिण्डीकरणादूर्द्धं सर्व्वे कुर्य्युः पृथक् पृथक्॥

इति व्यासवचनं परार्द्धवैयर्थ्यात् यावदब्दं सर्व्वेषां श्राद्धाना-मपृथक्करणं बोधयति। अन्यथा चतुर्थाह द्वादशाह-त्रैपक्षिकाणा-मपि पृथक्करणप्रसङ्गः स्यात्।

प्रेतसंस्कारकर्म्माणीति यथाकालमेकादशाह द्वादशाहपक्षमास-संवत्सरेष्वित्यर्थः। अन्यथा अयथाकालकरणे प्रेतत्वान्न मुच्यते मुख्यकालकर्त्तव्यत्वसम्भवे आनुकल्पिककालस्यान्याय्यत्वात्।

अयम्भावः—मुख्यकालात् पश्चात्कालकरणमुत्कर्षः पूर्व्वकाल-करणमपकर्षः उत्कर्षापकर्षौ निमित्तं विना स्वेच्छया न कार्य्यौ निमित्तसद्भावे तु कार्य्यावेव विधानात्।

यथा मरीचिः—

> मुख्यं श्राद्धं मासि मासि अपर्य्याप्तावृतुं प्रति।
> द्वादशाहेन वा कुर्य्यादेकाहे द्वादशाथवा॥

---

* ख पुस्तके अम्बुघट-।

मासि मासि श्राद्धं कुर्य्यादिति मुख्यः कल्पः, अपर्य्याप्तावसामर्थ्ये ऋतुं प्रति अत्र चान्द्रमासद्वये ऋतुपदं गौणं द्वौ मासावर्क्कस्य ऋतुरिति विष्णुपुराणादिवचनात् सौरमासद्वय एव ऋतुपदस्य सङ्केतादिति दिक्* विस्तरस्तु शुद्धिकौमुद्यां द्रष्टव्यः ।

तेन प्रतिमासं श्राद्धकरणासामर्थ्ये प्रतिमासद्वयान्ते द्वे मासिके कर्त्तव्ये एतेन षण्णां मासिकानाम्† उत्कर्षो दर्शितः । अस्मिन् कल्पे षष्ठद्वादशमासिकयोः प्राक् तद्दिन एव षाण्मासिकद्वयं कार्य्यम् । अन्तःपञ्चमैकादशमासिकस्य प्राग्दिनेऽनधिकारात् ।

न च तत्रापि न्याये एकाहेन तु षण्मासा इति वचनात् पूर्व्वदिने षाण्मासिकमिति वाच्यम् ।

वचनस्य मुख्यकल्पे चरितार्थत्वेन वैधबाधाक्षमत्वात् ।

तत्राप्यशक्तावपकर्षमाह द्वादशाहेन वेति ।

तथाच विष्णुः—

मासिकार्थवत् द्वादशाहे श्राद्धं कृत्वा त्रयोदशेऽह्नि वा सपिण्डनं कुर्य्यात् मन्त्रवर्ज्जं शूद्राणाम् ।

त्रयोदशेऽह्नीति संवत्सराभ्यन्तरे यद्यधिमासको भवेत्तदा मासिकार्थं दिनमेकं वर्द्धयेत् । मासिकार्थवत् मासिकप्रयोजनं प्रेताप्यायनादि तेन युक्तं श्राद्धमित्यर्थः ।

आद्यश्राद्धसमीचापरदिने कृत्वा तत्परेषु द्वादशदिनेषु द्वादश मासिकानि त्रयोदशेऽह्नि सपिण्डनम् । अस्मिन् पक्षे पञ्चमैकादशा-

* ख पुस्तके वै ।

† ख पुस्तके षण्मासिकानां ।

ह्वयोः पाण्मासिकत्वं षष्ठद्वादशमासिकयोः प्राक्तिथिकर्त्तव्यत्वात्।

शूद्राणां त्वशौचपरदिने मृताहे कृताद्यश्राद्धप्रथममासिकत्वेन तत्परेष्वेकादशदिनेषु एकादशमासिकानि चतुर्थदशाहयोः पाण्मासिकद्वयं द्वादशेऽह्नि सपिण्डनम्।

यदि संवत्सरमध्येऽधिमासः स्यात्तदा श्राद्धदिनमेकं वर्द्धयेत् ततश्च द्विजानां त्रयोदशदिनेषु त्रयोदश श्राद्धानि कृत्वा चतुर्दशाहे सपिण्डनं शूद्राणां त्रयोदशाह इति।

अत्रायं विशेषो यथा—समयप्रकाशधृतकुथुमिः—

अब्दमम्बुघटं दद्यादन्नमामिषसंयुतम्*।

संवत्सरे विवृद्धेऽपि प्रतिमासश्च मासिकम्॥

संवत्सरस्य त्रयोदशमासैः।

तस्मिंस्त्रयोदशे श्राद्धं न कुर्यादिन्दुसंक्षये।

अमावस्यामृतस्य तु मध्ये मलमासपातेऽपि न तत्र मासिकं किन्तु तिथ्यन्तरमृतस्यैवेत्यर्थः। तेनामावस्यामृतस्यापकर्षे दिनमेकं न वर्द्धयेत्।

सत्यव्रतः—

संवत्सरस्य मध्ये तु यदि स्यादधिमासिकः।

तदा त्रयोदशं श्राद्धं कार्यं तदधिकं भवेत्॥

विष्णुधर्म्मे—

मध्ये चेदधिमासः स्यात् कुर्यादभ्यधिकं ततः।

---

* अब्दमस्तम्।

अत्र मध्यपदश्रवणादस्याधिमासविषयाख्येतानि वचनानि अथाधिमासेऽप्येवं त्रयोदशमास्येव ऊनमासीयमृताहप्राप्ति युक्तितौल्यात्।

अन्याधिमासे तु द्वादशमास्येव सपिण्डनं न तत्र मासिकवृद्धिः।

असंक्रान्तेऽपि कर्त्तव्यमाब्दिकं प्रथमं नरैः।
तत्रैव मासिकं पूर्व्वं सपिण्डीकरणं तथा॥

इति हारीतवचनात्।

एकाहे द्वादशाथवा इति-द्वादशदिनेष्वशक्तौ एकाहेऽशौचान्त-तृतीयदिने द्वादशमासिकानि सपिण्डनञ्च कार्य्यम् अस्मिन् पक्षे षष्ठद्वादशमासिकयोः पूर्व्वं षाण्मासिकद्वयम्।

अन्ये त्वशौचात्परं यस्मिन् कस्मिन्नपि दिने प्रथममासमध्ये कार्य्यं तत्रैव द्वादशमासिकापकर्षश्रवणादित्याहुः। तन्मन्दं व्यासवचनैकवाक्यतावधात् द्वादशाहेनियमात्।

यथा व्यासः—

आनन्त्यात्कुलधर्म्माणां पुंसाञ्चैवायुषः क्षयात्।
अस्थितेश्च शरीरस्य द्वादशाहः प्रशस्यते॥

अत्र द्वादशाहपदं सर्व्ववर्णानामशौचान्तावृतीयदिनोपलक्षणं निमित्तमाह कुलधर्म्मः कुलाचारः, ज्योतिरागमादिभिरायुःक्षयज्ञानं परचक्रभयादिभिर्विदेशगमनादिना शरीरस्यैकत्रावस्थाननियमाभावः, एतञ्चागन्तुपलक्षणम्।

एवञ्चैकाहे द्वादशाहवचनान्मासिकाद्यपकर्षे सिद्धे सपिण्डना-

पकर्षे मासिकापकर्षो नास्ति यथाकालन्तु कार्य्याणीति वचनादिति, जिकनादीनां मतमपास्तम्।

यथाकालनियामकवचनन्तु निमित्तं विना स्वेच्छापकर्ष-निषेधकमिति प्रागुक्तम्। अन्यथा सपिण्डनस्यापि षोड़शान्त-र्भूतत्वेन यथाकालकर्त्तव्यत्वनियमात्तस्याप्यपकर्षाभावप्रसङ्गः।

किञ्च—एकादशाहश्राद्धस्याद्यत्वात् तत्परतो मासिकानाञ्च क्रमकर्त्तव्यत्वनियमात्।

सपिण्डीकरणान्ता हि ज्ञेया प्रेतक्रिया बुधैः।

इति शातातपेन प्रेतोद्देश्यकक्रियायाः सपिण्डनान्तत्व-बोधनाच्च।

मासि मासि च कर्त्तव्यं यावत्संवत्सरं द्विजाः।

ततः परन्तु कर्त्तव्यं सपिण्डीकरणं क्रमात्॥

इति ब्रह्मपुराणे क्रमादित्यनेन क्रमिकाधिकारप्रतिपादनाच्च।

वृहस्पतिसवेनेष्ट्वा सोमेन यजेतेतिवत् तदादितदन्तन्यायेना-धिकारस्य क्रमिकत्वात् सपिण्डनापकर्षे मासिकापकर्षोऽपि सिद्ध एव।

किञ्च—

अर्व्वाक् संवत्सराद्वृद्धौ पूर्णे संवत्सरेऽपि वा।

ये सपिण्डीकृताः प्रेता न तेषान्तु पृथक्क्रियाः॥

न पृथक् पिण्डदानन्तु तस्मादूर्द्धं विधीयते।

प्रेतानामिह सर्व्वेषां ये मन्त्रेषु नियोजिताः।

प्रेतत्वाचेह निस्तीर्णाः प्राप्ताः पितृगणन्तु ते॥

इति शातातपेनापकृष्य सपिण्डीकरणपक्षे पृथक्क्रिया एकोद्दिष्टक्रिया प्रत्याब्दिकव्यतिरिक्ता निषिध्यते।

प्रतिसंवत्सरञ्चैव यथोद्दिष्टं मृताहनि।

इति याज्ञवल्क्यवचनविरोधात्।

कथं वा मासिकानपकर्षे तत्साध्यः प्रेतत्वनिस्तारः तदभावे वा कथं वृद्ध्यर्थापकर्षे कृते नान्दीमुखे पितृपदप्रयोगः।

एवञ्च स्त्रियाः सपिण्डनानधिकारिकर्त्तव्यपक्षद्वयश्राद्धानामपि वृद्ध्यादिनिमित्तेनापकर्षः कार्य्यः।

न च "पूर्णे संवत्सरे षण्मासे त्रिपक्षे वा यदहर्वा वृद्धिरापद्येत" इति सपिण्डनस्यैवापकर्षो विहितो न तु मासिकानामिति वाच्यम्।

आवश्यकवृद्ध्यापत्तौ वा सपिण्डनवन्मासिकापकर्षोऽपि अतस्तोत्थादेकाहे द्वादशाद्यैवेति मरीचिना मासिकापकर्षविधानाच्च।

यत्तु—

पितुः सपिण्डतां कृत्वा कुर्य्यान्मासानुमासिकम्।

इति कात्यायनवचनं तद्वृद्धिश्राद्धविषयम्।

यच्च—

सपिण्डीकरणादूर्द्धं न दद्यात्प्रतिमासिकम्।

एकोद्दिष्टविधानेन दद्यादित्याह शौनकः॥

इति परिशिष्टवचनं तस्यायमर्थः—

अप्रकृष्टतापकर्षे प्रेतत्वपरीहारस्यासत्त्वात् प्रतिमासिकं दर्शश्राद्धं वत्सरपर्य्यन्तं न दद्यात्।

शौनकस्तु—अब्दमध्ये एकोद्दिष्टविधिना दर्शश्राद्धं दद्यादित्याह तच्च परिशिष्टकृतो न सम्मतम्।

वृद्धिनिमित्तकापकर्षे तु पार्व्वणविधिकं दर्शश्राद्धमव्याहतमेव सद्य एव तत्र पितृत्वप्राप्तेर्जातत्वात्।

यत्तु—

यस्य संवत्सरस्य प्राक् सपिण्डीकरणं भवेत्।
मासिकञ्चोदकुम्भञ्च दद्यात् संवत्सरं द्विजे॥

इति लोकाक्षिनाम्ना वचनं यदि साकरं स्यात् तदप्येतद्विषयमेवेति।

अपकर्षस्य कालान्तरमाह पैठीनसिः—

मासि मासि मृतस्य श्राद्धं कुर्य्यात् संवत्सरान्ते विसर्ज्जनं नवममास्यमित्येके।

विसर्ज्जनं सपिण्डीकरणं नवममासे सपिण्डनमत्यशक्तविषयम्।

गोभिलः—

पूर्व्वे संवत्सरे षण्मासे त्रिपक्षे वा यदहर्व्वा वृद्धिरापद्येत तदहरपत्यार्य्युदकपात्राणि त्रीणि पितृणामेकं प्रेतस्य।

पूर्व्वसंवत्सरे इति मुख्यः कल्पः, तदशक्तौ नवमे मासि पैठीनस्युक्ते, तदशक्तौ षष्ठे मासि, तत्राप्यशक्तौ त्रिपक्षे, तत्राप्यशक्तौ अशौचापगमे एकादशाहे आद्यश्राद्धं कृत्वा द्वादशभिर्द्दिनैर्द्वादश मासिकानि विधाय त्रयोदशाहे सपिण्डनम्। तत्राप्यशक्तावशौचान्तद्वितीयाहे पञ्चदशश्राद्धापकर्ष इति सङ्क्षेपः।

साग्नेः पुत्रस्य तु श्राद्यश्राद्धात्परमनन्तरदर्शात् पूर्व्वं पिण्ड-पितृयज्ञनिमित्तकमावश्यकमपकर्षमाह जावालः—

नासपिण्ड्याग्निमान् पुत्रः पितृयज्ञं समाचरेत्।
पापी भवत्यकुर्व्वन् हि पितृहा चोपजायते॥
सपिण्डीकरणं कुर्य्यात् पूर्व्वं दर्शोऽग्निमान् सुतः।
परतो दशरात्रस्य पूर्णे त्वब्दे तथेतरः*॥

अकरणे निन्दां वदन् पितृयज्ञस्यावश्यकत्वमाह पापी भवतीति तस्यावश्यकत्वादपकर्षस्याप्यावश्यकत्वमित्यर्थः।

तस्य कालमाह सपिण्डीकरणमिति प्रथमदर्शमध्य एव तत्पूर्व्वतो दशरात्रस्याशौचाहस्य परतः कुर्य्यात् तत्राप्याद्यश्राद्धात् पर एव।

एकादशाहं निर्वर्त्त्य अर्व्वाक् दर्शाद्यथाविधि।
प्रकुर्व्वीताग्निमान् पुत्रो मातापित्रोः सपिण्डनम्॥

इति परिशिष्टवचनात्।

एतेन दर्शदिन एव सपिण्डनमिति श्राद्धचिन्तामणिमतमपास्तम्।

तत्रापि यद्याद्यश्राद्धात् परं द्वादशानामह्नां मध्ये दर्शो लभ्यते तदाद्यश्राद्धात् परदिन एव। अन्यथा द्वादशदिनेषु द्वादशमासिकानि कृत्वा त्रयोदशाहे सपिण्डनम्।

द्वादशाहेन वा कुर्य्यादेकाहे द्वादशाथवा।
इति वचनैकवाक्यत्वात्।

---

* अ तथैव च।

पूर्णेऽब्दे त्विति—इतरोऽनग्निः। यदहर्वेति यस्मिन् दिने वृद्धिरापद्येत सन्निहिता भवति तदव्यवहितपूर्व्वदिने इत्यर्थः। न तु वृद्धिदिने वृद्धिश्राद्धस्य प्रातर्विधानात् चूड़ादिवृद्धौनाश्च आवर्त्तनादङ्ग इति गोभिलवचनाद्विप्राप्रयमार्द्धविधानात् सपिण्डनस्यापराह्णक्रियमाणत्वेन वृद्धेः प्राक्करणासम्भवात्।

कल्पतरौ तु—उत्तरस्मिन् मासि वृद्धौ नियितायाम् विपद्यादिकाल इत्युक्तम्।

तदसत्—

त्रिपक्षे वा यदहर्वेत्युभयत्रैव वाकारादिकल्पावगमात् वृद्धौष्टकालवेपामविष्णुतयावश्यक्रियमाणवृद्धि(कर्म्मायत्त?)भयं नापकर्षनिमित्तं

यथाकालन्तु कार्य्याणि नान्यथा मुच्यते ततः।

इति वचनाग्मुख्यकालकर्त्तव्यत्वमवाये श्वानुकल्पिककालनिषेधात्।

एतद्दशकालाद लघुहारीतः—

भ्राता वा भ्रातृपुत्रो वा सपिण्डः शिष्य एव वा।
सहपिण्डक्रियां कृत्वा कुर्य्यादभ्युदयं ततः॥
तथैव कार्य्यं यत्नेन वत्सरात् प्रथमादृते।

प्रथमश्चाग्मदः पुत्रसमुच्चयार्थः सपिण्ड इत्यनेनैव प्राप्तौ भ्रातृभ्रातृपुत्रयोः पृथगुपादानमभावे चर्षेषां सपिण्डमाधिकारस्यापनार्थम् अभ्युदयः चूड़ाकरणादिः।

यत्तु काम्यमनायदर्थं कम्प्रकाम्यामारम्भमभ्युदयार्थं मह-

त्सरात् प्रथमाहते प्रथमाब्दादर्व्वागेव कार्य्यम्। न तु तदर्थमपकर्षः कार्य्य इत्यर्थः। अन्येषान्तु काम्यानां विधानाभावादेवापकर्ष-निमित्तत्वं नास्तीति।

श्राद्धविवेकस्तु—यत्किञ्चित् श्राद्धमनावश्यकमभ्युदयमिष्टा-पूर्त्तादिकं कर्म्म तस्यापकर्षनिमित्तत्वं नास्तीत्याह। तथाप्यभि-मतसिद्धिः।

तेन भ्रातृपुत्रादीनामावश्यकेऽभ्युदये पितुः सपिण्डनापकर्षः कर्त्तव्य एव।

अत केचित्—स्वपुत्रस्यावश्यकेऽभ्युदये भ्रात्रादीनामपि सपिण्डनापकर्षः कार्य्यस्त्वन्यथायादित्याहुः। तदयुक्तं महागुरौ प्रेतीभूते कर्म्मानर्हत्वात्कथमभ्युदयकर्म्म कृत्वा-काङ्क्षायामपकर्षविधायकं वचनमिदम्।

न च भ्रातुर्भ्राता महागुरुः सपिण्डस्य वा सपिण्ड इति। तथा महागुरौ प्रेतीभूते कर्म्मानर्हत्वमाह—

देवीपुराणे—

प्रमीतौ पितरौ यस्य देहस्तस्याशुचिर्भवेत्।
नापि दैवं न वा पैत्रं यावत् पूर्णो न वत्सरः॥

कालिकापुराणे—

महागुरुनिपाते तु कार्य्यं किञ्चिन्न चाचरेत्।
आर्त्विज्यं ब्रह्मयज्ञञ्च श्राद्धं देवयुतञ्च यत्॥

आर्त्विज्यं याजनं देवयुतं श्राद्धं मृताहविहितेतरं सदैवक-श्राद्धम्।

तथा पितुः सपिण्डनमभिधाय मत्स्यपुराणे—

सपिण्डीकरणादूर्द्ध्वं प्रेतः पार्व्वणभुग्भवेत् ।
वृद्धोष्टापूर्त्तयोग्यश्च गृहस्थश्च ततो भवेत् ॥

अत्र ततो भवेदित्यनेन सपिण्डनात् पूर्व्वं वृद्धियोग्यता नास्तीत्यायातम् । वृद्धियोग्यता च तदपत्यस्य संस्कार्य्यत्वेन संस्कारकत्वेन च तेन संस्कार्य्यसंस्कारकयोरन्यतरस्यैव महागुरौ प्रेतीभूते आवश्यकवृद्धार्थमपकर्षो न त्वन्यस्येति ।

तेन भ्रातुरनन्तरं पितृमरणे भ्रातृपुत्रादेर्वृद्धिनिमित्तं द्वयोरप्यपकर्षः कार्य्यः ।

तथा कनिष्ठभ्रातृकर्त्तव्यस्वपुत्रकन्यावृद्धौ ज्येष्ठेन पितुः सपिण्डनापकर्षः कार्य्यो न्यायतौल्यात् ।

न च सहपिण्डक्रियां कृत्वा इति श्रुतिनिर्द्देशात् समानकर्त्तृकवृद्धावेवापकर्ष इति वाच्यम् ।

कनिष्ठभ्रातुरपि महागुरोः प्रेतीभावात् कर्म्मानर्हत्वे तत्पुत्रस्यावश्यकवृद्धिः कथं स्यादिति विरोधतादवस्थ्यात् न्यायतौल्येन तदर्थापकर्षस्यावश्यकत्वे सति समानकर्त्तृकत्वस्यानुपस्थितत्वेनाकिञ्चित्करत्वात् ।

*अन्यथा यत्र पत्नी सपिण्डनाधिकारिणी ।

पिता पितामहो भ्राता सकुल्यो जननी तथा ॥
कन्यादत्तः पूर्व्वाभावे प्रकृतिस्थः परः परः ॥

इति पुत्रस्यावश्यके विवाहे का गतिः ।

* ख पुस्तके अन्यथेत्यादि श्लोकद्वयं नास्ति ।

त्सरात् प्रथमाहृते प्रथमाब्दादूर्द्धमेव कार्य्यम्। न तु तदर्थमपकर्षः कार्य्य इत्यर्थः। अन्येषान्तु काम्यानां विधानाभावादेवापकर्षनिमित्तत्वं नास्तीति।

श्राद्धविवेकस्तु—यत्किञ्चित् श्राद्धमनावश्यकमभ्युदयमिष्टापूर्त्तादिकं कर्म्म तस्यापकर्षनिमित्तत्वं नास्तीत्याह। तथाप्यभिमतसिद्धिः।

तेन भ्रातृपुत्रादीनामावश्यकेऽभ्युदये पितुः सपिण्डनापकर्षः कर्त्तव्य एव।

अत्र केचित्—स्वपुत्रस्यावश्यकेऽभ्युदये भ्रात्रादीनामपि सपिण्डनापकर्षः कार्य्यस्तुल्यन्यायादित्याहुः। तदयुक्तं

महागुरौ प्रेतीभूते कर्म्मानर्हत्वात्कथमभ्युदयकर्म्म इत्याकाङ्क्षायामपकर्षविधायकं वचनमिदम्।

न च भ्रातुर्भ्राता महागुरुः सपिण्डस्य वा सपिण्ड इति। तथा महागुरौ प्रेतीभूते कर्म्मानर्हत्वमाह—

देवीपुराणे—

प्रमीतौ पितरौ यस्य देहस्तस्याशुचिर्भवेत्।
नापि दैवं न वा पैत्र्यं यावत् पूर्णो न वत्सरः॥

कालिकापुराणे—

महागुरुनिपाते तु काम्यं किञ्चिन्न चाचरेत्।
आर्त्विज्यं ब्रह्मयज्ञञ्च श्राद्धं देवयुतञ्च यत्॥

आर्त्विज्यं याजनं देवयुतं श्राद्धं मृताहविहितेतरं सदैवकश्राद्धम्।

तथा पितुः सपिण्डनमभिधाय मत्स्यपुराणे—

सपिण्डीकरणादूर्द्ध्वं प्रेतः पार्व्वणभुग्भवेत् ।
वृद्धीष्टापूर्त्तयोग्यश्च गृहस्थश्च ततो भवेत् ॥

अथ ततो भवेदित्यनेन सपिण्डनात् पूर्व्वं वृद्धियोग्यता नास्तीत्यायातम् । वृद्धियोग्यता च तदपत्यस्य संस्कार्य्यत्वेन संस्कारकत्वेन च तेन संस्कार्य्यसंस्कारकयोरन्यतरस्यैव महागुरौ प्रेतीभूते आवश्यकवृद्धार्थमपकर्षो न त्वन्यस्येति ।

तेन भ्रातुरनन्तरं पितृमरणे भ्रातृपुत्रादेर्व्विवाहनिमित्तं द्वयोरप्यपकर्षः कार्य्यः ।

तथा कनिष्ठभ्रातृकर्त्तव्यस्वपुत्रकन्यावृद्धौ ज्येष्ठेन पितुः सपिण्डनापकर्षः कार्य्यो न्यायतौल्यात् ।

न च सहपिण्डक्रिया कृत्वा इति श्रुतिनिर्द्देशात् समानकर्तृक-वृद्धावेवापकर्ष इति वाच्यम् ।

कनिष्ठभ्रातुरपि महागुरोः प्रेतत्वाभावात् कर्त्तृत्वे तत्पुत्र-स्यावश्यकवृद्धिः कथं स्यादिति विरोधसाध्यवसायात् न्यायतौल्येन तदर्थापकर्षस्यावश्यकत्वे सति समानकर्तृकत्वस्याप्युपलक्षणत्वेनाकिञ्चित्करत्वात् ।

*अन्यथा यत्र पत्नी सपिण्डनाधिकारिणी ।

पिता पितामहो भ्राता भ्रातुर्जा जननी तथा ॥
कन्यादयः पूर्व्वाभावे प्रकृतिस्थः परः परः ॥

इति पुत्रस्थानपत्ये विवाहे का गतिः ।

---

एवञ्च मातुरपि महागुरुत्वात्तन्मरणे तत्पुत्रकन्ययोर्वृद्धिकर्म्मानर्हत्वे तदर्थे तत्सपिण्डनापकर्षः सिद्धः।

अतएव छन्दोगपरिशिष्टम्—

एकादशाहं निर्वर्त्य अर्वाग्दर्शाद्यथाविधि।
प्रकुर्व्वीताग्निमान् पुत्रो मातापित्रोः सपिण्डनम्॥

इति पितृद्वयग्रहणं मातुरपि सपिण्डनापकर्षं प्रज्ञः। वृद्धिस्तु शरीरसंस्कारकं कर्म्म संस्काराश्च निषेकाद्या विवाहान्ता दश।

यथाङ्गिराः—

गर्भाधानादिसंस्कारैर्युक्तश्च नियमव्रतैः।
नाध्यापयति नाधीते विज्ञेयो ब्राह्मणब्रुवः॥

परिशिष्टम्—

स्वपितृभ्यः पिता दद्यात् सुतसंस्कारकर्म्मसु।
पिण्डानोद्वहनात्तेषां तस्याभावेऽपि तत्क्रमात्॥

विष्णुः—स्त्रीणां विवाहः संस्कारः।

याज्ञवल्क्यः—

गर्भाधानमृतौ पुंसःसवनं स्पन्दनात् पुरा।
षष्ठेऽष्टमे वा सीमन्तः प्रसवे जातकर्म्म च॥
अहन्येकादशे नाम चतुर्थे मासि निष्क्रमः।
षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि चूड़ा कार्य्या यथाकुलम्॥
गर्भाष्टमेऽष्टमे वाब्दे ब्राह्मणस्योपनयनम्।
राज्ञामेकादशे सैके विशामेके यथाकुलम्॥
एवमेनः शमं याति वीजगर्भसमुद्भवम्॥

अत्र तु पुंसवनसीमन्तोन्नयननामकरणनिष्क्रमणान्नप्राशन-चूडोपनयनानि विवाहान्तान्येवापकर्षनिमित्तं न तु गर्भाधानम्।

विदेशगमनञ्चैव तीर्थयात्राञ्च मैथुनम्।
महागुरुनिपाते तु वर्जयेद्देवदर्शनम्॥

इति कूर्म्मपुराणे मैथुननिषेधात्।

अन्यथा प्रतिमासमृतुकाले गर्भाधानस्यावश्यकत्वेन सर्व्वदैवापकर्षप्रसङ्गे मैथुननिषेधस्य व्यर्थः स्यादिति।

तथा वृद्धिपूर्व्वदिनेऽपकर्षविधानात् तद्दिने च पुत्रजन्मनिश्चयाभावात् जातकर्मार्थं नापकर्षः किन्तु नित्यकाम्यत्वात् पुत्रजन्मानन्तरमेव जातकर्म कार्य्यम्। अन्यथा संस्कारलोपात् जातस्याङ्गलोप एव काम्यत्वात्। ततश्चाऽस्य वैधसम्भवात् कालान्तरकेषु संस्कार्य्यसंस्कारकयोर्मातापित्रोः सपिण्डनापकर्षं इति निर्गलितार्थः।

एवञ्च वृद्धिनिमित्तेनापकर्षे कृते संवत्सरमध्ये श्राद्धमपि कर्त्तव्यमेव तथा पार्व्वणश्राद्धमपि अविशेषेण सपिण्डनानन्तरकर्त्तव्यत्वेन बोधितत्वात् प्रेतत्वपरीहारपूर्व्वकपितृत्वप्राप्तेर्मतत्वाच्च।

यथा हारीतः—

ततः प्रभृति वै प्रेतः पितृसामान्यमाप्नुयात्।
विन्दते पितृलोकञ्च ततः श्राद्धं प्रवर्त्तते॥

मात्स्ये—

शातातपः—

> अर्व्वाक् संवत्सराद्वृद्धौ पूर्णे संवत्सरेऽपि वा ।
> ये सपिण्डीकृताः प्रेता न तेषान्तु पृथक् क्रिया ॥
> न पृथक् पिण्डदानञ्च तस्मादूर्द्धं विधीयते ।
> प्रेतानामिह सर्व्वेषां ये सन्त्येव नियोजिताः ॥
> प्रेतत्वादेव निस्तीर्णाः प्राप्ताः पितृगणन्तु ते ।

*[ अत्र वृद्ध्यर्थे सपिण्डनेऽपि प्रेतत्वपरीहारपूर्व्वकपितृत्व-प्राप्तिरभिहिता ततश्च विष्णुधर्म्माग्निपुराणयो]र्वचनद्वयं वृद्धिं विना अशक्तिकृतापकर्षविषयं मन्तव्यम् ।

यथा विष्णुधर्म्मे—

> कृते सपिण्डीकरणे नरः संवत्सरात्परम् ।
> प्रेतदेहं परित्यज्य भोगदेहं समश्नुते ॥

संवत्सरात्परमित्युपादानादपकर्षविषयमिदं वचनमन्यथा तदनर्थकं स्यात् ।

अग्निपुराणे—

> अर्व्वाक् संवत्सरात् यस्य सपिण्डीकरणं भवेत् ।
> प्रेतत्वमिह तस्यापि ज्ञेयं संवत्सरं नृप ॥

एवञ्चाशक्तिकृतापकर्षे वत्सरमध्ये दर्शादिश्राद्धं काम्यकर्म च न कर्त्तव्यमेव । साग्निना पितृयज्ञार्थमपकर्षात् सद्यः पितृत्व-प्राप्तेर्दर्शश्राद्धादिकं कर्त्तव्यमेव ।

---

* क पुस्तके [ ] चिह्नितांशः पतितः ।

अत्र केचित्—

अग्निक्षतापकर्षे पितुः प्रेतीभावसत्त्वे दैवादवश्यानुष्ठेयवृद्ध्युपस्थितौ *पुनर्वृद्ध्यर्थमपकर्षं कृत्वा वृद्धिः कार्य्येत्याहुः। तन्न—

पुनरपकर्षविधानाभावात् अपकृष्य कृतत्वेन स्वकालप्राप्तत्वाभावात् स्वकालप्राप्तस्याद्यःपूर्व्वकालकरणमपकर्षः।

वस्तुतस्तु—स एवापकर्षः पितृत्वप्रापककालं प्राप्य प्रेतत्वपरिहारं पितृत्वञ्च जनयति स च यथा संवत्सरान्तस्तथा वृद्धिसन्निहितोऽपि, उभयोरेव कालयोः पितृत्वप्राप्तिविधानात्।

यत्र—प्रेयं संवत्सरं कृपैत्यग्निपुराणे संवत्सरपदं तत्पितृत्वप्रापककालपूर्व्वकालपरम्। ततश्चाग्निक्षतापकर्षेणैव संवत्सरान्तमिव वृद्धिसन्निहितकालमासाद्य पितुःपितृत्वजननात् वृद्धिं कृत्वा तत्परं काम्यनैमित्तिकानि सर्व्वाण्येव कर्म्माण्यनुष्ठेयानि।

अत्र च वृद्धिनियमं कृत्वा कृतेऽपकर्षे दैवाद्वृद्धसिद्धावपि पुनः सपिण्डनं न कार्य्यं वृद्धिनियममेव निमित्तमादाय कृतेऽपकर्षे तत्-क्षणादेव पितृत्वप्राप्तिर्जातत्वेन पुनःसपिण्डनवैयर्थ्यादिति केचित्।

वस्तुतस्तु—यद्यपि वृद्धिनियमो निमित्तं तथापि—

यस्मात्रे विपदि वा यद्दर्शो वृद्धिरापद्येत तद्दयत्वाय्युदकः पात्राणि।

इति गोभिलेन वृद्ध्यव्यवहितपूर्व्वदिनस्याधिकरणताप्रतिपादनात् वृद्ध्यभावे तद्दिनस्य वृद्ध्यव्यवहितपूर्व्वत्वाभावादविहित-

---

* क पुस्तके पुनरिति पदं नास्ति।

काले क्षतस्य कर्म्मणोऽक्षतकल्पतया फलाजनकत्वात् पुनः सपिण्डनं कार्य्यमेव।

षोड़शश्राद्धफलमाह यमः—

> यस्यैतानि न दीयन्ते प्रेतश्राद्धानि षोड़श।
> पिशाचत्वं ध्रुवं तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि॥

सपिण्डनस्य तु फलान्तरमपि—यथा सपिण्डनं*[मभिधाय शातातपः—प्रेतत्वाचेह निस्तीर्णाः प्राप्ताः पितृगणन्तु ते।

मत्स्यपुराणे—

> सपिण्डीकरणादूर्द्धं प्रेतः पार्व्वणभुग्भवेत्।]

सपिण्डनानन्तरं हारीतः—

> ततः प्रभृति वै प्रेतः पितृसामान्यमाप्नुयात्।
> विन्दते पितृलोकञ्च ततः श्राद्धं प्रवर्त्तते॥

पितृसामान्यं पितृभिः सह पार्व्वणश्राद्धभोक्तृत्वमित्यर्थः। तेन पञ्चदशश्राद्धानां प्रेतत्वपरीहारः फलं सपिण्डनस्य तु प्रेतत्वपरीहारः पितृलोकप्राप्तिः पितृभिः सह पार्व्वणभोक्तृत्वञ्च फलत्रयमिति।

यत्र च सपिण्डननिषेधस्तत्र पञ्चदशभिरेव श्राद्धैः प्रेतत्वपरीहारः पितृलोकप्राप्तिश्च मार्कण्डेयपुराणवचनात्।

यथा—

---

* क पुस्तके [ ] चिह्नितांश पतित।

सपिण्डीकरणं तासां पुत्राभावे न विद्यते।
प्रतिसंवत्सरं कार्य्यमेकोद्दिष्टं नरैः स्त्रियाः।
मृताहनि यथान्यायं नृणां यद्वदिहोदितम्॥

नृणां पुंसां *सपिण्डनाधिकारिशून्यानां यद्वत् सपिण्डनं विनाप्येकोद्दिष्टं विहितं तद्वत् सपिण्डनं विनापि स्त्रियाः सांवत्सरिकं कार्य्यम् अत्र सांवत्सरिकविधानादेव पितृत्वप्राप्तिरवगम्यते। अन्यथा—

प्रेते पितृत्वमापन्ने सपिण्डीकरणादनु।
क्रियन्ते याः क्रियाः पित्र्याः प्रोच्यन्ते ता नृपोत्तराः॥

इति विष्णुपुराणवचनात्

विन्दते पितृलोकञ्च ततः श्राद्धं प्रवर्त्तते।

इति हारीतवचनाच्च पितृत्वप्राप्त्यनन्तरमेवोत्तरक्रियाविधाननियमात् वचनमिदमसङ्गतं स्यात्।

तेन सपिण्डनानधिकारिकर्त्तव्यपञ्चदशश्राद्धानां प्रेतत्वपरीहारपूर्व्वकपितृत्वप्राप्तिः फलं सपिण्डनाधिकारिकर्त्तव्यानां तु पञ्चदशानां प्रेतत्वपरीहारमात्रं फलं सपिण्डनस्य तु प्रेतत्वपरीहारः पितृत्वप्राप्तिश्चेति सर्व्वं समञ्जसम्।

ननु कथं पुत्रादिकर्त्तृकश्राद्धस्य पित्रादिगतफलजनकता अदृष्टद्वारा हि कर्म्मणां फलजनकत्वं निर्णीतम् अदृष्टञ्च क्रियाजन्यत्वात् कर्त्तृनिष्ठमेव जायते तत्कथमन्यनिष्ठमदृष्टमन्यनिष्ठं फलं जनयतीति।

---

* ख पुस्तके सपिण्डनाधिकारिशून्यानामिति पदं नास्ति।

अत्र केचित्—

अन्यनिष्ठफलस्थले कर्त्ता कर्म्मभिः स्वनिष्ठमदृष्टमुत्पाद्योत्तरकालमन्यस्मै प्रयच्छतीत्याहुः । तन्मन्दम्—

प्रयच्छतीत्यस्य समर्पणं दानं वार्थः परलोकगतशास्त्रविहितत्वेन स्वीकाराभावेन चोभयोरेवासम्भवः ।

किञ्च—हतस्य स्वर्गगमनादिः सङ्ग्रामेण कर्म्मणामकरणात्तन्निष्ठमदृष्टं न जायते तत् कथं तस्य दानं समर्पणं वेति ।

किञ्च यत्र गयाश्राद्धादावुभयनिष्ठं फलं श्रूयते तत्र कर्त्तुरदृष्टस्य दाने समर्पणे वा सति स्वगतं फलं कथं जायेत ।

अत्रोच्यते—अदृष्टं कर्त्तृनिष्ठमेवेति नास्ति नियमः फलान्यथानुपपत्त्या ह्यदृष्टं कल्पाते फलस्य च वेदैकबोध्यत्वात् यन्निष्ठं फलं श्रूयते क्रियापि तन्निष्ठमदृष्टं जनयतीति कल्पना न्याय्या ।

अन्यथा* प्रतिनिधिकल्पनोच्छेदापत्तिः । दृश्यते च लोके पाकादौ क्रियाफलयोरन्यनिष्ठता । न च क्वचित् कर्त्तृनिष्ठत्वेन क्वचिदन्यनिष्ठत्वेनादृष्टकल्पनायामननुगम इति वाच्यम् ।

उद्देश्यनिष्ठत्वेनानुगमात् उद्देश्यत्वञ्च फलाश्रयत्वेन वेदबोधितत्वं तच्च क्वचिदात्मनः क्वचिदुभयस्य वचनानुरूपमेवेति ।

नन्—

येरिष्टं विविधैर्यज्ञैः पूजितो येन केशवः ।
प्रेतलोकं न ते यान्ति तथा ये समरे हताः ॥

---

* च इत्यधिकं पुस्तत् ।

इति विष्णुधर्म्मोत्तरादिवचनात् यज्ञर्म्मीलादीनां गङ्गाकाश्यादि-मृतानाञ्चाप्राप्तप्रेतभावानां कथं षोड़शश्राद्धमिति। सत्यं—

नित्यत्वेनावश्यकत्वादन्यथा प्रत्यवायात्। तर्हि कथं प्रेतत्व-विमुक्तिः फलं मन्त्रोक्तं चाम्मं नित्यं काम्यञ्च भवितुमर्हति अधि-कारिभेदेन कर्म्मभेदात् कामिनः कर्त्तुरभावे कर्म्मणामनुष्ठाने प्रत्यवायप्रसङ्गाच्च।

न च फलश्रुतेरन्यथानुपपत्त्या काम्यमपि पृथगेव षोड़शश्राद्ध-मस्ति किन्तु तयोर्नित्यकाम्ययोस्तन्त्रेण सकृदनुष्ठानमिति वाच्यम्। नित्यं तन्त्रेणानुष्ठाने काम्यस्याननुष्ठानलक्षणाप्रामाण्यापत्तेः श्रुति-द्वयकल्पनागौरवाच्च। सत्यम्। नित्येऽपि फलसिद्धिरानुषङ्गिकी *पञ्चयज्ञादौ पापक्षयादिवत्।

तथा च भविष्यपुराणम्—

क्षयं केचिदुपात्तस्य दुरितस्य प्रचक्षते।
अनुत्पत्तिं तथा चान्ये प्रत्यवायस्य मन्वते॥
नित्यक्रियां तथा चान्ये ह्यनुषङ्गफलां श्रुतिम्।

अनुत्पत्तिमिति विधिलङ्घनमेव पापजननसामर्थ्यं कर्म्मणा तद्विघटनमात्रं क्रियते फलकल्पनवत् प्रत्यवायात्यन्ताभावोऽतःo सिद्ध एवास्ति यत्र तु कर्म्म न क्रियते तत्र प्रत्यवायोत्पत्त्या तत्प्रागभावोऽनुमीयते।

*नित्यक्रियामिति* नित्यक्रियाप्रतिपादिकां श्रुतिम् अनुषङ्ग-

---

* क पुस्तके नास्ति।

फलमाहुः, आनुषङ्गिकं* फलं फलप्रतिपादनं यस्यास्ताम् चेदेष्यस्तु प्रत्यवायपरीहार एवेत्यर्थः।

न च नित्येऽपि फलप्रसङ्गेऽनिर्मोघप्रसङ्गः फलस्यावश्यं भोगादिति वाच्यम्।

फलस्य वैयधिकरण्यात् क्वचिदैहिकत्वाच्च यथामावस्योपरागश्राद्धादौ स्वगतप्रत्यवायपरीहारः पितृगतदृप्तिविशेषश्चानुषङ्गिकं फलम्। यथा च—पञ्चयज्ञादौ पापक्षयादि पञ्चसम्पत्त्यादि धनपुत्रादि चेति।

यदि तु नित्येऽपि क्वचित् पारलौकिकं स्वर्गादि स्वगतं श्रूयते तत् स्तुतिमात्रं प्रावर्त्तकमेवेति ध्येयम्।

ननु यज्ञशीलादीनां गङ्गाकाश्यादिमृतानामप्राप्तप्रेतभावानां कथं प्रेतपदेन श्राद्धसमवेतार्थत्वात्, सत्यम् एतत् प्रेतश्राद्धमिति गोभिलेन प्रेतोद्देश्यत्वाभिधानात्

असपिण्डीकृतं प्रेतमेकोद्दिष्टेन तर्पयेत्।

इति विधिवाक्याच्च

ऊचुः सुसंहिते विप्राः प्रेतायाक्षय्यमस्त्विति।

ब्रह्मपुराणोक्ताभिलापाच्च

चत्वार्य्युदकपात्राणि त्रीणि पितॄणामेकं प्रेतस्येति गोभिलेन सपिण्डने भेदनिर्देशाच्च

दद्यात् प्रेताय पिण्डन्तु दक्षिणाभिमुखस्थितः।

इत्यादिपुराणे प्रेताय प्रेतमुद्दिश्येत्यभिधानाच्च

---

* ख पुस्तके अन्यार्थवर्ज्जमिदं।

अन्नं कुशश्च दातव्यं प्रेतनिर्देशधर्मतः।

इति हारीतवचनाच्च प्रेतपदवर्णेनैव देवतात्वावगमादाषोड़शा-दसमवेतार्थेनापि प्रेतपदेन श्राद्धं कार्य्यम्।

एवञ्च प्रेतपितृपदयोस्तत्तल्लोकप्राप्त्युपाधिना न प्रयोगनियमः-अप्राप्तप्रेतभावस्यापि प्रेतपदेनैव षोड़शश्राद्धनियमात् ततीष्वपि षोड़शश्राद्धेषु बलवत्तरपापवशेन प्रेतत्वसत्त्वेऽपि काश्यादिमरणा-न्मोक्षप्राप्तावपि सपिण्डनोत्तरश्राद्धानां पितृपदेनैव कर्त्तव्यत्वात्।

किन्तु—कर्म्मविशेषे प्रयोगनियमः

सपिण्डनप्राग्विहितानां कर्म्मणां सपिण्डनस्य च प्रेतपदत्वेन देवतात्वं तत्परविहितानाञ्च सम्बन्धार्पकपदवत्त्वेनेति।

अतएव—

असंस्कृतौ न संस्कार्य्यौ पूर्व्वौ पौत्रप्रपौत्रकैः।
पितरं तत्र संस्कुर्य्यादिति कात्यायनोऽब्रवीत्॥

इति छन्दोगपरिशिष्टवचनात् प्रेतीभूतेनापि पितामहेन सह सपिण्डने क्रियमाणे पितामहपदोल्लेखेनैव पितामहश्राद्धं न तु प्रेतपदेन। अत्र च एतद्वः पितर इत्यादिमन्त्रोऽपि सङ्गच्छते इति।

अथवा प्रेतश्राद्धेषु सर्व्वत्रैव प्रकर्षेण इतो गत इति व्युत्पत्त्या *[प्रेतवाचिसमवेतार्थप्रेतपदप्रयोगनियमः तदितरश्राद्धेषु सम्बन्धा-र्पकपदप्रयोगः]। दृश्यते च मृतमात्रपरता प्रेतशब्दस्य।

यथा माघे—

---

* ख पुस्तके [ ] चिह्नितांश पतितः।

सपिण्डीकरणादूर्द्धं ] प्रेतः पार्व्वणभुग्भवेत् । इति ।

अङ्गिराः—

अनतीतहविर्यस्तु प्रेतो यत्रापि दृश्यते ।

तथाचामरकोषे—

प्रेतः प्राण्यन्तरे मृते इति ।

यत्तु—

प्रेतदेहं परित्यज्य भोगदेहं प्रपद्यते ।

इति वचनं तत्प्रेतयोनिप्राप्तानां फलकथनमात्रं तथा मन्त्रे विधौ [illegible] पार्व्वणश्राद्धार्हत्वोपाधिना षट्पुरुषेषु पितृपदप्रयोगः सर्व्वत्र मन्तव्यः ।

अर्हता च उद्देश्यतया विधिबोधितत्वं तच्चासपिण्डीकृतस्य लेपभागिनां श्राद्धदानाच्च नास्ति निषेधात् ।

एवञ्च संवत्सरमध्ये वृद्धिनिमित्तकापकर्षेण पितृत्वप्राप्तावपि याज्ञवल्क्यवचनादर्व्वागनुष्ठेयश्राद्धे क्रियमाणे प्रेतपदेनैव श्राद्धं मितम् । अतएव अन्नं कुम्भञ्च विप्राय प्रेतनिर्द्देशधर्म्मतः ।

इति हारीतेन प्रेतपदोल्लेखेनैव श्राद्धमुक्तमन्यथा प्रेतदैवते प्रेतपदप्राप्तौ प्रेतपदमनर्थकं स्यात् ।

यथा याज्ञवल्क्यः—

अर्व्वाक् संवत्सराद्यस्य सपिण्डीकरणं भवेत् ।
तस्याप्यन्नं सोदकुम्भं दद्यात् संवत्सरं द्विजे ॥

न चैतद्वचनमग्निमत्पिण्डनविषयं न तु वृद्ध्यर्थपिण्डनविषयमिति वाच्यम् । सङ्कोचे प्रमाणाभावात् ।

किञ्चारब्धकर्म्मणां समापनस्यावश्यकत्वात्—

सपिण्डीकरणान्ता हि ज्ञेया प्रेतक्रिया बुधैः।

इति शातातपवचनाच्च

सपिण्डनान्तप्रेतश्राद्धापकर्षेऽभ्युदयस्यापकर्षप्राप्तौ तदपवादकं वचनमिदं तद्यावज्ञाविव हृद्यावपीति।

अतएव वक्ष्यमाणस्वगताश्वमेधफलं सङ्गच्छते इति।

अत्र मैथिलाः—

सर्व्वत्र प्रेतश्राद्धे अमुकगोत्र पितरमुक प्रेत इदमन्नं ते मया दीयते तवोपतिष्ठतामिति वाक्यं वर्णयन्ति।

तत्र सम्बन्धकीर्त्तनं प्रेतपदस्य परनिपातनं षष्ठ्यादिपदराहित्यं त्यागवाचक दीयत इत्यादिपदानीत्यधिकम्।

अत्र च तेषामियं युक्तिः—

गोत्रसम्बन्धनामानि यथावत्प्रतिपादयेत्।

इति प्रकृतौ पार्व्वणे प्राप्तस्य सम्बन्धोल्लेखस्य *बाधितत्वाभावात्।

न चैतत्प्रेतश्राद्धमिति गोभिलेन प्रेतश्राद्धविधानात् सम्बन्धपदबाधः। एतस्य प्रेतपदमात्रप्रक्षेपबोधकत्वेन सामान्यप्राप्तसम्बन्धपदबाधाक्षमत्वात्।

अन्यथा वृद्धौ नान्दीमुखपददर्शनात् सम्बन्धबोधकपदबाधप्रसङ्गः।

---

* च पुस्तके बाधे प्रेतमात्रात्।

तथा नागृहीतविशेषणा न्यायाद्यद्यपि प्रेतपदस्य पूर्व्वनिपात एव युज्यते तथापि—

प्रेतान्तनामगोत्राभ्यामुत्सृजेदुपतिष्ठताम्।

इति ब्रह्मपुराणवचनात् प्रेतान्तत्वविधानात् परत एव प्रयोगो वचनान्न्यायस्य दुर्ब्बलत्वादिति।

अत्र यद्यपि उपतिष्ठतामित्येतावन्मात्रं श्रूयते तथापि तस्य त्यागबोधकत्वाभावात् पितृत्वाभावेन स्वधापदप्रयोगाभावाच्च त्यागाभिलापस्ते मया दीयते इत्येवं क्रमो वाच्यः।

तथा तवेति च वाच्यमुपतिष्ठतामित्यनेनाकाङ्क्षितत्वात्।

शर्म्मादिपदप्रयोगाभावश्च—

सपिण्डीकरणं यावत्प्रेतः प्रेत इति स्मृतः।

सपिण्डीकरणादूर्द्ध्वं शर्म्मवर्म्मादिशब्दभाक्॥

इति वचनात्। तच्चिन्त्यम्।

उक्तरीत्या एकोद्दिष्टे प्रेतपदत्वेन दैवतात्वे विधेऽतिदेशप्राप्तस्य पितृपदपक्षेन दैवतात्वस्य पराहतत्वात्।

सर्व्वैवोत्सर्गवाक्ये सत्ये च पितृपदस्थाने प्रेतपदप्रयोगः। एतन्न्यायमूलकमेवाश्वलायनवचनम्—

एकोद्दिष्टस्य पिण्डे तु अग्नशब्दो न युज्यते।

पितृशब्दं न युञ्जीत पितृत्वं नोपजायते॥

न चैतद्वचनं सत्त्वभावविषयमिति वाच्यम्, प्रमाणाभावात् विनिगमनाविरहेणोभयत्रैवाविशिष्टत्वात्।

सांवत्सरिकेऽप्यतिदेशात्मन्ते पितृपदप्रयोगनिषेधापत्तेश्च।

अस्मन्मते तु वचनस्य न्यायमूलत्वात् सपिण्डनोत्तरे सांवत्सरिके प्रेतपदत्वेन देवतात्वाभावात् पितृपदप्रयोगः सिद्ध एव। एवञ्च प्रेतपिण्डेऽपि पितृपदनिवृत्तिः सिद्धा।

अतएव विष्णुना—

संवत्सरान्ते प्रेताय तत्पित्रे तत्पितामहाय इत्याद्युक्तम्।

न तु पित्रे तत्पित्रे इत्यादि।

तथा ब्रह्मपुराणे—

ऊचुः सुस्वदितं विप्राः प्रेतायाचय्यमस्त्विति।

प्रेतपदमात्रमुक्तम्।

तथा, एकोद्दिष्टे उच्छिष्टसन्निधौ एकमेव तन्नामगोत्राभ्यां पिण्डं निर्वपेदिति विष्णुसूत्रे नामगोत्राभ्यामित्यनेन सम्बन्धवाचकपदनिवृत्तिर्दर्शिता।

दृष्टान्ते तु

नान्दीमुखं पितृगणमर्चयेत्प्रयतो गृही।

इति विधौ नान्दीमुखान् पितॄनावाहयिष्ये नान्दीमुखाः पितरः पितामहाः प्रपितामहाश्च प्रीयन्तामित्याद्यभिलापवाक्येषु च नान्दीमुखपदस्य विशेषणत्वश्रुतेर्न पित्रादिपदबाधः।

यच्च प्रेतपदस्य परनिपात इत्युक्तं तदप्ययुक्तं प्रेतान्तनामगोत्राभ्यामिति ब्रह्मपुराणवचने नपुंसकत्वादद्र्व्यादिममात्राविशेषितैकपदस्य षष्ठीतत्पुरुषस्याभ्यर्हितत्वात् नान्दीतविशेषणाम्नायात्

पूर्व्वनिपातस्यैवोचितत्वात् उक्तरीत्या पितृपदस्थाने प्रेतपद-विधानाच्च।

यत्तु—

गोत्रनामाद्यवदादि तर्पयामीति चोत्तरम्।

इति छन्दोगानां तर्पणविधायकपरिशिष्टवचनयोर्गोत्रनाम-श्रवणात् सम्बन्धवाचकपदनिवृत्तौ प्रमाणमवगम्यत इति।

यच्च—

सपिण्डीकरणं यावदित्यादिवचनं अस्मादिपदनिषेधे प्रमाण-मुक्तं तत्कल्पतरुहारादिभिरलिखितत्वादमूलमेवेति मैथिलद्वैत-निर्णय एव लिखितम्।

यत्तोपतिष्ठतामित्यत्र ब्रह्मपुराणवचनं प्रमाणमभिहितं तत् तर्पणप्रकरणपठितत्वेन श्राद्धविषयत्वाभावादतिदेशप्राप्तस्वधा-पदस्य* न बाधकम्।

अतएव रामायणे—

एतत्ते नृपशार्दूल विमलं तोयमुत्तमम्।
पस्लोकेषु पानीयं मद्दत्तमुपतिष्ठताम्॥

इति तर्पणे एवोपतिष्ठतामिति प्रयोग उक्तः।

न च पितृलोकप्राप्तस्यैव हविर्दाने 'स्वधापदयोगनियम इति वाच्यम्। प्रमाणाभावात्।

न च

---

* ख पुस्तके प्रयोगस्य।

देवानां नमसा कार्य्यं पितॄणाञ्च स्वधेति च।

इति वचनाद्याचम्।

एतद्वचनस्य परिसंख्याबोधकत्वाभावात्।

किञ्च—

अथैतन्मनुः श्राद्धशब्दं कर्म्म प्रोवाच प्रजानिःश्रेयसार्थं तत्र पितरो देवता इत्यापस्तम्बवचनात् पित्र्ये तु द्विगुणा दर्भा इति मन्वादिवचनाच्च पितृपदस्यात्र मृतमात्रपरत्वमन्यथा काश्यादि-मृतानां प्राप्तमोक्षत्वेनाप्राप्तपितृलोकानां बलवत्तरपापवशादप्राप्त प्रेतभावानाञ्च सपिण्डनोत्तरश्राद्धेऽपि स्वधाप्रयोगो न स्यात्। कथं वा प्राप्तामृतेन प्रेतीभूतेन पितामहेन सह सपिण्डने क्रियमाणे तच्छ्राद्धे स्वधाप्रयोग इति।

किञ्च—

यज्ञशीलपूजितकेशवादीनां सद्यःप्राप्तपितृलोकानां स्वधापदेन श्राद्धमव्याहतमेव।

किञ्च—

न स्वधाञ्च प्रयुञ्जीत प्रेतपिण्डे दशाह्निके।

भाषेतैतच्च वै पिण्डं यावद्दत्तस्य पूरकम्॥

इति भविष्यत्पुराणवचने दशाह्निकपदोपादानादेकादशाहादि-श्राद्धेषु स्वधापदप्रयोगोऽस्तीत्यवगम्यते।

अन्यथा दशाह्निकपदं व्यर्थमेवेति गरुड़पुराणे प्रेतार्घदानादि-वाक्ये स्वधाप्रयोगदर्शनाच्च।

यच्च—

प्रेतश्राद्धेषु सर्व्वेषु न स्वधा नामिरस्यताम् ।

इत्याश्वलायनपरिशिष्टवचनं तत् स्वधावाचननिषेधपर-मादयश्राद्धे स्वधोच्यतामिति वाचं विसृजेदाश्वलायनगृह्योक्तस्यैवाश्वलायनपरिशिष्टकृता प्रेतश्राद्धेषु सर्व्वेष्वित्यादिना विवृतत्वात् ।

अन्यथा स्वधावाचनवदेकोद्दिष्टधर्म्मातिदेशात् सांवत्सरिके स्वधाप्रयोगो दुरुपपादनीयः ।

एवञ्च स्वधापदप्रयोगे सिद्धे ते मया दीयते इति सुतरां निरस्तमेव ।

ततश्च अमुकगोत्र प्रेतामुकशर्म्मन्नेतत्तेऽन्न स्वधेत्यादि प्रयोगोऽनिरुद्धशूलपाणिप्रभृतीनां प्रामाणिकानां सम्मतः सिद्ध एवेति ।

एवञ्चात्र प्रेतपदवत्त्वेनैव देवतात्वात्मन्त्रेऽपि पितृपदस्थाने प्रेतपदोहः कार्य्यः पितृपदस्यासमवेतार्थत्वात् ।

अयमाशयः—द्विविधा हि मन्त्रे पितृपदप्रवृत्तिः ।

क्वचिज्जन्मकत्वोपाधिना उत्पादकमात्रे यथा शुन्धन्तां पितरः शुन्धन्तां प्रपितामहा इत्याश्वलायनीक्तोऽवनेजनमन्त्रे ।

क्वचित्तु पार्व्वणश्राद्धार्हत्वोपाधिना षट्सु पुरुषेषु यथा—अमीमदन्त पितर इत्यादौ तत्र एतत् प्रेतश्राद्धमित्यादिवचनादुक्तरीत्या प्रेतपदवत्त्वेन देवतात्वावगमात् सम्बन्धवाचकपदस्थाने प्रेतपदविधानाज्जनकत्वोपाधिप्रयुक्तपितृपदवति मन्त्रे प्रेतपदं सिद्धमेव पार्व्वणार्हत्वोपाधिप्रयुक्तपितृपदवति तु मन्त्रे तद्रूपेण देवतात्वस्य प्रेतश्राद्धे बाधितत्वात् प्रेतवाचिना समवेतार्थ-

नैव प्रेतपदेनोहः। अयञ्च ऊहो न्यायानुसारादेव कार्य्यः। न्यायस्तु प्रकृतौ दृष्टार्थकस्य पदस्य विकृतावसमवेतार्थतया पदान्तरप्रक्षेपेण समवेतार्थकरणम्।

यथा—

अग्नये त्वाजुष्टं गृह्णामीति मन्त्रे सौर्य्यचरौ सूर्य्यपदप्रक्षेपः।

स चोहः क्वचित् प्रकृतेः क्वचिद्वचनस्य क्वचिदुभयोः, क्वचित् प्रकृतावसमवेतार्थस्य हुँफड़ादिवददृष्टार्थमात्मत्वाद्विकृतावपि नोहः। तत्र प्रकृतौ यथा—

एतद्वः पितरो वास इत्यत्र पार्व्वणोद्देश्यत्वोपाधिप्रयुक्ते पितृशब्दे प्रेतशब्दमात्रोहः। क्वचिद्बहुवचनस्य तु

एतद्वः पितरो वास इति जल्पन् पृथक् पृथक्।

इति ब्रह्मपुराणे प्रत्येकविनियुक्ततया प्रकृतावनर्थकत्वान्नोहः।

अतएव सांवत्सरिके पितृशब्दस्य समवेतार्थतया मन्त्रोऽयमविकृत एव पठनीयः।

तथा तिलोऽसीति मन्त्रे—हे तिल त्वं स्वधया स्वधाकारेण पृक्तः सम्बद्धः सन् नोऽस्माकं पितॄन् पार्व्वणोद्देश्यान् लोकान् जनान् प्रीणाहि इत्यर्थवचनात् प्रेतश्राद्धेऽसम्बद्धार्थ*पितृशब्दस्थाने प्रेतशब्दोहो बहुवचनस्य तु नोहः। एकैकस्मिन् तिलावापमति तिलोऽसीति पारस्करगोभिलवचनात्—

विकिरेत्तेषु च तिलान् तिलोऽसीति जपन् क्रमात्।

इति ब्रह्मपुराणाच्च प्रत्येकविनियुक्ततया प्रकृतावानर्थक्यात्॥

* क पुस्तके प्रेतश्राद्धासम्बद्धार्थे।

वचनस्य यथा सांवत्सरिके अमीमदन्तेत्यत्र अमीमदत पिता यथाभागमावृषायिष्टेत्येकवचनोहः।

यथा चात्र पितर इत्यत्र अत्र पितर्मादयस्व यथाभागमावृषायस्वेति नमो वः पितर इत्यत्र नमस्ते पितरिति स्वधास्थ तर्पयत मे पितॄनित्यत्र पितरमिति।

प्रेतश्राद्धे तु एष्वेव मन्त्रेषु द्वयोरेव प्रकृतिवचनयोरूहः। यथा अमीमदत प्रेतो यथाभागमावृषायिष्ट इत्यादि। देवताभ्यः पितृभ्य इत्यादि मन्त्रे तु नोहः अग्निष्वात्तादिपितृगणनमस्कार-रूपार्थस्य प्रेतश्राद्धेऽप्यबाधितत्वात्। एवं ये समाना इति सपिण्डनमपि।

एतच्चायमूलकमेव विष्णुवचनं एतावन्मन्त्रानुद्देशैर्योद्दिष्ट इति। मन्त्रानयोर्बहुवचनात्तानेकवदेकवचनवत् यथा स्यात् उद्देश विज्ञातान् कुर्य्यादित्यर्थः।

एकस्मिन् बहुवचनस्यासमवेतार्थतया प्रकृतौ दृष्टार्थस्य मन्त्रस्य विकृतौ बहुवचनस्थाने एकवचनोह इति न्यायसिद्ध एवेति।

अतएव पितादित्रिकस्य श्राद्धमभिधाय विष्णुः—

मातामहानामप्येवं श्राद्धं कुर्य्याद्विचक्षणः।
मन्त्रोहेन यथान्यायं शेषाणां मन्त्रवर्ज्जितम्॥

शुन्धन्तां पितरः शुन्धन्तां पितामहाः शुन्धन्तां प्रपितामहा इत्यत्र जनकत्वोपाधिप्रयुक्तपित्रादिपदेषु मातामहादिपदोहो बहुवचनस्य तु नोहः प्रकृतावनर्थकत्वात्।

नमो वः पितर इत्यादौ न मातामहादिपदोहः कार्यः

पार्व्वणार्हत्वोपाधिप्रयुक्तस्य पितृपदस्य मातामहादिष्वपि समवेतार्थत्वात् ।

न च पितरेतत्तेऽर्घ्यं पितामहैतत्तेऽर्घ्यमित्यादौ न मातामहादिपदोह इति केनचिदुक्तमुपादेयम् ।

एतस्याभिलापमात्रत्वेन मन्त्रत्वाभावात् मन्त्रत्वे च शेषाणां मन्त्रवर्जितमिति भ्रात्रादिश्राद्धे उत्सर्गवाक्यस्यापि वर्जनप्रसङ्गात् ।

अयमेव विधिः प्रोक्तः शूद्राणां मन्त्रवर्जितः ।

इति वराहपुराणात् शूद्रस्योत्सर्गवाक्यनिषेधापत्तेश्च । तस्मादपौरुषेयग्रन्थविशेष एव मन्त्रशब्दो मुख्योऽन्यत्र गौणः ।

तथाच—

मन्त्रो वेदविशेषे स्यादित्यमरकोषः ।

नन्वेवं न्यायानुसारात् भ्रात्रादीनामपि श्राद्धे मन्त्रोहो भवत्वित्याशयः शेषाणां मन्त्रवर्जितमिति शेषाणां पितृव्यतिरिक्तानां मातृभ्रातृपितृव्यमातुलादीनां श्राद्धे ऊहयोग्यपितृपदवन्मन्त्रो न प्रयोज्य एव न पुनरूहो न तु पितृपदरहितोऽप्यप्रयोज्यो ऽप्रकृतत्वात् ।

अत्र केचित्—

स्त्रीणाममन्त्रकं श्राद्धं तथा शूद्रासुतस्य च ।
द्विजातेराज्ञताऽ*देशाच्च कुर्युस्तथैव च ॥

* क पुस्तके वा मन्त्रदेयात् ।

इति वचनात् स्त्रीणां सकलश्राद्ध एव सकलमन्त्रपाठो नास्तीति वदन्ति। तन्मन्दं वचनस्यामूलत्वात् सकलसंग्रहेष्वदृष्टत्वात्—

नैनं व्याहारयेद्ब्रह्म स्वधानिनयनादृते।

इति मनुनाऽनुपनीतस्य श्राद्धे मन्त्रपाठविधानविरोधाच्च।

शूद्रासुतस्य ब्राह्मणकर्तृकश्राद्धनिषेधाच्च।

यथादिपुराणे—

ब्राह्मणस्त्वन्यवर्णानां न करोति कदाचन।
कामाल्लोभात् भयात् स्नेहात् कृत्वा तज्जातितां व्रजेत्॥
पुत्राः कुर्वन्ति विप्राय क्षत्रविट्शूद्रयोनयः।
स तादृशेभ्यः पुत्रेभ्यो न करोति कदाचन।
स्वमाता कुरुते तेषां तेऽपि तस्याश्च कुर्व्वते॥

शूद्रान्वष्टकादौ तु मातृपदे उहयोग्यमन्त्रस्यैव निषेधात् सुतरां नोह एव आवाहनमन्त्रस्यापि तत्पदे बाधः।

यच्च कैश्चिन्मार्कण्डेयपुराणे—

सर्व्वाभावे स्त्रियः कुर्य्युः स्वभर्तृणाममन्त्रकम्।

इति वचनं पूर्व्वोक्तमाशङ्क्य
स्त्रीणामप्येवमेवैतदेकोद्दिष्टमुदाहृतम्।

इति वचने एवमेवामन्त्रकमिति व्याख्याय स्त्रीदैवतैकोद्दिष्टमन्त्रपाठो नास्तीत्युक्तम्।

तत्पुराणस्य पौर्व्वापर्य्यमनालोच्य प्रमादकृतमेव।

तथा मार्कण्डेयपुराणे—

मृताहनि च कर्त्तव्यमेकोद्दिष्टं शृणुष्व तत्।
दैवहीनं तथा कार्य्यं तथा चैकपवित्रकम्॥
आवाहनं न कर्त्तव्यमग्नौकरणवर्ज्जितम्।
प्रेतस्य पिण्डमेकञ्च दद्यादुच्छिष्टसन्निधौ॥
अभिरम्यतां विसर्गे स्यादूयुस्तेऽभिरताः स्म ह।
सपिण्डीकरणं कार्य्यं तस्यापि विधिरुच्यते॥
गन्धोदकतिलैर्युक्तं तत्र पात्रचतुष्टयम्।
कुर्य्यात् पितॄणां त्रितयमेकं प्रेतस्य पुत्रक॥
पात्रत्रये प्रेतपात्रमर्घ्यञ्चैव प्रसेचयेत्।
ये समाना इति जपन् शेषं पूर्व्ववदाचरेत्॥
स्त्रीणामप्येवमेवैतदेकोद्दिष्टमुदाहृतम्।
सपिण्डीकरणं तासां पुत्राभावे न विद्यते॥
प्रतिसंवत्सरं कार्य्यमेकोद्दिष्टं नरैः स्त्रियाः।
मृताहनि यथान्यायं नृणां यद्वदिहोदितम्॥
पुत्राभावे सपिण्डास्तु तदभावे सहोदकाः।
कुर्य्युरेतं विधिं सम्यक् पुत्रस्यापि सुतासुताः॥
मन्त्राभावे स्त्रियः कुर्य्युः स्वभर्त्तॄणाममन्त्रकम्।
तदभावे च नृपतिः कारयेदकुटुम्बिनाम्।
तज्जातीयैर्नरैः सम्यक् दाहाद्याः सकलाः क्रियाः॥

पात्रत्रये पितॄणामिति शेषः पूर्व्ववत् पार्व्वणवत् शेषं पितृणा-माचरेत्।

एवमेवोक्तरीत्या स्त्रीणामप्येकोद्दिष्टं कार्य्यं किन्तु तासां

स्त्रीणां पुत्राभावे सपिण्डनं नास्तीति पुत्राभाव इत्यत्र पत्यभावो बोद्धव्यो वक्ष्यमाणपैठीनसिवचनात्। एतं दाहादिकं कार्य्यं विधिं सपिण्डसहोदकाभावे आत्मनः पुत्रस्य च सुतायाः सुता दौहित्राः कुर्य्युः।

तेन पुत्रपत्नीदुहितॄणामभावे दौहित्राधिकार इत्याधुनिकोक्तं हेयमेवेति शुद्धिकौमुद्यां विवृतमस्माभिः।

सर्व्वाभाव इति स्त्रियोऽप्यसवर्णाः सजातीयैर्मृतजातीयैरित्यर्थः।

एकोद्दिष्टयाद्य सामिषेण कर्त्तव्यं यथा भविष्ये—

सपिण्डीकरणं यावत् श्राद्धं प्रेतस्य त्विदम्।
पक्वामेनैव कर्त्तव्यं सामिषेण द्विजातिभिः॥

---

## अथैकोद्दिष्टपरिपाटी।

वराहपुराणे—

श्वः करिष्य इति ज्ञात्वा ब्राह्मणामन्त्रणक्रिया।
अस्तङ्गते तथादित्ये गत्वा विप्रस्य मन्दिरम्॥
दत्त्वा पाद्यञ्च विधिवन्नमस्कृत्य द्विजोत्तमम्।
गतोऽसि दिव्यलोकं त्वं कृतान्तविहितात्पथः॥
मनसा वायुभूतेन विप्रे त्वाहं नियोजये।
पूजयिष्यामि भोगेन एवं विप्रं निमन्त्रयेत्॥

पादप्रक्षालनं तैलेन* विप्रस्य हितकाम्यया।
प्रभातायाञ्च शर्व्वर्य्यामुदिते च दिवाकरे॥
श्मश्रुकर्म्म कारयित्वा नखच्छेदमतःपरम्।
स्नपनाभ्यञ्जने दद्याद्विप्राय विधिपूर्व्वकम्॥

मात्वा निश्चित्येत्यर्थः। अत्र विप्र इत्येकवचनं विप्रमन्दिर-गमनापेक्षया एकस्यैव तत्रयात् दैवद्वयविप्राद्यभावाद्वा श्रेयं पार्व्वणातिदेशप्राप्तयथाप्रत्ययुग्मब्राह्मणबाधे प्रमाणाभावात्।

एतेन वराहपुराणे—विप्र इत्येकवचनादेकोद्दिष्टे एकस्यैव विप्रस्य निमन्त्रणम्।

अप्यौघव्ययगमेऽयुग्मान् ब्राह्मणान् भोजयेत्।

इति विष्णुवचनन्तु बहुत्वविषयमिति मैथिलमतमपास्तम्।

अतएव पारस्करगोभिलौ—

अभिरम्यतामिति विसर्गोऽभिरताः स्म इत्यपरे।

याज्ञवल्क्योऽपि—ब्रूयुस्तेऽभिरताः स्म ह।

भविष्ये—

एकोद्दिष्टन्तु यच्छ्राद्धं तन्नैमित्तिकमुच्यते।
तदप्यदैवतं †कार्य्यमयुग्मानाशयेद्द्विजान्॥

मार्कण्डेयपुराणम्—

नैवाग्नौकरणं तत्र तथावाहनवर्ज्जितम्।
अपसव्यञ्च तत्रापि भोजयेयुजो द्विजान्॥

---

* ग पुस्तके धारो वस्तुना।
† ख पुस्तके तदप्यदैवं कर्त्तव्यम्।

ब्रह्मपुराणे —

भवद्भिः क्षणः क्रियतां कश्चिदिति चामन्त्रयेद्द्विजान्।

वराहपुराणे—

आगतश्च द्विजं दृष्ट्वा कर्त्तव्या स्वागतक्रिया।
अर्घ्यं पाद्यं ततः कृत्वा हृष्टतुष्टेन माधवि॥
आसनञ्चोपकल्पेत मन्त्रेण विधिपूर्व्वकम्।

अत्रासने देवराजाभ्यनुज्ञातो
विश्रम्यतां द्विजवर्य्यानुपहाय।
प्रसादये त्वासनं स्वच्छ पूतं
ह्यामाग्निशुद्धेन करेण विप्र॥

आतपार्थं ततः छत्रं ब्राह्मणाय प्रदीयते।
पश्चादुपानहौ दद्यात् पादस्यार्थकरे शुभे॥
सुतप्तवालुकां भूमिमसिकण्टकितां तथा।
सन्तारयति दुर्गाणि प्रेतं ददुपानहौ।
तिलोपचारं कृत्वा तु विप्रस्य नियतात्मनः*।
नामगोत्रमुदाहृत्य प्रेताय तदनन्तरम्॥
भौमप्रमाह्वाययेद्भूमिं दर्भहस्तोऽथ भूतले।
ब्रह्मलोकं परित्यज्य गतोऽसि परमां गतिम्॥

अर्घ्यं पूजार्हद्रव्यं दूर्व्वाक्षतगन्धपुष्पादि हृष्टतुष्टेन मनसा आसनं कल्पयेदित्यन्वयः। माधवीति पृथिवीसम्बोधनम्।

* ख पुस्तके नियतात्मना।

ब्राह्मणोपवेशनमन्त्रमाह—

अत्रासने इति—तत आसन इति आसनदानात् परमर्घ-दानात् प्राक् छत्रमुपानहौ ब्राह्मणाय दद्यात् न तु प्रेताय ब्राह्मणाय प्रदीयते इत्यभिधानात्। अतएवार्घ्यदाने—नामगोत्र-मुदाहृत्य प्रेताय तदस्यामित्युक्तम्।

अत्र च श्राद्धप्रयोगमध्येऽपि वचनाद्दानक्रिया तत्र प्रेतस्यातप-वारणकामनया छत्रदानमुपानद्दानन्तु सुतप्तवालुकासिकण्टकित-भूदुर्गसन्तरणकामनया सदक्षिणं श्राद्धियब्राह्मणाय कार्य्यम्। तिलोपचारमर्घ्यं विप्रस्य हस्ते नियतात्मना एकाग्रमनसा प्रेताय प्रेतमुद्दिश्य दद्यादित्यन्वयः। भूमाविति पृथिवीसम्बोधनं भूतले दर्भहस्तो दर्भोपरिनिहितहस्त इत्यर्थः। मन्त्रमाह इहलोक-मिति आवाहननियुक्तस्यास्य प्रकृतावाहनप्रकाशनाभावात् अदृष्टार्थमात्रतया स्त्रीप्रेतेऽपि न लिङ्गोहः कार्य्य इति श्राद्ध-चिन्तामणिः।

एतच्च भूमौ दर्भेषु प्रेतावाहनं गतोऽसि दिव्यलोकं त्वमित्या-दिना प्रागुक्तम्।

निमन्त्रणदिने विप्राङ्गे प्रेतावाहनं अत्रासन इत्यादिना विप्रो-वेशनं छत्रोपानद्दानं वक्ष्यमाणप्रेतोपयुक्तशय्यासनाद्यर्पणञ्चाद्य-श्राद्ध एव नेतरप्रेतश्राद्धे आद्यश्राद्धमधिकृत्य विहितत्वात् पारस्कर-गोभिलादिभिः प्रेतैकोद्दिष्टेऽनुक्तत्वाच्च।

अन्ये तु—

पारस्करादिभिरनुक्तत्वादहारपुराणोक्तं शाखिविशेषव्यव-स्थितमाहुः। तन्न

गृह्याविरुद्धस्य पौराणिकधर्मस्य सर्व्वशाखिसाधारणत्वात्।

वृहस्पतिः—

वस्त्रालङ्कारशय्यादौ पितुर्यद्वाहनायुधम्।

गन्धमाल्यैः समभ्यर्च्य श्राद्धभोक्त्रे निवेदयेत्*॥

भोजनस्थानेकविधं† कारयेद्दाऽन्नानि च।

यथाशक्ति प्रदद्याच्च गोभूहेमादिकान्तथा॥

श्रोत्रिया भोजनीयाश्च नव सप्त त्रयोदश।

ज्ञातयो बान्धवा निस्वास्तथैवातिथयोऽपरे॥

प्रदद्याद्दक्षिणां तेषां सर्व्वेषामनुरूपतः।

गन्धमाल्यैरित्यनेन वस्त्रादिदानानन्तरं पितुरुपभुक्तवस्त्रादि-प्रतिपादनमुक्तम्।

भोजनञ्चेति वक्ष्यमाणश्रोत्रियादिभोजनार्थं गृहान्तरे प्रभूत-मन्नादिकं कारयेत्।

यथाशक्तीति, गोभूहेमादिदानमपि प्रेतगतकालोद्देशेन कुर्य्यात्।

यथा रामायणे—

ततोद्दिश्य पितरं ब्राह्मणेभ्यो धनं ददौ।

महार्हाणि च रत्नानि गाश्च वाहनमेव च॥

---

* ख पुस्तके श्राद्धभोक्तृर्विधाय।

† ख पुस्तके भोजनस्थापि विविधम्।

यानानि दासीदासांच वेश्मानि सुमहान्ति च।
भूयशानि च मुख्यानि राज्ञस्तस्यौर्द्ध्वदेहिके॥

श्रोत्रिया भोजनीया इत्यवदानमुक्तम्। नव सप्त त्रयोदशेति विकल्पो फलभूमार्थः प्रदद्याद्दक्षिणामित्यनेन श्रोत्रियादिभोजनदक्षिणोक्ता।

पारस्करगोभिलौ—

अथैकोद्दिष्टमेकोऽर्घ्य एकं पवित्रं एकः पिण्डो नावाहनं नाग्नौकरणं नात्र विश्वेदेवाः स्वदितमिति तृप्तिप्रश्नः सुस्वदितमित्यनुज्ञानमुपतिष्ठतामित्यक्षय्यस्थाने अभिरम्यतामिति विसर्गोऽभिरताः स्म इत्यपरे।

पार्व्वणविहिततिलेनार्घ्यपट्कप्राप्तावेकोद्दिष्टा-पूर्व्वं एककरणधर्म्माकाङ्क्षायामेकस्यैव प्राप्तिरिति न्यायमूलमर्घ्यमाह एकोऽर्घ्य इत्यादि।

न तु तथाप्यर्घ्यैक्यादेवातिदेशागतपवित्रैकत्वप्राप्तावेकं पवित्रमिति व्यर्थम्।

अत्र मैथिलाः—

श्रुतिप्राप्तेऽर्थे प्रकरणादीनामनवकाशादेकं पवित्रमिति सार्थकमेव अन्यथा एकोद्दिष्टत्वादेवैकार्घ्यप्राप्तावेकोऽर्घ्य इत्यादपि व्यर्थमापद्येत। तन्मन्दम्—

श्रुतिलिङ्गवाक्यप्रकरणस्थानसमाख्यानां पारदौर्ब्बल्यमर्थे विप्र *

* अ पुस्तके अर्थविप्रकर्षात्।

कर्षादिति न्यायात् श्रुतिप्रामाण्येन प्रकरणादिमात्रमर्थान्तरं बाध्यते।

यत्र तु प्रकरणादिमात्र एवार्थे श्रुतिस्तत्र श्रुतेस्तन्मूलकत्वमेव इत्येकोद्दिष्टत्वादेवतयोरर्थैक्यपिण्डैक्ययोः श्रुतिर्न्यायमूलाऽस्तु पवित्रैक्ये तु न तथा पवित्रस्यार्थ्यपदार्थघटिततया एकोऽर्घ्य इति श्रुत्यैव पवित्रैकत्वप्रामाण्ये पवित्रमिति व्यर्थमेवेति।

आधुनिकास्तु—

मन्त्रोऽधिकारो भवति दैवे पैत्रे च कर्म्मणि।
पवित्राणां तथा जप्ये होमे च विधिचोदितेः॥

इति विष्णुवचने पवित्रशब्दस्य मन्त्रवाचकत्वदर्शनादत्रापि पवित्रपदेन मन्त्र उच्यते ततश्च एकवचनवन्मन्त्रानूहेत इति विष्णुवचनसमानार्थकत्वमेकं पवित्रमित्यस्येति सार्थकत्वमाहुः।

तन्मन्दम्—

एकपदेनैकसंख्यावाचिका विभक्तिर्लक्ष्यते तया च तद्वत्पदं तेन च तद्वान् मन्त्र इति परम्परासम्बन्धेन लक्षणात्रयम्। ततश्च वक्ष्यमाणरीत्या पवित्रपदे दलमात्रलक्षणयैवोपपत्तावस्यानेकलक्षणोपहसनीयः पक्षः।

न चास्मन्मते †[ श्रुतिभेददोष आशङ्कनीयः पार्व्वणादिशेषविधेः प्रकृतत्वादूहन्यायापवादकत्वे हि वैयर्थ्यप्रसङ्गात्।

वस्तुतस्तु अतएव वैयर्थ्यभयात् पवित्रशब्दे स्वावयवभूतदल-

* ख पुस्तके न।
† क पुस्तके [ ] चिह्नितांश पतित।

मात्रलक्षणा।] न च स्वाधीने वाचकशब्दप्रयोगे सति पुराण-संहितादिषु सर्व्वेषां मुनीनामेकमत्या पवित्रपदे लक्षणाप्रयोगोऽन्वेय इति वाच्यम्।

विधौ मन्त्रे च सर्व्वत्र पवित्रशब्दस्य दलमात्रे प्रयोगात् शुक्लादिशब्दवन्निरूढलक्षणेयम्।

तथा वाचकशब्दवदसङ्कुचितप्रयोग एव। उक्तञ्च निरूढलक्षणा शक्तितुल्येति सर्व्वपिष्टाधिकरणे।

यथा गोभिलः—

बर्हिषः प्रादेशमात्रे पवित्रे कुरुते ओषधिमन्तर्धाय छिनत्ति न नखेन पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ तयोर्निरद्भिरनुमार्ष्टि विष्णोर्मनसा पूते स्थ इति।

अत्र विधौ मन्त्रे च द्विवचनानुपपत्तेः प्रादेशविधानानर्थक्याच्च दलमात्रपरता पवित्रशब्दस्य।

पारस्करोऽपि—

*पर्य्यवदासाय पवित्रे कृत्वेति।

दर्भपरतैव कुतो न भवतीति चेत् बर्हिष इति षष्ठ्या अवयवावयवसम्बन्धप्रतीतेः। †[अनन्तर्गर्भितादयस्तु परिशिष्टवचनाल्लभ्यन्ते।]

श्राद्धविवेकेऽप्येवम्।

मिताक्षरायामपि—

एकोद्दिष्टं दैवहीनमेकार्घ्यैकपवित्रकम्।

इति याज्ञवल्क्यवचनव्याख्याने दललक्षणा लिखिता।

---

* क पुस्तके पर्य्यवदस्य। † च पुस्तके [ ] चिह्नितांशः पतितः।

अनिरुद्धहलायुधयोरपि मतमेतत्।

अपिपाले पारिजाते च महाभारतनाम्ना वचनं लिखितम्—

पार्व्वणेषु तु सर्व्वेषु पवित्रं द्विदलं स्मृतम्।

नैकोद्दिष्टे तु तत्प्रोक्तं पवित्रं द्विदलं नृप॥

अत्रातिदेशप्राप्तयोः पवित्रच्छेदनमोचणमन्त्रयोर्द्विवचनस्यासमवेतार्थत्वात्—ॐ पवित्रासि वैष्णवी विष्णोर्मनसा पूतमसीत्यूहः।

व्याख्यातश्चायं मन्त्रः प्रकृतौ सायनभाष्यकृता—

हे पवित्रे युवां वैष्णव्यौ विष्णुदेवते स्थः स्त्रीलिङ्गत्वं छान्दसमिति अतएव न तस्योहः प्रकृतावसमवेतार्थत्वादित्याधुनिकाः।

वस्तुतस्तु भाष्यकृतैवं व्याख्यातमित्यत्रापि प्रमाणं नास्ति किन्त्वनिरुद्धादीनां प्राचां लिखनानुसारात् हे वैष्णव्यौ कुशौ युवां प्रादेशप्रमाणाच्छेदनेन पवित्ररूपे भवथ इत्यर्थात् पवित्रमसि वैष्णवीत्यूह एव साधीयानिति प्रतीमः।

एवं वैष्णव्यावित्यत्र लिङ्ग छान्दसमिति परिहृतं भवति।

अत्र च न्युब्जीकरणं न कार्यं प्रपितामहपात्रेण पिधाय प्रतिष्ठापयतीति शौनकसूत्रात् पिधानन्युब्जीकरणयोः समानकर्त्तृकत्वावगमात् पितृभ्यः स्थानमसीति न्युब्जं पात्रं करोत्यध इति याज्ञवल्क्योऽधःस्थितं पितृपात्रं न्युब्जं करोतीत्यन्वयादूर्द्धस्थितपिधानपात्रापेक्षात् तदभावे न्युब्जीकरणबाधात्।

न्युब्जीकरणबाधे च संस्रवप्रकरणस्य*बाधः प्रयोजनाभावात्

---

* ख पुस्तके संस्रवस्य—।

अतएवाग्निकरणात्परमपहता इत्यावाहनाद्यमूर्त्ततिलविकरण-मपि क्रियते।

यत्तु निरुक्तेन सामगानां पिण्डे प्रेतावाहनम्—एहि प्रेतेत्येक-वचनेन यल्लिखितं तदपि प्रमादकृतमेव अविशेषेण निषेधात् विनिगमनाविरहात्।

नचैवः पिण्डे नावाहनं नाग्नौकरणमिति गोभिलसूत्रादग्नौ-करणपूर्वकालीनमावाहनं निषिध्यते न तु परकालीनमिति वाच्यम्।

एवं पिण्ड इत्यस्य परतोऽभिधानात् पिण्डावाहनस्यैव निषेध इति विपरीतोत्तरस्य दुर्निवारत्वात्।

किञ्च ब्रह्मपुराणे—

> तथापि दैवरहितमेकार्घ्यैकपवित्रकम्।
> नैवाग्नौकरणं तत्र तथावाहनवर्जितम्॥

इत्यनेनाग्नौकरणस्य पश्चादावाहननिषेध उक्तस्तस्मादविनि-गमनाविरहादावाहनमात्रस्यैव निषेधः।

एतच्च वाचस्पति-श्रीदत्तप्रभृतीनां शूलपाणि-हलायुधादीनाञ्च सम्मतम्।

नाग्नौकरणमिति—अग्नौकरणनिषेधात् पात्रालम्भनबाध इति प्रागेव लक्षणव्याख्यावसरे विवृतम्। स्वदितमितीति पार्व्वणे भोजनानन्तरं यथा: स्व इति यः प्रश्नस्तत्स्थाने स्वदितमिति वाच्यम्।

ब्रह्मपुराणे—

भवद्भिः स्वदितं कच्चिदिति चामन्त्रयेद्द्विजान्।

ऊचुः सुस्वदितं विप्राः प्रेतायाक्षय्यमस्त्विति॥

अक्षय्यमस्त्विति शाख्यन्तरीयम्। अत्र शेषान्नप्रश्नो न कार्य्यः तद्भोजनप्रतिषेधात्।

यथा शातातपः—

प्रेतश्राद्धे यदुच्छिष्टं ग्रहे पर्य्युषितञ्च यत्।

दम्पत्योर्भुक्तशेषन्तु न भुञ्जीत कदाचन॥

उच्छिष्टं *श्राद्धावशिष्टं पाकपात्रस्थं ग्रहे चन्द्रसूर्य्योपरागे दम्पत्योर्गृहस्वामिनोर्भोजनानन्तरं यदवशिष्टं पाकस्थालीस्थम्।

किञ्च—

एकोद्दिष्टस्य शेषन्तु ब्राह्मणेभ्यः समुत्सृजेत्।

पश्चात् स्वयञ्च भुञ्जीत पुनर्मङ्गलभोजनम्॥

इति देवलेन ब्राह्मणेभ्यः प्रेतश्राद्धशेषदानविधानात् स्वस्य तु मङ्गलभोजनविधानेन प्रेतश्राद्धशेषस्यामाङ्गलिकत्वकथनाच्च तद्भोजननिषेध उक्तः।

केचित्तु—पुनःशब्दादेकोद्दिष्टशेषं प्राश्य पुनः पाकान्तरेण मङ्गलभोजनं कुर्य्यादित्यवगमात् शेषप्रश्नोऽपि कार्य्यं इत्याहुः।

तन्न—

शातातपवचनविरोधेन तदेकवाक्यतया पुनःशब्दस्य भिन्न-

* क पुस्तके मुक्तावशिष्टम्।

क्रमार्थत्वावधारणात् पूर्व्वार्द्धे ब्राह्मणेभ्यः शेषदानविधानाच्च स्वयन्तु मङ्गलभोजनमेव कुर्य्यान्न तु प्रेतशेषभोजनमित्यर्थः।

अतएव भुञ्जीत पितृसेवितमिति याज्ञवल्क्योक्तशेषं न तु श्राद्धशेषमिति। सांवत्सरिके तु शेषमग्रमस्तद्भोजनञ्च कर्त्तव्यं प्रेतश्राद्धशेषस्यैवामाङ्गलिकत्वेन निषेधात् सांवत्सरिकशेषस्य तु माङ्गलिकत्वात्।

*तथा पिण्डाद्धारणकुशमूलेन लेपभागिभ्यः करप्रोञ्छनं न कार्य्यम्।

ततः पितृत्वमापन्नः स चतुर्थस्तदा पुमान्।
अग्निष्वात्तादिमध्यात्तु प्राप्नोत्यमृतमुत्तमम्॥

इति मत्स्यपुराणादग्निष्वात्तादिमध्यप्रविष्टानां वृद्धप्रपितामहानां प्रेतावशिष्टलेपभागित्वासम्भवात्।
तर्हि सांवत्सरिकश्राद्धे का गतिरिति चेत् सत्यम्—

यः सपिण्डीकृतं प्रेतं पृथक् पिण्डे नियोजयेत्।
विधिघ्नस्तेन भवति पितृहा चोपजायते॥

इति शातातपेन पृथक्पिण्डेन कृतसपिण्डीकरणानां योजननिषेधात्। अन्यथा—

अर्व्वाक् संवत्सराद्वृद्धौ पूर्णे संवत्सरेऽपि वा।
ये सपिण्डीकृताः प्रेता न तेषान्तु पृथक्क्रिया॥
न पृथक् पिण्डदानन्तु तस्मादूर्द्ध विधीयते॥

---

* क पुस्तके तथेत्यादि पङ्क्तिद्वयं पतितम्।

इति प्राग्वचने पूर्णसंवत्सरे सपिण्डनोक्तेनिरग्निविषये मृताहेतरस्थले एकोद्दिष्टनिषेधान्मृताहे त्वेकोद्दिष्टप्राप्तेः—

यः सपिण्डीकृतमित्युत्तरवचनमनर्थकं स्यात्।

तेन *प्रेतश्राद्धे सांवत्सरिके च करप्रोच्छनं मैथिललिखितं हेयमेव।

उपतिष्ठतामितीति—पत्वच्यस्थाने इति निर्देशादघ्यमुपतिष्ठतामिति केषाञ्चिद्भ्रमो हेय एव।

तथा मात्स्ये—

एकं पवित्रमेकोऽर्घ्य एकः पिण्डो विधीयते।

उपतिष्ठतामिति तदा देयं पश्चात्तिलोदकम्॥

पिण्डदानस्य पश्चादित्यर्थः।

अभिरम्यतामितीति—विसर्गो विसर्जनं वाजे वाजे इति मन्त्रस्थानेऽभिरम्यतामिति वाच्यमित्यर्थः। अपरे भोः ब्राह्मणा ब्रूयुरिति शेषः।

आश्वलायनपरिशिष्टम्—

प्रेतश्राद्धेषु सर्वेषु न स्वधा नाभिरम्यताम्।

स्वस्त्यस्तु विसृजेदेवं सकृत् प्रणववर्जितम्॥

एकोद्दिष्टस्य पिण्डे तु अनुशब्दो न युज्यते।

पितृशब्दं न युञ्जीत पितृहा चोपजायते॥

न स्वधेति स्वधावाचननिषेधो न तु वाक्ये स्वधापदप्रयोग-

---

* ख पुस्तके तच्छ्राद्धे।

निषेध इति प्रागेव विवृतम्। नाभिरम्यतामिति बह्वृचविषयम्। तेषामेव प्राप्तत्वेन निषेधोपपत्तेः।

यथा पार्व्वणे हारीतः—

अभिरम्यतामित्येके इति। छन्दोगवाजसनेयिनोर्गोभिल-पारस्कराभ्यामेकोद्दिष्टेऽभिरम्यतामिति विसर्ग इत्यभिधानाच्च। न चाश्वलायनवचनं प्रेतैकोद्दिष्टविषयं पारस्करादिवचनं सांवत्सरिकविषयमिति कल्पतरूक्तं युक्तम्।

अभिरम्यतामिति विसर्ग इत्यभिधाय एतत् प्रेतश्राद्धमिति गोभिलविरोधात्। स्वस्त्यस्त्विति विसर्ज्जनं बह्वृचानामेव।

यदपि च प्रेतश्राद्धेषु सर्व्वेष्वित्यभिधानं तथाप्यतिदेशात् सांवत्सरिकेऽपि स्वधावाचननिषेध इति।

.अनुशब्दो ये चात्र त्वेत्यादिमन्त्रोपलक्षकः तस्य च निषेधः सामगविषय एव तेषामेव तत्प्राप्तेः, पितृशब्दमिति प्रागेव व्याख्यातम्।

अत्रोर्ज्जमिति द्वितीयजलाञ्जलिसेको न कार्य्यः स्वधावाचन-निवृत्त्या तन्निवृत्तेः।

तथाहि स्वधावाचनीयान् दर्भानास्तीर्य्य स्वधां वाचयिष्ये इति पृच्छति वाच्यतामनुज्ञातः पितृभ्यः पितामहेभ्यः प्रपितामहेभ्यः स्वधोच्यतामस्तु स्वधा इत्युच्यमाने एवापो निषिञ्चति।

इति पारस्करे स्वधावाचनार्थमास्तृतेषु दर्भेष्वेव सेकविधानात् तदभावे तदभावः सिद्ध एव।

तथा गोभिलेऽपि दर्भान् सपवित्रानास्तीर्य्य स्वधां वाचयिष्ये

इति पृच्छतीत्यादिकमुक्त्वा अस्तु स्वधेत्युच्यमाने स्वधानिनयने धारां दद्यादूर्जं वहन्तीरित्यनेन स्वधावाचनार्थं पिण्डोपर्य्यास्तृतदर्भे एव जलधारादानमुक्तम्।

आशीःप्रार्थनन्तु कर्त्तव्यमेव अतिदेशागतस्याबाधात्।

यत्तु—न पात्रमालभ्य जपति नाशिषः प्रार्थयेदिति प्रचेतोनाम्ना वचनं पठन्ति। तदमूलमेव सर्व्वसङ्ग्रहैष्वदृष्टत्वात्।

अन्यथा सांवत्सरिके कथमाशीःप्राप्तिरिति।

यदन्यद्वराहपुराणे—

आद्यश्राद्धारम्भे पृथिवीस्तवादिकमुक्तम्। तन्नावश्यकम्।

यथा तत्र—

शुचिर्भूत्वा तु विधिवत् स्नात्वा शान्त्युदकानि च।
प्रणम्य शिरसा देवं निवापस्थानमागतः॥
स्तोतव्यानि च मन्त्राणि मम भक्त्या व्यवस्थितः।
नमो नमो मेदिनि लोकधात्रि
भर्वि महि शैलगिरिधारिणि नमः।
धरणि काश्यपि जगत्प्रतिष्ठे
वसुधे नमोऽस्तु वैष्णवि भूतधात्रि नमः।
नमोऽस्तु ते सर्व्वसप्रतिष्ठे
निवापनावीचि नमो नमोऽस्तु ते॥
एवं स्तुत्वा शुभोष्टाय तव भक्त्या च सुन्दरि।
दद्यात्तिलोदकं तस्य नामगोत्रमुदाहरन्॥

अन्यच्च श्राद्धान्ते यदञ्जनकङ्कतिकादिदानं ब्राह्मणायोक्तं तदपि नावश्यकमिति न विस्तृतम् ।

---

## अथाम्बुघटश्राद्धम् ।

पारस्करः—

अहरहरन्नमस्मै ब्राह्मणायोदकुम्भञ्च दद्यात् पिण्डमप्येके निपृणन्ति ।

अस्मै प्रेताय प्रेतमुद्दिश्य ब्राह्मणाय दद्यात् प्रतिपादयेत् । अतएव श्राद्धमिदं तत्प्रकरणपाठात् क्वचित्पिण्डान्वयाच्च ।

अत्राहरहरिति सावनदिनपरं न तु तिथिपरं निरुपाधिप्रयुक्ताहःशब्दस्य दिवापरत्वात् तत्रैव शक्तेः ।

किञ्च—सूतकान्ताद्द्वितीयदिनमारभ्य कर्त्तव्यताऽस्य वक्ष्यते तस्य च सावनत्वात् तथैव न्याय्यत्वम् ।

अतएव सुतृप्ते प्रत्यहं तत्रेति वक्ष्यमाणवचनमपि सङ्गच्छते । अत्र च वक्ष्यमाणवचनेषु सर्व्वत्रान्नस्योदकुम्भस्य च स्वातन्त्र्येणोपादानादेतद्वचनेऽपि उदकुम्भः सधेति स्वतन्त्रयोरेवोत्सर्गवाक्ये ऽभिनिवेशः कर्त्तव्यः ।

अहन्यहनि यच्छ्राद्धं तन्नित्यमभिधीयते ।

इति भविष्यपुराणवचनादस्य नित्यत्वे सति—

नित्यश्राद्धमदैवं स्यादर्घ्यपिण्डविवर्ज्जितम् ।

इति बृहस्पतिवचनात् पिण्डनिषेधे प्राप्ते केचिच्छाखिविशेषाः पिण्डमपि निच्छन्ति ददतीत्यर्थः। तच पारस्करगोभिलयोरसम्मतम्।

तथा होमादिनिषेधमाह भविष्ये—

नित्यश्राद्धमहोमं स्याद्दातृभोक्तृव्रतोज्झितम्।

दातृभोक्तुश्च यच्छ्राद्धं व्रतम् नियमः पूर्व्वदिने एकभक्तादि श्राद्धदिने पुनर्भोजनाध्वगमनवर्ज्जनादि तद्रहितमित्यर्थः।

तथा काशीखण्डे—

नित्यश्राद्धं देवहीनं नियमादिविवर्ज्जितम्।
दक्षिणारहितं कार्य्यमर्घ्यपिण्डोज्झितं तथा॥

एतच संवत्सरपर्य्यन्तं प्रेतपदेन कार्य्यम्।

हारीतः—

मृते पितरि वै पुत्रः पिण्डमब्दं समाचरेत्।
अन्नं कुम्भञ्च विप्राय प्रेतनिर्द्देशधर्म्मतः॥

पिण्डदानं शाख्यन्तरीयमित्युक्तमेव। प्रेतनिर्द्देशधर्म्मतः प्रेतपदोल्लेखेनेत्यर्थः।

अत्र यदासपिण्डीकृतस्य प्रेतपदत्वेन दैवतात्वात् प्रेतपदप्राप्तिस्तथापि प्रेतनिर्द्देशधर्म्मत इत्युपादानं दृढ़ार्थं कृते सपिण्डनापकर्षे अर्व्वाक् सपिण्डीकरणमित्यादि पूर्व्वोक्तयाज्ञवल्क्यवचनादब्दपर्य्यन्तं क्रियमाणेऽम्बुघटश्राद्धे पितृत्वप्राप्तावपि प्रेतपदोल्लेखेनैव कार्य्यम्। न तु पितृपदोल्लेखेनेति व्यावर्त्तनार्थमिति प्रागुक्तम्।

इत्यञ्च प्रेतायान्नसमायुक्तमिति वक्ष्यमाणमत्स्यपुराणवचनमपि सङ्गच्छते नान्यथेति।

एतच्चाद्यश्राद्धदिनादारभ्य कार्य्यं तत्पूर्व्वमशौचेऽनधिकारात्।

मत्स्यपुराणे—सूतकान्ताद्दितीयेऽह्नीत्युपक्रम्य—

यावदब्दञ्च यो दद्यादुदकुम्भं विमत्सरः।
प्रेतायान्नसमायुक्तं सोऽश्वमेधफलं लभेत्॥

इत्यभिधानाच।

अतएवाब्दादर्व्वाक् किञ्चिन्न्यूनाब्दपरं एवमशौचान्तरपातेऽपि न देयमनधिकारात्। शुचिभूतेनापि पतितं न देयं द्वादशाह-श्राद्धवदावश्यकश्राद्धस्यैवाशौचान्ते देयत्वात्।

काम्यञ्चैतत् फलश्रवणात् यथा मार्कण्डेये—

प्रेतलोके च वसतिर्नृणां वर्षं प्रकीर्त्तिता।
क्षुत्तृष्णे प्रत्यहं तत्र भवतो भृगुनन्दन।
तदर्थमिह दातव्यं जलमन्नञ्च वत्सरम्॥

अत्र प्रत्यहं प्रेतस्यान्नोदकुम्भोपस्थितिः फलमुक्तं स्वगतमप्यश्व-मेधतुल्यफलं मत्स्यपुराणोक्तं यावदब्दकरणसाध्यम्।

एतच्चैकोद्दिष्टविधिना कार्य्यम्।

जावालः—

पिण्डयज्ञन्तु निर्व्वर्त्त्य मासिके श्राद्ध एव च।
श्राद्धं प्रतिदिनं चैव मातापित्रोर्मृताहनि।
असपिण्डीकृतं प्रेतमेकोद्दिष्टेन तर्पयेत्।

पितृयज्ञं तर्पणं निर्वर्त्त्य क्रियमाणे श्राद्धे अहरहःक्रियमाणे अभ्युदयश्राद्धे इत्यर्थः। तथा मातापित्रोर्मृताहनि मृताहविहित-मासिकश्राद्धे तथा संवत्सरमध्ये श्राद्धकरणेच्छायाम्—

असपिण्डीकृतं प्रेतमेकोद्दिष्टेन तर्पयेत्।

अन्ये तु पिण्डपितृयज्ञं निर्वर्त्त्य क्रियमाणे मासिकि दर्शश्राद्धे इति यावदिति व्याचक्षते।

एतन्मते प्रेतस्यैकोद्दिष्टविधिनाऽमावस्याश्राद्धकल्पने मूलभूत-श्रुतिकल्पनागौरवं दोष इति।

तदयं संक्षेपः—गायत्रीदैवताजपानुग्रासनदानगन्धादिदानार-श्रीदक्कुश्रीत्सर्गोश्याग्नौःप्रार्थनाविसर्ज्जनानीति।

---

## अथैकोद्दिष्टश्राद्धप्रयोगः।

पूर्व्वदिने निरामिषं सकृद्भुक्त्वा रात्रौ विप्रगृहं गत्वा पादौ प्रक्षाल्याचम्य गोमयोपलिप्तस्थाने प्राचीनावीती पातितवामजानु-र्दक्षिणामुखो दर्भपाणिराचान्तमुदङ्मुखं ब्राह्मणमुपवेश्य दक्षिण-जानु धृत्वा—

ॐ अद्येत्यादि अमुकगोत्रस्य प्रेतस्यामुकशर्म्मण आद्यैकोद्दिष्ट-श्राद्धे श्वः कर्त्तुं त्वाहं निमन्त्रये निमन्त्रितोऽस्मीति प्रति-वचनानन्तरम्।

ॐ गतोऽसि दिव्यलोकं त्वं कृतान्तविहितात्पथः।
मनसा वायुभूतेन विप्रे त्वाहं नियोजये॥

पूजयिष्यामि भोगैनेति विप्रदेहे प्रेतमावाह्य मव्वीयामेति

नियमान् श्रावयेत्। निमन्त्रितश्च यद्यविघ्नेन रजनी याति तदा सर्व्वमेतत् करिष्य इति वदेत्।

प्रेतावाहनन्त्वाद्यश्राद्ध एव नान्यत्र।

ततः परदिने सूर्य्योदयसमये स्नातमज्जनो यथाविधि तर्पण-पर्य्यन्तं स्नानं सन्ध्याञ्च निर्व्वर्त्त्य स्वशाखोक्तविधिना शान्तिं कृत्वा प्रेतोद्देशेन यथाशक्ति दानानि कृत्वा श्राद्धियब्राह्मणस्य श्मश्रु-नखादि कर्त्तनं कारयित्वा सुगन्धितैलोद्वर्त्तनादि ताम्रपात्रे कृत्वा ब्राह्मणाय दद्यात्।

ततो मध्याह्ने सुस्नातं विप्रं प्राङ्गणे शुचिः शुक्लवासा दर्भेषु तिष्ठन् स्वागतमिति पृच्छेत्।

सुस्वागतमिति तेनोक्ते स्वयमेव विप्रपादौ प्रक्षाल्य आचमनीयं दूर्व्वाक्षत गन्धपुष्पाणि दद्यात्।

पूर्व्वदिने निमन्त्रणाशक्तौ तदैव पूर्व्ववत् निमन्त्रयेत्। किन्तु सर्व्वायामस्थाने अक्रोधनैरिति नियमश्रावणं शूद्रब्राह्मणे तु स्वागतप्रश्नपाद्यादिदाननिमन्त्रणानां बाधः।

ततो द्विजपुरःसरो गृहं प्रविश्य पार्व्वणवच्छ्राद्धदेशं संस्कृत्या-द्याभिप्रायेण सिद्धमित्युक्ता दक्षिणाग्रैकदर्भयुक्ते दक्षिणामुखे आसने विप्रं दक्षिणकरे गृहीत्वा—

ॐ भवासने देवराजाभ्यनुज्ञातो
विशस्वतां द्विजवर्य्यानुग्रहाय च।
प्रसादये त्वासनं गृह्य पूतं
भानाभिवृद्धेन करेण विप्रः॥

इति मन्त्रेण इदमासनमत्रासहमित्युक्त्वा उदङ्मुखमुपवेशयेत् विप्रपादाधः कुशानास्तरेत्।

आद्ययाह एव अत्रासने इति पाठो नान्यत्र विप्राभावे तु केवलमासने कुशब्राह्मणस्थापनमासनसमीपे दीपं दद्यात्।

ततो यज्ञेश्वरमभ्यर्च्य ॐ यज्ञेश्वरो हव्यसमस्तेति पठित्वा अपहता इति अक्षतसितलान् सर्षपांश्च विकीर्य श्रीविष्णुः श्रीपुण्डरीकाक्षः श्रीहरिरिति कृत्वा रक्षार्थजलं ब्राह्मणसमीपे स्थापयेत्।

ततो गायत्रीजपमहं करिष्ये इति पृष्ट्वा कुरुष्वेत्यनुज्ञातः प्रणवव्याहृतिसहितां गायत्रीं जप्त्वा ॐ देवताभ्य इति त्रिर्जपित्वा कृताञ्जलिः—ॐ अद्येत्यादि अमुकगोत्रस्य प्रेतस्यामुकशर्म्मण आद्यैकोद्दिष्टश्राद्धं पक्वान्नेन सष्टतायुपकरणेन त्वयाहं करिष्ये कुशब्राह्मणे त्वयेति स्थाने कुशब्राह्मण इत्येव वदेत् कुरुष्वेति प्रतिवचनन्तु सन्निधापितब्राह्मणेनैव कार्य्यम्।

ततः अमव्याधेति पठित्वा सजलेन सर्व्वाण्यन्नादीनि प्रोक्षयेत्। ततः करक्षालनाय द्विजकरे जलदानं कुशविप्रे तदधः।

ॐ अमुकगोत्र प्रेतामुकशर्म्मन्नेतत्ते दर्भासनं स्वधेति द्विगुणभुग्नकुशत्रयात्मकमासनमुत्सृज्य कृतपाद्यासनोपरि दद्यात्।

तत उपवीती सव्यं तद्देवतां ब्राह्मणञ्च सम्पूज्य जलेन प्रोक्ष्य कुशतिलजलान्यादाय—ॐ अद्येत्यादि अमुकगोत्रस्य प्रेतस्यामुकशर्म्मणो मरणाशौचान्तात् द्वितीयेऽहनि अमुकगोत्रस्य प्रेतस्या-

मुकशर्मण आतपवारणकाम इदं छत्रमुत्तानाङ्गिरोदैवत-मर्चितममुकगोत्रायामुकशर्मणे ब्राह्मणाय तुभ्यमहं सम्प्रददे इति द्विजकरे कुशजलं दद्यात् स्वस्तीति द्विजोत्तरम्।

ॐ अद्येत्यादि कृतैतच्छत्रदानप्रतिष्ठार्थं दक्षिणामिदं काञ्चन-मग्निदैवतममुकगोत्रायामुकशर्मणे ब्राह्मणाय तुभ्यमहं सम्प्रददे इति दक्षिणां दद्यात्। ग्रहीता स्वस्तीत्युक्त्वा छत्रं दण्डे धृत्वा गायत्रीं कामस्तुतिञ्च पठेत्।

एवमेव प्रेतस्य सुतप्तवालुकाविकण्टकितभूमिदुर्गमक्लेश-काम उत्तानाङ्गिरोदैवते उपानहौ दद्यात्। ग्रहीता चोपानहा-वारोहेत्। एतच्च छत्रोपानहदानमाद्यश्राद्ध एव नान्यत्र।

ततः प्राचीनावीती दक्षिणाग्रकुशोपरि पात्रमेकं संस्थाप्य कुशस्यैकं दलं गृहीत्वा ॐ पवित्रमसि वैष्णवीति नखव्यतिरेकेण छित्वा ॐ विष्णोर्मनसा पूतमसीत्यभ्युक्ष्य अर्घपात्रे दक्षिणाग्रं निधाय शन्नोदेवीति जलं दत्त्वा ॐ तिलोऽसीति मन्त्रेण पितृनिति स्थाने प्रेतानित्यूहितेन तिलान् दत्त्वा तूष्णीं गन्धपुष्पे निक्षिप्य कुशान्तरेणाच्छाद्य अच्छिद्रोऽयमर्घोऽस्तु इत्युक्त्वा दर्भसुदाय हस्ताभ्यां पात्रमुत्थाप्य वामहस्ते कृत्वा तत्रस्थमुख्यं पवित्रद्वोत्तराग्रं विप्रहस्ते निधाय जलान्तरं दत्त्वा ॐ या दिव्या इति पठित्वा ॐ अमुकगोत्र प्रेतामुकशर्मन्नेष तेऽर्घः स्वधेत्युक्त्वा विप्रकरे पवित्रो-परि तिलोदकं दद्यात्।

सामगानान्तु एतत्ते तिलोदकमर्घं स्वधेति प्रयोगः किन्तु सर्व्वत्रैव ये चात्र त्वेति मन्त्रपाठो नास्ति।

ततो ब्राह्मणसमीपभूमौ कुशानास्तीर्य्य तदुपरि हस्तं दत्वा

ॐ इहलोकं परित्यज्य गतोऽसि परमां गतिम्।

इति प्रेतमावाहयेत्।

एतच्चाद्यश्राद्ध एव नान्यत्र।

ततो गन्धपुष्पादिकमुपनीय ॐ अमुकगोत्र प्रेतामुकशर्म्मन्नेतानि ते गन्धपुष्पधूपदीपाच्छादनानि स्वधेत्युत्सृज्य प्रत्येकं ब्राह्मणायार्पयेत्।

अस्मिन्नवसरे यज्ञोपवीतताम्बूलादिकं दद्यात् ततः प्रेतोपभुक्तवस्त्रशय्यासनभूषणवाहनादीनि श्राद्धभोक्त्रे समर्पयेत्। एतच्चाद्यश्राद्धे नान्यत्र।

ततश्चतुष्कोणमण्डलेषु* पात्रं पातयित्वा परिवेषणादिकं कृत्वा पात्रोपलम्भनवर्ज्जं वाजसनेयिभिः सामगैश्च यथास्वं पार्व्वणवत् प्रेतोद्देशेनान्नोत्सर्गं कुर्य्यात्।

किन्त्वत्र तृप्ताः स्थ इति स्थाने स्वदितमिति प्रश्नः सुस्वदितमिति प्रत्युत्तरं कृतञ्चाद्ये तु प्रश्नबाधः शेषान्नप्रश्नोऽपि प्रेतश्राद्धे न कार्य्य एव।

ततः पिण्डमहं करिष्य इति पृष्ट्वा कुरुष्वेति विप्रेणोक्ते दक्षिणाप्रवणपिण्डिकोपरि मण्डलिकामारभ्य पार्व्वणवत् वाजसनेयिभिः सामगैश्च यथास्वं पिण्डदानं मन्त्रोहेण कार्य्यम्।

---

* स्व मुक्ते मण्डलोपरि।

मन्त्रोहो यथा—

ॐ अत्र प्रेत मादयस्व यथाभागमावृषायस्व।

ॐ अमीमदत्त प्रेतो यथाभागमावृषायिष्ट।

ॐ नमस्ते प्रेत शुष्माय नमस्ते प्रेत तपसे नमस्ते प्रेत यज्जीवन्तस्मै नमस्ते प्रेत रसाय। नमस्ते प्रेत घोराय मन्यवे स्वधायै ते प्रेताय नमः। इति यजुर्वेदिनां षडञ्जलिकरणम्।

सामगानान्तु नमस्ते प्रेत प्रेत नमस्ते इत्यञ्जलिद्वयं गृहीत्वा गृहान् प्रेत देहीति गृहवीक्षणं सदस्ते प्रेत देष्म इति पिण्डवीक्षणम्।

तत ॐ एतद्वः प्रेत वास इति सूत्रदानम्।

ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं
पयः कीलालं परिस्रुतम्।
स्वधास्थ तर्पयत मे प्रेतम्।

सामगैः पिण्डचालनमात्रं यजुर्वेदिनां पिण्डोत्तोलनं कृत्वा शिवा आपः सन्त्वित्यादिना जलपुष्पाक्षतानि दद्यात्। सन्त्विति विप्रोत्तरम्।

ॐ अमुकगोत्रस्य प्रेतस्यामुकशर्म्मणः सर्व्वं दत्तमिदमन्नपानादिकमुपतिष्ठतामिति तिलोदकं दद्यात्।

उपतिष्ठतामिति प्रत्युत्तरम्।

ततः प्राङ्मुख उपवीती ॐ अघोरः प्रेतोऽस्तु। अस्त्वित्युत्तरम्। गोत्रं नो वर्द्धतां वर्द्धतामित्युत्तरम्।

यजुर्वेदी तु—ॐ दातारो नोऽभिवर्द्धन्तामित्यादिनाशिषः प्रतिगृह्य प्राचीनावीती—रजतप्रधानदक्षिणां दद्यात्।

सामगस्तु दक्षिणामुखो दक्षिणां दत्त्वा प्राङ्मुख उपवीती ॐ दातार इत्यादिना आशिषः प्रतिगृह्णीयात्।

ततो दक्षिणामुखः—देवताभ्यः पितृभ्यश्चेति त्रिर्जपित्वा ॐ अभिरम्यतामिति विसृज्य अभिरतोऽस्मीति विप्रेणोक्ते भवताहं कृतार्थीकृत इति प्रियवचनमुक्त्वा अङ्गुष्ठवर्ज्जं पाणिं गृहीत्वा विप्रमुत्थाप्य उदपात्रं गृहीत्वा आमावाजस्येति पठन्नष्टौ पदान्यनुव्रज्य वारिधारया प्रदक्षिणीकृत्याभिवाद्य तेनानुज्ञातो गृहं प्रविश्याच्छिद्रं कृत्वा ओषिद्यं कृत्वा पाणिना दीपं निर्वाप्य पाणी पादौ च प्रक्षाल्याचामेत्।

कुशविप्रपक्षे तु—प्रियवचन—पाणिग्रहणोत्थापनामावाजस्येत्यनुव्रजन-प्रदक्षिणीकरणाभिवादनानां बाधः।

पिण्डञ्च गोऽजविप्रेभ्यो दद्यादग्नौ जलेऽपि वा।

कुशब्राह्मणपक्षे तु चाहार्य्यं ब्राह्मणाय दद्यात् अग्नौ जले वा क्षिपेत् भूमौ निखनेद्वा ततो यथाशक्ति ब्राह्मणान् भोजयेत्। एवमेव प्रतिमासिकादिकं कार्य्यम्।

शूद्रेण स्वामात्रेण स्वधास्थाने नमःपदेन ब्राह्मणपठितमन्त्रेणैवमेव कार्य्यम्।

एवमेव सांवत्सरिकम्—प्रेतपदस्थाने सम्बन्धाद्येकपदप्रयोगेण कार्य्यम्।

मन्त्रेषु तु पितृपदे एकवचनोहो यथायोग्यं कार्य्यः सति सम्भारे* शेषानुज्ञापनं कार्य्यम्।

---

## अथ सांवत्सरिकश्राद्धप्रयोगः।

पूर्व्वदिने निरामिषं सकृद्भुक्त्वा रात्रौ विप्रगृहं गत्वा पादप्रक्षालनाचमने कृत्वा गोमयोपलिप्तस्थाने दक्षिणामुखः प्राचीनावीती दर्भपाणिः पातितवामजानुरासीनं ब्राह्मणमुपवेश्य दक्षिणजानु धृत्वा—

ॐ अद्येत्यादि अमुकगोत्रस्य पितुरमुकशर्म्मणः श्वः सांवत्सरिकश्राद्धं कर्त्तुं त्वामहं निमन्त्रये, निमन्त्रितोऽस्मीति उत्तरम्। सर्व्वायासेति नियमं श्रावयेत्।

यद्यविघ्नेन रजनी याति सर्व्वमेतत् करिष्य इति विप्रोत्तरम्। पूर्व्वेद्युर्निमन्त्रणाशक्तौ तस्यां रात्रौ योषित्प्रसङ्गनिवारणाय सजातीयद्वारा श्वः श्राद्धं करिष्ये तत्रभवान् निमन्त्रयितव्य इति निवेदनं कृत्वा श्राद्धदिने प्रातः श्वःपदपरिहारेण पूर्व्ववन्निमन्त्रयेत्।

तदशक्तौ श्राद्धारम्भसमय एव। तदहर्निमन्त्रणपक्षे अक्रोधनैरिति नियमश्रावणम्।

श्राद्धकर्त्ता कृतप्रातःस्नानः कृतनित्यक्रियो मध्याह्ने कृतपुनः-†

---

* ग पुस्तके—सम्भवे।

† ख पुस्तके—कृतपुनःस्नानवस्त्रपरीधानः।

स्नातः शुक्लवस्त्रद्वयपरीधानः पत्नीद्वारा स्वयं वा पाकं कृत्वा श्राद्धभूमिं दक्षिणानतां गोरमृत्तिकया गोमयेनोपलिप्य पञ्चगव्येन सम्प्रोक्ष्य ज्वलदग्निभ्रामणेन संशोध्य वेष्टयित्वा सर्व्वतश्छागान् बध्नीयात्। तिलान् सर्षपांश्च ॐ अपहता इति विकिरेत्।

यदि परकीयभूमौ श्राद्धं चिकीर्षति तदा तद्भूमिस्वामिपितृभ्यः श्राद्धीयाग्रभागमुत्सृज्य दद्यात् जीवतां मूल्यं वा किञ्चित्।

ततो मध्याह्नप्रदेशे तैलोद्वर्त्तनादिकानीयं ताम्रपात्रे कृत्वा श्राद्धियब्राह्मणाय स्वयं दद्यात्।

स्नात्वा निहृतश्च द्विजं शुचिराचान्तो गोमयोपलिप्तप्राङ्गणे कृताञ्जलिर्दर्भेषु तिष्ठन् स्वागतमिति पृच्छेत्। सुस्वागतमिति प्रत्युत्तरं स्वयं विप्रपादौ प्रक्षाल्याचमनीयं दूर्व्वान्वितं गन्धं पुष्पञ्च दत्वा स्वयमाचम्य पूर्व्वदिननिमन्त्रणागतौ तदैव निमन्त्रणं कृत्वा ब्राह्मणपुरःसरो गृहं प्रविश्य यथायथभिप्रायेण सिद्धमित्युक्त्वा दक्षिणाग्रदर्भैकयुक्ते आसने उदङ्मुखं ब्राह्मणमिदमासनमत्रास्य-मित्युक्त्वा दक्षिणहस्ते धृत्वा उपवेशयेत्।

तत्पादयोरधस्तात् कुशानास्तरेत्। कुशाभावे तु आगत-प्रश्नपाद्यादिदाननिमन्त्रणानां बाधः केवलं दक्षिणाग्रैकदर्भयुक्ते आसने संस्थाप्य गन्धपुष्पाद्यैरर्च्चयेत्*।

आसनसमीपे घृतेन तैलेन वा श्राद्धसमाप्ति यावद्दीपं ज्वाल-येत्। ततः शालग्रामशिलादिकं सन्निधीकृत्य तत्र पुष्पैरभ्यर्चयेत्

---

* क पुस्तके पुष्पाद्यर्चयेत्।

यज्ञेश्वरो हव्येत्यादि मन्त्रं पठित्वा अपहता इति तिलान् सर्षपांश्च विकीर्य्य श्रीविष्णुः श्रीपुण्डरीकाक्षः श्रीहरिरिति स्मृत्वा रक्षार्थं जलं ब्राह्मणसमीपे स्थापयेत् ।

ततः प्राचीनावीती पातितवामजानुर्दक्षिणामुखो गायत्री-जपमहं करिष्य इति विप्रं पृष्ट्वा कुरुष्वेति तेनोक्ते प्रणवव्याहृति-यन्त्रितां गायत्रीं जपित्वा ॐ देवताभ्य इति त्रिर्जप्त्वा कृताञ्जलिः— [सुखः]

ॐ अद्येत्यादि अमुकगोत्रस्य पितुरमुकशर्म्मणः सां[उपवेश्य] श्राद्धमन्नेन सदृतायुपकरणेन त्वयाहं करिष्ये, कुरुष्वेत्यु[क्त्वा]

कुशब्राह्मणे तु त्वयीति स्थाने कुशब्राह्मण इति[: सांच-] कुरुष्वेत्युत्तरं तत्तु सन्निधापितब्राह्मणैरेव कार्य्य[मि]ति उत्त-सव्यापसव्यादीनि सम्प्रोक्ष्य ॐ अमव्यासी दशार्णेष्विति

ततो रक्षार्थं* द्विजकरे जलदानं कुशब्राह्मणे तु न[ि]मोत्तरम् ।

ॐ अमुकगोत्र पितरमुकशर्म्मन्नेतत्ते दर्भासनं स्वधे[ति] सजा-भुग्नकुशासनमुत्सृज्य कृतपाद्यासनोपरि दद्यात् । [ति निवे-]

ततो दक्षिणाग्रकुशोपरि पात्रमेकं स्थापयित्वा कु[शौ] [गृही]त्वा ॐ पवित्रमसि वैष्णवीति नखव्यतिरेकेण छित्त्वा[ने-] विष्णोर्मनसा पूतमसीत्यभ्युच्यार्घ्यपात्रे निधाय ॐ शन्नो देवी[रिति] जलं दत्त्वा ॐ तिलोऽसीति तिलान् दत्त्वा तूष्णीं गन्धपुष्पे निक्षि[प्य] कुशान्तरेणाच्छाद्य अच्छिद्रोऽयमर्घ्योऽस्त्वित्युक्त्वा दर्भमुद्रा[ं]

* अ पुस्तके अरचावमार्थम ।

हस्ताभ्यां पात्रमुत्थाप्य वामहस्ते कृत्वा तदस्थं पुष्पं पवित्रञ्चो-
त्तराग्रं विप्रहस्ते निधाय जलान्तरं दत्वा ॐ या दिव्येति पठित्वा
ॐ अमुकगोत्र पितरमुकशर्म्मन्नेष तेऽर्घ्यः स्वधा। सामगानान्तु
एतत्ते तिलोदकमर्घं स्वधेति प्रयोगः।

ततो गन्धादिकमुपनीय अमुकगोत्र पितरमुकशर्म्मन्नेतानि ते
शाब्दिः पुष्पधूपदीपाच्छादनानि स्वधेत्युत्सृज्य एष ते गन्ध इत्यादि-
तत निवेदयेत्।
याचिष्मा स्वयं ब्राह्मणेनोपवीतिना गन्धानुलेपनं कार्य्यं माल्यञ्च
कात्वा शिरसि धार्य्यम्।
कृताञ्जलिर्दं अवसरे फलार्थिना यज्ञोपवीतताम्बूलप्रियफलादिकं
प्रत्युत्तरं स्वयं दानमच्छिद्रमस्त्विति वदेत्। अस्त्वित्युत्तरम्।
दत्वा स्वयमाऽश्वारचूर्णैर्गौरमृत्तिकयाऽसम्भवे वारिणापि ब्राह्मण-
ब्राह्मणपुरःसं श्लमण्डलं कृत्वा तत्र पात्रं पातयित्वा तण्णमिष्टमन्नं
दक्षिणाग्रदर्भेनयेत्। तत्समीपभूमावेव व्यञ्जनादीन्युपकरणानि
मित्युक्ता दं कृत्वा स्थापयेत्।

तर्प गमे घृतं दद्यात् यथा स्रवतीति। ततो भूमिन्यस्तं कुशं
मध्यपात्र पात्रब्राह्मणयोः स्पर्शं कारयित्वा वामहस्तेन पात्रं धृत्वा
श्राम् १०आ कव्यमिदं रक्षेत्यभ्युक्ष्य—ॐ इदं विष्णुरिति ॐ विष्णो कव्यं
रक्षस्वेति मन्त्रद्वयेनाधोमुखद्विजाङ्गुष्ठं द्विजाभावे स्वाङ्गुष्ठं निधाय
ये ॐ अपहता इति तिलान् विकीर्य्य विप्रहस्ते जलं दत्वा
इदमन्नमिदं हविरिमा आप इदं मधु एतान्युपकरणानीति मत्वा·

द्रव्याणि ब्राह्मणाय निवेद्य ॐ अमुकगोत्र पितरमुकशर्म्मन्नेतत्तेऽन्नं घृताद्युपकरणसहितसोदकं* स्वधेत्युत्सृजेत्।

शूद्रस्य तु एतत्तुभ्यमन्नं नम इति प्रयोगः।

ततः सव्याहृतिकां गायत्रीं जप्त्वा मधुवातेति त्र्यृचं मध्विति त्रिकञ्च पठन् मधुनाभिचारयेत्।

सामगानान्तु पूर्ववदङ्गुष्ठनिवेशनान्तं सर्व्वं कृत्वा अपहता इति तिलान् विकीर्य्य द्विजकरे जलं दत्त्वा सव्याहृतिकां गायत्रीं जपित्वा मधुवातेति तृचेन मध्विति त्रिकेण चान्नं मधुमयं कृत्वा इदमन्नं इदं हविरिमा आपः इदं मधुरेतानि सर्व्वाण्युपकरणानीति सर्व्वद्रव्याणि ब्राह्मणाय निवेद्य—

ॐ अमुकगोत्र पितरमुकशर्म्मन्नेतत्तेऽन्नं घृताद्युपकरणसहितं स्वधेत्युत्सृजेदिति विशेषः।

ततः—

> अक्षहीनं क्रियाहीनं विधिहीनञ्च यद्भवेत्।
> तत् सर्व्वमच्छिद्रमस्तु। इत्युक्त्वा—

यथासुखं वाग्यतो जुषध्व भवन्तः प्राशयन्त्वित्युक्त्वा आपोशानजलं दद्यात्। द्विजाभावेऽस्य बाधः। ब्राह्मणश्च हविर्दोषगुणावकीर्त्तयन् वाग्यतो हासत्वराक्रोधफुत्कारादिशब्दमकुर्व्वन्नन्नजानुः प्रसन्नमनाः द्विवासा आसनादवरोपितपादो दातारमयाचमानो भुञ्जीत।

---

* क पुस्तके सहितम्।

श्राद्धकर्त्ता तु पितृब्राह्मणाभिमुखो दर्भेष्वासीनः सप्रणवव्याहृतिकां गायत्रीं मधुवातेति तृचं मध्विति त्रिकञ्च पितृसंहितां पुरुषसूक्तं त्रिसुपर्णमन्यानि च पवित्राणि रुचिस्तवादीनि यथाशक्ति मन्वादीनि धर्म्मशास्त्राणि पुराणानि च सप्तव्याधादिकं च पितृस्तोत्रं पठित्वा पितृरूपं ब्राह्मणं ध्यात्वा ॐ यज्ञेश्वरो हव्येति पठित्वा वेणुवीणाध्वनिभिर्ब्राह्मणं सन्तोषयेत्।

तृप्तेषु ब्राह्मणेषु उच्छिष्टसन्निधौ भूमौ दर्भानास्तीर्य्य सर्व्वप्रकारमन्नं सतिलं गृहीत्वा अग्निदग्धायेति जलेनाप्लाव्य विकीर्य्य कृताञ्जलिः—

येषां न माता न पितेति पठित्वा आचम्य तदग्नौ दक्षिणकर्णं स्पृष्ट्वा हरिं स्मृत्वा ब्राह्मणाय पुनरापोशानं जलगण्डूषं दत्वा प्रणवव्याहृतिसहितां सावित्रीं मधुवातेति तृचं मध्विति त्रिकञ्च जपित्वा स्वदितमिति ब्राह्मणं पृच्छेत्। सुस्वदितमिति प्रत्युत्तरम्। अब्राह्मणकर्त्तृकेऽस्य बाधः। शेषमन्नमस्त्विति पृच्छेत् इष्टैः सह भुज्यतेति ब्राह्मणोत्तरम्।

सामगानान्तु—

तृप्तेषु ब्राह्मणेषु स्वदितमिति प्रश्नः। सुस्वदितमिति प्रत्युत्तरम्। अब्राह्मणकर्त्तृके प्रश्नबाधः। उच्छिष्टसन्निधौ दर्भानास्तीर्य्य सर्व्वप्रकारमन्नं सतिलं गृहीत्वा अग्निदग्धायेति जलेन सह विकीर्य्य कृताञ्जलिः—येषां न मातेति पठित्वाचम्य तदग्नौ दक्षिणकर्णं स्पृष्ट्वा हरिं स्मृत्वा द्विजकरे जलगण्डूषं दत्वा शेषमन्नमप्यस्तीति पृच्छेत् इष्टैः सह भुज्यतेति द्विजोत्तरमिति विशेषः।

ततः पिण्डमहं करिष्ये इति पृष्ट्वा कुरुष्वेति अनुज्ञात उच्छिष्टसन्निधौ दक्षिणाप्रवणपिण्डिकोपरि जलेनाभ्युक्ष्य ॐ निहन्मीति मण्डलं तद्वहिश्चतुरस्रं कृत्वा एकदर्भमूलेन दक्षिणहस्तेन—

सामगस्तु प्रादेशप्रमाणकुशपत्रद्वयात्मिकां पिञ्जलीं वामहस्ते गृहीत्वा दक्षिणहस्तेनादाय उभाभ्यां हस्ताभ्यां—

ॐ अपहता इति निहन्मीत्यनेन च दक्षिणाग्रां रेखामुल्लिख्य जलेनाभ्युक्ष्य दक्षिणस्यां दिशि तं दर्भं दर्भपिञ्जलीञ्च त्यजेत्।

ततः सतिलपुष्पं जलपात्रं वामहस्ते धृत्वा ॐ अमुकगोत्र पितरमुकशर्म्मन्नेतत्ते जलमवनेनिक्ष्व स्वधेति मण्डलमध्येऽवनेजनं दत्वा .दक्षिणाग्रान् कुशान् रेखायामास्तरेत्।

सामगस्तु—रेखायां कुशानास्तीर्य्य तदुपरि तिलान् विकीर्य्य प्रोक्तपरिपाट्याऽवनेजनं दद्यात्। ततो देवताभ्यः पितृभ्य इति त्रिर्जपेत्।

ततः सर्व्वस्मादन्नादशेषात् किञ्चित् समुद्धृत्य घृतमधुतिलैः संयोज्य बिल्वफलोपमं पिण्डं कृत्वा दक्षिणहस्तेन भुग्नकुशत्रयसहितं पिण्डं गृहीत्वा वामहस्तस्थितजलप्रक्षेपेण ॐ अमुकगोत्र पितरमुकशर्म्मन्नेतत्ते पिण्डं स्वधेति कुशोपरि पिण्डं दद्यात्।

सामगस्तु—उक्तपरिपाट्या पिण्डं गृहीत्वा मधु वातेति तृचं अक्षन्नमीमदन्तेति च पठित्वा वामहस्तस्थितजलप्रक्षेपेण ॐ अमुकगोत्र पितरमुकशर्म्मन्नेष ते पिण्डः स्वधेति प्रयोगः।

ततः पिण्डान्तिके पिण्डशेषं विकीर्य्य पिण्डपात्रे करं प्रक्षाल्याचम्य हरिं स्मरेत्। आचमनाशक्तौ दक्षिणश्रवणं स्पृशेत्।

यजुर्वेदी तु अत्र पितर्मादयस्व यथाभागमावृषायिष्ट इति जपित्वा पात्रप्रक्षालनजलं वामहस्ते गृहीत्वा ॐ अमुकगोत्र पितरमुकशर्म्मन्नेतत्ते जलं प्रत्यवनेनिक्ष्व स्वधेति पिण्डोपरि दत्वा नीवीं विस्रंस्य द्विराचम्य अपसव्यं दक्षिणकर्णं स्पृष्ट्वा—

ॐ नमस्ते पितः शुष्माय ॐ नमस्ते पितरस्तपसे नमस्ते पितर्य्यज्जीवमस्मै नमस्ते पित्रा रसाय नमस्ते पितर्घोराय मन्यवे स्वधायै ते पितर्नमः। इति षडञ्जलीन् कुर्य्यात्।

सामगस्तु—पिण्डशेषविकिरणपात्रचालनाचमनहरिस्मरणानि कृत्वा पात्रप्रक्षालनजलं वामहस्ते गृहीत्वा—

ॐ अद्यामुकगोत्र पितरमुकशर्म्मन्नेतत्ते जलं प्रत्यवनेनिक्ष्व स्वधेति पिण्डोपरि दत्वा—कृताञ्जलिः—

ॐ अत्र पितर्मादयस्व यथाभागमावृषायस्वेति जपित्वा वामावर्त्तेनोदङ्मुखो भूत्वा प्राणायामत्रयं कृत्वा शनकैः श्वासं विसृज्य—

ॐ वसन्ताय इति ऋतून् नमस्कृत्य पितरं भास्करमूर्त्तिकं ध्यात्वा—

ॐ अमीमदन्त पितरो यथाभागमावृषायिषतेति जपन् तेनैव पथा प्रत्यावृत्य* श्वासं मुक्त्वा ॐ नमस्ते पितर्नमस्ते इत्यञ्जलिद्वयं कृत्वा ॐ गृहान्नः पितर्देहीति गृहयाचनं कृत्वा ॐ सदस्ते पितर्देष्म इति पिण्डं पश्येत्।

* स पुनर्वि दक्षावर्त्तेनाथः।

ततः श्वेतवस्त्रभवदशा असम्भवे सूत्रमात्रं मेषलोमानि वा वामहस्ते गृहीत्वा एतद्वः पितरो वास इति मन्त्रं पठित्वा ॐ अमुकगोत्र पितरमुकशर्म्मन्नेतत्ते वासः स्वधेत्युत्सृज्य दक्षिणहस्तेन दद्यात्।

पितॄनित्यत्र पितरमित्यूहितेन अर्ज्जं वहन्तीरिति हस्तद्वयेन जलाञ्जलिमित्यनुधारां दद्यात्।

ततः तूष्णीं गन्ध-पुष्प-धूप-दीप-ताम्बूल-जल-घृत-मधुभिरष्टभिर्द्रव्यैः पिण्डं सम्पूज्य पितरं भास्कररूपं ध्यात्वा—

यजुर्वेदी पिण्डं सम्पन्नमिति पृष्ट्वा सुसम्पन्नमित्यनुज्ञातो हस्ताभ्यां पिण्डमुत्तोल्य किञ्चिदन्नोभूयाघ्राय च पात्रे स्थापयेत्।

सामगस्तु—पिण्डः सम्पन्न इति पृष्ट्वा सुसम्पन्नोऽस्त्वित्यनुज्ञातः पिण्डं किञ्चिदाघ्रापयेत्।

ततो विप्रायाचमनार्थमुदकादिकं दद्यात् कुशब्राह्मणपक्षे तु तद्वाधः।

ततः स्वयमाचम्य सुसुप्रोक्षितमस्त्विति विप्रायभूमिमभिषिच्य—

ॐ अपां मध्ये स्थिता देवा अप्सु सर्व्वं प्रतिष्ठितम्।
ब्राह्मणस्य करे न्यस्ताः शिवा आपो भवन्तु नः॥

इति मन्त्रेण शिवा आपः सन्त्वित्यनेन वा द्विजकरे जलं दद्यात् सन्त्वित्युत्तरम्।

ॐ लक्ष्मीर्वसति पुष्पेषु लक्ष्मीर्वसति पुष्करे।
लक्ष्मीर्वसतु सदा गोष्ठे सौमनस्यं सदाऽस्तु मे॥

इति मन्त्रेण सौमनस्यमस्त्वित्यनेन वा पुष्पं दद्यात् अस्त्विति प्रत्युत्तरम्।

अक्षतञ्चास्तु मे पुण्यं शान्तिः पुष्टिर्धृतिश्च मे।
यद्यच्छ्रेयस्करं लोके तत्तदस्तु सदा मम॥

इति मन्त्रेण ॐ अक्षतञ्चारिष्टञ्चास्त्वित्यनेन वा यवदूर्व्वां दद्यात्, अस्त्विति ब्राह्मणप्रतिवचनम्।

ततः—ॐ अमुकगोत्रस्य पितुरमुकदेवशर्म्मणः सर्व्वं दत्तमिदमन्नपानादिकमुपतिष्ठतामिति पिण्डकरे तिलोदकं दद्यात्। उपतिष्ठतामिति प्रत्युत्तरम्।

ततो यजुर्व्वेदी—

दातारो नो भिवर्द्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च।
श्रद्धा च नो मा व्यगमद्बहु देयञ्च नोऽस्त्विति॥
अन्नञ्च नो बहु भवेदतिथींश्च लभेमहि।
याचितारश्च नः सन्तु मा च याचिष्म कञ्चन॥

एताः सत्याशिषः सन्तु इत्युक्ते विप्रैः सन्त्वित्येकदैव प्रत्युक्तो दक्षिणामुखः प्राचीनावीती रजतदक्षिणां दद्यात्।

सामगस्तु दक्षिणामुखः प्राचीनावीती रजतदक्षिणां दत्वा प्राङ्मुख उपवीती दक्षिणां दिशं कटाक्षेणावलोकयन्—

ॐ दातारो नो भिवर्द्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च।
श्रद्धा च नो मा व्यगमद्बहु देयञ्च नोऽस्त्विति॥
अन्नञ्च नो बहु भवेदतिथींश्च लभेमहि।
याचितारश्च नः सन्तु मा च याचिष्म कञ्चन॥

अन्नं प्रवर्द्धतां नित्यं दाता शतं जीवतु।

येभ्यः सङ्कल्पिता द्विजास्तेषां तृप्तिरक्षया भवतु* ॥

एताः सत्या आशिषः सन्त्विति पृच्छेत् सन्त्वित्येकदैव प्रत्युत्तरम्।

ततो दक्षिणामुखो देवताभ्य इति विसर्जयित्वा अभिरम्यतामिति विसृज्य अभिरतोऽस्मीति विप्रेणोक्ते भवताहं सतार्थीकृत इति प्रियवचनमुक्त्वा अङ्गुष्ठवर्ज्जं पाणिं गृहीत्वा विप्रमुत्थाप्य उदपात्रं गृहीत्वा आमावाजस्येति पठन्नष्टौ पदान्यनुव्रज्य वारिधारया प्रदक्षिणीकृत्याभिवाद्य तेनानुज्ञातो गृहं प्रविश्याच्छिद्रं कृत्वा यौविष्णुं स्मृत्वा पाणिना दीपं निर्वाप्य पाणौ पादौ च प्रक्षाल्याचामेत्।

कुशब्राह्मणपक्षे तु प्रियवचनपाणिग्रहणोत्थापनामावाजस्येत्यनुव्रजनप्रदक्षिणीकरणाभिवादनानां बाधः। पिण्डञ्च गोऽजविप्रेभ्यो दद्यादग्नौ जलेऽपि वा क्षिपेत्। कुशब्राह्मणपक्षे तु श्राद्धान्नं ब्राह्मणाय दद्यादग्नौ जले वा क्षिपेत् भूमौ वा निखनेत्।

विप्रविसर्ज्जनानन्तरं उच्छिष्टापनयनं कार्य्यं दिवाप्रय्यन्तस्थापनन्तु पितृप्रीत्यतिशयार्थम्।

अस्तङ्गते सूर्य्ये भोजनपात्रस्याधोमुखस्याम्भसि प्रक्षेपः।

ततो वैश्वदेवबलि—नित्यश्राद्धानि कृत्वा यथाशक्ति विप्रान् भोजयेत् सति शेषे श्राद्धशेषमवश्यं भुञ्जीत।

---

* ख पुस्तके तेषामक्षया तृप्तिरस्तु।

## अथ सपिण्डनश्राद्धम्।

तत्र पारस्करगोभिलौ—

चत्वार्य्युदकपात्राणि सतिलगन्धोदकानि पूरयित्वा त्रीणि पितृणामेकं प्रेतस्य प्रेतपात्रं पितृपात्रेष्वासिञ्चति ये समाना इति द्वाभ्यामेतेन पिण्डो व्याख्यात इति।

अत्र चत्वारीत्यनेन पितामहादित्रिक—प्रेतयोरेवोक्तत्वात् मातामहादीनामनुप्रवेशः।

तथा—

सपिण्डीकरणश्राद्धं देवपूर्व्वं नियोजयेत्।
पितॄनेवाशयेत्तत्र पुनः प्रेतस्य निर्द्दिशेत्॥

इति शातातपवचनेनैवकारेण मातामहपक्षं व्याहत्य पुनः प्रेतस्य निर्द्दिशेदित्यनेन प्रेतश्राद्धमात्रमुक्तम्।

त्रीणि पितृणामेकं प्रेतस्य इति—अत्र पाठक्रमादनुष्ठानक्रमोऽपि कल्प्यः।

तथा—

पितॄनेवाशयेत्तत्र पुनः प्रेतस्य निर्द्दिशेत्।

इति शातातपेन पुनःशब्दात् पितृदानानन्तरं प्रेतपक्षे दद्यादित्यभिहितम्।

ततः प्रथमं देवपक्षे कृत्वा ततः पितामहादिपक्षे तत्पश्चात् प्रेतपक्षे कुर्य्यादिति क्रमः सिद्धः।

मैथिलास्तु—

सपिण्डीकरणश्राद्धं देवपूर्व्वं नियोजयेत्।

इति वचनादादौ देवपक्षे कृत्वा प्रेतसपिण्डनार्थमेव पितामहादिश्राद्धविधेः प्रेतश्राद्धस्य प्राधान्यात्तत्रादौ दत्त्वा पश्चात् पितामहादिपक्षे दद्यात्।

अतएव संवत्सरान्ते प्रेताय तत्पित्रे तत्पितामहाय इत्यादि विष्णुवचने चत्वार्य्युदकपात्राणि प्रयुनक्ति।

तत्रैकं प्रेताय त्रीणि पितृभ्यः।

इति वैजवापवचने च प्रेतायेत्यादावुक्तम्।

तथा ब्रह्मपुराणेऽपि—

प्रेतविप्रस्य हस्ते तु चतुर्भागं जलं क्षिपेत्॥

ततः पितामहादिभ्यस्त्वामन्त्र्यैव पृथक् पृथक्।

इत्थमुक्तमित्याहुः। तन्न

देवपक्षदाने पार्व्वणस्योपक्रान्तत्वात्तन्मध्ये प्रेतैकोद्दिष्टस्यान्याय्यत्वात्।

पूर्व्वोक्तशातातपगोभिलपारस्करविरोधेन विष्णुवैजवापवचनयोः क्रमस्वरसकल्पनाया अनौचित्याच्च।

किञ्च—श्राद्धे दैवं नियोजयेत् प्रागेव दैवेऽर्घमासाद्य दत्त्वा गन्धमाल्यैः पात्रमभ्यर्च्य तत्तोयं पितृभ्यः पात्रेषु दद्यादित्याश्वलायनगृह्ये दैवदानानन्तरमेव पितामहादिदानमुक्तम्।

अतएव पारस्करभाष्यकृता हरिशर्म्मणा नारायणोपाध्यायेनापि पौराणिकवचनद्वयं लिखितम्।

श्राद्धद्वयमुपक्रम्य विदधीत सपिण्डताम्।
तत्र पार्व्वणवत्पूर्व्वमेकोद्दिष्टमथापरम्॥
सपिण्डीकरणे विप्रानाशयेत् पार्व्वणे यथा।
पृथक् प्रकल्पयेदेकमेकोद्दिष्टविधानतः॥

तथा मात्स्ये—

सपिण्डीकरणश्राद्धं देवपूर्व्वं नियोजयेत्।
पितॄनुदीरयेत्तत्र पृथक् प्रेतञ्च निर्दिशेत्॥

यत्तु ब्रह्मपुराणे—

प्रेतविप्रस्य हस्ते तु इत्यादिना प्रेतार्घदानमादावुक्तं तत्तस्यार्घस्य प्रेतस्वामिकत्वसम्पादनेन तन्मिश्रणां पितामहाद्यर्घानां दानविधेरन्यथानुपपत्त्या तच्छाखविषयमेव।

तत्राप्यादौ पार्व्वणविधिना पितामहाद्यर्घपात्राणि संस्थाप्य पश्चादेकोद्दिष्टविधिना प्रेतपात्रं स्थाप्यं केवलं तद्दानमात्रे व्यत्ययः।

अत्र च—नात्र देवं नियोजयेन्नापीव देवेऽर्घमन्त्रायच दत्त्वा हुतशेषं पितृभ्यः पानेपु॰इत्यादिति दर्शनात्सपिण्डीकरणे काण्डानुसमय एव न पदार्थानुसमय इति कल्पतरुकारादयः।

हलायुधस्तु—प्रेतसम्बन्धितया देवं न योजयेदिति व्याख्यातवान्। तदसत्—प्रेतश्राद्धस्यैकोद्दिष्टतया दैवनिषेधस्य प्राप्तत्वात् पुनर्निषेधवैयर्थ्यात्।

* पुस्तके पाणिषु।

प्रेतपात्रमिति प्रेतार्घोत्सृष्ट दानेन तदीयत्वं सम्पाद्य तदवशिष्टपात्रस्थार्घजलमुत्सृष्टेषु पितामहाद्यर्घपात्रेष्विति सिद्धे इत्यर्थः।

अन्यथा प्रेतार्घजलमिश्रणमेव पितृपात्रेष्वनुपपन्नं तत्स्वाम्याभावात्।

एतदाहानुक्तं ब्रह्मपुराणे—

चतुर्थ्यार्घभाजनेभ्य एकं वामेन पाणिना।
गृहीत्वा दक्षिणेनैव पाणिना च तिलोदकम्॥
संसृजतु त्वा पृथिवी वै समाना इति संस्मरन्।
प्रेतविप्रस्य हस्ते तु चतुर्भागं जलं क्षिपेत्॥
ततः पितामहादिभ्यस्तन्मन्त्रेण पृथक् पृथक्।
ये समाना इति द्वाभ्यां तज्जलन्तु समर्पयेत्॥
अर्घं तेनैव विधिना प्रेतपात्राच्च पूर्ववत्।
तेभ्यश्चार्घं निवेद्यैव यथाच्च क्रमयाचयेत्॥

एकं प्रेतपात्रं वामहस्तेन गृहीत्वा अनन्तरं उत्सर्गार्थं तिलोदकं दक्षिणेन पाणिना गृहीत्वा अर्थात्तेनोत्सृज्य संसृजतु त्वा पृथिवीति मन्त्रविशेषं ये समाना इति मन्त्रद्वयञ्च स्मरन् पठन् प्रेतब्राह्मणहस्ते प्रेतार्घपात्रस्थं चतुर्थभागं जलं दद्यात्। अयञ्च प्रेतब्राह्मणहस्ते अर्घजलदाने संसृजतु त्वेतिमन्त्रपाठः शाखाविशेषव्यवस्थितः।

ततस्तदनन्तरं पितामहादिभ्यः पितामहादीनुद्दिश्य ल्यब्लोपे पञ्चमी तन्मन्त्रेणादिभ्येत्यादिमन्त्रैः, बहुवचनन्तु पितामहादिविकापेक्षया चकाराद्दक्षिणवामेनार्घादुत्सृज्य ये समाना इति मन्त्रद्वयाभ्यां

तज्जलं प्रेतपात्रस्थभागत्रयजलं पृथक् पृथक् मन्त्रैः पितामहादि-पात्रत्रये समर्पयेत् निक्षिपेत्।

एवं प्रेतपात्रादर्घ्यं तत्रस्थतिलपुष्पादि गृहीत्वा तेनैव विधिना पृथक् पृथक् ये समाना इति मन्त्राभ्यां पूर्ववत् पितामहादि-पात्रत्रये क्रमेण समर्पयेदिति पूर्वेणानुषङ्गः।

ततश्च तेभ्यः पितामहादिभ्यस्तादृशमर्घ्यं तदीयग्रासप्रकारो निवेद्य निक्षिप्य तत्पश्चात् कर्त्तव्यं न्युब्जीकरणादिकं स्वयमाचरेत् तत्र कोऽपि विशेषो नास्तीत्यर्थः।

एवञ्चोत्सृष्टं प्रेतजलमुत्सृष्टेष्वेव पितामहाद्यर्घ्येषु मिश्रयेदि-त्यायातमन्यथा उत्सृष्टस्य पुनरुत्सर्गप्रसङ्गः।

अतएव—

निरुप्य चतुरः पिण्डान् पिण्डदः प्रतिनामतः।

ये समाना इति द्वाभ्यामाद्यन्तु विभजेत्त्रिधा॥

एष एव विधिः पूर्व्वमर्घ्यपात्रचतुष्टये॥

इति शातातपेन दत्तपित्र्यपिण्डेषु दत्तप्रेतपिण्डमिश्रणस्याति-देशादुत्सृष्टेष्वेव पितामहाद्यर्घ्येषु उत्सृष्टप्रेतार्घ्यस्य मिश्रणमुक्तम्।

पारस्करगोभिलाभ्यामपि यत्न पिण्डो व्याख्यात इत्यनेनोत्-सृष्टार्घ्येषु मिश्रणातिदेशो दत्तेष्वेव पिण्डेषूक्त इति।

यत्तु—

पृथक् श्रुतिकल्पनाभिया पूर्व्वोक्तपारस्करगोभिलादिवचनैक-वाक्यतया शातातपवचनस्य पितृपिण्डेषु आद्यं पिण्डं विभजेत् विभज्य समर्पयेदित्यर्थः। कल्पनातो लक्षणैव श्रेयसीति न्यायात्।

अतएव शातातपेन पिण्डमिश्रणं पृथक् नोक्तमिति। इयञ्च प्रेतोद्देशेनोत्सृष्टयोरेवार्घ्यपिण्डयोर्मिश्रीकरणमवगम्यते।

एतेन प्रेतार्घ्यपात्रजलं पितृपात्रेषु मिश्रीकृत्य पितृभ्यो दत्त्वा पश्चात् प्रेतायावशिष्टं जलमुत्सृज्य दद्यादिति पितृदयिताकार-मतम्—

तथा श्रीदत्तादीनां संस्रवजल एव प्रेतार्घ्यशेषजलमिश्रण-मिति मतञ्च निरस्तम्।

एतेन पिण्डो व्याख्यात इति। दत्तेषु पितृपिण्डेषु दत्तं प्रेत-पिण्डं त्रिधा विभज्य ये समाना इति मन्त्रद्वयेन मिश्रयेदित्यर्थः।

यथा शातातपः—

निरुप्य चतुरः पिण्डान् पिण्डदः प्रतिनामतः।
ये समाना इति द्वाभ्यामाद्यञ्च विभजेत्त्रिधा॥
आद्यं प्रेतपिण्डमित्यर्थः।

व्यक्तमाह ब्रह्मपुराणे—

अथ तेनैव विधिना दर्भमूलेऽवनेजनम्।
पितुर्दत्त्वा च पिण्डन्तु दद्यात्तथा तु पूर्व्ववत्॥
दत्त्वा पिण्डत्रयाष्टाङ्गं ध्यात्वा तत्र सुभास्वरम्।
सुवर्णरूप्यदर्भैश्च तस्मिन् पिण्डं ततस्त्रिधा॥

कृत्वा पितामहादिभ्यः पितृभ्यः प्रेतमर्पयेत् ।
सुवर्त्तुलांस्ततस्तांस्तु पिण्डान् कृत्वा प्रपूजयेत् ॥
अर्घ्यपुष्पैस्तथा धूपैर्दीपैर्गन्धानुलेपनैः ।
मुख्यन्तु पितरं कृत्वा पुनस्त्वन्यान् यथाक्रमम् ॥
मृते पितरि यस्याथ विद्यते च पितामहः ।
तेन देयास्त्रयः पिण्डाः प्रपितामहपूर्व्वकाः ।
तेभ्यश्च पैतृकः पिण्डो नियोक्तव्यश्च पूर्व्ववत् ॥
मातर्य्यथ मृतायान्तु विद्यते च पितामही ।
प्रपितामहीपूर्व्वन्तु कार्य्यस्तत्राप्ययं विधिः ॥

तेनैव विधिना पितामहाद्यवनेजनविधिनेत्यर्थः पूर्व्ववत् पितामहादिपिण्डदानवदित्यर्थः । अत्रापि पितामहादिदानान्तरं प्रेताय दद्यादिति क्रमो व्यक्तमुक्तः ।

अष्टाङ्गमिति—

मधु चार्घ्यं जलं पुष्पं धूपं दीपं विलेपनम् ।
बलिश्च दद्याद्विधिवत् पिण्डोऽष्टाङ्गो भवेद्यथा ।

इति ब्रह्मपुराण एवोक्तम् ।

तस्मिन् पिण्डे स्वपितरं सुभास्वरं ध्यात्वा सुवर्णरूप्यदर्भैस्तं पिण्डं त्रिधा कृत्वा पितामहादिपिण्डेषु प्रेतपिण्डमर्पयेदित्यर्थः । मिश्रणानन्तरमपि पुनः पूजामाह सुवर्त्तुलानिति । मृते पितरीति अत्र पितामह इत्युपलक्षणं प्रपितामहेऽपि जीवति तं विहाय तत्पूर्व्वेषां कर्त्तव्यम् । एवं पतितप्रव्रजितादावपि ।

ब्राह्मणादिहते ताते पतिते सङ्गवर्जिते।
व्युत्क्रमाच्च मृते देयं येभ्य एव ददात्यसौ॥

इति छन्दोगपरिशिष्टवचनात्। व्युत्क्रमात् गलपाशोदरभेदादिनेत्यर्थः पैतृकः पिण्ड इति यस्याचिरप्रमीतस्य* सपिण्डनं क्रियते तत्पिण्ड इत्यर्थः।

एतेन यत्कैश्चित्पत्रकर्पण इतो गत इति व्युत्पत्त्या प्रेतपदं चिरप्रमीतप्रपितामहपरतया व्याख्याय तत्सम्बन्ध्यर्घजलपिण्डयोः पित्राद्यर्घजलपिण्डेषु समर्पणं नत्वचिरप्रमीतस्येत्युक्तं तन्निरस्तम्।

पैतृकः पिण्डो नियोक्तव्य इत्यभिधानात् भागपि पितुर्दत्वाथ पिण्डच्चेत्यनेन पितृपिण्डस्यैव त्रिधाविभक्तस्य पितामहादिपिण्डेषु समर्पणाभिधानाच्च।

किञ्च—चत्वार्य्युदकपात्राणि एकं मृतस्य त्रीण्येतरेषां इत्यात्मलायनगृह्ये मृतशब्दादचिरप्रमीत एव प्रेतपदेनोच्यते।

किञ्च—संवत्सरान्ते प्रेताय तत्पित्रे तत्पितामहाय तत्प्रपितामहाय देवपूर्व्वान् ब्राह्मणान् भोजयेदिति विष्णुसूत्रे प्रेतस्य पितृपितामहप्रपितामहानामवगमात् प्रेतशब्दादचिरप्रमीत एवावगम्यते।

न च स पिता यस्येति बहुव्रीहिः, तत्र नित्यं प्रत्ययविधानात् तत्पितृकायेति स्यात्।

---

* क पुस्तके चाचिरप्रमीतस्य सपिण्डनम्।

यत्तु—

ये समाना इति द्वाभ्यामाद्यन्तु विभजेत्त्रिधा।
चतुर्थस्य पुनः कार्य्यं न कदाचिदतो भवेत्॥
ततः पितृत्वमापन्नः स चतुर्थस्तदा पुमान्।
अग्निष्वात्तादिमध्यन्तु प्राप्नोत्यमृतमुत्तमम्॥
सपिण्डीकरणादूर्द्धं तस्मै तस्मान्न दीयते।
पितृष्वेव तु दातव्यो* तत्पिण्डो येषु संस्थितः॥

इति मत्स्यपुराणम्।

तस्यायमर्थः—अधोगणनया आद्यं पितृपिण्डम्।

ननु द्विधैव विभागो युक्तः पार्व्वणे द्वाभ्यां सहैव पिण्डदानात्कथं त्रिधाविभाग इत्याह चतुर्थस्येति यस्मात् तृतीयभागमिश्रणा- चतुर्थस्य वृद्धप्रपितामहस्य श्राद्धादि कार्य्यं न कदापि † भवेदतस्तदर्थं त्रिधैव विभागः।

ननु कृते पिण्डमिश्रणे कथं पुनः कार्य्यं नास्तीत्याह तत इति पूर्व्वं पितृत्वं पार्व्वणभोक्तृत्वमापन्नः स चतुर्थः ततः पिण्डमिश्रणा- दग्निष्वात्तादिमध्यममृतमक्षरं प्राप्नोति।

अतएव—

त्रिभिः सपिण्डीकरणैरासेक्तृत्रितयं पिता।
यदा प्राप्स्यति कालेन तदा मुच्येत बन्धनात्॥

* ख, ग, पुस्तकद्वये दातव्यम्।
† ख पुस्तके कदाचिदितिरेतरः।

इति तत्रैवोक्तम्।

उपसंहरति सपिण्डीकरणादूर्द्धमिति।

तस्मै चतुर्थाय किन्तु पित्रादित्रिकेष्वेव दातव्यं येषु पित्रादि-त्रिषु सम्प्रदानत्वेन विद्यमानेषु सत्सु तत्पिण्डो वृद्धप्रपितामहपिण्डः संस्थितस्तदवधिक एव स्थितो निवृत्त इति यावदिति।

अतएव विष्णुसूत्रे तत्पित्र इत्यादिना मृतस्य पित्रादिभिरेव सपिण्डनाभिधानात् कदाचिन्मृतपितृकेण पितामहसपिण्डने कर्त्तव्ये पितामहपित्रादिभिरेव सपिण्डनं कार्य्यम् न तु स्वपित्रेति ध्येयम्।

मातृसपिण्डनमाह मातर्य्येवेति।

पितामहीमरणे तु पितामह्यादिभिरिति बोद्धव्यम्।

तथा च पैठीनसिः—

श्वश्र्वादिभिः सहैवास्याः सपिण्डीकरणं भवेत्।

अयं विधिः प्रागुक्तपितृपिण्डमिश्रीकरणविधिः। एतच्च पितामह्यादिभिर्मातुः सपिण्डनं पितरि जीवति बोद्धव्यम्।

मृते तु पितरि तदादित्रिकेणैव सहेति व्यक्तमाह—

लघुहारीतः—

स्वेन भर्त्रा सहैवास्याः सपिण्डीकरणं स्त्रियाः।
एकत्वं सा गता यस्मात्सहमन्त्राहुतिव्रतैः॥
तस्मिन् सति सुताः कुर्य्युः पितामह्या सहैव तु।
तस्यामेव तु जीवन्त्यां तस्याः श्वश्र्वेति निश्चयः॥

अत्र स्वेन भर्त्रा पितामह्या सहेति च भर्त्रादित्रिकपितामह्यादित्रिकोपलक्षणं एवकारद्वयन्तु पितामह्यादित्रिकभर्तृपित्रादिपक्षयोः परस्परव्यावृत्त्यर्थम्।

श्वश्र्वादिभिः सहैवास्याः सपिण्डीकरणं भवेत्।

इति पैठीनसिवचनस्थैवकारवत्।

अतएव याज्ञवल्क्येन—

गन्धोदकतिलैर्युक्तं कुर्य्यात् पात्रचतुष्टयम्।

अर्घ्यार्थं पितृपात्रेषु प्रेतपात्रं प्रसेचयेत्।

इत्याद्युपक्रम्य एतत् सपिण्डीकरणमेकोद्दिष्टं स्त्रिया अपीति स्त्रीसपिण्डनमपि त्रिभिरुक्तम्।

ब्रह्मपुराणेऽपि—

तेभ्यश्च पैतृकाः पिण्डा नियोक्तव्याः पूर्व्ववत्।

इति त्रिभिः पितृसपिण्डनमुक्त्वा—

प्रपितामहीपूर्व्वन्तु ज्ञेयस्त्रीष्वयं विधिः।

इत्युक्तम्।

तथा—

एकमूर्त्तित्वमायाति सपिण्डीकरणे कृते।

पत्नीपतिपितॄणान्तु तस्मात् सा त्वंशभागिनी॥

इति हारीतेन पतिपितॄणामेकमूर्त्तित्वफलं सपिण्डनमप्युक्तम्।

हलायुध-कल्पतरु-गोविन्दादीनामपि मतमेतत्।

नारायणोपाध्यायादयस्तु भर्त्रा सहैवेति पितामह्या सहैवेत्येवकारश्रवणात्—

मातुः सपिण्डीकरणं कथं कार्य्यं सुतैर्भवेत् ।
पितामह्या सहैवास्याः सपिण्डीकरणं स्मृतम् ॥

इति शातातपवचने चैवकारश्रुतेः—

मातुः सपिण्डीकरणं पितामह्या सहोदितम् ।
यथोक्तेनैव कल्पेन पुत्रिकाया न चेत् सुतः ॥

इति छन्दोगपरिशिष्टे पितामहीमात्रनिर्देशाच—

स्वेन भर्त्रा सह श्राद्धं माता भुङ्क्ते स्वधामयम् ।
पितामही च स्वेनैव स्वेनैव प्रपितामही ॥

इति स्वस्वभर्तृश्राद्धांशभोक्तृत्वकथनेन तत्कारणतया स्वस्वभर्त्रा सहैव सपिण्डनस्यावगमाच्च भर्त्रा सहैव पिण्डजलमिश्रणं न तु पित्रादित्रिकपितामह्यादित्रिकाभ्यामिति ।

तथाच वृद्धाः पठन्ति—

पतिनैकेन कर्त्तव्यं सपिण्डीकरणं स्त्रियाः ।
सा मृतापि हि तेनैक्यं गतमन्त्राहुतिव्रतैः ॥
मातुः सपिण्डीकरणं पत्या सार्द्धं विधीयते ।
यस्मात् पतिव्रतानान्तु सैव सङ्गतिरिष्यते ॥

यत्तु—

पितामह्यादिभिः स्त्रीभिर्मातरन्तु सपिण्डयेत् ।
पितरि ध्रियमाणे तु तेनैवोपरते सति ॥

इति पौराणिकवचनम् ।

यच्च—

अपुत्रायां मृतायान्तु पतिः कुर्य्यात् सपिण्डताम्।

श्वश्र्वादिभिः सहैवास्याः सपिण्डीकरणं भवेत्॥

इति पैठीनसिवचनं तत्पूर्व्वजीवनापेक्षया वर्णनीयम्।

तस्याञ्चैव तु जीवन्त्यां तस्याः श्वश्र्वेति निश्चयः।

इति हारीतवचनसमानार्थम्।

न च—पितामहप्रपितामहयोस्तथा प्रपितामहीप्रपितामह्योः कथं तर्हि सपिण्डनयाऽन्तर्भाव इति वाच्यम्।

गन्धोदकतिलैर्युक्तं कुर्य्यात् पात्रचतुष्टयम्।

इत्याद्युपक्रम्य एतत् सपिण्डीकरणमेकोद्दिष्टं स्त्रिया अपीति याज्ञवल्क्ये एतदित्यनेन पात्रचतुष्टयातिदेशात् यथोक्तेनैव कल्पेनेति छन्दोगपरिशिष्टकृतगोभिलोक्त—चत्वार्य्युदकपात्राणीत्यतिदेशाच्चेति त्रैपुरुषिकं श्राद्धं कार्य्यमेवेति वदन्ति।

पतिते प्रव्रजिते वा पितरि पितामह्यादिभिः सहैव सपिण्डनं मन्तव्यम्।

मातुः सपिण्डीकरणं पितामह्या सहोदितम्।

इति परिशिष्टादिभिः सामान्यतोऽभिधानात्

स्वेन भर्त्रा सहैवास्याः सपिण्डीकरणं स्त्रियाः।

तस्मिन् सति सुताः कुर्य्युः पितामह्या सहैव च॥

इति हारीतवचने तस्मिन् सतीति व्याख्यातोऽप्यभर्त्तृदयमत्तत्वाय।

अन्ये तु—

भर्तृपिण्डांशलाभस्य सपिण्डनफलस्याभावात् सपिण्डनमेव नास्तीत्याहुः । तन्मन्दम्—

प्रत्यवायपरीहार*प्रेतत्वविमुक्तिपूर्व्वकपितृलोकप्राप्त्यर्थस्य सपिण्डनस्यावश्यकर्त्तव्यत्वात् । अन्यथा अन्वष्टकावृद्धिश्राद्धादौ कथं मातुः पार्व्वणमिति । एवं पितरि जीवति पितामह्याः पतितत्वे प्रपितामह्यादिभिः सह सपिण्डनं कार्य्यम् ।

तस्याश्चैव तु जीवन्त्यामित्यत्र श्राद्धायोग्यपितामह्युपलक्षणात् ।

अत्र केचित्—

प्रथमं पितामह्या सह सपिण्डने कृते पश्चान्मृते पितरि तेनापि सह सपिण्डनं पुनः कार्य्यम् । अन्यथा भर्तृपिण्डांशहरत्वानुपपत्त्या सर्व्वत्र मातृवचनानापत्तेः तस्य च भर्तृपिण्डमिश्रणफलत्वादित्याहुः । तन्मन्दम् ।

तस्मिन् सति सुताः कुर्य्युः पितामह्या सहैव च ।

इत्यनेन भर्त्रा सह सपिण्डनस्य स्थाने पितामह्या सह विधानात् साधनान्तरविधिरयं न तु कर्म्मान्तरविधिः, तदा च पितृलोकप्राप्ति-भर्तृपिण्डांशहरत्वरूपे तत्फलद्वये को विरोधः । अदृष्टफलत्वेन बाधकाभावात् । अन्यथा जीवति पितामहे प्रपितामह्यादिना पितुः सपिण्डने कृते पश्चान्मृते तस्मिन् पार्व्वणे पितुस्तत्सहभोक्तृत्वफलार्थं सपिण्डनावृत्तिः स्यादिति ।

---

* च इत्यर्थे प्रत्यवायपरीहाराय ।

ब्राह्म-दैवार्ष-प्राजापत्य-वैधविवाहपरिणीताया भर्त्तृगोत्रेणैव सर्व्वं कर्म्म। गान्धर्व्वासुरराक्षसपैशाचनिन्दितविवाहोढ़ायाः सपिण्डनान्तं पितृगोत्रेण श्राद्धं तदूर्द्धं भर्त्तृगोत्रेणैव।

यथा बृहस्पतिः—

भर्त्तृगोत्रेण दातव्यं स्त्रीणां पिण्डोदकं सुतैः।
पाणिग्रहणिका मन्त्राः पितृगोत्रापहारकाः॥
भर्त्तृगोत्रेण नारीणां देयं पिण्डोदकं ततः॥

हारीतः—

संस्थितायान्तु भार्य्यायां सपिण्डीकरणान्तिकम्।
पैतृकं भजते गोत्रमूर्द्धन्तु पतिपैतृकम्॥
एकमूर्त्तित्वमायाति सपिण्डीकरणे कृते।
पत्नीपतिपितॄणान्तु तस्मात्तद्गोत्रभागिणी॥

सपिण्डनान्तं कर्म्म तस्याः पैतृकं गोत्रं भजते पितृगोत्रेण स्त्रीणां सपिण्डनान्तं कर्म्म कार्य्यम् सपिण्डनादूर्द्धन्तु पतिगोत्रेणेति हेतुमाह एकमूर्त्तित्वमिति।

पुत्रिकापुत्रस्य मातृसपिण्डनमाहोशनाः—

पितुः पितामहे यद्वत् पूर्णे संवत्सरे सुतैः।
मातुर्मातामहे तद्वदेषा कार्य्या सपिण्डता॥

मातामहे इति मातामहादित्रिक इत्यर्थः।

जीवति तु मातामहे मातामह्यादिभिः सपिण्डनमिति श्राद्धचिन्तामणिः। प्रमातामहादित्रिकेणेति वृद्धाः।

आदौ मृतस्य पितुः पश्चान्मृताभ्यां पितामह-प्रपितामहाभ्यां प्रेतीभूताभ्यामपि सपिण्डनमाह छन्दोगपरिशिष्टम्—

असंस्कृतौ न संस्कार्य्यौ पूर्व्वौ पौत्रप्रपौत्रकैः।
पितरं तत्र संस्कुर्य्यादिति कात्यायनोऽब्रवीत्॥
पापिष्ठमपि शुद्धेन शुद्धं पापकृतापि वा।
पितामहेन पितरं कुर्य्यादिति विनिश्चयः॥

असंस्कृतौ अकृतसपिण्डनौ पूर्व्वौ पितामहप्रपितामहौ पौत्रैः प्रपौत्रकैश्चैव नापकृष्य सपिण्डनीयौ किन्तु प्रेतीभूताभ्यामेव ताभ्यां पितरं सपिण्डयेदिति कात्यायनवचनम्।

ननु कथमसंस्कृताभ्यां सह पितुः प्रेतस्य सपिण्डनेन शुद्धिरित्याह पापिष्ठमपीति।

पापिष्ठमकृतसपिण्डनं पितरं शुद्धेन कृतसपिण्डनेनापि वा *[पापकृता अकृतसपिण्डनेनापि] शुद्धं कुर्य्यात् सपिण्डयेदिति शास्त्रीयो नियमः। तत्र शास्त्रबोधितेऽर्थे का अनुपपत्तिरिति।

एवञ्च—पश्चान्मृतेन भर्त्रा प्रेतीभूतेनापि सह मातुः सपिण्डनं पापिष्ठमपि शुद्धेनेत्यनेन तुल्यन्यायात् सिद्धम्।

अत्र श्राद्धविवेकः—

प्रेतीभूतेनापि पितामहेन सह पितुः सपिण्डने कृते तेनैव प्रेतीभूतेन सह पार्व्वणमपि कार्य्यम्।

---

* क पुस्तके चिह्नितांशो नास्ति।

छन्दोगपरिशिष्टम्—

पितामहः पितुः पश्चात्पञ्चत्वं यदि गच्छति।
पौत्रेणैकादशाहादि कर्त्तव्यं श्राद्धषोड़शम्॥
नैतत् पौत्रेण कर्त्तव्यं पुत्रवांश्चेत् पितामहः।
पितुः सपिण्डतां कृत्वा कुर्य्यान्मासानुमासिकम्॥

एतत् पितामहस्य षोड़शश्राद्धं सति पितृव्ये पौत्रेण न कार्य्यं किन्तु पितृव्य एव तत्राधिकारीति।

तर्हि पौत्रेण क्रियमाणे पार्व्वणे प्रेतीभूतपितामहस्यानुप्रवेशोऽस्ति न वेत्यत्राह पितुरिति—पितुः सपिण्डतां कृत्वैव प्रेतीभूतस्यापि पितामहस्य मासानुमासिकं प्रतिमासविहितं पार्व्वणं पौत्रः कुर्य्यात् न तु तस्य सपिण्डनापेक्षा कार्य्या वचनात्।

मासानुमासिकमिति सपिण्डनोत्तरश्राद्धोपलक्षणम्।

न चैतद्वचनं पितुः पार्व्वणोपदेशकतया अन्यथासिद्धमिति वाच्यम्। प्रेतीभूतपितामहश्राद्धप्रकरणादिति।

...वस्तुतस्तु—सति पितृव्ये यथा पितामहस्य प्रेतक्रियायां पौत्रस्य नाधिकारस्तथा तत्पार्व्वणेऽपि नाधिकारोऽस्तु तुल्ययुक्तेरित्यत्राह पितुः सपिण्डतामिति—पितुः सपिण्डतां कृत्वैव पौत्रः पितामहस्य पितृवत् पार्व्वणं कुर्य्यात् द्वयोरेव तुल्याधिकार इत्यर्थः। पितामहप्रेतीभावदशायान्तु।

तं विहाय तत्पूर्व्वपुरुषयोः कार्य्यम्।

सपिण्डीकरणादूर्द्ध्वं प्रेतः पार्व्वणभुग्भवेत्।
विन्दते पितृलोकञ्च ततः श्राद्धं प्रवर्त्तते।

इति मत्स्यपुराणहारीतादिभिः प्रेतस्य पार्व्वणनिषेधात् ।

न चैकपुरुषिकं पार्व्वणमिति वाच्यम् ।

सपिण्डीकरणादूर्द्ध्वं यत्र यत्र प्रदीयते ।

तत्र तत्र त्रयं कुर्य्याद्वर्जयित्वा मृताहनि ॥

इति शङ्खादिभिस्त्रैपुरुषिकविधानात्

पितामहे सजीवे वै पितर्य्येव समापयेत् ॥

इति हारीतादिभिर्जीवत्येव पितामहे ऐकपुरुषिकविधानाच्च ।

न च

ब्राह्मणादिहते ताते पतिते सङ्गवर्जिते ।

व्युत्क्रमाच्च मृते देयं येभ्य एव ददात्यसौ ॥

इति वचनाविषयत्वात् कथं प्रेतमतिक्रम्य तत्पूर्व्वयोः श्राद्धमिति वाच्यम् ।

पार्व्वणानर्हपितृकेण कथं पार्व्वणं कर्त्तव्यमित्याकाङ्क्षायां ब्राह्मणादीति वचनं तथात्रापि तुल्याकाङ्क्षायां तुल्यन्यायात् प्रवर्त्तत एव पतितादिपदानां पार्व्वणानर्हत्वोपलक्षकत्वात्* ।

अन्यथा जीवत्पितृकेण पौत्रेण स्वपुत्रस्यावश्यकचूडादावनुष्ठीयमाने प्रेतस्य पार्व्वणनिषेधात् प्रेतीभूतं पितामहं विहाय तत्पूर्व्वेषां वृद्धिश्राद्धमसङ्गतं स्यात् ।

एवञ्च वचनात् प्रेतीभूतेन पितामहेन सह पितुः कृतेऽपि

---

* ख पुस्तके पानर्होपलक्षकत्वात् ।

सपिण्डने प्रेतपितामहं विहाय तत्पूर्व्वयोः पार्व्वणं कार्य्यं प्रेतस्य पार्व्वणनिषेधात् मानाभावाच्चेति ।

नारायणोपाध्यायस्याप्ययं स्वरसः ।

अत्र च प्रेतीभूतपितामहेन पितुः सपिण्डने कृते वृद्धप्रपितामहस्य लेपभागित्वात् कथं तेन सह पुनः पार्व्वणमिति नाशङ्कनीयं लेपभागित्वस्याजातत्वात् ।

तथाहि—

त्रिभिः सपिण्डीकरणैरासेकाचितयं पिता ।

यदा प्राप्स्यति कालेन तदा मुच्येत बन्धनात् ॥

मुक्तोऽपि लेपभागित्वं प्राप्नोति कुशमार्ज्जनात् ॥

इति मत्स्यपुराणात् यदीयपुरुषत्रयसपिण्डने यस्यासेकत्रयप्राप्तिर्वृत्ता तस्यैव तदीयलेपभागित्वं तस्य च पितृप्रपितामहयोः सपिण्डने आसेकद्वयमात्रं भूतं तृतीयस्यासेकः पितामहसपिण्डने भावीति ।

ननु जीवति पितामहे प्रपितामहादिभिः पितुः सपिण्डने कृतेऽतिवृद्धप्रपितामहस्यासेकत्रयमात्रया लेपित्वे सति कथं तेन सह पश्चात्पितामहसपिण्डनं लेपिना श्राद्धनिषेधात् ।

अत्र प्राहुः—

संवत्सरान्ते प्रेताय तत्पित्रे तत्पितामहाय तत्प्रपितामहाय इति चोपि पितॄणामेकं प्रेतस्येत्यादि विष्णुगोभिलादिवचनबलादेव लेपावाधश्राद्ध*मिति वदन्ति ।

* न पुनर्लेपिनोऽपि श्राद्धं ।

वस्तुतस्तु—

> चतुर्थस्य पुनः कार्य्यं न कदाचिदतो भवेत्।
> सपिण्डीकरणादूर्द्धं तस्मै तस्मान्न दीयते॥

इति मत्स्यपुराणादिनिषेधात् सपिण्डने लेपिनोऽनुप्रवेशो नास्त्येव किन्तु द्वाभ्यां सहैव तत्र सपिण्डनं विष्णुादिवचनन्तु यथासम्भवपरं मन्तव्यम्।

यत्र तु प्रेतीभूतपितामहेन पितुः सपिण्डनं कृतं तत्रातिवृद्ध-प्रपितामहस्याधिकनिश्चयालाभेन लेपित्वाभावात्तेन सह पश्चात् पितामहसपिण्डनं च निर्विवादमेव किन्तु तत्परं द्वयोरेकदैव लेपित्वलाभ इति।

> एवं स्त्रीशूद्राभ्यां अमन्त्रकं सपिण्डनं कार्य्यम्।

> अदृष्टार्थसिद्धिस्तु नमोमन्त्रजपात् दृष्टार्थप्रकाशनन्तु
> असन्त्वस्य तु शूद्रस्य विप्रो मन्त्रेण गृह्यते।

इति वचनात् ब्राह्मणपठितमन्त्रादेवेति प्रागुक्तम्।

आधुनिकास्तु—

> अर्घार्थं पितृपात्रेषु प्रेतपात्रं प्रसेचयेत्।
> ये समाना इति द्वाभ्यामेतज्ज्ञेयं सपिण्डनम्॥

इति भविष्यपुराणान्मन्त्रद्वयस्य प्रधानशरीरघटकत्वावधारणा-त्तत्राधिकारबोधकविधिनैव स्त्रीशूद्रयोर्ये समाना इति मन्त्रद्वय-पाठेऽधिकारः कल्पते।

अतएव अनयैवोत्सृजेरन्निति पारस्करे एवकारेण वाक्यान्तर-

निरासात् वृषोत्सर्गे एनं युवानमिति मन्त्रपाठे शूद्राधिकार इत्याहुः। तन्मन्दम्—

यदपि रथकार आदधीत इत्यत्र लाघवात् रूढ्या प्रतीतजातिविशेषरूपार्थान्यथानुपपत्त्या (?) अग्न्याधानसाधनीभूतमन्त्रे सुतस्याधिकारकल्पनाऽस्तु वृषोत्सर्गेऽपि त्यागवाक्यतया नियमेनाभिधानात्तथास्तु इह तु तथाविधनियमाभावान्नमस्कारोऽस्य विहितो मन्त्र इत्यापस्तम्बवचनात् नमोमन्त्रेणैव सपिण्डीकरणजन्यादृष्टसिद्धेः, इष्टार्थप्रकाशस्य च ब्राह्मणपठितमन्त्रादेरजातत्वात्। त्रैवर्णिकगोचरतया तु निर्विषरितार्थत्वात् ये समाना इति मन्त्रे शूद्रस्याधिकारकल्पनाया अन्याय्यत्वात्।

किञ्च—

नित्यश्राद्धमदैवं स्यादर्घ्यपिण्डविवर्ज्जितम्।

इति हारीतेनार्घपिण्डयोर्वर्ज्जनात् प्रधानस्य च वर्ज्जनासम्भवात् श्राद्धेऽप्युत्सर्ग एव प्रधानमित्यत्र सर्व्वेषामविवादात् सपिण्डनश्राद्धस्य च त्यागविशेषत्वात् पिण्डजलमिश्रणस्य तु त्यागत्वाभावात् प्रधानत्वमेवानुपपन्नं पिण्डार्घदानयोरङ्गत्वेनोपाङ्गत्वाच्च।

किन्तूपाङ्गान्तरापेक्षया अतिशयितत्वं मिश्रीकरणस्येति कुतस्तत्साधनीभूतमन्त्रे शूद्राधिकारप्रत्याशा।

भविष्यपुराणे—द्वादशविधश्राद्धमुपक्रम्य वैदकधर्म्ममात्रमुपन्यस्तम्।

किञ्च द्वादशाहं श्राद्धानि कृत्वा त्रयोदशेऽह्नि वा सपिण्डनं कुर्य्यात् मन्त्रवर्ज्जं शूद्राणां द्वादशेऽह्नि।

इति विष्णुना शूद्राणां सपिण्डनममन्त्रकमेव विहितमिति सर्व्वदेशविरुद्धमाधुनिकमतं हेयमेव।

यच्चाप्युक्तं तैः—सपिण्डनदिने तत्पश्चादम्बुघटश्राद्धं पितृपदेन कार्य्यमिति तदपि मन्दम्—

सपिण्डनस्यापराह्णः कालः, अम्बुघटस्यैकोद्दिष्टातिदेशात् मध्याह्नः कालः कुतः सपिण्डनात्परकर्त्तव्यताऽम्बुघटश्राद्धस्य।

न च नित्यश्राद्धत्वात् पार्व्वणात् पूर्व्वमप्रसक्तमिति वाच्यम्।

वैश्वदेवपरकर्त्तव्यस्य महायज्ञान्तर्गतस्यैव नित्यश्राद्धस्य स्वभोज्यापाकेन विधानात् सर्व्वपश्चात् कर्त्तव्यता।

यत्तु—श्राद्धानामथ सर्व्वेषां पश्चादम्बुघटं स्मृतम्।

इति पठन्ति तदमूलम्।

समूलत्वेऽपि षोडशश्राद्धापकर्षे कृते तत्परतोऽम्बुघटं विदधातीति।

सपिण्डनात्परं तद्दिने सांवत्सरिकं पितृपदेन कार्य्यम्।

तथा लघुहारीतः—

> प्रत्यब्दं द्वादशे मासि कार्य्या पिण्डक्रिया बुधैः।
> कश्चित्त्रयोदशे मासि श्राद्धं मुक्त्वा तु वत्सरम्॥
> चक्रवत् परिवर्त्तेत सूर्य्यः कालवशाद्यतः।
> अतः सांवत्सरं श्राद्धं कर्त्तव्यं मासचिह्नितम्॥

मासश्चिकन्तु कर्त्तव्यं पौषमाघाद्यमेव हि।
यतस्तत्र विधानेन मासः स परिकीर्त्तितः॥
असङ्क्रान्तेऽपि कर्त्तव्यमाब्दिकं प्रथमं नरैः।
तथैव मासिकं पूर्व्वं सपिण्डीकरणन्तथा॥
गर्भे वार्द्धुषिके सत्ये मृतानां पिण्डकर्म्मसु।
सपिण्डीकरणे चैव नाधिमासं विदुर्बुधाः॥

मृताहे प्रतिसंवत्सरं कुर्य्यादित्यनेन मृताहविहितं सांवत्सरिकश्राद्धं "मृताहादवर्षेर्मृताहपर्य्यन्तं मासः" इति व्यवस्थया द्वादशे मासि प्रत्यब्दं कार्य्यमित्युत्सर्गः। क्वचित्तु वत्सरे द्वादशे वा मासे तत्पूर्व्वेषु वा मासेषु मलमासपाते त्रयोदशमासि कार्य्यं तस्यैव प्रकृतमासत्वात्॥

आद्यन्तु सांवत्सरिकं वचनादुत्तरं प्रकृतमासं विहाय द्वादशे मलमास एव सपिण्डनानन्तरं कार्य्यं सांवत्सरिकविधेः सपिण्डनोत्तरकालप्राप्तत्वात्।

यत्त—

जातकर्म्मणि यच्छ्राद्धं नवश्राद्धं तथैव च।
प्रतिसंवत्सरश्राद्धं मलमासेऽपि तत् स्मृतम्॥

इति सत्यव्रतवचनं तदेतद्वचनविरोधादाद्यवत्सरेऽन्त्याधिमासविषयमाद्यं मुक्त्वा तु वत्सरमित्यस्य समानार्थम्।

मध्याधिमासे तु त्रयोदशमासेव श्राद्धं तत्रैव मृतमासीयतिथिलाभादिति प्राशुक्तम्।

ननु सौरवर्षोदयमासस्य सौरसृतमासेतरत्वात् कथं तत्र श्राद्धमित्याह चक्रवत्परिवर्त्तेनेति चक्रवत्परिभ्रमणवशेन गते-र्मैन्दवशैघ्र्यलाभ्यां कदाचिदेकराशिभोगे तिथिद्वयप्राप्तौ श्राद्ध संशयात् कदाचिन्मृततिथ्यलाभे श्राद्धलोपापत्तेस्तदा च प्रतिसंवत्सरं कुर्य्यादिति विधिबाधापत्तेः सौरं मासचिह्नं विहाय पौषमाघादि-चान्द्रमासचिह्नितं सांवत्सरिकश्राद्धं कार्य्यम् ।

यतस्तच्च सांवत्सरिकश्राद्धे विधानेन मासेन स माघादि-चिह्नितचान्द्रो मासः कीर्त्तितः । माघादिपदवाच्यता तु चान्द्र-मासस्यैवेति शुद्धिकौमुद्यां विवेचितमस्ति ।

श्राद्यं मुक्त्वा तु वत्सरमित्युक्तमेव स्पष्टयति ।

असङ्क्रान्तेऽपीति असङ्क्रान्ते मलमासे प्रथममाब्दिकं सपिण्डना-नन्तरविहितं प्रथमसांवत्सरिकं तथा सपिण्डनात् पूर्व्वं मासिकं द्वादशमासिकं सपिण्डीकरणञ्च प्रकृतमुत्तरमासं विहाय कर्त्तव्य प्रथमविशेषणान्मलमासे द्वितीयसांवत्सरिकव्युदासः । गर्भे इति गर्भकाले गर्भाधानपुंसवनादौ सपिण्डीकरणे सपिण्डीकरणापकर्षे इत्यर्थः ।

अत्राधुनिकाः—

आब्दिकं द्वादशमासिकमिति व्याख्याय सपिण्डनानन्तरं क्रियमाणं सांवत्सरिकश्राद्धमनाद्यत्याचारो दुराचार एव इति वदन्ति । तदशुद्धम्—

मृताहे प्रतिसंवत्सरं कुर्य्यादिति वीप्साविधिबाधापत्तेः । श्राद्यं मुक्त्वा तु वत्सरमित्यनेन प्रकृते चाद्यादशे मासि निरस्य द्वादशे-

एव मलमासे प्रत्यब्दविहितस्य सांवत्सरिकश्राद्धस्य प्रथमसंवत्सरे दर्शितत्वाच्च।

अतः सांवत्सरं श्राद्धमित्यनेन प्रत्यब्दविहितश्राद्धस्यैवोपसंहाराच्च।

तथैव मासिकं पूर्व्वं सपिण्डीकरणन्तथा।

इत्यनेन द्वादशमासिकसपिण्डीकरणयोः पृथक् प्रतिप्रसवाच्च।

आब्दिकं प्रथमं मरैरित्यत्र प्रथमपदवैयर्थ्याच्च मृताहे प्रतिसंवत्सरं कुर्य्यादिति विधिविहितस्यैव सांवत्सरिकस्य प्रथमद्वितीयादिव्यवहारो युज्यते न तु द्वादशमासिकस्येति।

न च द्वादशमासिकमेव प्रतिसांवत्सरिकश्राद्धमिति वाच्यम्।

मृताहनि तु कर्त्तव्यं प्रतिमासन्तु वत्सरम्।
प्रतिसंवत्सरञ्चैव आद्यमेकादशेऽहनि॥

इति याज्ञवल्क्येन प्रतिमासविहितस्य द्वादशमासिकस्य प्रतिसांवत्सरविध्यगोचरत्वात्।

यथाप्युक्तमाधुनिकैः—

प्रतिमासन्तु वत्सरं प्रतिसंवत्सरञ्चैव इत्यनेन सामान्यविशेषन्यायात् पदाहवनीयवत् प्रथमाब्देतरपरमाब्दे विधीयमानं कथं प्रथमाब्दे प्रसज्येतेति, तदसौवाचकम्।

सामान्यविशेषन्यायस्यैकविषयकत्वनियमात् अन्यथाप्रसङ्गात्।

न चात्र प्रतिमासं कुर्य्यात् प्रतिसंवत्सरं कुर्य्यादिति विधिद्वयस्यैकविषयकताऽस्ति। अन्यथा अमावस्यायां पितृभ्यो

दद्यादित्यपेक्ष्य मृताहे [प्रति]*संवत्सरं कुर्य्यादित्यस्य सामान्यविशेषन्यायादभावश्चेतरत्वमस्तु।

न च वत्सराधिकरणतामादायैकविषयता वाच्या, मासिकश्राद्धविधेर्वत्सरान्तर्गतमासा एवाधिकरणानि प्रत्यब्दविधेस्तु वत्सरा इति कथमेकविषयता।

किञ्च प्रत्यब्दप्रतिमासविध्योर्व्याप्यव्यापकभावाभावेन स्नातन्याय सामान्यविशेषभावस्य कः प्रसङ्गः। उभयोरेव विशेषत्वात्।

किञ्च—आद्यं भुक्त्वा तु वत्सरमित्यनेन हारीतेन प्रकृतत्रयोदशमासं विहाय द्वादश एव मलमासे प्रथमाब्दे कथं प्रत्याब्दिकश्राद्धं विहितम्।

यच्च—ब्राह्मणाय दधि दीयतां तक्रं कौण्डिन्याय इतिवत् प्रतिमासश्च पक्षरं प्रतिसंवत्सरञ्चेत्यश्रोतिबाधया प्रथमसंवत्सरेतरपरत्व प्रतिसंवत्सरविधेरिति तैरुक्तम्। तदसीव मन्दम्—

उक्तिबाधाया अपि समानविषयत्वनियमात्।

अतएव चैत्रो भुङ्क्ते मैत्रो व्रजतीत्यत्र नोक्तिबाधा।

किञ्च यदि पूर्व्वोक्तसामान्यविधिमपेक्ष्य उत्तरस्य विशेषविधिप्रवृत्तिः स्यात् तदा सामान्यविधिरुक्तिबाधाविषयः स्यात्।

न च प्रत्यब्दविधिमपेक्ष्य प्रतिमासविधिः, न वा सामान्यविशेषभावो व्याप्यव्यापकभावाभावात्। न च प्रत्यब्दविधिः पूर्व्वः

---

* च पुस्तके प्रतिपदं नास्ति।

प्रत्युत याज्ञवल्क्यवचने प्रत्यब्दविधिः परत एव श्रूयते इत्युक्ति-बाधायाः कः प्रसङ्गः।

किञ्च हारीतस्य प्रथमाब्देऽपि सांवत्सरिकश्राद्धविधान-मसङ्गतं स्यात्।

न च द्वादशमासिकश्राद्धे तन्त्रेणैव सांवत्सरिकं सिद्धमिति वाच्यम्।

वाक्ये उभयोरेवप्रसङ्गात् द्वादशमासिके प्रेतपदत्वेन देव-तात्वं सांवत्सरिकेऽपि पितृपदवत्त्वेनेति देवताभेदेन तन्त्रत्वा-भावाच्च फलभेदेन प्रयोगाच्च द्वादशमासिकस्य प्रेतत्वपरीहारः फलं सांवत्सरिकस्य तु पितृत्वमिरिति।

एतेनाशुपङ्गो निरस्तः प्रतिसंवत्सरविधेः सपिण्डनोत्तर-कालविहितत्वेन कालभेदाच्च।

न च सपिण्डनश्राद्धमेव सांवत्सरिकश्राद्धमिति वाच्यम्। विधिभेदेन कालभेदेन च श्राद्धभेदात् सपिण्डनस्य पार्व्वणैको-द्दिष्टतया द्वादशकालेन* सांवत्सरिकेतरत्वाच्च हारीतेन पृथक् विहितत्वाच्च।

अतएवापराह्णक्रियमाणसपिण्डनानन्तरमपराह्ण एव मृताहे सांवत्सरिकं प्रायः कुर्व्वन्ति रात्रिश्राद्धेतरस्यैव श्राद्धयोग्य-कालत्वादिति।

अस्यैव श्राद्धस्य प्रतिग्रहे एकाहः पुनराह्निक इति यमेन

* ख पुस्तके द्वादशकालेन।

प्रायश्चित्तमुपदिश्यते अब्दे क्रियमाणस्य सपिण्डनस्य पश्चात् क्रियते इति पुनराब्दिकं प्रथमसांवत्सरिकमित्यर्थः ।

यत्तु—पूर्व्वेद्युर्वार्षिकं श्राद्धं परेद्युः प्रथमाब्दिकम् ।

इति शङ्खनाम्ना वचनं पठन्ति ।

तदमूलं तत्संहितायामदृष्टत्वात् समूलत्वेऽपि पूर्व्वदिने ऽपराह्लानुरोधेन मृते सपिण्डीकरणे परदिने यदि मृततिथेर्मध्याह्ने लाभः तदा परेद्युरेव पुनराब्दिकं कार्य्यं न तु सपिण्डन-साहचर्य्यात् पूर्व्वदिन एवेति वचनार्थः । अतः प्रथमसंवत्सरेऽपि सांवत्सरिकमवश्यं कार्य्यमिति सिद्धम् ।

तत्रापकर्ष कृते सपिण्डने सांवत्सरिकस्यापकर्षविधाना-भावात् पूर्णे संवत्सरे तदवश्यं कार्य्यम् ।

यतीनां निषेधमाह ब्रह्मपुराणे—

त्रयाणामाश्रमाणाञ्च कुर्य्याद्दाहादिकां क्रियाम् ।
यतेः किञ्चिन्न कर्त्तव्यं न चान्येषां करोति सः ॥

परिशिष्टम्—

ब्राह्मणादिहते ताते पतिते सङ्गवर्ज्जिते ।
व्युत्क्रमाच्च मृते देयं येभ्य एव ददात्यसौ ॥

सङ्गवर्ज्जिते प्रव्रजिते अयञ्च सकलकर्म्मनिषेध एकदण्डिना-मेव यतीनां त्रिदण्डिनान्तु एकादशाहश्राद्धं प्रत्याब्दिकश्राद्धञ्च पार्व्वणविधिना कार्य्यं नान्यत् किञ्चिदित्याह उशनाः—

एकोद्दिष्टं न कुर्व्वीत न्यासिनाञ्चैव सर्व्वदा ।
अहन्येकादशे प्राप्ते पार्व्वणन्तु विधीयते ॥

असपिण्डीकरणं तेषां न कर्त्तव्यं सुतेन वै।
विटपिण्डग्रहणादेव प्रेतत्वं नैव जायते॥

तथा—

एकोद्दिष्टं जलं पिण्डमशौचं प्रेतसत्क्रियाम्।
न कुर्य्याद्दार्षिकादन्यद्ब्रह्मभूता हि ते स्मृताः॥

---

## अथ सपिण्डनप्रयोगः।

पूर्व्वदिने निरामिषं सकृद्भुक्त्वा पार्व्वणार्थं ब्राह्मणत्रयं एकोद्दिष्टार्थञ्च ब्राह्मणमेकं निमन्त्रयेत्।

प्रातः स्नात्वा मध्याह्ने कृतद्वादशमासिकः पित्रर्थं प्रेतार्थञ्च पाकद्वयं पृथक् कृत्वाऽपराह्णे विप्रानानीय स्वागतप्रश्न-पाद्यार्घ्याचमनीयदानानि कृत्वा पूर्व्वदिने निमन्त्रणासम्भवे प्राङ्गणे प्राङ्मुखं दैवब्राह्मणद्वयमुदङ्मुखं पितामहादिब्राह्मणत्रितयं वामक्रमेणोपवेश्य तद्दक्षिणे प्रेतब्राह्मणञ्चोदङ्मुखमुपवेश्य निमन्त्रयेत्।

ॐ अद्येत्यादि अमुकगोत्रस्य प्रेतस्यामुकशर्म्मणः सपिण्डीकरणश्राद्धार्थं अमुकगोत्रस्य पितामहस्यामुकशर्म्मण एवं प्रपितामहस्य एवं वृद्धप्रपितामहस्य पार्व्वणविधिकश्राद्धे पुरोरवोमाद्रवसोर्विश्वेषां देवानां श्राद्धं कर्त्तुं त्वामहं* निमन्त्रये।

ततो दक्षिणामुखः—ॐ अद्येत्यादि अमुकगोत्रस्य प्रेतस्या-

---

* क पुस्तके युवां।

मुकशर्म्मणः सपिण्डीकरणश्राद्धार्थं अमुकगोत्रस्य पितामहस्य एवं प्रपितामहस्य एवं वृद्धप्रपितामहस्य पार्व्वणविधिकश्राद्धं कर्त्तुं युष्मानहं निमन्त्रये।

ॐ अद्येत्यादि अमुकगोत्रस्य प्रेतस्यामुकशर्म्मणः सपिण्डने-कोद्दिष्टश्राद्धं कर्त्तुं त्वामहं निमन्त्रये।

सर्व्वत्र निमन्त्रितोऽस्मीति प्रत्युत्तरम्। अक्रोधनैरिति नियम-श्रावणञ्च कुशब्राह्मणे तु स्वागतप्रश्न [पाद्यादिदाननिमन्त्रणानां]* बाधः।

तत आचम्य तैः सह गृहं प्रविश्य अत्राद्यभिप्रायेण सिद्ध-मित्युक्त्वा पूर्व्वाग्रदर्भद्वययुक्ते आसनद्वये प्राङ्मुखं देवब्राह्मणद्वयं दक्षिणाग्रदर्भैकयुक्तेष्वासनेषु पितामहादिब्राह्मणत्रयमुदङ्मुखं तद्दक्षिणे प्रेतब्राह्मणञ्च यथाक्रममासनं स्पृशन् प्रत्येकमिदमासन-मत्रास्यतामित्युक्त्वा दक्षिणहस्ते धृत्वा उपवेशयेत्। तेषां पादयो-रधः कुशानास्तरेत्। न त्वेवैकं सर्व्वेषां काममनाद्य इत्यापस्तम्ब-वचनात् सपिण्डीकरणे पितामहादिब्राह्मणोपवेशने तन्त्रता नास्तीति।

ततः प्रत्येकमासनसमीपे दीपं ज्वालयेत्।

ततो यज्ञेश्वरमभ्यर्च्य यज्ञेश्वरमिति पठित्वा द्वारदेशे गृहा-न्तरे च सर्व्वतस्तिलसर्षपानपहता इति विकीर्य्य श्रीविष्णुः श्रीपुण्डरीकाक्षः श्रीहरिरिति स्मृत्वा रक्षार्थं जले प्रतिब्राह्मण-समीपे स्थाप्यम्।

---

* क पुस्तके अधिक पाठः।

ततो गायत्रीजपं देवताभ्य इति त्रिर्जपञ्च कृत्वा उदङ्मुख उपवीती—ॐ अद्येत्यादि अमुकगोत्रस्य प्रेतस्यामुकशर्म्मणः सपिण्डीकरणश्राद्धार्थं अमुकगोत्रस्य पितामहस्य एवं प्रपितामहस्य एवं वृद्धप्रपितामहस्य पार्व्वणविधिकश्राद्धे पुरोरवोमाद्रवसो-र्विश्वेषां देवानां श्राद्धमन्नेन सोपकरणेन युवयोरहं करिष्य इति कुरुष्वेत्युत्तरम्।

ततो दक्षिणामुखः प्राचीनावीती—

ॐ अद्येत्यादि अमुकगोत्रस्य प्रेतस्यामुकशर्म्मणः सपिण्डनार्थं अमुकगोत्रस्य पितामहस्यामुकशर्म्मणः एवं प्रपितामहस्य एवं वृद्ध-प्रपितामहस्य पार्व्वणविधिकश्राद्धमन्नेन सोपकरणेन युष्माकं करिष्ये कुरुष्वेत्युत्तरम्।

कुशमयब्राह्मणे तु युष्मच्छब्दप्रयोगो न कार्य्यः किन्तु कुशमय-ब्राह्मणेऽहं करिष्ये इति प्रत्युत्तरन्तु सन्निधापितब्राह्मणेन कार्य्यम्।

प्रेतपक्षे—ॐ अद्येत्यादि ततः—अमुकगोत्रस्य प्रेतस्यामुक-शर्म्मणः सपिण्डनैकोद्दिष्टश्राद्धमन्नेनेत्यादि पूर्ब्बवत्।

अत्र च दैवपक्षे कृत्वा पितामहादिपक्षे कार्य्यम्।

ततश्च प्रेतपक्ष इति क्रमः।

तत्र च *श्राद्धस्य काण्डत्रयं गन्धादिदानान्तमेकं काण्डं द्वितीयमन्नोत्सर्गः तृतीयं पिण्डदानादि।

* च पुस्तके प्रेतश्राद्धस्य।

अत्र सपिण्डीकरणे दैवकाण्डं समाप्यैव पितृकाण्डारम्भः कार्य्यो न तु पदार्थानुसमयः स च दैवे एकैकपदार्थं कृत्वा पित्रादिषु तत्तत्पदार्थं कुर्य्यादित्येवं रूपः ।

ततश्च दैवे गन्धादिदानान्तं समाप्य पितामहादिषु प्रेतक्रमेण* पश्चात् कार्य्यम् । सकलेन सर्व्वाणि द्रव्याणि प्रोक्ष्य दैवे कुशासनावाहनार्घ्यप्रदानगन्धादिदानानि कृत्वा † [ पितामहादिपक्षे प्रेतपक्षे च क्रमात् कुशासनमुत्सृज्य जलं स्पृष्ट्वा पितामहादिपक्षे आवाहनं कृत्वा पार्व्वणवत् पवित्रजलतिलादिना अर्घ्यपात्रत्रयं संस्थाप्य प्रेतपक्षे चैकोद्दिष्टवदर्घ्यपात्रमपरं संस्थाप्य प्रेतार्घ्यपात्रं पूर्व्ववदुत्सृज्य तच्चतुर्थभागजलं प्रेतविप्रकरे दत्त्वा ] अपरभागत्रयमानीय पितामहार्घ्यं पार्व्वणवदुत्सृज्य—

ॐ ये समाना अमनसः पितरो यमराज्ये ।
तेषां लोकः स्वधा नमो यज्ञो देवेषु कल्पताम् ।
ये समानाः समनसो जीवा जीवेषु मामकाः ।
तेषां श्रीर्मयि कल्पतामस्मिन् लोके शतं समाः ॥

इति मन्त्रद्वयेन प्रेतार्घ्यभागत्रयस्य भागमेकं तत्रस्थतिलपुष्पादि च तत्र मिश्रयित्वा पितामहादिविप्रकरेऽर्पयेत् । एवं प्रपितामह वृद्धप्रपितामहयोरप्यर्घ्यमुत्सृज्य ये समाना इति मन्त्रद्वयेन प्रेतार्घ्यजलं तिलपुष्पादि च मिश्रीकृत्य तद्विप्रकरयोरर्पयेत् ।

---

* ख. प्रेतानुक्रमेण ।

† ख पुस्तके [ ] चिह्नितांश पतित ।

पितामहादिपक्षे संस्रवं गृहीत्वा प्राप्तपात्रे संस्थाप्य गन्धादिकं दत्त्वा प्रेतगन्धादिकं दद्यात्।

ततोऽग्नौकरणहोमं कृत्वा तच्छेषं दैवादिक्रमेण प्रेतपात्रं विना सर्व्वत्र दत्त्वा अन्नादिकं परिवेष्य दैवेऽन्नोत्सर्गकाण्डं समाप्य पितामहादिभ्यः पार्व्वणवत् प्रेतपक्षे चैकोद्दिष्टवदन्नोत्सर्गः कार्य्यः। अत्र प्रेयश्चापनं प्रेयप्रश्नोऽपि न कार्य्यः। पिण्डत्रयं प्रेताय चैकोद्दिष्टवत् पिण्डमेकं दत्त्वा अर्च्चमिति जलाञ्जलिदानान्तं समाप्य गन्धादिभिरभ्यर्च्य पितरञ्च शुभास्वरं ध्यात्वा सुवर्णरजतदर्भैः प्रेतपिण्डं त्रिधा कृत्वा ये समाना इति मन्त्रद्वयेन पितामहादिपिण्डत्रयमेकैकभागं मिश्रयित्वा तान् पिण्डान् सुवर्त्तुलान् कृत्वा पितरं मुख्यं ध्यात्वा गन्धपुष्पादिभिः पुनः सर्व्वानर्चयेत्।

ततो विप्रानाचम्य सुसुप्रोक्षितमस्तु शिवा आपः सन्तु इत्यादयाशीःप्रार्थनस्वधावाचनपुनर्जलसेकन्युब्जोत्थानदक्षिणा–विसर्जन-दैवताजप-विसर्जनानि पार्व्वणवत् कार्य्याणि प्रेतपक्षेऽपि स्वधावाचनं विना सर्व्वं कार्य्यम्। श्राद्धोत्तरकर्म्माणि सर्व्वाणि पूर्व्ववदेव।

---

## अथाधिकारिणः।

मरीचिः—

मृते पितरि पुत्रेण क्रिया कार्य्या विधानतः।
बहवः स्युर्यदा पुत्राः पितुरेकत्रवासिनः॥

सर्व्वेषान्तु मतं कृत्वा ज्येष्ठेनैव च यत् कृतम्।
द्रव्येण चाविभक्तेन सर्व्वैरेव कृतं भवेत्॥

पुत्रेरित्यविशेषात् सर्व्वेषामधिकारः, एकवचनमविवक्षितं सर्व्वैरेव कृतं भवेदिति वाक्यमात्रत्वात्।

प्रमीतस्य पितुः पुत्रैः श्राद्धं देयं प्रयत्नतः।

इति बृहस्पतिवचनाच्च सर्व्वेषां पृथगनुष्ठानप्रामाण्यात् बहवः स्युरिति।

ज्येष्ठश्चात्र सर्व्वापित्रयाऽग्रोत्पन्नो ग्राह्यः, तस्य च पितृऋणापरिशोधकत्वेन सर्व्वोत्तमत्वात्।

मनुः—

ज्येष्ठेन जातमात्रेण पुत्रीभवति मानवः।
पितृणामनृणश्चैव स तस्मात्सर्व्वमर्हति॥
एवम्भूतज्येष्ठाभावेऽप्यन्यथैव श्राद्धम्।

हारीतः—

सपिण्डीकरणान्तानि यानि श्राद्धानि षोड़श।
पृथक् नैव सुताः कुर्य्युः पृथक्द्रव्या अपि क्वचित्॥
किन्त्वापेक्षिकज्येष्ठ एव कुर्य्यादिति प्राञ्चः।

कर्त्तुरनियम इति श्राद्धविवेकः। एकत्रवासिन इत्यनेन प्राप्ते द्रव्येण चाविभक्तेनेति ग्रहणात् विभक्तधनानामपि पुनः कृतसंश्लेषणादविभक्तेन श्राद्धियद्रव्येणाप्यथैव श्राद्धं दर्शितम्।

ततश्च द्रव्यार्पणानुमतिभ्यां ज्येष्ठद्वारा श्राद्धसम्पादनेन सर्व्वैरेव श्राद्धं कृतं भवेत् प्रत्यवायपरीहारादिफलसिद्धिः स्यादित्यर्थः।

सर्व्वेषां सत्यधिकारे वचनात् पृथगनुष्ठानम्।

एवञ्च यत्र देशान्तरादावनुमतिद्रव्यार्पणयोरभावस्तत्र पृथगेव सर्व्वकर्म्मानुष्ठानं अन्यथा प्रत्यवायपरीहारो न स्यात्।

अत्र पूरकपिण्डदानं पुनर्नावर्त्तनीयमिति रत्नाकरः।

वस्तुतस्तु पुत्राणां नियताधिकारादकरणे प्रत्यवायात् द्रव्यार्पणानुमत्यसम्भवे कनिष्ठेनापि पिण्डदानमारभ्य सर्व्वं कर्म्म कार्य्यम्।

यत्तु—

असगोत्रः सगोत्रो वा यदि स्त्री यदि वा पुमान्।
प्रथमेऽहनि यो दद्यात् स दशाहं समापयेत्॥

इति वचनं तत्र प्रथमपिण्डदाता दशाहं समापयेदेवेत्यर्थो ऽवगम्यते तदन्यो न दद्यादिति वचनार्थः।

एवञ्च

प्रथमेऽहनि यो दद्यात् प्रेतायान्नोदके द्विजः।
दशाहस्य चान्येषु स एव प्रददात्यपि॥

इत्यादिपुराणवचन एवकारोऽभिन्नक्रमे सोऽपि दद्यादेवेत्यर्थः।

अन्यथाऽपिशब्दो व्यर्थः स्यात्। अतएव वशिष्ठमहर्षिणाऽधिष्ठितेन भरतेन दत्ते पूरकपिण्डे श्रीरामेण पुनः पिण्डो दत्त इति रामायणे वाल्मीकिमहर्षिवर्णितं सङ्गच्छते।

यथा,—

ऐङ्गुदं बदरोन्मिश्रं पिण्याकं दर्भसंस्तरे।
न्युप्य रामः स दुःखार्त्त इदं वचनमब्रवीत्॥

इदं शृणु महाराज दक्षुदीपफलमीप्सितम् ।
यदन्नः पुरुषो राजंस्तदन्नाः पितृदेवताः ॥

वाचस्पतिमिश्रादीनामपि मतमेतत् ।

एवञ्च ज्येष्ठस्याप्यपाटवापन्नौ देशान्तरस्थितौ वा तदानीमधिकारिणा कनिष्ठेन स्वयमकरणे प्रत्यवायात् क्वचित् श्राद्धे द्रव्यार्पणानुमतिविधानाभावेन प्रत्यवायपरिहारस्याजातत्वात् पाटवादौ भूते ज्येष्ठेन सर्व्वं कर्त्तव्यमेव ।

केचित्तु—चिरकालीनापाटवसम्भावनायां द्रव्यार्पणानुमती स्वयं विधाय कनिष्ठद्वारापि कार्य्यम् । ततः पश्चात् पाटवे सति पुनर्नावर्त्तनीयमित्याहुः ।

एतच्चापृथगनुष्ठानं सपिण्डनपर्य्यन्तं तत्परन्तु विभक्तानामविभक्तानाञ्च पृथगेव सांवत्सरिकं श्राद्धं कार्य्यम् ।

यथा व्यासः—

अर्व्वाक् संवत्सराज्ज्येष्ठः श्राद्धं कुर्य्यात् समेत्य च ।
ऊर्द्ध्वं सपिण्डीकरणात् सर्व्वे कुर्य्युः पृथक् पृथक् ॥

यच्छ्राद्धं ज्येष्ठः समेत्य कुर्य्यात् तन्मृताहसम्बन्धिश्राद्धं सपिण्डनात् परं सर्व्वे अविभक्ता विभक्ता अपि पृथक् कुर्य्युरित्यर्थः ।

अमावस्यादिकन्तु अविभक्तानामपृथगेव विभक्तानान्तु पृथगेव ।

यथा बृहस्पतिः—

एकपाकेन वसतां पितृदेवद्विजार्च्चनम् ।
एकं भवेद्विभक्तानां तदेव स्याद्गृहे गृहे ॥

तथाच शङ्खः—

अविभक्ता विभक्ता वा कुर्य्युः श्राद्धमदैवतम्।
मघासु च ततोऽन्यत्र नाधिकारः पृथग्विना॥

अदैवतम् सांवत्सरिकं श्राद्धं मघाश्राद्धञ्च पृथगेव सर्व्वे कुर्य्युः। अतोऽन्यत्रामावस्यादौ पृथग्भूतं विभक्तं विना अविभक्तानां नाधिकारः किन्त्वेकस्यैव विभक्तानान्तु पृथगेवेत्यर्थः।

एकोद्दिष्टन्तु कर्त्तव्यं पाकेनैव सदा स्वयम्।

इति लघुहारीतेन स्वयमेवेत्यनेनान्यद्वारा निषेधाच्च।

तथा—

नास्मात् परतरः कालः श्राद्धेष्वन्येषु विद्यते।
यत्र साक्षात्तु पितरो गृह्णन्त्यमृतमुत्तमम्॥

इति ब्रह्मपुराणे साक्षादमृतपदानुवादेन स्वयमनुष्ठानस्यैव युक्तत्वाच्च श्राद्धचिन्तामणि-निर्णयामृतादीनामपि मतमेवम्। शिष्टाचारोऽपीदृश एव।

श्राद्धविवेके तु—

सपिण्डनोत्तरकाले सकलश्राद्धानां विभक्तस्य पृथगनुष्ठाननियमः। अविभक्तानामनियमः किन्तु पृथगनुष्ठाने फलातिशय इत्युक्तम्।

व्यासशृङ्गः—

पुत्रेषु विद्यमानेषु नान्यं वै कारयेत् स्वधाम्।

अत्राविशेषात् बहुवचनाच्च द्वादशविधपुत्राणामेवाधिकारः।

तथा याज्ञवल्क्यः—

औरसो धर्म्मपत्नीजस्तत्समः पुत्रिकासुतः।
क्षेत्रजः क्षेत्रजातस्तु सगोत्रेणेतरेण वा॥
गृहे प्रच्छन्न उत्पन्नो गूढजस्तु सुतः स्मृतः।
कानीनः कन्यकाजातो मातामहसुतो मतः।
अक्षतायां क्षतायां वा जातः पौनर्भवः सुतः॥
दद्यान्माता पिता वा यं स पुत्त्रो दत्तको भवेत्।
क्रीतस्तु ताभ्यां विक्रीतः कृत्रिमः स्यात् स्वयं कृतः॥
दत्तात्मा तु स्वयं दत्तो गर्भविन्नः सहोढजः।
उत्सृष्टो गृह्यते यस्तु सोऽपविद्धो भवेत् सुतः।
पिण्डदोऽंशहरश्चैषां पूर्व्वाभावे परः परः॥
सजातीयेष्वयं प्रोक्तस्तनयेषु मया विधिः।
धर्म्मपत्नां स्वयमुत्पादित औरसः।

विष्णुः—

स्वक्षेत्रे स्वयमुत्पादितः प्रथमः।

अत्र परिणीतक्षत्रियावैश्याशूद्राणामौरसत्वेऽपि नाधिकारः।

सजातीयेष्वयं प्रोक्तस्तनयेषु मया विधिः।

इत्युपसंहारात्।

यत्तु— पुत्राः कुर्व्वन्ति विप्राय क्षत्रविट्शूद्रयोनयः।

इत्यादिपुराणवचनं सजातिपिण्डाद्यभावेऽत्यन्तासार्थविषयम्।

तन्मम इति—

भार्य्या यो जायते पुत्रः स मे पुत्रो भवेत्।

इति वाचाभिसन्धिना या नियम्य या दत्ता सा पुत्रिका तत्पुत्र औरससम इत्यर्थः।

अत्र पुत्रिकाभावे तत्पुत्र इति बोद्धव्यम्।

बृहस्पतिः—

आज्यं विना यथा तैलं सद्भिः प्रतिनिधीकृतम्।

तथैकादशपुत्रास्तु पुत्रिकौरसयोर्विना॥

मनुः—तेन मातामहपौत्रोति—

गुर्व्वाज्ञया यस्य क्षेत्रे जनितः स तस्य क्षेत्रजनितः स क्षेत्रजः।

मातामहसुत इति बोद्धव्यपि पुत्रान्तराभावे स एव पुत्रः।

ब्रह्मपुराणे—

अदत्तायान्तु यो जातः सवर्णेन पितुर्गृहे।

स कानीनः सुतस्तस्य यस्य सा दीयते पुनः॥

क्षतयोन्यामक्षतयोन्यां वा पुनरूढ़ायां जातः पौनर्भवो जनकपुत्रः। ताभ्यां मातापितृभ्यां क्रेतुः पुत्रार्थं विक्रीतः।

यथा मनुः—

क्रीणीयाद्यस्त्वपत्यार्थे मातापित्रोर्यमन्तिकात्।

स क्रीतकः सुतस्तस्य सदृशोऽसदृशोऽपि वा।

दत्तात्मेति—मनुः—

मातापितृविहीनो यस्त्यक्तो वा स्यादकारणात्।

आत्मानं स्पर्शयेद्यस्तु स्वयं दत्तः स उच्यते॥

गर्भेण सहोढ़ायामुत्पन्नजातः सहोढ़जः।

एषां सजातीयानामेव पुत्राणां साक्षादधिकारे एष क्रमः

द्रव्यार्पणानुमतिद्वारा तु सर्व्वेषां युगपदधिकारोऽस्त्येव बृहस्पति-वचने ऋणशृङ्गवचने च पुत्रत्वाविशेषेण प्रतिपादनाद्बहुवचनाच्च।

यत्तु—औरसः क्षेत्रजश्चैव पुत्रिकापुत्र एव च।

इत्यादि नारदादिवचनं तद्गणनामात्रपरं न क्रमपरं एषाम-भावे पौत्रप्रपौत्रयोः क्रमेणाधिकारः पुत्रः पौत्रः प्रपौत्रो वा इति वक्ष्यमाणविष्णुवचनात् धनहारित्वाच्च।

तदभावे पत्न्यधिकारमाह शङ्खः—

पितुः पुत्रेण कर्त्तव्या पिण्डदानोदकक्रिया।
तदभावे च पत्नी स्यात्तदभावे सहोदरः॥

अत्र अपुत्राया बान्देशान्तरितपुत्रायाश्च द्वयोः पत्न्योः मध्ये अपुत्राया एवाधिकारः।

यथा व्यासः—

अपुत्रा स्त्री यथा पुत्रः पुत्रवत्यपि भर्त्तरि।
दद्यात् पिण्डं जनस्त्रैव जलमात्रन्तु पुत्रिणी॥

तदभावे सहोदर इति अत्र दुहित्रभावेऽपि इति बोद्धव्यम्।
पत्नी दुहितरश्चैव इति याज्ञवल्क्येन पत्न्यनन्तरं दुहितुर्धनाधि-कारप्रतिपादनात् तस्य चोपकारकत्वव्याप्यत्वात् पिण्डदानादिक-श्चोपकारः।

मनुरपि—

यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा।
तस्यामात्मनि तिष्ठन्त्यां कथमन्यो हरेद्धनम्॥

भरद्वाजः—

दुहिता पुत्रवत्कुर्य्यात् मातापित्रोस्तु संस्कृता ।

अत्र च अदत्तायाः सगोत्रत्वात्तदभावे दत्ताऽधिकारिणीति ।

कश्चित्तु—दुहित्रनन्तरं दौहित्राधिकारः पार्व्वणपिण्डदातृत्वेन भ्रातृतो बलवत्त्वादित्याह । तन्न—

पुत्राभावे सपिण्डास्तु तदभावे सहोदकाः ।

कुर्य्युरेतं विधिं यस्य पुत्रस्यापि सुतासुताः ॥

इति ब्रह्मपुराणे—

मार्कण्डेयपुराणे च पुत्रस्याभावे सुतायाः सुता दौहित्रा एतं दाहादिकं विधिं कुर्य्युरिति समानोदकाभावाद्दौहित्राधिकारप्रतिपादनात् ।

गोत्ररिक्थानुगः पिण्डः, इति मनुवचनात् संशये गोत्रस्यैव पिण्डदानप्रयोजकत्वावगमाच्च ।

श्राद्धचिन्तामणौ च—

सकुल्याभाव एव दौहित्राधिकारः पार्व्वणपिण्डदानस्य पत्नीदुहित्रवदकिञ्चित्करत्वेन सकुल्यतया *सम्बन्धापकर्षादित्युक्तम् ।

श्राद्धविवेकेऽपि—

मातामहानां दौहित्राः कुर्व्वन्त्यहनि चापरे ।

तेऽपि तेषां प्रकुर्व्वन्ति द्वितीयेऽहनि सर्व्वदा ॥

इत्यादिपुराणवचने मातामहाधिकारतुल्यतया प्रतिपादनात् सकुल्याभावे दौहित्राधिकारो व्यवस्थितः ।

* च पुस्तके सम्बन्धोत्कर्षात् ।

नानुजस्य तथाग्रजः, इति छन्दोगपरिशिष्टवचनं कनिष्ठभ्रातृसद्भावविषयम्।

आदिपुराणे,—

> भ्रातुर्भ्राता स्वयं यच्छेत् तद्भार्य्या चेन्न विद्यते।
> तस्य भ्रातृसुतश्चैव यस्य नास्ति सहोदरः॥

अत्र सहोदराभावे तत्सुतस्याधिकारकथनात् तदभाव एव सपत्नभ्रातृतत्पुत्रयोः क्रमेणाधिकारः। तयोरपि भ्रातृभ्रातृपुत्रशब्दार्थत्वात्। भ्रातृपुत्राभावे पिता—

पुत्रो भ्राता पितरावाप्नोति प्रचेतोवचनात्।

तुल्यन्यायान्मातापि—

सर्व्वाः पितृपत्न्यो मातर इति स्मरणात् विमातापि।

न पुत्रस्य पिता कुर्य्यादिति परिशिष्टवचनं भ्रात्रादिसद्भावविषयम्।

ततः पितृतुल्यन्यायात् पितामहः ततः स्नुषाहं स्नुषा चेति शङ्खवचनात्। तदभावे सम्बन्धसन्निकर्षमपेक्ष्य सपिण्डाः तदभावे समानोदकाः तदभावे दौहित्र इति प्रागुक्तं तदभावे मातृसपिण्डाः।

यथा गौतमः—

पुत्राभावे सपिण्डाः समानोदका मातृसपिण्डा वा शिष्याश्च दद्युः तदभावे ऋत्विगाचार्य्यौ इति।

अत्र मातृसपिण्डेष्वपि सम्बन्धसन्निकर्षापेक्षयोः प्रथमं

मातामहः ततो मातुलः ततोऽन्ये मातृसपिण्डाः तदभावे मातृसमानोदका वक्ष्यमाणाः ततो जामातृश्वशुरयोः परस्परम्।

आदिपुराणे—

जामातुः श्वशुराः कुर्य्युस्तेषां तेऽपि च संयताः।

मित्राणां तदपत्यानां योनियाणां गुरोस्तथा।

भागिनेयसुतानाञ्च सर्व्वेषाञ्चापरेऽहनि॥

अपरेऽहनीति यस्य यावदशौचं तस्य द्वितीयदिने श्राद्धं कार्य्यमित्यर्थः।

स्त्रियास्तु—पुत्र-पौत्र-प्रपौत्राभावे कन्या।

दुहिता पुत्रवत्कुर्य्यात् मातापित्रोस्तु संस्कृता।

इति भरद्वाजवचनात् धनग्रहणाधिकाराच्च। तदभावे सपत्नीपुत्रस्तस्यापि पुत्रत्वस्मरणात्।

यथा मनुः—

सपत्नीनामेकपत्नीनामेका चेत् पुत्रिणी भवेत्।

सर्व्वास्तास्तेन पुत्रेण प्राह पुत्रवतीर्मनुः॥

तदभावे पतिस्तदभावे स्नुषा।

शङ्खः—

भार्य्यापिण्डं पतिः कुर्य्यात् भर्त्तुं भार्य्या तथैव च।

श्वश्र्वादेश्च स्नुषा चैव तदभावे द्विजोत्तमः॥

आदिग्रहणात् श्वशुरस्य च।

न भार्य्यायाः पतिर्दद्यात् इति कात्यायनवचनं दुहितृसपत्नीपुत्रसद्भावविषयम्। स्नुषाभावे पुंवत्सपिण्डसमानोदकादयः

सर्व्वाभावेऽसम्बन्धिद्विजोत्तमः कृपया कुर्य्यात्। एतच्च सजातीयविषयम्।

आदिपुराणे—

ब्राह्मणस्त्वन्यवर्णानां न करोति कदाचन।
कामाल्लोभाद्भयान्मोहात् कृत्वा तज्जातितां व्रजेत्॥
पुत्राः कुर्व्वन्ति विप्राय क्षत्रविट्शूद्रयोनयः।
स तादृशेभ्यः पुत्रेभ्यो न करोति कदाचन।
समाता कुरुते तेषां तेऽपि तस्याय कुर्व्वते॥

विष्णुपुराणे—

पुत्रः पौत्रः प्रपौत्रो वा तद्वद्वा भ्रातृसन्ततिः।
सपिण्डसन्ततिर्वापि क्रियार्हो नृप जायते॥
एषामभावे सर्व्वेषां समानोदकसन्ततिः।
मातृपक्षस्य पिण्डेन सम्बन्धा ये जलेन वा।
कुलद्वयेऽपि चोच्छन्ने स्त्रीभिः कार्य्या क्रिया नृप।
संहतान्तर्गतैर्वापि कार्य्या प्रेतस्य वा क्रिया॥
उत्सन्नबन्धुरिक्थाद्वा कारयेदवनीपतिः।
पूर्व्वाः क्रिया मध्यमाश्च तथा चैवोत्तराः क्रियाः॥
त्रिप्रकाराः क्रियाः ह्येतास्तासां भेदान् शृणुष्व मे।
आदाहवार्य्यायुधादिस्पर्शाद्यन्ताश्च याः क्रियाः॥
ताः पूर्व्वा मध्यमा मासि मास्येकोद्दिष्टसंज्ञिताः।

प्रेते पितृत्वमापन्ने सपिण्डीकरणात्तु ।
क्रियन्ते याः क्रिया पित्र्याः प्रोच्यन्ते ता नृपोत्तराः ॥
पितृमातृसपिण्डैस्तु समानसलिलैस्तथा ।
संहतान्वर्गतैर्वापि राज्ञा वा धनहारिणा ।
पूर्व्वाः क्रियास्तु कर्त्तव्याः पुत्राद्यैरेव चोत्तराः ।
दौहित्रैर्वा नरश्रेष्ठ कार्य्यास्तत्तनयैस्तथा ॥
मृताहनि तु कर्त्तव्याः स्त्रीणामप्युत्तराः क्रियाः ।
प्रतिसंवत्सरं राजन्नेकोद्दिष्टविधानतः ॥

अत्र प्रपौत्रो वेति वाशब्दः क्रमेणाधिकारज्ञापनार्थः दुहितृपत्नीभ्रातृणामभावे भ्रातृसन्ततिरिति प्रागुक्तम् ।

एवं सपिण्डाभावे सपिण्डसन्ततिः समानोदक इत्यर्थः ।

एवं समानोदकानामभावे समानोदकसन्ततिः सगोत्र इत्यर्थः तदभावे मातृपक्षस्य मातामहस्य पिण्डेन अन्नेन च सम्बद्धाः मातामहसपिण्डा मातामहसमानोदकाय क्रमेणेत्यर्थः ।

तदभावे असवर्णा परिणीता स्त्री तदभावे शिष्यऋत्विगाचार्य्या गौतमोक्ताः ।

तदभावे वाणिज्यतीर्थादिकरणे मिलित्वा गतानां संहताना-मन्तर्गतः कश्चित् । तदभावे शङ्खोक्तः—असम्बन्धी द्विजोत्तमः ।

तदभावे तत्तद्धनधर्मेणान्यद्वारा नृपतिः कारयेदित्यर्थः ।

तथाच मार्कण्डेये—

क्रियाभेदेनाधिकारमाह पूर्व्वाः क्रिया इति ।

दाहादवधेरशौचान्तदिने विहितजलायुधादिकस्पर्शपर्य्यन्ता याः क्रियास्ताः पूर्व्वाः ।

मासि मासीति एकादशाहादिसपिण्डनान्तप्रेतक्रियोपलक्षणं एतदङ्गीकरोति प्रेते पितृत्वमापन्ने इति सपिण्डनोत्तराः पार्व्वण-सांवत्सरिकादिक्रिया उत्तराः । पितृमातृसपिण्डादयः पूर्व्वोक्ताः पूर्व्वां क्रियां अवश्यं कुर्य्युर्मध्यमायामनियमः । सांवत्सरिकं विना उत्तरायां नाधिकारः । पुत्राद्यैरेवेत्येवकारेण व्यावर्त्तनात् सांवत्सरिकस्य पुन व्युदासः तस्य स्त्रीकर्त्तव्यतया वक्ष्यमाणत्वात् ।

> सपिण्डीकरणं तासां पुत्राभावे न विद्यते ।
> प्रतिसंवत्सरं कार्य्यमेकोद्दिष्टं नरैः स्त्रियाः ॥
> मृताहनि यथान्यायं नृणां यद्वदिहोदितम् ।

इति मार्कण्डेयपुराणे अपुत्रपुंवदपुत्रस्त्रीणां सांवत्सरिकविधा-नाच्च तथानियतम् ।

पुत्राद्यैरिति पुत्रः पौत्रः प्रपौत्रो वा इति वचनाद्दौहित्र-सन्ततिपर्य्यन्तैर्दौहित्रैश्च* नियमेनोत्तराः कार्य्या एषां त्रिप्रकार-क्रियासु नियताधिकार इत्यर्थः ।

तत्र भ्रातृभ्रातृपुत्राभ्यां सांवत्सरिकमेव कार्य्यं न तु पार्व्वणम्, पितादिषट्पुरुषाणामेव पार्व्वणादिसपिण्डनस्य मध्यमायामन्त-

---

* अत्र पुस्तके क्रमभावे दृश्यते ।

भावात्। न तत्र स्त्रीणामधिकारप्रतिषेधः सपिण्डत्वेन तासामधिकारस्य वक्ष्यमाणत्वाच्च।

एतञ्च सपिण्डीकरणमेकोद्दिष्टं स्त्रिया अपि इति याज्ञवल्क्येन सपिण्डनैकोद्दिष्टयोः कर्त्तव्यतानियमाच्च।

एवञ्च क्रमेणाधिकारनियमात् पुंवत्सद्भावे सुतपितृकपौत्रस्य दुहितुर्दौहित्रस्य च नियताधिकाराभावादैच्छिकमेव सांवत्सरिकानुष्ठानमिति ध्येयम्।

न च काम्याधिकारे किं मानमिति वाच्यम्।

अनिषिद्धविषये कामनैव प्रमाणमिति। अतएव सर्व्वदेशीयशिष्टाचारोऽपि।

तदर्थं संक्षेपः।

औरसः पुत्रिकापुत्रः क्षेत्रजो गूढजस्तथा।
कानीनश्च पुनर्भूजो दत्तः क्रीतः स्वयं कृतः॥
स्वयं दत्तः सहोढ़ोऽपविद्धो द्वादशधा सुताः।
पिण्डदोऽंशहरश्चैषां पूर्व्वाभावे परः परः॥
सजातीयेष्वयं प्रोक्तस्तनयेषु विधिः सदा।
पौत्रः प्रपौत्रः पत्नी स्यादपुत्रस्य हि पुत्रिणी॥
अदत्ता दुहिता दत्ताऽनुजो ज्येष्ठस्तयोः सुताः।
वैमात्रेयोऽस्य तत्पुत्रः पिता माता विमातरः॥
पितामहः स्नुषा चैव सपिण्डाः सन्निकर्षतः।
सकुल्यगोत्रौ दौहित्रो मातामहोऽथ मातुलः॥

मातामहसपिण्डाश्च तत्समानोदकास्ततः।
भागिनेयोऽथ जामाता श्वशुरः शिष्यऋत्विजौ॥
आचार्य्यश्चाप्युपाध्यायः सतीर्थश्च सखा ततः।
संहतास्तद्गतः यश्चित् सुपात्रोऽथ द्विजोत्तमः॥
सर्व्वाभावे तु नृपतिः कारयेत् स्वकुटुम्बवत्।
अन्त्यक्रियाणां संप्रोक्ताः क्रमादेतेऽधिकारिणः॥
स्त्रीणां पुत्रोऽथ पौत्रश्च प्रपौत्रो दुहिता ततः।
सपत्नीतनयः स्वामी स्नुषा पुंवत्परे स्मृताः॥

---

## अथ सपिण्डनाधिकारिणः।

मार्कण्डेये—

सपिण्डीकरणं तासां पुत्राभावे न विद्यते।

तासां स्त्रीणां पुत्राभाव इति पुत्रभिन्नाधिकारिणमुपलक्षयति। तेन बालदेशान्तरितपुत्राया अन्येन सपिण्डनं कार्य्यम्।

हारीतः—

पुत्रेणैव तु कर्त्तव्यं सपिण्डीकरणं स्त्रियाः।
पुत्राभावे पुनस्तन्ये भ्रातृपुत्रादयो मताः॥
पुत्रेणैवेत्येवकारः पतिं विनाऽन्यव्यावृत्त्यर्थः।
अपुत्रायां मृतायान्तु पतिः कुर्य्यात् सपिण्डनाम्।
इति पैठीनसिवचनात्।

तर्हि सपत्नीपुत्रस्य कथमधिकार इति चेत् सत्यम्—

बह्वीनामेकपत्नीनामेका चेत् पुत्रिणी भवेत्।
सर्व्वास्तास्तेन पुत्रेण प्राह पुत्रवतीर्मनुः॥

इति मनुना पुत्रत्वमतिदिश्य पुत्रकार्य्यविधानात् सपिण्डनस्य च पुत्रकार्य्यत्वात्।

अत्र केचित्—

बहूनामेकजातानामेकश्चेत् पुत्रवान् भवेत्।
सर्व्वे ते तेन पुत्रेण पुत्रिणो मनुरब्रवीत्॥

इति वचनात् पुत्रत्वातिदेशेन प्राप्ते सपिण्डनाधिकारे भ्रातृपुत्रस्य यत् पुनर्विधानं तत्सपिण्डनातिदेशप्राप्ताधिकारनिरासार्थं तेन सपत्नीपुत्रस्य सपिण्डनाधिकारो नास्तीत्याहुः। तन्मन्दं भवेदेवं यद्येकेन मुनिना पुत्रत्वमतिदिश्य पुनर्विधीयते किन्तु भ्रातृपुत्रस्य सपिण्डनाधिकारो मनुना पुत्रत्वातिदेशमुखेनोक्तः। हारीतेन तु साक्षादिति कथं पुनर्विधानं येन तत्सादतिदेशप्राप्तं निरस्यति।

भ्रातृपुत्रादयस्तु—

भ्राता वा भ्रातृपुत्रो वा सपिण्डः शिष्य एव वा।
सहपिण्डक्रियां कृत्वा कुर्य्यादभ्युदयं ततः॥

इत्यनेन हारीतेनैव प्रागुक्ताः।

अत्र चाविशेषात् पिण्डपदेन स्त्रीपुंसोर्ग्रहणाददत्तदुहितृ-पत्नी-स्नुषादीनां पुंसः सपिण्डनाधिकारः, तेन समानोदक-दत्तदुहितृ-दौहित्रादिभिः सपिण्डनं न कार्य्यम्।

अत्र केचित्—दौहित्रस्योत्तरक्रियायामधिकारात् सपिण्डनेऽप्यधिकारमाहुः। तन्न—

लघुहारीतेन भ्रातृपुत्रादीनां नियमविधानादन्येषां पर्य्युदस्तत्वात्।

न च सपिण्डनाधीनोत्तरक्रिया सपिण्डनं विनापि स्त्रीणामुत्तरक्रियादर्शनात् किन्तु पितृत्वप्राप्त्यधीना सा च पञ्चदशश्राद्धैरेव स्त्रीवत् पुंसोऽपि जातेति प्रागुक्तम्।

न च—

यानि पञ्चदशाद्यानि अपुत्रस्येतराण्यपि।
एकस्यैव तु दातव्यमपुत्रायाश्च योषितः॥

इति परिशिष्टवचनविरोधः पुत्रेतरस्य पञ्चदशश्राद्धविधानादिति वाच्यम्।

भ्रातृपुत्रादयोऽपि ये इति विशेषवचनदर्शनादपुत्रसपिण्डननिषेधकपरिशिष्टवचनस्य तदितरपरत्वात्।

इतराण्यपि एकस्यैव तु दातव्यमिति सामान्यविशेषभावे*नान्वयाद्दातव्यमित्येकवचनम्।

अपुत्रस्येतराणि यानि वचनान्तरात् प्राप्तानि प्रत्याब्दिकश्राद्धमहालयहतापुत्रविषयाश्विनकृष्णपक्षचतुर्द्दशीश्राद्धानि तानि एकस्यैव एकोद्दिष्टविधिनैव दातव्यानि नत्वमावस्यादिमरणनिमित्तेन पार्व्वणविधिनेति।

---

* क पुस्तके नातुदातव्यम्।

इतराणीति बहुवचनं व्यक्तिभेदेनेति न वा पुत्राणां वृद्धि-श्राद्धस्याप्येकोद्दिष्टविधिकत्वमस्त्विति वाच्यम्।

वृद्धिश्राद्धत्वविघातात् नह्येकोद्दिष्टविधिकत्वे सति वृद्धिश्राद्धत्वं सम्भवति युग्मद्विजभोजनोपवीतित्वोदक्खत्वमात्रादिश्राद्धसदैवकत्वादिबाधात्।

अतएव कूर्म्मपुराणे—

> अहन्यहनि नित्यं स्यात् काम्यं नैमित्तिकं पुनः।
> एकोद्दिष्टञ्च विज्ञेयं वृद्धिश्राद्धञ्च पार्व्वणम्॥
> इति श्राद्धभेदा दर्शिताः।

केचित्तु—

इतराण्यमावस्यादीन्यपुत्रस्यैकोद्दिष्टविधिना कार्य्याणीत्याहुः। तच्चिन्त्यम्।

अस्य वचनस्य वचनान्तरप्राप्तश्राद्धानुवादेनैकोद्दिष्टधर्म्मातिदेशकत्वात् अपुत्रगोचरतया अमावस्यादिविधौ तु कल्पनागौरवात्।

विष्णादिभिः पित्रादीनां यथामेव पार्व्वणविधाननियमात्।

एतेन एकस्यैव एकोद्दिष्टविधिनैव यानि प्राप्तानि प्रत्याब्दिकश्राद्धानि तान्येव दातव्यानि नामावस्यादीनीति यदन्यैर्व्याख्यातम्।

तदपि निरस्तम्। अमावस्यादीनामप्राप्तत्वेन व्याहत्यविषयत्वात्।

किञ्चापुत्राणां वृद्धिश्राद्धस्यापि व्याहत्तिः प्रसज्येतेति।

अत्र केचित्—

पुत्रादेरेव चोत्तरा इति विष्णुपुराणे—

एवकारव्याहत्या पुत्र-पौत्र-भ्रातृ-भ्रातृपुत्र-दौहित्रेभ्योऽन्येषां सांवत्सरिकेतरौत्तरक्रियानिषेधादपुत्रस्यापुत्रायाय पुत्रचूडादौ कन्याविवाहे येन केनापि कन्यादात्रादिना वृद्धिश्राद्धं न कर्त्तव्य-मनधिकारादित्याहुः तच्चिन्त्यम्।

मुख्येऽधिकारिणोऽङ्गेऽधिकार इति नियमादूढ्ढाधिकारिणः कर्म्माङ्गीभूते वृद्धिश्राद्धेऽधिकारस्य दुर्निवारत्वात्। एवकार-व्याहतिस्तु स्वतन्त्र एव पार्व्वणादाविति।

अतएव गयायामपुत्रस्य पार्व्वणं नास्ति किन्तु पिण्डदानमात्रं तत्र असपिण्डमित्रमित्रादिना वृद्धाधिकारिणा वा सपुत्रस्यापुत्रस्य वा पुंसस्तादृश्याः स्त्रियाश्च पुत्रकन्यासंस्कारे कन्यादानाधिकारिणा जनन्यापि स्वकन्याविवाहे वृद्धिश्राद्धं कर्त्तव्यमेवं वाचस्पतिमिश्रा-दीनामपि मतमेतत्।

अत्रामुकगोत्रस्यामुककर्म्मण्यभ्युदयार्थं संस्कार्य्यस्यास्य पितुः पितामहस्य प्रपितामहस्य वृद्धिश्राद्धमहं करिष्य इत्यनुज्ञावाक्यम्।

इति श्राद्धकौमुद्यां प्रेतक्रियाकाण्डं समाप्तम्।

---

श्रीगोविन्दपदध्याननिर्म्मलीकृतचेतसा।
सपिण्डनोत्तरश्राद्धमत्र सम्यक् विविच्यते॥

शातातपः—

प्रदानं यत्र सर्व्वेषां सपिण्डीकरणात्परम्।
तत्र पार्व्वणवच्छ्राद्धं ज्ञेयमभ्युदयादृते॥

अर्व्वाक् संवत्सराद्‌वृद्धौ पूर्णे संवत्सरेऽपि वा ।
ये सपिण्डीकृताः प्रेता न तेषान्तु पृथक्‌क्रिया ॥
न पृथक्‌पिण्डदानन्तु तस्माद्‌वृद्धौ विधीयते ॥
प्रेतानामिह सर्व्वेषां ये मन्त्रेषु नियोजिताः ।
प्रेतत्वादिह निस्तीर्णाः प्राप्ताः पितृगणन्तु ते ॥
यः सपिण्डीकृतं प्रेतं पृथक्‌पिण्डेन योजयेत् ।
विधिघ्नस्तेन भवति पितृहा चोपजायते ॥

यत्र यत्रेति वीप्सा सपिण्डनोत्कर्षानुज्ञापनाय एतच्च प्रत्याब्दिकव्यतिरिक्तविषयम् उत्तरवचने पूर्णसंवत्सरे सपिण्डनोक्तेर्निरग्निविषयोपसंहारात्साग्नेः प्रथमदर्शमध्यएव सपिण्डननियमात्पार्व्वणवदिति मैथुलपिकाद्यमावास्याश्राद्धेतिकर्त्तव्यता दृश्यते ।*

अभ्युदयाद्दृत इति वृद्धिश्राद्धेतिकर्त्तव्यतावैलक्षण्यादित्यर्थः तेनाभ्युदयश्राद्धे पार्व्वणविधिना श्राद्धं करिष्य इत्यनुज्ञायार्थं केनचिदुक्तं हेयमेव ।

ननु वत्सरादर्वाक् सपिण्डोत्कर्षे कृते अकालप्राप्तमासिकं तथा पूर्णेऽब्दे कृते सपिण्डने पतितमासिकञ्च कथं कर्त्तव्यमित्याशङ्कायामाह अर्व्वागिति अपकर्षणेऽपि मासिकापकर्षोऽपि कार्य्यः पतितस्यते ॥ तस्यैकादश्यां सपिण्डनोत्कर्षः कार्य्यो न तु सपिण्डनात्परं मासिकमिति । पृथक्‌क्रिया एकोद्दिष्टम् ।

* क पुस्तके वर्जितमिदं ।

अयं भावः—अर्वाक् संवत्सरादित्यनेन तदादितद्न्यायात् सपिण्डनापकर्षे मासिकापकर्षोऽपि कार्य्य इत्युक्तम्।

पूर्णे संवत्सर इत्यनेन सपिण्डनदिने पतितमासिकविधानाभावात् तदादितन्न्यायेनाकृतमासिकस्य सपिण्डनेऽधिकाराभावात् कृष्णैकादश्याञ्च पतितमासिकविधानात्तदनुरोधेन सपिण्डनमपि कृष्णैकादश्यां पतितमासिकानन्तरं कार्य्यम्।

एवञ्च मासिकमपि पतितपूर्व्वमासिकानुरोधात् कृष्णैकादश्यामेव न स्वकाले इति वक्ष्यते।

तथा पूर्व्वदिनेऽपराह्णमात्रे मृताहप्राप्तौ परदिने च मध्याह्नमात्रप्राप्तौ क्रमानुरोधात् पूर्व्वदिन एवापराह्णे स्वकालप्राप्तसपिण्डनात्पूर्व्वं द्वादशमासिकं कार्य्यम्।

न च परदिने मासिकानुरोधात् मध्याह्ने द्वयं कार्य्यमिति वाच्यम्। सपिण्डनकालस्यापराह्णस्य प्रथमोपस्थितत्वात्तं विहायानुपस्थितस्य मध्याह्नस्य न्याय्यत्वात् एवञ्च पूर्व्वदिनेऽपराह्णप्राप्तौ परदिने च मध्याह्नापराह्णप्राप्तौ परदिन एव स्वस्वकालानुरोधादुभयं कार्य्यम्। उभयदिनेऽपराह्णलाभे* परदिने मध्याह्ने द्वयं कार्य्यम् पूर्व्वदिने मासाह्ने निषेधादिति ध्येयम्।

पृथक्क्रियानिषेधे हेतुमाह न पृथगिति प्रेतानां मृतानां तस्मादूर्द्धं सपिण्डनादूर्द्धं विधीयते शास्त्रेणेति शेषः।

ननु मुख्यकाले सपिण्डनाभावात् कथं प्रेतत्वपरिहार इत्याह

---

* च पुस्तके अपराह्णाभावे।

ये मन्त्रैरिति हृद्धार्थापकर्षे उत्कर्षे च सद्यः प्रेतत्वनिस्तारो भवतीत्यर्थः। न केवलं कृतसपिण्डनानां पृथक्क्रिया न कार्य्या अपि तु तेषां लेपिनामपि सांवत्सरिकैकोद्दिष्टपिण्डेन सह योजनं न कार्य्यमित्याह यः सपिण्डीकृतमिति।

मत्स्यपुराणे—

यत्र यत्र प्रदातव्यं सपिण्डीकरणात्परम्।
पार्व्वणेन विधानेन देयमग्निमता सदा॥

सदा सर्व्वत्र मृताहेऽपीत्यर्थः। अत्राग्निमत्पदं जावालवचनविरोधात् सामान्यविशेषन्यायेन औरसक्षेत्रजाग्निमत्परम्।

यथा जावालः—

सपिण्डीकरणादूर्द्धं पितृभिः सामान्यमिष्यते।
औरसक्षेत्रजौ पुत्रौ विधिना पार्व्वणेन तु।
प्रत्यब्दमितरे कुर्य्युरेकोद्दिष्टं सुता दश।
एकोद्दिष्टं परित्यज्य पार्व्वणं यः समाचरेत्।
सदैव पितृहा स स्यान्मातृभ्रातृविनाशकः॥

यत्तु—मृताहे पार्व्वणं कुर्व्वन्नधोऽधो याति मानवः।

इति मत्स्यपुराणवचनं तदग्निमता सदैवेति तदीयविशेषवचनविरोधादौरसक्षेत्रजाग्निमदितरविषयं सामान्यविशेषन्यायात्।

एवञ्च—

प्रतिसंवत्सरञ्चैव एकोद्दिष्टं मृताहनि।
इति व्याघ्रादिवचनमेतत्समानार्थम्।

तथा—प्रदानं यत्र यत्रेति शातातपवचनमपि प्रत्याब्दिकातिरिक्तविषयम्।

तदाच साग्निचैत्रजौरसेतरे ये साग्निदर्शविधपुत्राः सर्वं निरग्नयश्च ते मृताहं वर्जयित्वा सपिण्डनोत्तरं सर्वत्र पार्व्वणं कुर्य्युर्मृताहे त्वेकोद्दिष्टमित्यर्थः।

तथाच शङ्खः—

सपिण्डीकरणादूर्द्धं यत्र यत्र प्रदीयते।

तत्र तत्र त्रयं कुर्य्याद्वर्जयित्वा मृताहनि॥

न च जावालवचनं निरग्निविषयम् पत्निमता सदेति सर्व्वेषामेवसाधारणमिति वाच्यम्।

वाक्यभेदगौरवात् साग्नयः सर्व्वे सर्व्वदैव पार्व्वणं कुर्य्युः, तथा निरग्नय औरसचैत्रजाः सर्व्वत्र पार्व्वणमितरे दत्तपुत्रा निरग्नयो मृताहं विहायान्यत्र पार्व्वणं मृताहे त्वेकोद्दिष्टमिति वाक्यचतुष्टयम्।

मदन्मते तु औरसचैत्रजाः साग्नयः सर्व्वत्रैव पार्व्वणमितरे सर्व्वे मृताहं विहाय पार्व्वणं मृताहे त्वेकोद्दिष्टं कुर्य्युरिति वाक्यत्रयम्।

किञ्च—ततः प्रभृति संक्रान्ताविति मत्स्यपुराण-शङ्खादिवचनं किं निरग्निमात्रविषयं किं वा औरस चैत्रजनिरग्निविषयम् अथवा निरग्निदत्तविधपुत्रविषयम् आद्ये द्वितीये च जावालवचनविरोधः तृतीये निरग्न्यौरसचैत्रजयो-र्मृताहेतरस्थलव्यवस्थानध्यवसायः।

किञ्च-शङ्खादिवचनानां मुख्यपुत्रपरत्वं न स्यात् एवञ्च मृताहे

एकोद्दिष्टप्राप्तौ अमावस्याप्रौष्ठपद्यूर्द्ध्वकृष्णपक्षमरणनिमित्तं सान्नि-दग्धपुत्रैर्निरग्निना च पार्व्वणविधिना पितुः प्रत्याब्दिकश्राद्धं कार्य्य-मित्याह—

शङ्खः—

सपिण्डीकरणादूर्द्ध्वं यत्र यत्र प्रदीयते ।
तत्र तत्र त्रयं कुर्य्याद्वर्जयित्वा मृताहनि ॥
अमावस्यां क्षयो यस्य प्रेतपक्षेऽथवा पुनः ।
सपिण्डीकरणादूर्द्ध्वं तस्योक्तः पार्व्वणो विधिः ॥

एवं त्रैपुरुषिकं कुर्य्यादित्यर्थः किन्तु मृताहविहितं प्रत्याब्दिकं वर्जयित्वा मृताहे त्वेकोद्दिष्टमेव एकोद्दिष्टं मृताहनीति वचना-दित्यर्थः ।

तत्रैव प्रतिप्रसवमाह अमावस्यामिति अमावास्यायामित्यर्थः प्रेतपक्षः प्रौष्ठपद्यनन्तरितकृष्णपक्षः ।

प्राहृतौ यमः प्रेतान् पितॄंश्चाथ यमालयात् ।
विसर्ज्जयति मानुष्ये कृत्वा शून्यं स्वकं पुरम् ॥

इति प्रौष्ठपद्यूर्द्ध्वकृष्णपक्षमधिकृत्य ब्रह्मपुराणात् ।

तेन भाद्रमलमासमरणे तस्याश्वयुक्कृष्णपक्षत्वाभावात् आश्विनमलमासमरणे तस्य प्रौष्ठपद्यनन्तरितपक्षत्वाभावे एको-द्दिष्टविधिनैव सांवत्सरिकं न पार्व्वणविधिनेति सिद्धम् । अमावस्यायां प्रेतपक्षे वा यस्य क्षयः तस्य सपिण्डीकरणादूर्द्ध्व-मृताहप्रत्याब्दिकश्राद्धे उक्तः प्रागुक्तस्य तत्र त्रयं कुर्य्यात् इत्युक्तविहितत्रैपुरुषिकः पार्व्वणो विधिरेव न चात्र मृताह-

वर्ज्जनमित्यर्थः। तेनामावास्याप्रेतपक्षेतरमृताहं वर्ज्जयित्वाऽन्यत्र सर्व्वत्र त्रयं कुर्य्यादित्येक एव विधिः सम्पन्नः, कालोऽप्यस्याप्यपराह्न एव न तु मध्याह्नः, एकोद्दिष्टत्वाभावेन एकोद्दिष्टन्तु मध्याह्ने इति वचनाविषयत्वादपराह्नस्य पार्व्वणसामान्यकालत्वाच्च।

अत्र पारिजातरत्नाकरयोद्द्योतादयः—

तस्योक्तः पार्व्वणो विधिरिति तस्येत्येकवचनात्तस्य मृताहस्तस्यैव पार्व्वणविधानातिदेशात् पितामहप्रपितामहयोस्तस्य च प्रधानस्यानतिदेशादेकपुरुषिकमेव पार्व्वणमिति वदन्ति।

तदसत् प्रतिप्रसवादन्यथा वाक्यभेदात्। ततश्च सति प्रतिप्रसवे कुतोऽतिदेशप्रसङ्गः। येनोच्यते प्रधानस्यानतिदेशादिति।

तथा—त्रिपिण्डमाचरेच्छ्राद्धमेकोद्दिष्टं मृताहनि।

इति मत्स्यपुराणेन शङ्खवचनैकवाक्यतयाऽमावास्याप्रेतपक्षेतरमृताहे एकोद्दिष्टं विधायान्यत्र सर्व्वत्र युगाद्यादौ अमावास्याप्रेतपक्षमृताहे च त्रिपिण्डकं श्राद्धं विधीयते।

जावालेनापि—सपिण्डीकरणादूर्द्ध्वं त्रिभिः सामान्यमिष्यते।

इति सामान्यतोऽभिधायं औरसक्षेत्रजावित्यनेन साग्न्यौरसक्षेत्रजयोस्तदेव प्राप्तं त्रैपुरुषिकं पार्व्वणमनूद्यान्येषां साग्नीनामेकोद्दिष्टं विधीयते।

न च मृताहे मृतस्यैव श्राद्धं प्राप्तं नान्यस्येत्याशङ्कनीयं मृताहे पितुः पितामहादिसहभावेन श्राद्धस्यौत्सर्गिकवचनबोधितत्वात्। तस्येत्येकवचनन्तु यच्छदोः सम्बन्धेनोपपन्नस्तस्य मतस्य पूर्व्ववचनसङ्गतादसम्बन्धापेक्षया मन्तव्यम्।

अतएव

कर्षूसमन्वितं मुक्ता तथाद्यं श्राद्धषोड़शम्।
प्रत्याब्दिकञ्च शेषेषु पिण्डाः स्युः षड़िति स्थितिः॥

इति छन्दोगपरिशिष्टेऽमावास्यादिमरणनिमित्तं वैपुरुषिक-श्राद्धे प्राप्ते सत्येव—

पितरो यत्र पूज्यन्ते तत्र मातामहा ध्रुवम्॥

इति मातामहादिविकापेक्षया षट्संख्याप्राप्तौ प्रत्याब्दिके तन्निषेधः सार्थकः स्यात्।

अन्यथा प्रत्याब्दिके एतस्यैव श्राद्धप्राप्तौ अन्येषां विधाना-भावादेव निषेधात् षट्संख्यानिषेधो व्यर्थः स्यात्। अतएव प्रेतश्राद्धे निषेधो नोक्त इति ध्येयम्।

श्राद्धविवेक-श्राद्धचिन्तामणि-निर्णयामृतादीनामप्येतन्मतम्। कर्षूसमन्वितमन्वष्टकाश्राद्धं षोड़शानां पूरणं चार्थं पक्षादिभूतं सपिण्डनमित्यर्थः।

अतः सिद्धं पितुरमावस्यादिमरणे सदैवतं त्रिपिण्डकं वैपुरुषिकश्राद्धमिति। अथेदृशमनुप्रायोक्यम्।

अद्येत्यादि अमुकगोत्रस्य पितुरमुकशर्मणोऽमावस्यामृतस्य पार्व्वणविधिकसांवत्सरिकश्राद्धं तन्निमित्तकञ्च अमुकगोत्रस्य पितामहस्यामुकशर्मण एवं प्रपितामहस्य सांर्व्वणविधिकश्राद्ध-महं करिष्ये।

*[ अधिकाङ्गकर्म्मानुष्ठानं न चात्र न्यूनाधिकाङ्गता अतः पृथगेव श्राद्धद्वयं अन्यथा विकृतपार्व्वणस्य नित्यमनुष्ठानप्रसङ्गः।

अत्र तुल्यकालप्राप्तयोः पार्व्वणयोर्विकृतपार्व्वणमादौ कार्य्यमित्याचारः।

न च प्रार्व्वणविकृतपार्व्वणयोस्तन्त्रता। पार्व्वणस्य मातृपुरुषिकत्वेन प्रयोगभेदात्।

न च पार्व्वणेन विकृतपार्व्वणं प्रसङ्गाद्गतार्थमिति वाच्यम्।

पार्व्वणे पट्याद्यानामेव गतार्थत्वमिति वाच्यं नत्वन्येन। ततश्च तयोरेव पित्र्याद्ययोः समानम्] अमावस्यादिश्राद्धनिमित्तेन मातुरपि पार्व्वणमाहापस्तम्बः—

अपुत्रा ये मृताः केचित् स्त्रियो वा पुरुषाश्च ये।
तेषामपि च देयं स्यादेकोद्दिष्टं न पार्व्वणम्॥
पितृबन्धुमपत्नीभ्यः स्त्रीकुमारीभ्य एव च।
दद्यात्तु मासिकं श्राद्धं संवत्सरमतोऽन्यथा।

मृताहप्रकरणान्मृताह इत्यभिधानाच्च प्रत्याब्दिकश्राद्धविषयं वचनमिदं येषां प्रत्याब्दिके पार्व्वणं विहितं तेषामपुत्राणां मृताहे पार्व्वणं निषिध्य एकोद्दिष्टं विधीयते। अतएव न पार्व्वणमित्युक्तम्।

अत्रापुत्रा इति विशेषणोपादानं अपुत्रायाः पार्व्वणाभ्यनुज्ञानार्थमन्यथा वैयर्थ्यात्।

---

* ख पुस्तके [ ] चिह्नितांशः पतितः।

तत्रान्वष्टकादर्शनान्मातृवित्तयदैवतं सदैवकं कार्य्यम् अपुत्रा इति पुत्रभिन्नाधिकारिणमुपलक्षयति।

तेन बालपुत्राया बालपुत्रस्य वा अमावस्यादिमृताहे भ्रात्रादिना एकोद्दिष्टमेव कार्य्यं तत्र पौत्रदौहित्रादिभिः पितामहमातामहादीनां एकोद्दिष्टमेव कार्य्यम्।

तथाच स्मृतिः—

अमावस्यां प्रमीतस्य पौत्रः संवत्सरं प्रति।
पितामहस्य चेद्दद्यादेकोद्दिष्टं न पार्व्वणम्॥

न केवलमपुत्राणां मृताहे पार्व्वणं न देयम् अपि त्वमावस्यादावपीत्याह मित्रेत्यादि-मित्रं मातुलभागिनेयादि।

बन्धुयोनी यथा—

आत्ममातुः स्वसुः पुत्रा आत्मपितुः स्वसुः सुताः।
आत्ममातुलपुत्राश्च विज्ञेया आत्मबान्धवाः॥

स्त्री पत्नी कुमारी अनूढ़ा एतत् सर्व्वमपुत्रोपलक्षणम् एष कारो भिन्नक्रमे एभ्यः संवत्सरं व्याप्य यन्मासिकं तदेव दद्यात्। अतः परं संवत्सरात् परं मासिकममावस्याविहितं पार्व्वणमन्यथा न दद्यादित्यर्थः।

मृताहाज्ञाने श्राद्धमाह प्रचेताः—
अविज्ञातमृतेऽमावस्यायां श्राद्धदिवसे वा।

मृतशब्दोऽत्र मृताहपरः अज्ञातमरणस्यौर्द्धदेहिकाभावात् मासज्ञाने तिथ्यज्ञाने तन्मासीयामावस्या वक्ष्यमाणा वा कृष्णैकादशी ग्राह्या उभयोरज्ञाने श्रवणदिवसे इति व्यवस्था।

एवञ्चामावस्यायां पर्व्वणरं दग्धाऽशौचोत्तरमेकोद्दिष्टं कृत्वा श्रवणदिनादारभ्य प्रतिमासिकं संवत्सरपर्य्यन्तं यथाक्रमं समाप्य श्रवणदिवस एव सपिण्डनं प्रत्याब्दिकञ्च कार्य्यम् ।

श्रवणदिवसमवधारणदिनोपलक्षणम् ।

तथा स्मृतिः—

मृतस्य न भवेद्वार्त्ता यावद्द्वादशवार्षिकी ।
प्रेतावधारणं तस्य कर्त्तव्यं सुतबान्धवैः ॥

संवत्सरविशेषाज्ञाने मासाज्ञाने च तिथिमात्राज्ञाने पर्व्वणरं दग्धाऽशौचोत्तरमेकोद्दिष्टं कृत्वा पतितमासिकं पतितवार्षिकञ्च कृष्णैकादश्यां कृत्वा प्रकृतमासिकं प्रकृतवार्षिकं वा तन्मासस्यामावस्यायां कृष्णैकादश्यां वा कार्य्यम् ।

श्रवणदिवसाज्ञाने मासे वा पित्रोर्मरणे व्यवस्थामाह ।

पद्मपुराणे—

न जानाति दिनं यस्तु न मासं वसुधाधिप ।
तेन कार्य्यममावस्यां श्राद्धं संवत्सरं वसु ॥
मार्गशीर्षे तथा माघे वैशाखे ज्यैष्ठ एव वा ।
तिथिविशेषज्ञाने मासाज्ञानेऽप्येवम् ।

एवञ्चामावस्यायां पर्व्वणरदाहे कृते तत्र सांवत्सरिकश्राद्धमेकोद्दिष्टमेव कार्य्यम् न तु पार्व्वणं "अमावस्यां क्षयो यस्य" इति गरुड़वचनेन अमावस्यामरणनिमित्तमेव पार्व्वणविधानात् ।

लघुहारीतः—

श्राद्धविघ्ने समुत्पन्ने मृताहेऽविदिते तथा ।
एकादश्यां प्रकुर्व्वीत कृष्णपक्षे विशेषतः ॥

श्राद्धपदमत्र मृताहसम्बन्धिश्राद्धस्य दाहाद्यशौचान्त-द्वितीयदिनविहितत्वेन मृताहसम्बन्धित्वाभावात् ।

अन्ये तु—

मृताहसम्बन्धिश्राद्धसजातीयश्राद्धमिति विवक्ष्य मासिकस्या-द्यैकोद्दिष्टे मृताहश्राद्धसाजात्यमस्त्येवेति वदन्ति ।

तदपि मन्दम् ।

अमावस्यादिश्राद्धस्य पार्व्वणविधिकसांवत्सरिकसजातीयतया अमावस्यादिश्राद्धेऽप्यतिप्रसङ्गात् ।

वस्तुतस्तु—सांवत्सरिकातिरिक्तसपिण्डनोत्तरश्राद्धेतरश्राद्धं वा विवक्षितम् । तेन सर्व्वत्र निस्तारः ।

मृताह इति मृतमासीयतिथ्यविज्ञाने इत्यर्थः ।

अत्र श्राद्धचिन्तामणिः—

विशेषतःपदोपादानात् आदित्यसंक्रमणं विशेषेणायनद्वय-मिति वत् शुक्लैकादश्यामपि मृताहश्राद्धस्य कर्त्तव्यत्वं कृष्णपक्षे तु प्राशस्त्यम् । अन्यथा तदनर्थकं स्यादित्याह ।

वस्तुतस्तु विशेषतो मृताहादपि अज्ञातश्राद्धस्यातिशयेन कृष्णैकादश्यां कुर्व्वीत न तत्रोत्साहहानिः कार्य्येत्यर्थः ।

अथवा अविज्ञातदर्शेऽमावस्यायां श्रवणदिवसे चेति प्रचेतो-वचनोक्तामावस्याश्रवणदिवसाभ्यामपि कृष्णैकादश्यां विशेषतः श्राद्धं प्रशस्तम् ।

अत्र च श्राद्धविवेके—अपाटवाद्यशौचाभ्यामपि पतितमेकोद्दिष्टमेकादशाहमशौचान्ते च मलमासपाते न कर्त्तव्यं किन्तु मलमासाव्यासह्लेकादश्यामेवेत्युक्तम्।

प्रशस्यमायाः—

या तिथिरित्यत्र तिथिपदेन पूर्व्वोक्तयुक्त्या शुचिभावानन्तरदिनग्रहणे प्रशस्तकालोपलक्षितानन्तरतिथिग्रहणे वा तस्मिन् दिने मलमासाख्यविघ्ने सति रक्तपातादिवत् हारीतवचनात् कृष्णैकादश्यामेवेति।

समयप्रकाशकारस्तु—

न त्वन्या वै कदाचन इति वचनात् मलमास एवाशौचपतितश्राद्धं कार्य्यमित्याह। तन्न समीचीनम्—

तस्मिंस्तु प्रकृते मासि कुर्य्याच्छ्राद्धं यथाविधि।
तथैवाभ्युदयं कार्य्यं नित्यमेकञ्च सर्व्वदा॥

इति हारीतेन प्रकृतमास्येव श्राद्धविधानात्।

गर्हितः पितृदेवेभ्यः सर्व्वकर्म्मसु तं त्यजेत्।

इति ब्रह्मपरिशिष्टवचनाच्च।

असपिण्डीकरणादूर्द्धं यत्किञ्चिच्छ्राद्धिकं भवेत्।
दृष्टे वाप्ययवा पूर्व्वे तन्न कुर्य्यान्मलिम्लुचे॥

इति मधुहारीतेन यत्किञ्चिदित्यनेन सर्व्वेषां श्राद्धानां निषेधाच्च।

न च—

नैहैताव विशेषेणामन्यश्राद्धप्रकारादिभिः॥

इति गृह्यपरिशिष्टेऽसम्भवत्कालान्तरकाणां प्रतिप्रसवात् "न त्वन्या वै कदाचन" इत्यनेनास्याप्यसम्भवत्कालान्तरकत्वादिति वाच्यम्।

विघ्नपतितश्राद्धस्य कृष्णैकादश्यां विधानेन सम्भवत्कालान्तरकत्वात् "न त्वन्या वै कदाचन" इति निषेधस्तु स्वेच्छया प्रत्यतिथ्यनुष्ठानविषयः।

अन्यथा तत्तिथौ रजआदिपाते पक्षिण्याद्यशौचस्थले रात्रौ च का गतिः।

अन्ये तु—

अशौचानन्तरयोग्यकालग्रहणात् रात्र्यादिनिषिद्धेतरस्यैव योग्यत्वात् रात्रिवन्मलमासस्यापि निषिद्धत्वान्मलमासोत्तरतिथावेव कार्य्यमित्याहुः। तन्मन्दम्।

शुद्धदिनेऽचिरोदितसूर्य्यमुहूर्त्ते श्राद्धादौ जाते तद्दिवसस्य निषिद्धत्वेनायोग्यत्वात्तत्परदिने श्राद्धं प्रसज्येतेति संक्षेपः। विस्तारस्तु शुद्धिकौमुद्यां द्रष्टव्यः।

---

## अथ वृद्धिश्राद्धम्।

तत्र गोभिलः—

सर्व्वाण्येवान्वाहार्य्यवन्ति।

सर्व्वाणि प्रशस्तानि गृह्योक्तकर्म्माणीत्यर्थः।

तथा शुद्धिदिने शुद्धिकालीनतिथेर्दिवमुहूर्त्तव्यापित्वे तन्मध्ये-ऽपि श्राद्धं प्रसज्येत। न च तथा सर्व्वदेशीयशिष्टाचारलोपात्।

अत्र चाशौचोत्तरदिने रक्तपातादिना श्राद्धविघ्ने सति लघु-हारीतवचनादनन्तरकृष्णैकादश्यामेव कार्य्यं कपालाधिकरण-न्यायादितिप्रसङ्गाच्च*।

ततश्च तत्रापि यद्यशौचान्तरं स्यात् तदा तदशौचे व्यतीते कार्य्यं पूर्व्ववचनात् विघ्नान्तरे त्वन्यस्यां कृष्णैकादश्यामेव इति।

शूद्रस्य तु त्रिंशद्दिवसाशौचमध्ये मासिकश्राद्धप्राप्तौ तदपकर्ष-मनन्तरकृष्णैकादश्यामेव कार्य्यं न त्वशौचान्तोत्तरदिने आद्यैको-द्दिष्टादिसपिण्डनान्तानां षोड़शश्राद्धानां तदादितदन्तन्यायात् प्रथमैकोद्दिष्टस्यैव मासिकश्राद्धेऽधिकारादशौचोत्तरकर्त्तव्याद-श्राद्धाकरणकृताधिकाराभावरूपविघ्नेनैव बाधितस्य प्रथममासिक-स्याशौचमध्ये प्राप्त्यभावेनाशौचबाधितत्वाभावादिति ध्येयम्।

कृष्णैकादश्यामपि करणाशक्तौ द्वितीयमासिकदिने प्रथम-मासिकस्य विधानाभावात्तदादितदन्तन्यायेनाकृतप्रथममासि-कस्य द्वितीयमासिकेऽधिकाराभावान्मासिकद्वयमेव कृष्णैकादश्या-मेकत्र कार्य्यमिति प्राचीनाचारः।

मासिकं पतितं दृष्ट्वा मासिकेनैव कारयेत्।

इति मूर्खकल्पितं वचनमुपहसनीयमेव। समूलत्वभ्रमे तु तेनैव पतितमासिकेन सह कृष्णैकादश्यां मासिकान्तरं कारयेदिति तदादितदन्तन्यायमूलकं वचनमेवेति।

* ग पुस्तके—अतिप्रसङ्गभयाच्च यथान्तरकृष्णैकादश्या एव न्याय्यत्वात्।

तानि च छन्दोगपरिशिष्टनिषिद्धेतराणि अन्यत्र वैदिके लौकिके वा तत्तद्वचनविशेषादेव श्राद्धं तच्च वक्ष्यते। स्नानसन्ध्ययो-र्निषेधाभावेऽपि श्राद्धाधिकारसम्पादकतया आचमनवन्न तत्र श्राद्धम्। स्नातोऽधिकारी भवतीति।

अनर्हः कर्मणां विप्रः सन्ध्याहीनो यतः स्मृतः।

इति विष्ण्वादिवचनात् काम्यस्नानस्य गृह्यानुक्तत्वेन तत्र श्राद्धम्। समावर्त्ते तु वेदारम्भे उक्तत्वान्न पृथक् श्राद्धम्। अन्वाहार्य्यपदेन मातृपूजादिभ्योऽनु पश्चादाक्रियते इति व्युत्पत्त्या वृद्धिश्राद्धमुच्यते।

तथाच गृह्यपरिशिष्टम्—

यच्छ्राद्धं कर्म्मणामादौ या चान्ते दक्षिणा भवेत्।
अमावास्यां द्वितीयं यदन्वाहार्य्यं तदुच्यते॥

पिण्डपितृयज्ञरूपश्राद्धद्वितीयश्राद्धमित्यर्थः, अन्वाहार्य्यवन्तीति नित्ययोगे मतुप् तेनास्य कर्म्माङ्गता दर्शिता।

तथाच भविष्यपुराणम्—

निषेककाले होमे च सीमन्तोन्नयने तथा।
ज्ञेयं पुंसवने चैव श्राद्धं कर्म्माङ्गमिष्यते॥

निषेककाले गर्भाधानदिने होमे चेति चकारादग्निष्टोमादि-मखमयज्ञानां ग्रहणं, तथाच मत्स्यपुराणे—यज्ञोद्वाहादिमङ्गल इति। पुंसवने चेति चकारात् गृह्योक्तसकलकर्म्मणां ग्रहणम्।

अत्र केचित्—निषेककाल इति सामगेतरपरम्।

विवाहादिः कर्म्मगणो य उक्तो
गर्भाधानं शुश्रुम यस्य चान्ते।
विवाहादावेकमेवात्र कुर्य्या-
च्छ्राद्धं नादौ कर्म्मणः कर्म्मणः स्यात्॥

इति परिशिष्टवचने अन्तशब्दस्यावयवार्थत्वेन विवाहादिषु गर्भाधानावयवेषु कर्म्मसु एकमेव विवाहकाले श्राद्धं न प्रति-कर्म्मादावित्ति निषेधस्य सामगमात्रपरत्वोपसंहारात्, अन्यथा वचनद्वयविरोधात् ततश्च सामगानां गर्भाधाने श्राद्धं नास्तीत्याहुः। तदसत्—

निषेककाल इति वचनस्य सामगेतरपरतया सङ्कोचे प्रमाणा-भावात् परिशिष्टवचने दशाहान्ते पुनः क्रियेतिवदन्तशब्दस्य समीपार्थतयैवोपपत्तेः।

अन्यथा परिशिष्टवचनस्य सामगमात्रपरत्वे विवाहगर्भाधानयो-र्मध्यपठितेषु चतुर्थीहोमादिषु सामगेतरेषां श्राद्धनिषेधः कुतो लभ्यत इति। तस्मात् सर्व्वशाखिभिरेव गर्भाधाने श्राद्धं कार्य्यम्। श्राद्धचिन्तामणिमतमप्येतत् श्राद्धविवेककारमोऽप्यचेति।

एतच्च कर्म्माङ्गश्राद्धं कर्म्मादौ कार्य्यं "यच्छ्राद्धं कर्म्मणामादा-विति छन्दोगपरिशिष्टवचनात्" श्राद्धं नादौ कर्म्मणः स्यादिति गृह्यपरिशिष्टवचनाच्च।

तथाच शातातपः—

नानिष्ट्वा तु पितॄन् श्राद्धैः कर्म्म वैदिकमारभेत्।

वैदिकं वेदप्रमाणमात्रगम्यम् अनिष्ट्वा नारभेदिष्ट्वारभेदित्यर्थः।

यत्र गृह्योक्तेऽन्यत्र वैदिकेऽग्निष्टोमादियज्ञदेवप्रतिष्ठादौ तत्तद्विशेषवचनात् कर्म्माङ्गतया श्राद्धं प्राप्तं, तस्मिन्नेव वैदिके कर्म्मणि तच्छ्राद्धस्य प्राक् कर्त्तव्यतामात्रमनेन विधीयते। न तु वैदिकमात्रे गङ्गास्नानदानदुर्गोत्सवादौ श्राद्धमपि उभयविधेर्गौरवात्।

केचित्तु—वचनमिदं गृह्योक्तवैदिककर्म्मणि श्राद्धविधायकमिति व्याचक्षते। तन्मन्दम्—

यज्ञप्रतिष्ठादौ गृह्योक्तेतरस्मिन् श्राद्धस्य प्राक्कर्त्तव्यतानियमाभावात् परतः प्रसङ्गः स्यादिति।

वैदिकविशेषणादवैदिके ग्रामप्राप्ते गृहप्रवेशे श्राद्धस्य प्राक्कर्त्तव्यत्वनिरासः। तत्र नाङ्गं वैदिकस्य लौकिककर्म्माङ्गत्वानुपपत्तेः, किन्तु नैमित्तिकमेव स्वतन्त्रं, यद्यपि निमित्तत्वं प्राक् सिद्धस्य सत एव प्रवेशक्रियायाश्च यावद्विनाशित्वात्तस्याश्चाभावस्तथाप्यगत्या बुद्धिस्थतया निमित्तत्वमुपचर्य्यते।

निमित्तान्तरञ्च नैमित्तिकं, ततश्च तीर्थप्राप्त्यादिनिमित्तकश्राद्धवत् गृहप्रवेशानन्तरमेव श्राद्धं कार्य्यम्।

न च रविसंक्रान्तिवत् भाविनोऽपि तस्य बुद्धिस्थतया निमित्तत्वमुपचर्य्य प्रागपि कथं न क्रियत इति वाच्यम्।

यद्व्यतिरेकेण न कार्य्यनिष्पत्तिस्तस्य सत्त्वं प्राक्सिद्धत्वञ्चोभयं निमित्तताघटकं, तत्र चागत्या बुद्धिस्थतया संस्कारद्वारा सत्त्वमुपचर्य्यते, अथवा अधिकरणक्षणेन सत्त्वमुपचर्य्यते, द्रव्यसत्त्वेनैव द्रव्यप्राप्त्यादेः।

किन्तु प्राक्सिद्धत्वोपचारे को हेतुः, रविसंक्रान्तिस्थले तु

वचनात् कुत्रापि तथा (?) अन्यथा तीर्थ-द्रव्य-प्राप्ति-व्रीहियाकादिनिमित्तकेषु श्राद्धेषु तथात्वप्रसङ्गः।

किञ्च गृहप्रवेशश्राद्धस्य देशाकाङ्क्षायामुपस्थितत्वाद्गृहमेवाधिकरणं, तीर्थप्राप्तिश्राद्धस्य तत्तीर्थवत् तच्च प्रवेशं विना न घटत इति श्राद्धस्य प्रवेशानन्तरत्वं सिद्धमेव।

मदनपारिजाते च वचनं लिखितम्—

नवं गृहं प्रविश्यैव तन्मध्ये पूजयेच्छ्रियम्।
वृद्धिश्राद्धं ततः कुर्य्याद्ब्राह्मणानपि तर्पयेत्॥

विष्णुपुराणे—

कन्यापुत्रविवाहेषु प्रवेशे नववेश्मनः।
नामकर्म्मणि बालानां चूडाकर्म्मादिके तथा॥
सीमन्तोन्नयने चैव पुत्रादिमुखदर्शने।
नान्दीमुखं पितृगणमर्चयेत् प्रयतो गृही॥

यत्र नान्दिष्टा तु पितृनिल्वत श्रामत्वयात् समानकर्त्तृकत्वाधगमेऽपि कन्यापुत्रविवाहेष्विति वचनं विवाहाङ्गसंस्काराङ्गभूते श्राद्धे पितुरधिकारमात्रं बोधयति, न तु पितृकर्त्तृकं श्राद्धान्तरमपि गौरवात्।

ततश्च कन्यापुत्रविवाहाङ्गश्राद्धस्य वचनात्-भिन्नकर्त्तृकत्वे सिद्धे नान्दिष्टेति वचनात्-कर्म्मादिषु सर्व्वेष्विति परिशिष्टवचनाच्च प्राक्कर्त्तव्यत्वमप्याहतमेव। इत्यत्र बाधकस्य पितुरभावेऽपि पितृव्यादिमत्त्वेऽपि पुत्रस्यैव स्वविवाहे श्राद्धाधिकारः सामान्यविधिवचनात्, एवं पितरि विदेशस्थेऽपीति ध्येयम्।

अयञ्च पितुरधिकारः पुत्रस्य प्रथमविवाह एव।

स्वपितृभ्यः पिता दद्यात् सुतसंस्कारकर्म्मणि।

इति वचनात्।

संस्कारत्वञ्च प्रथमविवाहस्य* द्वितीयविवाहे तु स्वयं कार्य्यम्, नान्दीष्टेति वचने क्वाप्रत्ययात् समानकर्त्तृकत्वावगमात्। न च तत्र श्राद्धमेव नाप्नोतीति वाच्यम्। गृह्योक्ततया श्राद्धप्राप्तेः।

उत्सवानन्दसन्ताने यज्ञोद्वाहादिमङ्गले।
मातरः प्रथमं पूज्याः पितरस्तदनन्तरम्।
ततो मातामहा राजन् विश्वेदेवास्तथैव च॥

इति मत्स्यपुराणे उद्वाहमात्रग्रहणाच। उत्सवे पुत्रजन्मनि। आनन्दसन्ताने गर्भाधान-पुंसवन-सीमन्तोन्नयनेषु यज्ञे ग्रह-यज्ञाग्निष्टोमादौ।

उद्वाहादौत्यादिशब्दान्नामकरणनिष्क्रमणान्नप्राशनचूडोपनय-नानां ग्रहणम्।

विश्वदेवानां पश्चात् पाठो मात्रादिषु त्रिषु गणेषु विश्वदेव-त्वार्थः। चूड़ाकर्म्मादिक इति प्रकरणादा*दिशब्देन निष्क्रम-णान्नप्राशनोपनयनवेदारम्भसमावर्त्तनानि गृह्यन्ते॥

अत्र केचित् नामकर्म्मणीति पृथगभिधानान्नामकरणचूड़ाकरण-मध्यभूतयोर्निष्क्रमणान्नप्राशनयोः श्राद्धं नास्तीत्याहुः। तन्मन्दम्। सर्व्वास्वेवार्थवत्सीति गृह्योक्तकर्म्ममात्रे श्राद्धविधानात्।

---

* क पुस्तके—द्वितीयविवाहे इत्यारभ्य वाच्यमित्यन्तोऽंशः पतितः।

* ख पुस्तके—प्रकारार्थो।

अतएव परिशिष्टकृता—

न शोष्यन्ती-जातकर्म-प्रोषितागतकर्मसु।

इत्यादिना गृह्योक्तशोष्यन्त्यादिकर्मसु श्राद्धं निषिध्यान्येषु गृह्योक्तेषु श्राद्धमावश्यकमिति दर्शितम्।

ननु अन्नप्राशनस्य गोभिलगृह्यानुक्तत्वात्तत्र छन्दोगानां श्राद्धं मा भवत्विति चेत् कथं तर्हि छन्दोगानामन्नप्राशनलाभः।

अथ पारस्करोक्तत्वेन परोक्तमविरोधि चेति वचनात्।

तथा—

अहन्येकादशे नाम चतुर्थे मासि निष्क्रमः।

षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि चूडा कार्य्या यथाकुलम्॥

एवमेनः शमं याति बीजगर्भसमुद्भवम्।

इति याज्ञवल्क्येन संस्कारमध्यपाठाच्च छन्दोगानामपि तल्लाभ इति चेत्।

तर्हि गृह्योक्तत्वेन संस्कारत्वेन च कर्माङ्गश्राद्धलाभे को विरोधः।

अतएव गोभिलभाष्यकृता यशोधरेण गौतमवचनं लिखितम्—

कृत्वाभ्युदयिकं श्राद्धं दधिमध्वाज्यसंयुतम्।

अथैव प्राशयेदन्नम् इत्यादिमन्त्रतः॥

इति।

एतेन भोजनस्य रागप्राप्तत्वेन लौकिकत्वात् गृह्यकर्मत्वम्

परत एव श्राद्धमिति यत् केचिदुक्तं तदप्ययास्तं पितान्नं प्राशयेदिति गिजर्थस्य वैदिकत्वात्।

*तथा राजमार्त्तण्डे भोजराजः—

पुत्रोत्पत्तौ भवेच्छ्राद्धमन्नप्राशे च निष्क्रमे।
चूड़ाकार्य्ये महादाने नाम्नि पुंसवने व्रते॥
पाणिग्राहप्रतिष्ठायां प्रवेशे नववेश्मनः।
एतद्वृद्धिकरं नाम गृहस्थस्य विधीयते॥

निर्णयामृतेऽपि कूर्म्मपुराणवचनं लिखितम्—

अन्नप्राशे च सीमन्ते पुत्रोत्पत्तिनिमित्तके।
पुंसवने निषेके च नववेश्मप्रवेशने॥
सेतुहृदजलादीनां प्रतिष्ठासु विशेषतः।
तीर्थयात्रावृषोत्सर्गे वृद्धिश्राद्धं विधीयते॥

अत्र प्रतिष्ठादीनां संस्कारत्वाभावेऽपि वचनाच्छ्राद्धम्।

एवञ्च विष्णुपुराणे नामकर्म्मणीति पृथगुपादानमुपलक्षणसूचनपरमेवेति प्रतीमः।

सीमन्तोन्नयने चेति चकारात् पुंसवनगर्भाधानयोरुपसंग्रहः। पुत्रादिमुखदर्शने इति पुत्रस्य प्रथममुखदर्शने इत्यर्थः।

अत्र केचित्—

* ग पुस्तके राजमार्त्तण्डवचनं नोल्लिखितम्।

पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात् त्रायते पितरं सुतः।
सुखसन्दर्शनेनास्य तदुत्पत्तौ यतेत सः॥

इति बृहस्पतिवचनेनापि रागप्राप्तस्य पुत्रमुखदर्शनस्य नरकनिस्तारकारणतयोपन्यासान्नियमकसम्बन्धत्वाद्वैदिकत्वं रागतो नियमासम्भवात् गर्भाधानवत् ततश्च पुत्रमुखदर्शनात् प्राक् श्राद्धमित्याहुः।

तदयुक्तम्। मन्वादिवचनैः पुत्रजन्ममात्रस्य पुन्नामनरकनिस्तारकत्वाभिधानात् तद्विरोधात् बृहस्पतिवचने सुखसन्दर्शनपदेन सुखं सन्दर्शयतीति व्युत्पत्त्या जन्मोच्यते।

यथा मनुः—

ज्येष्ठेन जातमात्रेण पुत्त्रीभवति मानवः।
पितृणामनृणश्चैव स तस्मात्सर्व्वमर्हति॥

जातमात्रेण पुत्त्रीभवति पुन्नामनरकात् त्राता भवतीत्यर्थः।

तथा—हरिवंशे पृथूपाख्याने मृतस्य वेणस्य दक्षिणभुजमथनाज्जातेन पृथुना वेणस्त्रातः।

यथा—

समुत्पन्नेन कौरव्य सत्पुत्त्रेण महात्मना।
त्रातः स पुरुषव्याघ्रः पुन्नाम्नो नरकात्तदा॥

विष्णुपुराणे—

सत्पुत्त्रेण च जातेन वेणोऽपि त्रिदिवं ययौ।
पुन्नाम्नो नरकात्त्रातः स तेन सुमहात्मना॥

एवञ्च नियमविधिलाभाभावात् पुत्रमुखदर्शनस्य लौकिकत्वे गृहप्रवेशवत्तन्निमित्तकश्राद्धं पश्चादेवेति यदा तु पुत्रमुखदर्शनपुत्रजन्मनिमित्तकश्राद्धयोर्यौगपद्यं स्यात् तदा तन्त्रेण सकृदेवानुष्ठानं, अन्यथा पृथगेवेति।

नान्दीमुखं पितृगणमित्यनेन नान्दीमुखविशेषणवतः पित्रादेरत्र देवतात्वं तस्य च नान्दीमुखपदस्य सम्बन्धिवाचकपित्रादिपदात् प्राक् प्रयोगनियम इत्यपि दर्शितम्।

तथाच कात्यायनः—

नान्दीमुखान् पितॄनावाहयिष्ये इति पृच्छति।
नान्दीमुखाः पितरः प्रीयन्तामित्यादि।

मातृमातामहादीनामपि तथात्वमाह ब्रह्मपुराणम्—

प्रपितामहसंप्राप्य नान्दीमुख्यश्च मातरः।
मातामहेभ्यश्च तथा नान्दीवक्त्रेभ्य एव च॥

अत्र च मातृपदमपि* दर्शितम्।

शातातपः—

मातॄणामग्रतः कृत्वा पितॄणान्तदनन्तरम्।
ततो मातामहानाञ्च वृद्धौ श्राद्धत्रयं स्मृतम्॥

एषु च मत्स्यपुराण-कात्यायन-शातातप-विष्णुपुराणवचनेषु स्वमातृमातामहादीनामिव स्वजनकादीनां देवतात्वप्रतीतेः तेभ्य एव श्राद्धं देयम्। तेन—

---

* ख पुस्तके मातृशब्दोऽपि।

पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः।
त्रयो ह्यश्रुमुखा ह्येते पितरः परिकीर्त्तिताः॥
तेभ्यः पूर्व्वतरा ये च प्रजावन्तः सुखैधिताः।
ते तु नान्दीमुखा नान्दी समृद्धिरिति कथ्यते॥
कर्म्मण्यथाभ्युदयिके मङ्गल्यवति शोभने।
जन्मन्यथोपनयने विवाहे पुत्रकस्य च।
पितॄन् नान्दीमुखान् नाम तर्पयेत् विधिपूर्व्वकम्॥

इति ब्रह्मपुराणवचनाद्वृद्धप्रपितामहादीनामेव वृद्धिश्राद्धमिति यत् केचिदुक्तं तन्निरस्तम्।

स्वपितृभ्यः पिता दद्यात् सुतसंस्कारकर्म्मसु। इति।

षड्भ्यः पितृभ्यस्तदनु श्राद्धदानमुपक्रमेत्।

इत्यादिपरिशिष्टवचनाच्च।

ब्रह्मपुराणवचनन्तु पित्रादित्रिकस्य प्रमितप्रव्रजितत्वे वृद्धप्रपितामहादीनां श्राद्धविषयकम्।

अतएव श्राद्धानर्हत्वात् पित्रादीनामश्रुमुखत्वं तत्परेषां श्राद्धार्हत्वेन प्रसन्नमुखत्वान्नान्दीमुखता दर्शिता। इति श्राद्धविवेकः। कल्पतरौ तु पित्रादित्रिकविषयमित्युक्तम्।

कल्पायुधेन॥ शास्त्रविशेषव्यवस्थितमित्युक्तम्।

आभ्युदयिके अभ्युदयसाधने यज्ञयागादौ मङ्गल्यवति पुंसवनादावित्यर्थः।

लघुहारीतः—

सव्यजानुस्तु युग्मैः स्यात् सर्व्वं प्राङ्मुखैः पृथक्।

युग्मैर्ब्राह्मणैरित्यर्थः ।

पृथक् सदैवं कर्त्तव्यं मातृश्राद्धं दैवश्राद्धं पृथक् कार्य्यमित्यर्थः ।
पृथक् दैवकरणं फलातिशयार्थं तन्त्रेणापि सिद्धेः ।

अतएव—

वैश्वदेवविहीनन्तु केचिदिच्छन्ति सत्तमाः ।

इति मार्कण्डेयपुराणे पृथक् वैश्वदेवनिषेध उक्तः ।
मातृश्राद्धस्य छन्दोगैर्न कर्त्तव्यम् ।

न योषिद्भ्यः पृथक् दद्यादवसानदिनादृते ।

स्वभर्तृपिण्डमात्राभ्यस्तृप्तिरासां यतः स्मृता ॥

इति छन्दोगपरिशिष्टे निषेधात् ।

नचैतद्वचनं पार्व्वणे योषितां पित्रादिभिः सह पृथक् दान-विधायकं पृथक्पदोपादानात् ततश्च सहदानविधानात् पार्व्वणे सपत्नीकस्य देवतात्वमिति वाच्यम् ।

स्वभर्तृपिण्डमात्राभ्य इति हेतुमद्वचनार्थविरोधात् तस्या अपि तद्दानात् ।

किञ्च—तस्यास्तत्पिण्डत्वात् स्वभर्तृपिण्डेत्यनुपपन्नं स्वस्य भर्त्तुश्च पिण्ड इति व्याख्याने तु हेतुत्वानुपपत्तिरन्तरार्थवैयर्थ्यञ्च स्यात् । तर्हि पृथक्पदस्य का गतिरिति चेत् ।

अन्वष्टका-गया-वृद्धि-श्राद्धेष्वेव मृताहनि ।

एकोद्दिष्टं तथा मुक्त्वा मातुर्नान्यद्भवेत् क्वचित् ॥

इति शङ्खादिवचनादन्वष्टकादौ पृथक् प्राप्तं श्राद्धमनूद्य छन्दोगगोचरतया निषिध्यते ।

छन्दोगपरिशिष्टोक्तत्वात्।

नच पार्व्वणे निषेधस्य चरितार्थत्वात् अन्वष्टकादौ सामान्यतो विधायकवचनात् सामगानामपि मातृश्राद्धमिति मैथिलमतमुपादेयम्।

पार्व्वणे मातृश्राद्धस्याप्राप्ततया निषेधस्य पर्य्युदासस्य वा असम्भवात् तयोःप्राप्त्युपजीवित्वादन्यथा वैयर्थ्यात्।

एतेन यदन्यैरुक्तम् अधमासदिनपदेन विशेषविहितश्राद्धमुपलक्ष्यते अन्यथाद्यैकोद्दिष्टन्यूनषाण्मासिकादावनिस्तारात्।

ततश्च अन्वष्टकादावपि विशेषविहितं मातृश्राद्धमायातमिति। तदपि निरस्तम्।

अस्य वचनस्य प्रकरणात् सपिण्डनोत्तरविषयत्वेनाद्यैकोद्दिष्टादेरविषयत्वात्। उपलक्षणे प्रमाणाभावात्।

मातुः सपिण्डने पितामहीयाद्धं नतु पर्य्युदस्यते परिशिष्टेनैव छन्दोगानां विशेषाभिधानात्। यथा—

मातुः सपिण्डीकरणं पितामह्या सहोदितम्। इति।

अतएव परिशिष्टे—

षड्भ्यः पितृभ्यस्तदनु श्राद्धदानमुपक्रमेत्।

इति षट्संख्यानियमो दृष्टो सतः। अन्यथा तदनर्थकं स्यात्।

तथा—

इति षट्पिण्डमात्वदानमुक्तम्।

गोभिलेनापि हद्यावन्वष्टकायाञ्च मातृश्राद्धमन्योऽपि न सूचितः।

ततश्चान्वष्टकायां वृद्धौ गयायाञ्च प्राप्तं मातृश्राद्धं छन्दोगेतरै-रेव कर्त्तव्यमिति सिद्धम्।

तथाच छन्दोगपरिशिष्टम्—

स्वपितृभ्यः पिता दद्यात् सुतसंस्कारकर्म्मसु।

पिण्डानोद्वहनात्तेषां तस्याभावेऽपि तत्क्रमात्॥

वचनमिदं न श्राद्धविधायकम्।

सर्व्वाण्येवान्वाहार्य्यवन्तीति गोभिलवचनात् सामान्यतः प्राप्तेः।

किन्तु संस्कारस्य पुत्रगोचरतया श्राद्धे तस्यैव पित्रादि-मातामहादीनामौचित्यप्राप्तौ पितुरेव पित्रादिमातामहादीनां श्राद्धदेवतात्वं विदधाति।

अतएव पुत्रमातामहादिव्यावर्त्तकः स्वशब्दो दत्तः।

स्वपितृभ्य इत्यत्र पितृपदमजहत्स्वार्थलक्षणया जनकादि-वृद्धियाद्धोद्देश्योपलक्षकम्। तेन पितुर्मातृगणलाभः। अथवा परिशिष्टकर्त्ता छन्दोगाभिप्रायेण भोक्तृत्वोपाधिना षट्सु पुरुषेषु पितृपदं प्रयुक्तम्। अध्वर्य्युरपि तुल्यन्यायात् स्वमातृभ्यो दद्यात् सुतसंस्कारकर्म्मस्वित्यनेन कन्यासंस्कारेषु श्राद्धं नास्तीति सूचितम्।

कन्यापुत्रविवाहेष्वित्यादि विष्णुपुराणवचने कन्याविवाहे

विशिष्टश्राद्धमुक्ता अन्येषु कन्या-नामकरणादिसंस्कारेषु श्राद्धं नास्तीति स्फुटमेवोक्तम्।

अन्यथा चूड़ाकर्म्मादिक इत्यनेन विवाहस्यापि प्राप्तौ कन्या-पुत्रविवाहेष्विति व्यर्थं स्यात्।

किञ्च-गोभिलादिगृह्ये पुत्रजन्मोपक्रम्य जातकर्म्मादिसंस्कार-विधानात् कन्यासंस्कारस्य गृह्योक्तत्वाभावात् कुतः श्राद्धप्राप्तिः।

कथं तर्हि कन्यायाः संस्कारप्राप्तिरिति चेत्—

तूष्णीमेताः क्रियाः स्त्रीणां विवाहस्तु समन्त्रकः।

इति याज्ञवल्क्यवचनात्।

कन्याविवाहे तु श्राद्धं पितुः पितृणामेव—

नान्दीमुखं पितृगणमर्च्चयेत् प्रयतो गृही।

इत्युक्तत्वात्।

संस्काराश्चात्र नामकरणाद्या विवाहान्ताः।

जातकर्म्मणि श्राद्धनिषेधात् पुंसवन सीमन्तोन्नयनयोश्च न पुत्रसंस्कारत्वमनियमात् किन्तु गर्भसंस्कारत्वमेव।

अतएव—

इति राजमार्त्तण्डे प्रतिगर्भं पुंसवनमभिहितम्।

तत् पुत्रकामस्यैव पुत्रेच्छुरित्युपादानात् गर्भसंस्कारस्य प्रथमेनैव जातत्वात्।

तथापि तस्मादेव विष्णुपुराणात् पितुः पितॄणां श्राद्धलाभः।

तर्हि कथं पुंसवनसोमन्तोन्नयनकन्याविवाहेषु तस्याभावेऽपि तत्क्रमादिति सङ्गच्छते। सत्यं, पुत्रसंस्कारे तथा दृष्टत्वेन एकत्र दृष्टार्थन्यायात् तस्याभावेऽपि तत्क्रमादित्यस्यैवौचित्यात्।

आ उद्वहनात् इत्यभिविधावाङ् न मर्य्यादार्थे कन्यापुत्रविवाहेष्विति विष्णुपुराणवचनात्।

अस्मादेव विष्णुपुराणात् पिण्डाभिस्यस्य सविधिकत्वाद्योपलब्धकता।

तर्हि पितुर्मरणेऽन्येन संस्कर्त्रा कथं श्राद्धं देयमित्याह तेषामिति तेषां पितुः पितॄणामित्यर्थः।

तत्क्रमादिति नात्र तस्य पितुः क्रमस्तत्क्रमः स एव वा पूर्व्वोक्तः क्रमस्तत्क्रम इति। तेषां तस्याभावेऽपौत्यनेनैव सिद्धेस्तत्क्रमादित्यस्य वैयर्थ्यापत्तेर्लेपभागिनां श्राद्धनिषेधाच्च।

किन्तु तमारभ्य क्रमः तत्प्रधानक्रम इति वा मध्यपदलोपी समास एव ततश्च तेषां तत्क्रमादित्यनेन लेपभागिनं पितुः प्रपितामहं विहाय पितरमादाय तेषां पितुः पितॄणां दद्यादित्यर्थे सति पितुर्मातामहादीनां श्राद्धमायातम्।

कन्याविवाह-पुंसवन-सीमन्तोन्नयनेषु संस्कार्य्यकमासम्भवाच्च तत्पदेन प्राधान्यात् पितुरेव प्रत्यवमर्षस्य न्याय्यत्वाच्च ।

तस्मात् पितुर्मातामहपक्षः श्रीनारायणोपाध्यायसम्मत एवोपादेयः ।

तथाच कृत्यचिन्तामणिलिखितं वचनम्—

अष्टौ संस्कारकर्म्माणि गर्भाधानमिव स्वयम् ।
पिता कुर्य्यादथान्योऽपि तस्याभावे तथैव च ॥

अष्टौ गर्भाधानविवाहौ विना तथैव पितुः प्रकारेण कुर्य्यादित्यर्थः । युज्यते हि पितृमरणेऽप्यन्यकर्त्तुरपि तत्प्रकारः ।

अतएव विदेशस्थे पितरि आवश्यकसंस्कारस्यान्यथानुपपत्त्या कृतेनान्येन संस्कर्त्रा प्रतिनिधिवत् पितुः पितृगण-मातृगण-मातामहगणानां श्राद्धं कर्त्तव्यं, एवञ्च संस्कार्य्यमातृमरणे पित्रा यथा स्वमातृभ्य एव दीयते तथान्येनापि पितृमरणे पितुर्मात्रादिभ्य एव देयं नतु संस्कार्य्यमात्रादिभ्य इति ।

यत्र तु पतितो प्रव्रजितो वा पिता मृतश्चात्र न पित्रादिक्रमेण श्राद्धं तत्क्रमादित्यत्र तत्पदेन पार्व्वणार्हपितृग्रहणात् ब्राह्मणादिहते तात इति तस्य श्राद्धनिषेधात् । किन्तु पितुः प्रपितामहस्य लेपभागित्वहेतुकश्राद्धनिषेध एव तत्क्रमादित्यस्य बोध्य तद्दोषाभावे च तत्क्रमादिति विधिनिवृत्तिरेव अतएव जीवति पितरि तत्पुत्रेण स्वपुत्रसंस्कारे क्रियमाणे प्रेतीभूतपितामहं विहाय प्रपितामहादित्रिकस्य क्रियते इति ।

अत्र केचित्—

तत्क्रमादित्यनेन संस्कार्य्यपित्रादिक्रमोपदेशात् संस्कार्य्य-मातामहादीनां प्राप्तिः।

पितरो यत्र पूज्यन्ते तत्र मातामहा ध्रुवम्।

इति वचनैर्य्यस्य पित्रादिविकं तस्यैव मातामहादीनां ग्रहणादित्याहुः। तत्र—

तेषामिति वचनादपिशब्दाच्च पित्रा येभ्यो दत्तं पितुर्मरणेऽपि तेषां पितुः पितृणामेव दानम्।

केवलं तत्क्रमादित्यनेन तत्रैव पितरमनुप्रवेश्य लेपभागितया पितुः प्रपितामहो निषिध्यते अन्यथा तेषामित्युपादानमनर्थकं स्यात् बहुवचनानुपपत्तिश्चेति।

अतएव—

*दौहित्रैर्वा नरश्रेष्ठ कार्य्यास्तत्तनयैस्तथा।

इति विष्णुपुराणे दौहित्रतनयस्योत्तरक्रियायामधिकारकथनमप्युपपन्नम्।

किञ्च गर्भसंस्कारयोः पुंसवनसीमन्तोन्नयनयोः संस्कार्य्य-मातामहग्रहणं विदुषामुपहसनीयमेव।

यत्तु—तस्य संस्कार्य्यस्य क्रमस्तत्क्रमः येन क्रमेण संस्कार्य्येण श्राद्धं कर्त्तव्यं तत्क्रमादिति श्राद्धचिन्तामणावुक्तं तदप्यतीव मन्दम्। पूर्व्वोक्तसर्व्वदोषग्रस्तत्वात्।

---

* क पुस्तके—दौहित्रैरात्मजैरथ।

एवञ्च जीवति मृते वा पतितप्रव्रजिते पितरि तत्पुत्रसंस्कारे तेभ्यः पितुर्मातामहादिभ्यो देयं इति सर्व्वं समञ्जसम् पुत्रजन्म-निमित्तन्तु श्राद्धं पिता स्वयमेव कार्य्यं नान्येन।

तस्यैव पुत्रजननादन्यं प्रति तस्य निमित्तत्वाभावात्।

तथाच विष्णुपुराणे—

जातस्य जातकर्म्मादिक्रियाकाण्डमशेषतः।

पुत्रस्य कुर्व्वीत पिता श्राद्धं चाभ्युदयात्मकम्॥

संस्कारस्त्वन्येनापि कार्य्य आवश्यकत्वात् पूर्व्ववचनाच।

अभ्युदयात्मकं पुत्रजन्मनिमित्तकश्राद्धमित्यर्थः।

यथा मार्कण्डेयपुराणे—

नैमित्तिकमथो वक्ष्ये श्राद्धमभ्युदयात्मकम्।

पुत्रजन्मनि तत्कार्य्यं जातकर्म्मसमं नरैः॥

पुत्रमुखदर्शननिमित्तकश्राद्धं तु पृथगेवेति प्रागुक्तं तदपि काम्यम्।

शातातपः—

अकृत्वा मातृयागन्तु यः श्राद्धं परिवेषयेत्।

तस्य क्रोधसमाविष्टा हिंसां कुर्व्वन्ति मातरः॥

मातरो गौर्य्यादयो वक्ष्यमाणाः, अत्र युगपत्प्राप्तयोर्मातृयाग-श्राद्धयोर्मातृयागस्य प्राक्कर्त्तव्यता दर्शिता श्राद्धेन सहाव्यभि-चारश्च न तु श्राद्धाङ्गता।

यत्क्रमाह छन्दोगपरिशिष्टम्—

कर्म्मादिषु च सर्व्वेषु मातरः सगणाधिपाः।
पूजनीयाः प्रयत्नेन पूजिताः पूजयन्ति ताः॥
प्रतिमासु च शुभ्रासु लिखिता वा पटादिषु।
अपि वाक्षतपुञ्जेषु नैवेद्यैश्च पृथग्विधैः॥
कुड्यलग्नां वसोर्धारां सप्तवारान् घृतेन तु।
कारयेत् पञ्च वारान् वा नातिनीचां न चोच्छ्रिताम्॥
आयुष्याणि च शान्त्यर्थं जप्त्वा तत्र समाहितः।
षड्भ्यः पितृभ्यस्तदनु श्राद्धदानमुपक्रमेत्॥

कर्म्मादिष्वित्यनेन मातृयागस्य कर्म्माङ्गता दर्शिता कर्म्मपदमत्र वृद्धिश्राद्धाङ्गकवैदिककर्म्मपरम्। तेन गृह्यासूक्तेषु प्रतिष्ठादिष्वप्यादौ मातृपूजनं वैदिकेतरस्थले तु गृहप्रवेशे पुत्रजन्मनि च—

यत्र यत्र भवेच्छ्राद्धं तत्र तत्र च मातरः।

इति वक्ष्यमाणवचनान्मातृपूजालाभः। अत्रापि शातातप-वचनात् श्राद्धात् प्राक् मातृपूजेति परिशिष्ट-तदनु श्राद्धमित्यनेन वसुधारापि श्राद्धात् प्रागेव।

एवञ्च मातृपूजा-वसुधारा-वृद्धिश्राद्धानां क्रमकर्त्तव्यत्वे सिद्धे युगपदुपस्थितत्वाभावात् केषाञ्चित् युगपत्संकल्पाचरणमनाचार एवेति प्रतीमः।

नचैतेषु संकल्प एव नाप्नोति याथं अक्षतमुख्यसंकल्पस्य पुंसोऽभ्युदयसाधनानामेषामुपस्थितकाङ्क्षानां पृथक् संकल्पस्याव-श्यानुष्ठेयत्वात् यावाभिन्नपत्नीति हारीतेन नियमविधानात्।

न च मुख्यमङ्गल एव आदौ कथं न क्रियते इति वाच्यम्—

नानिष्ट्वा तु पितॄन् श्राद्धैः कर्म्म वैदिकमारभेत्।

इति वचनात्।

सगणाधिप इत्यनेन विघ्नवारणाय ततोऽपि प्राक् गणेशपूजा कार्य्या आदौ विनायकः पूज्य इति वक्ष्यमाणवचनात्। प्रयत्नेन भक्तिश्रद्धातिशयेन पूजयन्ति अभ्युदयदानेन पूजकं तोषयन्तीत्यर्थः।

शुभ्रासु शक्तासु स्फटिकादिमयीषु लिखिता मातरः पूज्या आलेख्येषु चेत्यर्थः।

पुञ्जेष्विति बहुवचनात् पृथक् पृथक् यवपुञ्जेषु वा पूजनीयाः। अत्र पूर्व्वं पूर्व्वं फलातिशयः न तु मुख्यकल्पानुकल्पेन व्यवस्था गल-स्वान्यत्र फलाभावकल्पनागौरवात् पृथक्विधेर्नानाविधेः। अत्रापि बहुवचनात् पृथक् नैवेद्यैरित्यर्थः।

मातरश्चोक्ता छन्दोगपरिशिष्टे—

गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया।

देवसेना स्वधा स्वाहा मातरो लोकमातरः॥

शान्तिः पुष्टि धृतिस्तुष्टिरात्मदेवतया सह।

आदौ विनायकः पूज्यो अन्ते च कुलदेवता॥

मातरो लोकमातर इति सर्व्वासां विशेषणमिति प्राञ्चः।

अन्ये तु नामगणमध्यपाठात् बहुवचनान्तमेव देवताद्वयमिति वदन्ति। पितृदयिता-पशुपतिनिबन्धादिषु लिखनात्—

शान्तिः पुष्टिर्धृतिस्तुष्टिरित्येव पाठ इति प्राञ्चः॥

अन्ये तु —

सामगगोचरोऽयं पाठः यजुर्वेदिनान्तु धृतिः पुष्टिस्तथा तुष्टिरिति वदन्ति। तन्मन्दम्—

एकेनैव छन्दोगपरिशिष्टेनोक्तत्वात् पाठद्वयस्यानौचित्यात्। न ह्येकमुनिना एकस्मिन् वचने पाठद्वयं कल्प्यते मातृणां षोडशसंख्यकत्वप्रसिद्धेश्च।

एतेन मातरो लोकमातर इति पृथक्देवताद्वयमिति मतं निरस्तम्।

गौडस्तु—

धृतिः पुष्टिस्तथा तुष्टिस्तथैव कुलदेवता।

इत्येतावन्मात्रं पठित्वा सर्व्वशाखिगोचरतया एताः षोडश मातर इत्याह।

कुड्ये भित्तिर्व्वसुरत्नोदिश्यवेदिराजः तस्य सम्बन्धिनीं धारां घृतेन दद्यादित्यर्थः।

महाभारते मोक्षधर्मे वसुं प्रति देववाक्यम्—

एकं त्वनुग्रहं तुभ्यं ददाम नृपनन्दन।
यावन्तं शापदोषेण कालमासिथ्यसेऽनघ॥
भूमिविवरगो भूत्वा तावन्तं कालमापदि।
यज्ञेषु सुहुतां विप्रैर्व्वसो धारां महात्मभिः॥
प्राप्स्यसेऽस्मदनुध्यानान्मा च त्वां ग्लानिरस्पृशत्*।
न क्षुत्पिपासे राजेन्द्र भूमेश्छिद्रे भविष्यतः॥

* आदर्श पुस्तके—स्पृशत्।

वसोर्धाराभिपीतस्तत्तेजसाप्यायितेन च।

स देवोऽस्मदरमीतो ब्रह्मलोकं नयिष्यति* ॥

विप्रैः सह यज्ञेषु जुह्वतां यजमानानां सम्बन्धिनीं वसोर्घृतस्य धारामित्यर्थः।

स देवो ब्रह्मा पञ्चवारानिति बहुहृतासम्भवे इति केचित्। उद्देश्यगतप्रीत्यतिशयद्वारा सप्तवारेषु फलातिशय इत्यभियुक्ताः।

फलञ्चास्य वृद्धिश्राद्धवत् प्रकृतकर्मणोऽभ्युदय एव। मन्त्रस्तु- वसोः पवित्रमसीत्यादिर्वसुधाराप्रकाशको यजुर्वेदोक्त एव सर्व्व- शाखिनां परोक्षमविरोधि चेति वचनात्। अस्य सकृदेव पाठो नत्वावृत्तिः प्रमाणाभावात्। मन्त्रान्तरे प्रमाणाभावात्।

एतच्चोपविश्यैव कर्त्तव्यम्—

आसीन ऊर्द्धः प्रह्वो वा नियमो यत्र नेदृशः।

तदासीनेन कर्त्तव्यं न प्रह्वेण न तिष्ठता ॥

इति परिशिष्टवचनात्।

आयुष्याणीति आयुषे हितानि आयुष्यं वर्चस्यमित्यादीनि जप्यानि अर्थादमङ्गलशान्तये इत्यर्थः।

तथाच ब्रह्मपुराणम्—

पठेच्छकुनसूक्तञ्च स्वस्तिसूक्तं शुभं तथा।

तदन्विति क्रमविधानार्थं पञ्च इति मात्स्याद्धनिषेधार्थम्। अन्यथा नैयत्यादिति प्राग्वत्।

---

* क पुस्तके—पि मेष्यति।

जीवमातादित्रिकविषयमिति श्रीदत्तः। तच्चिन्त्यम्।
न योषिद्भ्य इति सामान्येन*च्छन्दोगविषये निषेधात्।

परिशिष्टे—

अतःपरं प्रवक्ष्यामि विशेष इह यो भवेत्।
वसिष्ठोक्तो विधिः कृत्स्नो द्रष्टव्योऽत्र निरामिषः॥
प्रातरामन्त्रितान् विप्रान् युग्मानुभयतस्तथा।
उपवेश्य कुशान् दद्यादृजुनैव हि पाणिना॥
निपातो न हि सव्यस्य जानुनो विद्यते क्वचित्।
सदा परिचरेद्भक्त्या पितृनप्यत्र देववत्†॥
पितृभ्य इति दत्तेषु उपवेश्य कुशेषु तान्।
गोत्रनामभिरामन्त्र्य पितृनर्घ्यं प्रदापयेत्॥
नात्रापसव्यकरणं न पित्र्यं तीर्थमिष्यते।
पात्राणां पूरणादीनि दैवेनैव हि कारयेत्॥

पार्व्वणे वसिष्ठेन यो विधिरुक्तः सोऽत्रामिषव्युदासेन बोद्धव्यः।
अत्रामिषत्वातिदेशान्मधुनो निवृत्तिरिति केचित्। तन्न—

शाल्यन्नं दधिमध्वन्नं बदराणि यवांस्तथा।

इति ब्रह्मपुराणे पिण्डे मध्वनुध्यानेन श्राद्धेऽपि तदनुज्ञानात्
पिण्डस्य श्राद्धशेषद्रव्यकर्त्तव्यत्वात्।

उक्तञ्च गोभिले—सर्व्वमन्त्रमेकश्चोद्धृत्येति।

---

* क पुस्तके—सामान्यच्छन्दोगविषये।
† ख पुस्तके—दैवते।

किञ्च—

मधु मध्विति यस्तत्रेति वचने मधुमन्त्रवर्जनामधुनो निवृत्ति-र्नास्तीत्यवगम्यते इति वक्ष्यते। प्रातरामन्त्रितानिति पूर्व्वदि-नामन्त्रणनिषेधः।

नचामन्त्रितान् विप्रान् प्रातरुपवेशयेत्यन्वयेन प्रातःकाल-विधानादतिदेशप्राप्तस्य पूर्व्वदिनामन्त्रणस्य न बाध इति वाच्यम्।

आमन्त्रितानित्यस्य वैयर्थ्यभिया तस्य प्रातःपदसम्बन्धेन पूर्व्व-दिननिमन्त्रणप्रतिषेधस्य दुर्निवारत्वात्। युग्मानिति पित्रादि-पक्षेऽयुग्मस्थाने युग्मविधिविषयः* मन्यथा वैयर्थ्यात् दैवे युग्मस्य प्राप्तत्वात्।

तथाच शातातपः—

मातृश्राद्धन्तु पूर्व्वं स्यात् पितॄणान्तदनन्तरम्।
ततो मातामहादीनां वृद्धौ श्राद्धत्रयं स्मृतम्॥
विश्वयेतेषु युग्मांस्तु भोजयेद्ब्राह्मणान् शुचिः।
प्रदक्षिणन्तु सव्येन प्रदद्याद्दैवपूर्व्वकम्॥

उभयतस्त्वेति उभयत उभयदिशि पार्व्वणवत् दक्षिणे पितृ-ब्राह्मणान् पश्चिमे दैवब्राह्मणानुपवेश्य इत्यर्थः।

ननु—

मातृश्राद्धन्तु युग्मैः† स्यात् सदैवं प्राङ्मुखैः पृथक्।

इति हारीतवचनात् पितृनप्यत्र दैववदित्यतिदेशाच्च पश्चिमे सामगानामपि पितृब्राह्मणोपवेशनम्।

---

* ख पुस्तके—विधिरयम्। † ख पुस्तके—व्वर्मो।

अतएवाश्वलायनगृह्ये—

आभ्युदयिके युग्मा ब्राह्मणाः प्राङ्मुखेभ्य उदङ्मुखो दद्यात् उदङ्मुखेभ्यो वा प्राङ्मुखो दद्यात्। इति व्यवस्थितो विकल्प उक्तः।

तत्र च सामगेतरेषां प्राङ्मुखेभ्य उदङ्मुखो दद्यादिति।

सामगानान्तु उदङ्मुखेभ्यो वा प्राङ्मुख इति।

अतएव छन्दोगपरिशिष्टे—

संयोज्य यवकर्कन्धुदधिभिः प्राङ्मुखस्ततः।

इति पिण्डदाने प्राङ्मुखत्वं वक्ष्यते।

तथाच ब्रह्मपुराणे—

नान्दीमुखानां कर्त्तव्यं पितृकार्य्यार्थसिद्धये।
यवैश्च तथा कर्त्तुभिर्दर्भैः पूर्व्वामुखस्थितः॥

किन्तु दक्षिणदिश्येव पितृब्राह्मणवामे मातामहब्राह्मणोपवेशनं पार्व्वणादिपरीतमत्रेति। आभ्युदयिके प्रदक्षिणमुपचार इति गोभिलवचनात्।

केचित्तु—

उदङ्मुखेभ्यो वा प्राङ्मुख इति सामान्यतो विधानात् देवब्राह्मणस्यापि दक्षिणस्यामुदङ्मुखोपवेशनमाहुः। तन्मन्दम्।

पार्व्वणातिदेशप्राप्तं पित्रादिब्राह्मणानामुदङ्मुखत्वमनूद्य कर्त्तुः प्राङ्मुखत्वमात्रविधानेनैवोपपत्तेर्देवब्राह्मणस्योदङ्मुखत्वविधानगौरवात्।

पितृभ्य इति वक्ष्यमाणगोत्रनामाभलपनप्रकारेण पितृभ्यो दत्तेषु कुशेषु उपवेशेत्यर्थः*। न केवलं पितृपरिचरणे अपि तु अर्घ्यपात्रपूरणविक्षेपणाद्विकरणादिष्वपि दैवपरिपाटीत्याह नात्रापसव्येत्यादि पार्व्वणवत्राप्राचीनावीतिकरणेन पित्र्यं तीर्थं भियत इत्यनेनैव प्राप्तौ दैवेनैव इत्येवकारः सामगानां विष्णुपुराणोक्तप्राजापत्यतीर्थविकल्पव्यवच्छेदार्थः।

यथा—

दध्यक्षतैः सवदरैः प्राङ्मुखोदङ्मुखोऽपि वा।
दैवतीर्थेन वै पिण्डं दद्यात् कायेन वा पुनः॥

कायं प्राजापत्यम्। अतएव

नान्दीमुखानां कुर्व्वीत प्राज्ञः पिण्डोदकक्रियाम्।
प्राजापत्येन तीर्थेन यच्च किञ्चित् प्रजापतेः॥

इति मार्कण्डेयपुराणं न नियमपरं किन्तु कायतीर्थविधायकम्।

पारस्करः—

आभ्युदयिके प्रदक्षिणमुपचारः, पित्र्यमन्त्रवर्जं जपः, ऋजवो दर्भाः यवैस्तिलार्थः, सम्पन्नमिति तृप्तिप्रश्नो दधिवदराक्षतमिश्राः पिण्डा नान्दीमुखान् पितॄनावाहयिष्ये इति पृच्छति† [ नान्दीमुखाः पितरः प्रीयन्तामित्यक्षय्यस्थाने नान्दीमुखान् पितॄन् वाचयिष्ये ] वाच्यतामित्यनुज्ञातो नान्दीमुखाः पितरः पितामहाः

* ख पुस्तके—कुशेषूपविशेदित्यर्थः।
† क पुस्तके—[ ] चिह्नितांशः पतितः।

प्रपितामहा मातामहाः प्रमातामहा वृद्धप्रमातामहाश्च प्रीयन्तां न स्वधाञ्च प्रयुञ्जीत युग्मानाश्रयेत्।

आभ्युदयिकि अभ्युदयसाधने श्राद्धे एतेनाभ्युदयोऽस्य श्राद्धस्य फलमिति दर्शितं पित्र्यमन्त्रवर्ज्जमिति ब्राह्मणभोजनकाले पितृप्रकाशमन्त्रं स्वर्वं वा वर्ज्जयित्वा पुरुषसूक्त—त्रिसुपर्णादिकं जपेदित्यर्थः।

तथाच परिशिष्टे—

नचाश्रमु जपेदत्र कदाचित् पितृसंहिताम्।
अन्य एव जपः कार्य्यः सोमसामादिकः शुभः॥

ऋजवो दर्भा इति द्विगुणभुग्नकुशनिषेधः समूला दर्भा इत्याश्वलायनवचनादत्र समूला दर्भा ग्राह्याः। यवैस्तिलार्थ इति तिलकार्य्ये यवविधिः। दधिबदरेत्यादिना हविःश्राद्धे दध्यादीनां प्राशस्त्यमुक्तम्। नान्दीमुखानिति नान्दीमुखविशेषणवत्तया पित्रादीनामेव देवतात्वं दर्शितम्। नान्दीमुखाः पितर इति अक्षय्यस्थाने इत्यनेन पार्व्वणोक्ताक्षय्यदानवाक्यस्य नान्दीमुखे प्रकारान्तरविधिरयं न तु कर्म्मान्तरविधिः।

एकोद्दिष्टे उपतिष्ठतामित्यक्षय्यस्थाने इतिवचनाच्च पार्व्वणेऽमुकगोत्रस्य पितुरमुकशर्म्मणः सर्व्वं दत्तमिदमन्नपानादिकमक्षय्यमस्त्विति यथाक्रमं पितादिब्राह्मणहस्ते सतिलजलदानम्।

सर्व्वत्रास्त्विति ब्राह्मणवचनमिति गरुड़पुराणादक्षय्यदानस्य दत्तपानादीनामक्षय्यप्रार्थने सति तत्र प्राप्तानां षष्ठ्यन्तगोत्र-

नाम्नां प्रथमाबहुवचनान्तता तयाचय्यमस्त्विति स्थाने प्रीयन्ता-मिति विधीयते।

नान्दीमुखाः पितरः प्रीयन्तामित्यक्षय्यस्थाने नान्दीमुखान् पितॄन् वाचयिष्य इति पृच्छति तत्र प्रीयन्तामिति क्रियान्वयानुरोधात्तदोक्तत्वादमानादिकमित्यस्य तृतीयान्ततया परिणामः। अतएव पितृपदस्य सम्बन्धार्थकपदोपलक्षकत्वम्।

तेनामुकगोत्रा नान्दीमुखाः पितरोऽमुकशर्म्माणः सर्व्वेण दत्ते-नानेनान्नपानादिना प्रीयन्तामिति वाक्यं सम्भवम्। एवं पिता-मह-प्रपितामह-मात्रादित्रिक-मातामहादित्रिकाणामचय्ये बहु-वचनान्तपितामहादिपदप्रयोगः कार्य्यः।

अर्घेऽक्षय्योदके चैव पिण्डदानेऽवनेजने।
तन्त्रस्य विनिवृत्तिः स्यात् स्वधावाचन एव च॥

इति परिशिष्टेन तन्त्रतानिषेधादेकस्मिन् बहुवचनमदृष्टार्थ-मेव स्वधावाचनवत् न बहुवचनान्तत्वताविधिरत्रेति वाच्यम्। अन्यथा सिद्धस्य निषेधबाधकत्वात् पितृपदस्य षट्पुरुषिक-परतया मात्रादिपक्षेऽनिस्तारात्।

न च स्वधावाचनेऽपि गोत्रनामामुक्तीर्त्तनप्रसङ्ग इति वाच्यम्।

प्रकृतौ तयाऽनुक्तत्वादक्षय्ये तु प्रकृतौ तयोक्तत्वात्।

यथा पारस्करः—

अर्घादानेऽवनेकन्ये पिण्डदाने तथाक्षये।
गोत्रसम्बन्धनामानि यथावत् प्रतिपादयेत्॥

एतेन नान्दीमुखाः पितरः प्रीयन्तामित्येव सकृदेव वाच्यमित्यर्धुनिकानां मतमपास्तम्।

अक्षय्यदानात् पृथगेव कर्मान्तरविधिरयमिति श्रीदत्तमतमपि निरस्तम्। *[सामगानान्तु गोभिलेन विशेषानुक्तत्वात् पार्व्वणवत् षष्ठ्यन्तेनैवाक्षय्यदानम्।

एतदेव विहितं छन्दोगपरिशिष्टे—]

अक्षय्योदकदानन्तु अर्घ्यदानवदिष्यते।

षष्ठ्यैव नित्यं तत्कुर्य्यान्न चतुर्थ्या कदाचन॥

अर्घ्यदानवदिति सर्व्वेषां ब्राह्मणानां करोपरि पंक्तिज्येष्ठस्य करं कृत्वा यथार्घ्यं दीयते तथाक्षय्योदकमपि सर्व्वकरोपरि पंक्तिज्येष्ठकर एव देयम् न तु पार्व्वणवत् पृथक् पृथगिति।

तन्त्रतानिवृत्तिस्तु अर्घ्येऽक्षय्योदके चैति वचनादस्त्येवेति। षष्ठ्यैवेति गोत्रनामान्ते सम्बुद्धिस्थाने षष्ठीविधानम्। न चतुर्थ्येति चतुर्थ्यन्ततच्छब्दनिषेधः।

एतेनामुकशर्म्मन्नक्षय्यमिदं तुभ्यमस्तु इति वाक्यम् निरस्यामुकशर्म्मणः सर्व्वम् दत्तमिदमन्नपानादिकमक्षय्यमस्त्विति वाक्यम् दर्शितम्।

अतएव गोभिले शर्म्मणोऽक्षय्यकाले त्वित्युक्तम्। नित्यमिति न केवलं प्रकरणान्नान्दीमुखे पार्व्वणेऽपीत्यर्थः। अक्षय्यपदश्रुत्वेन स्वधाशब्दनिषेधः।

---

* ख पुस्तके—[ ] चिह्नितांशः पतितः।

नचामुकगोत्रस्य नान्दीमुखस्य पितुरमुकशर्म्मणो दत्तेनानेनान्न-पानादिना नान्दीमुखाः पितरः प्रीयन्तामिति सामगानां वाक्यं केषाञ्चिदादरणीयम्।

गोभिले परिशिष्टे च नान्दीमुखाः पितरः प्रीयन्तामित्यश्रुतत्वात्। नित्यमित्यनेन पार्व्वणवत् नान्दीमुखेऽप्युक्तत्वाच।

यत्तु—

अपामक्षयोदकस्थाने दद्यात् चीरयवोदकम्।

इति ब्रह्मपुराणं तत् फलातिशयार्थम् अक्षय्योदकदानन्त्विति परिशिष्टवचनात्।

स्वधावाचनवाक्यस्य पार्व्वणात् प्रकारान्तरमाह नान्दीमुखान् पितॄनिति अत्रापि बहुवचनमदृष्टार्थम्। अत्र चकारं कृत्वा प्रत्येकेन क्रियान्वयदर्शनात् स्वधावाचने तन्त्रतानिषेधाच पृथगेव प्रत्येकं वाक्यम् न तु सकृदेवेति श्रीदत्तमतमादरणीयम्।

एवञ्च मात्रादिपक्षे स्वधावाचनप्रकारापेक्षायां लाघवात् पित्रादिदृष्टमेव वाक्यम्। नान्दीमुख्यो मातरः प्रीयन्तामिति मन्तव्यम्। प्रतिवचनञ्च प्रीयन्तामिति सर्व्वत्रैव। सामगानान्तु नान्दीमुखेभ्यः प्रीयन्तामिति प्रथमास्थाने चतुर्थी वाचनिकी। यथा गोभिलः—

आभ्युदयिके युग्मानाशयेत् प्रदक्षिणमुपचारः। ऋजवो दर्भा यवैस्तिलार्थः। सम्पन्नमिति तृप्तिप्रश्नो दधिवदराक्षतमिश्राः पिण्डा नान्दीमुखाः पितरः प्रीयन्तामिति दैवे वाचयिता नान्दीमुखेभ्यः पितृभ्यः पितामहेभ्यः प्रपितामहेभ्यो

मातामहेभ्यः प्रमातामहेभ्यो वृद्धप्रमातामहेभ्यश्च प्रीयन्तामिति न स्वधां प्रयुञ्जीत।

अत्र नान्दीमुखाः पितरः प्रीयन्तामिति द्वैवे वाचयित्वा इति दैवब्राह्मणे पितृप्रीतिवाचनं पार्व्वणादधिकं सामगानामेवेति। स्वधावाचनप्रश्नस्तु गोभिलेन नोक्तः नान्दीमुखान् पितॄन् वाचयिष्ये इति वाच्यतामित्यनुज्ञात इति पारस्करोक्त एव ग्राह्यः परोक्तमविरोधि चेति वचनात्।

पारस्करे गोभिले च स्वधावाचने प्रकारसूक्तार न स्वधां प्रयुञ्जीतेत्यनेन मन्त्रे वाक्ये च स्वधाशब्दो निषिध्यते किन्तु सर्व्वत्र मन्त्रे स्वधास्थाने पुष्टिपदप्रयोगः कार्य्यः। आश्वलायनवृद्धतिलोसीति मन्त्रे यवपदोहं कृत्वा स्वधास्थाने पुष्टिपदनिक्षेपात्। यथा तत्र—

यवोदेवैरित्यभिमन्त्रितान् समयवाभावपति।

यवोऽसि सोमदेवत्यो गोसवो देवनिर्म्मितः प्रत्नमद्भिः पृक्तः पुष्ट्या नान्दीमुखान् पितॄन् लोकान् प्रीणाहि नः स्वाहा।

इति।

अतएव मन्त्रेऽपि सर्व्वत्र पितृपदे नान्दीमुखविशेषणं देयम्।

एवञ्च मन्त्रे पुष्टिपददर्शनाद्वाक्येऽपि स्वधास्थाने पुष्टिपदं केचिदाहुः तन्मन्दं तस्य त्यागवाचकत्वाभावात्। तद्योगे चतुर्थ्यनुपपत्तेश्च किन्तु स्वधास्थाने नमःप्रयोग एव कार्य्यः—

सदा परिचरेद्भक्त्या पितॄनप्यत्र देववत्।

देवानां नमसा देयं पितॄणाञ्च स्वधेति च॥

इत्यतिदेशात्।

देवलादिवचनात् देवदाने नमःपदं प्रागेव निर्णीतं तत्र च स्वाहापदं श्रीदत्तेन हविर्यागे लिखितं प्रमादकृतमेव।

छन्दोगपरिशिष्टम्—

ज्येष्ठोत्तरकरान् युग्मान् कराग्रायपवित्रकान्।
कृत्वार्घ्यं सम्प्रदातव्यं नैकैकस्यात्र दीयते॥
मधु मध्विति यस्तत्र त्रिर्जपोऽशितुमिच्छताम्।
गायत्र्यनन्तरं सोऽत्र मधुमन्त्रविवर्जितः॥
न चाश्नत्सु जपेत् किञ्चित् कदाचित् पितृसंहिताम्।
अन्य एव जपः कार्यः सोमसामादिकः शुभः॥
यस्तत्र प्रकरोऽन्नस्य तिलवद्यववत्तथा।
उच्छिष्टसन्निधौ सोऽत्र तृप्तेषु विपरीतकः॥
सम्पन्नमिति तृप्ताः स्थ-प्रश्नस्थाने विधीयते।
सुसम्पन्नमिति प्रोक्ते शेषमन्नं निवेदयेत्॥
प्रागग्रेषु च दर्भेषु आद्यमामन्त्र्य पूर्ववत्।
अपः क्षिपेन्मूलदेशेऽवनेनिक्ष्वेति निक्षिताः॥
द्वितीयञ्च तृतीयञ्च मध्यदेशाग्रदेशयोः।
मातामहप्रभृतींस्तु एतेषामेव वा मतः॥
सर्वस्मादन्नमुद्धृत्य व्यञ्जनैरुपसिच्य च।
संयोज्य यवकर्कन्धुदधिभिः प्राङ्मुखस्ततः॥
अवनेजनवत्पिण्डान् कृत्वा बिल्वप्रमाणकान्।
तत्पात्रक्षालनेनाथ पुनरप्यवनेजयेत्॥

उत्तरोत्तरदानेन पिण्डानामुत्तरोत्तरः।
भवेदधश्चाचरणादधोऽधः* श्राद्धकर्म्मसु॥
तस्माच्छ्राद्धेषु सर्व्वेषु हृद्धिमत्स्वितरेषु च।
मूलमध्याग्रदेशेषु ईषत्सक्तांश्च निर्व्वपेत्॥
गन्धादीन्निक्षिपेत्तूर्णीं ततः आचामयेद्द्विजान्।
अन्यत्राप्येष एव स्याद् यवादिरहितो विधिः॥
दक्षिणाप्रवणे देशे दक्षिणाभिमुखेन तु।
दक्षिणाग्रेषु दर्भेषु एषोऽन्यत्र कृतो विधिः॥
अथाग्रभूमिमासिञ्चेत् सुसम्प्रोक्षितमस्त्विति।
शिवा आपः सन्त्विति च युग्मानेवोदकेन तु॥
सौमनस्यमस्त्विति च पुष्पदानमनन्तरम्।
अक्षतञ्चारिष्टञ्चास्त्वित्यक्षतान् प्रतिपादयेत्॥
अक्षय्योदकदानन्तु अर्घ्यदानवदिष्यते।
षष्ठ्यैव नित्यं तत्कुर्य्यान्न चतुर्थ्यां कदाचन॥
प्रार्थनासु प्रतिप्रोक्ते सर्व्वास्वेव द्विजोत्तमैः।
पवित्रान्तर्हितान् पिण्डान् सिञ्चेदुत्तानपात्रकृत्॥
युग्मानेव स्वस्ति वाच्यानङ्गुष्ठग्रहणं सदा।
कृत्वा धुर्य्यस्य विप्रस्य प्रणम्यानुव्रजेत्ततः॥

एषामर्थः—

ज्येष्ठस्य प्रथमोपवेशितस्य करं उत्तरः प्रधानः करेषु येषां ते तथा सर्व्वेषां करोपरि ज्येष्ठस्य करं स्तवेत्यर्थः। करादे पवि-

---

* अधुसाके—अधरः।

घार्घ्यं येषां ते तथा दैवस्थान् विप्रान् कृत्वा अर्घ्यं देयं हेतुमाह यतः पार्व्वणवदेकैकस्य नात्र दीयत इति।

अत्र सर्व्वकरोपरिस्थिते पंक्तिश्रेष्ठकर एव पवित्रार्घ्यदानं पार्व्वणादधिकं विधीयते करात्रे पवित्राधरणन्तु पार्व्वणेऽपीति नैकैकस्येत्युपसंहारात् पार्व्वणे विशेषानभिधानादिह दृष्टस्यैव न्याय्यत्वाच्च अन्यथाप्येष एव स्यादिति वक्ष्यमाणवचनात्।

अत्र च मातृपक्षे न्युब्जीकरणं न कार्य्यं सर्व्वत्र पितृपात्रस्यैव न्युब्जीकरणाभिधानात्।

यथा मात्स्ये—

पितृपात्रे निधायाथ न्युब्जमुत्तरतो न्यसेत्।

याज्ञवल्क्यः—

यस्मिंस्ते संस्रवाः पूर्व्वमर्घ्यपात्रे निवेशिताः।
पितृपात्रं तदुत्तानं कृत्वा विप्रान् विसर्ज्जयेत्॥

शौनकः—

आहतास्तत्र तिष्ठन्ति पितरः शौनकोऽब्रवीत्।

किञ्च पितृभ्यः स्थानमसीति मन्त्रादपि पत्नी पितॄणामेव न्युब्जीकरणं पार्व्वणश्राद्धत्वोपाधिना पट्पुरुषपक्षेव पितृपद-प्रयोगात् ततश्च पितृमातामहादिद्विजानां वामपार्श्वे न्युब्जीकरण-मिति प्रागुक्तम्।

मधु मधिति। मध्वगितुमिच्छतां ब्राह्मणानां याच्यत्वेन मन्त्रश्री मधिति यच्छ्रपो गायत्रीपाठानन्तरं मधुवातेति मन्त्र-

सहितः पार्व्वणे क्रियते सोऽत्र मध्विति त्रिर्जपो मधुवातेति मधुदानमन्त्रवर्ज्जितः कार्य्यः। एवञ्च भोजनकाले मधुमन्त्रः पठनीय एव तत्रापि निषेधात्। मधुमन्त्रनिषेधाच्च मधुनो निवृत्तिर्नास्तीत्यवगम्यते।

अन्यथा प्रधाननिवृत्तौ गुणनिवृत्तेरप्यार्थसिद्धत्वान्निषेधविधेरसम्भवात्। न च गुणनिवृत्त्या प्रधाननिवृत्तिरिति वाच्यम्। गुणलोपेन मुख्यस्येति न्यायविरोधात् मध्विति त्रिर्जपाद्यनुष्ठानञ्च न स्यात् मध्वशितुमिच्छतामित्यनुवादाच्च।

अन्येतु—मधु मधु मध्विति मन्त्रस्य मधुमध्विति एकदेशकीर्त्तनमात्रं अन्यथा षड्जपप्रसङ्गात्। न च तथा। पार्व्वणे गायत्रीं मधुवातेति तृचं मध्विति त्रिकञ्च जपित्वेति गरुड़पुराणादौ त्रिर्जपविधानादित्याहुः।

पितृसंहितामित्युपलक्षणं पितृप्रकाशकस्तवादिकमपीति यत्नेनेति योऽन्नस्य प्रकरोऽन्नविकरणं पार्व्वणे वच्छिष्टसन्निधौ तृप्तेषु भुक्तवत्सु ब्राह्मणेषु तृप्तिप्रश्नानन्तरं तिलयुक्तं यथा स्यात्तथा क्रियते। अत्र नान्दीमुखे स विकिरो यवयुक्तं यथा स्यात्तथा विपरीतः अतृप्तेषु भुञ्जानेषु विप्रेषु तृप्तिप्रश्नात् प्राक् कार्य्य इत्यर्थः। एतच्च सामगमात्रपरं यजुर्वेदिनां पार्व्वणेऽपि तृप्तिप्रश्नात् प्रागेवान्नविकरणम्।

न च पार्व्वणे पितृधर्म्मेण नान्दीमुखे दैवधर्म्मेणेति वैपरीत्यं कल्पतरूक्तं दर्शितमित्यस्य वैयर्थ्यात्।

नावापसव्यकरणं न पित्र्यं तीर्थमिष्यते।
पात्राणां पूरणादीनि दैवेनैव हि कारयेत्॥

इति पूर्व्ववचने सर्व्वत्रैव दैवधर्म्मप्राप्तेः पृथगुक्तिर्वैकल्याच्च।

हरिप्रश्नोऽत्र कीदृश इत्याह सम्पन्नमिति पितृपक्ष एवायं प्रश्नो न तु दैवे "क्षमाः स्थ स्थाने" इत्यभिधानात्, दैवे तु रुचितमेवेति। प्रागग्रेष्विति प्रागग्रत्वञ्च छन्दोगविषयम्।

यजुर्वेदिनान्तु उदङ्मुखानामध्वर्य्यूणामुत्तरोत्तरक्रमेणोत्तराग्रदर्भेषु पिण्डदानस्यौचित्यात्, अर्घ्येष्वपि तथा दृष्टत्वाच्च। आद्यमिति आद्यं पुरुषं पूर्व्ववत् गोत्रनामभिरामन्त्र्येत्यर्थः। निस्तिलाः किन्तु सयवा अपो दर्भमूले क्षिपेत् यवैस्तिलार्थ इति वचनात्।

यत्तु—

प्राङ्मुखेष्वथ दर्भेषु दद्यात् क्षीरावनेजनम्।

इति ब्रह्मपुराणम् तत् फलातिशयार्थं प्रागग्रत्वं निस्तिलत्वञ्च पार्व्वणादिविषयः। द्वितीयं तृतीयं पुरुषमामन्त्र्य दर्भस्य मध्याग्रदेशयोरपः क्षिपेदित्यन्वयः। एवं पिण्डस्थाने आद्यापितानां पित्रादित्रयाणां प्रत्यङ्मुखानां वामे कर्त्तुर्दक्षिणे यथा दक्षिणोपचारो भवति मातामहादीनामप्यत्र दर्भेष्वपः क्षिपेदिति सम्बन्धः।

एवमध्वर्य्यूणामप्युत्तराग्रमूलमध्याग्रेष्ववनेज्य प्रथमं मात्रादीनां पिण्डान् दत्त्वा तत्पूर्व्वदिशि कर्त्तुर्दक्षिणे पित्रादीनां तत्पूर्व्वदिशि मातामहादीनां प्रदक्षिणोपचारेण पिण्डा देयाः। एवमध्वर्युसामगयोर्यथायथमर्घ्यपात्रस्थापनपरिपाटी मन्तव्या।

सर्व्वस्मात् प्रकृतादन्नादित्यर्थः, यवादिसंयोजनं फलातिशयार्थम्। अवनेजनवत् अवनेजनक्रमेण पिण्डान् दत्त्वा पुनरवनेजयेदित्यन्वयः।

उत्तरोत्तरदानेन दर्भमूलादिक्रमेण उपर्य्युपरिदानेन दाताप्यूर्द्ध्वगतिर्भवतीति श्रुतिः। विपरीतदानेनाधोगतिर्भवतीति निम्हा तूष्णीमिति गन्धादिदानवाक्यनिषेधः। अन्यत्र पार्व्वणादौ यथ-दैवतीर्थोपवीतदक्षिणोपचारशून्यो विधिरित्यर्थः।

अग्रभूमिं ब्राह्मणस्येति शेषः प्रकृतत्वात्तस्य न तु पिण्डाग्रभूमिमिति व्याख्यानं युक्तं एषोऽन्यत्र स्मृतो विधिरित्यनेन पिण्डकृत्यं समाप्य अथेत्यनेन कर्म्मान्तरविधानात्। शिवा इति युग्मान् विप्रानेकैकमुदकेन हस्ते आसिञ्चेदिति पूर्व्वेणान्वयः। अक्षय्योदकदानमिति प्रागेव व्याख्यातम्।

प्रार्थनास्विति-सुप्रोक्षितमस्त्वित्यादिषु प्रतिमोति अस्तु सन्त्वित्यादिप्रतिवचने कृते अर्घ्यसम्बन्धिपवित्राच्छादितान् पिण्डान् कृत्वा ऊर्ज्जं वहन्तीरित्यनेन सिञ्चेत्। पवित्रान्तर्हितानित्यनेन स्वधावाचनं सूचितं तच्च पार्व्वणे प्रागुक्तम्।

नान्दीमुखे तु सामगानां गोभिलोक्तोऽध्वर्य्यूणाञ्च पारस्करोक्तो विशेषः प्रागेव विवृतोऽस्ति। अनन्तरमुक्तामपायतत् स्यादित्यर्थः।

युग्मानिति सर्व्वान् युग्मद्विजान् दक्षिणाभिः स्वस्ति वाच्य पूर्व्वस्य पंक्तिमूर्द्धन्यस्य अङ्गुष्ठपर्व्वमितपादेर्च्चनं अंदा पार्श्वे नान्दीमुखे च कृत्वा प्रणम्यानुगच्छेत्।

दक्षिणा च ब्रह्मपुराणे उक्ता—

यात्यन्नं दधिमध्वन्नं बदराणि यवास्तथा।
मिश्रीकृत्य तु चत्वारि पिण्डान् श्रीफलसम्मितान्॥
दद्यान्नान्दीमुखेभ्यश्च पितृभ्यो दधिपूर्व्वकम्।
अर्घ्यं पुष्पञ्च धूपञ्च मद्यस्तमनुलेपनम्॥
वासश्चाप्याहतं वस्त्रं देयञ्च सदृशं समम्॥
द्राक्षामलकमूलानि यवांश्चाथ निवेदयेत्।
तान्येव दक्षिणार्थन्तु दद्याद्विप्रेषु सर्व्वदा॥

मध्वन्नं मधुमिश्रं दधीति मिलितमेकं तेन चत्वारीति, वासो वासःसूत्रमित्यर्थः। आहतवस्त्रदानन्तु फलातिशयार्थम्।

सममिति प्रतिपिण्डेषु तुल्यमेव वस्त्रं देयं, नतु विषमं कार्य्यं, मूलमार्द्रकादि निवेदयेच्छ्राद्धे इत्यर्थः।

तान्येवेत्यनेन द्राक्षामलकमूलानां ग्रहणम् न तु यवस्य पृथग्विभक्तिनिर्देशात् तानीति नपुंसकलिङ्गाच्च।

अत्र द्राक्षादीनां द्वन्द्वसमासात् समुदितानामेव दक्षिणात्वं नत्वेकैकस्य इति। एवकारो रजतादिदक्षिणान्तरव्यावृत्त्यर्थः। द्राक्षादिदक्षिणा तु पितृपक्ष एव पूर्व्ववचनान्नान्दीमुखेभ्यः पितृभ्य इत्यनुपदात्, देवे तु काञ्चनदक्षिणा स्थितैवेति।

विप्रेषु सर्व्वदेति यदुक्तं तद्बोधयति द्विजाभावे श्राद्धियद्रव्यस्य जलादिप्रक्षेपपक्षेऽपि ब्राह्मणायैव दक्षिणा न तु जलादौ प्रक्षेप्येति।

गृह्योक्तत्वात् सर्व्वत्र प्राप्तौ कर्म्मविशेषे श्राद्धनिषेधमाह—
छन्दोगपरिशिष्टम्—

असकृद् यानि कर्म्माणि क्रियेरन् कर्म्मकारिणा।
प्रतिप्रयोगं नैव स्युर्मातरः श्राद्धमेव च॥

प्रतिदिनं प्रतिमासं प्रतिवत्सरञ्च यानि वैश्वदेवबलिकर्म्मादीनि गर्भाधानदर्शपौर्णमासादीनि श्रावण्याग्रहायण्यादीनि च कर्म्माणि क्रियन्ते तेषु प्रथमप्रयोग एव श्राद्धं मातृपूजा चकारात् *वसुधारादानञ्च नतु द्वितीयादिप्रयोगेषु।

अग्न्याधानादिनवयज्ञान्तेष्वष्टकर्म्मसु† प्रथमप्रयोगेऽपि आधान एवैकं श्राद्धं नतु पृथक्, किन्तु तत्रैव कृते सर्व्वत्रैव कृतं भवेदित्याह।

आधानहोमयोश्चैव वैश्वदेवे तथैव च।
बलिकर्म्मणि दर्शे च पौर्णमासे तथैव च॥
नवयज्ञेषु यज्ञज्ञा वदन्त्येवं मनीषिणः।
एकमेव भवेच्छ्राद्धमेतेषु न पृथक् पृथक्॥

होमयोः सायंप्रातर्होमयोः नवयज्ञो नवशस्येष्टिः, निरग्निना वैश्वदेवे कृते श्राद्धे बलिकर्म्मणि न कर्त्तव्यं तुल्यन्यायात्।

तथा—

नाष्टकासु भवेच्छ्राद्धम् न श्राद्धे श्राद्धमिष्यते।
न शोष्यन्ती-जातकर्म्म-प्रोषितागतकर्म्मसु॥

---

* ख पुस्तके — वसुधारा—।
† ख पुस्तके — चरुकर्म्मसु।

न्नाभि र्ऋग्भिर्दंशानां ग्रन्थीन् बध्नीतेति गोभिले दशाग्न्यिकार्य-कर्म्मोक्तम्। तथा मा भैषीर्मा मरिष्यसीति विषवता दष्टमद्भि-रभ्युक्षन् जपेदिति विषवद्दष्टकर्म्मोक्तम्। तथा हतस्तेऽत्रिणा क्रिमिरिति क्रिमिमन्तं देशमद्भिरभ्युक्षन् जपेदिति क्रिमिदष्ट-चिकित्सोक्ता।

तस्मिन् कर्म्मत्रये श्राद्धं नास्ति तथा एतदन्तरोक्तेषु शेषेषु अर्ह-णीयागमनहलिगादीनां पाद्यार्घ्यविष्टरमधुपर्कादिष्वपि नास्तीति।

तथा—

गणशः क्रियमाणेषु मातृभ्यः पूजनं सकृत्।
सकृदेव भवेच्छ्राद्धमादौ न पृथगादिषु॥
यत्र यत्र भवेच्छ्राद्धं तत्र तत्र च मातरः।

एकस्मिन्नहनि वास्तुगमन-गोयज्ञ-हलाभियोग-चैत्यारामप्रति-ष्ठादिषु समुदायेन क्रियमाणेषु मातृपूजनं श्राद्धञ्च तन्त्रेण गणादौ एकमेव भवेत् न तु कर्म्मसंख्यानुसारेण पृथक् पृथगिति।

मातृभ्य इति तादर्थ्ये चतुर्थी। एवञ्च सामान्यतो विधानादेक-स्मिन् दिनेऽनेकपुत्रसंस्कारेष्वपि सकृदेव श्राद्धं गणत्वाविशेषात्।

यद्यप्यङ्गानामेक* [प्रकरणमात्रत्वेन साङ्गत्वात् कर्म्माङ्गाच्चप्रमा-दिषदसतेऽपि प्रधाने] एकप्रयोगविध्युपसंहारे सत्येव तन्त्रत्वं तथाप्यत्र वचनादिति श्राद्धचिन्तामणिः।

* ख पुस्तके—[चिह्नितांशः पतितः।

वस्तुतस्तु अनेकानुष्ठानजन्यानेकफलोद्देशेन सकृदेवानुष्ठानं हि तन्त्रता नावैकप्रयोगविध्युपसंग्रहः कारणम्। किन्तर्हि।

समानाङ्गदेशकालकर्तृकत्वे सत्यगृह्यमाणविशेषतया लाघवमेव तथाङ्गेष्विव प्रधानेष्वप्यस्तीति किमिति तन्त्रानुष्ठानेन भवितव्यम्।

यत्र यत्रेति मातृपूजनमुपलक्षणं वसुधारादानमपि तेयं पूर्वन्तु कर्मादिषु च सर्व्वेष्वित्यनेन वैदिककर्मादौ मातृपूजनं विहितम्।

अत्र तु वैदिकेतरस्थले गृहप्रवेशे पुत्रमुखदर्शने पुत्रजन्मनि च श्रावसाहचर्य्यान्मातृपूजादिकं विधीयते।

अष्टकायागादौ च यत्र यत्र श्राद्धं निषिद्धं तत्र मातृपूजनञ्च निषिध्यते इति।

अत्र च यस्मिन् दिने प्रधानकर्म्मारम्भस्तस्मिन्नेव दिने मातृपूजावृद्धिश्राद्धादिकं न तु प्रतिष्ठायज्ञादीनामधिवासदिने।

नानिष्ट्वा तु पितॄन् श्राद्धैः कर्म्म वैदिकमारभेत्।

इति वचनेन प्रधानकर्म्मारम्भादव्यवहितप्राग्विधानात्। विशेषविधानं विना अङ्गानां प्रधानदेशकालकर्तॄव्यत्वनियमाच।

यत्राधिवासदिनेऽधिवासरूपाङ्गाधिकारार्थं तदीयोऽभूतकाम्यप्रधानाधिकारसम्पादकः प्रधानाभिलापः कार्य्यः प्रधानाधिकारिणोऽङ्गेऽधिकारात् इति मैथिलद्वैतनिर्णये लिखितं तदप्ययुक्तम्।

अङ्गं हि द्विविधं भवति उपकारकमुपजीवकञ्च परस्परोपकारकमुपरञ्जकं आरादुपकारकन्तु उपनायकं तत्र पूर्व्वदिने

न्तामि कृमिर्दशानां यन्त्रीन् बध्नीतेति गोभिले दशाग्न्यिकाख्यं, कर्म्मोक्तम्। तथा मा मेधीर्मा मरिष्यसीति विषवता दष्टमद्भिरभ्युक्षन् जपेदिति विषवद्दष्टकर्म्मोक्तम्। तथा हतस्तेऽत्रिणा क्रिमिरिति क्रिमिमन्तं देशमद्भिरभ्युक्षन् जपेदिति क्रिमिदष्टचिकित्सोक्ता।

तस्मिन् कर्म्मत्रये श्राद्धं नास्ति तथा एतदन्तरोक्तेषु ग्रन्थेषु अर्हणीयानामृत्विगादीनां पाद्यार्घ्यविष्टरमधुपर्कादिष्वपि नास्तीति।

तथा—

गणशः क्रियमाणेषु मातृभ्यः पूजनं सकृत्।
सकृदेव भवेच्छ्राद्धमादौ न पृथगादिषु॥
यत्र यत्र भवेच्छ्राद्धं तत्र तत्र च मातरः।

एकस्मिन्नहनि वास्तुगमन-गोयज्ञ-हलाभियोग-सेखारामप्रतिष्ठादिषु समुदायेन क्रियमाणेषु मातृपूजनं श्राद्धञ्च तन्त्रेण गणादौ एकमेव भवेत् न तु कर्म्मसंख्यानुसारेण पृथक् पृथगिति।

मातृभ्य इति तादर्थ्ये चतुर्थी। एवञ्च सामान्यतो विधानादेकस्मिन् दिनेऽनेकपुत्रसंस्कारेष्वपि सकृदेव श्राद्धं गणत्वाविशेषात्।

यद्यप्यङ्गानामिक* [प्रकरणमात्रलेन वाह्यत्वात् कर्म्माङ्गाचमनादिवदङ्गत्वेऽपि प्रधाने] एकप्रयोगविध्युपसंहारे सत्येव तन्त्रत्वं तथाप्यत्र वचनादिति श्राद्धचिन्तामणिः।

---

* क पुस्तके—चिह्नितांशः पतितः।

वस्तुतस्तु अनेकानुष्ठानजन्यानेकफलोद्देशेन सकृदेवानुष्ठानं हि तन्त्रता नानेकप्रयोगविध्युपसंहारः कारणम्। किन्तर्हि।

समानाङ्गदेशकालकर्त्तृकत्वे सत्यदृष्टक्रमाणविशेषतया लाघवमेव तथाङ्गेष्विव प्रधानेष्वप्यस्तीति किमिति तन्त्रानुष्ठानेन भवितव्यम्।

यत्र यत्रेति मातृपूजनमुपलक्षणं वसुधारादानमपि सेयं पूर्त्तेनु कर्म्मादिषु च सर्व्वेष्वित्यनेन वैदिककर्म्मादौ मातृपूजनं विहितम्।

अत्र तु वैदिकेतरस्थले गृहप्रवेशे पुत्रमुखदर्शने पुत्रजन्मनि च श्राद्धसाहचर्य्यान्मातृपूजादिकं विधीयते।

अष्टकायागादौ च यत्र यत्र श्राद्धं निषिद्धं तत्र मातृपूजनञ्च निषिध्यते इति।

अत्र च यस्मिन् दिने प्रधानकर्म्मारम्भस्तस्मिन्नेव दिने मातृपूजावृद्धिश्राद्धादिकं न तु प्रतिष्ठायज्ञादीनामधिवासदिने।

नान्दिश्चा तु पितॄन् श्राद्धैः कर्म्म वैदिकमारभेत्।

इति वचनेन प्रधानकर्म्मारम्भादव्यवहितसन्निधानात्। विशेषविधानं विना अङ्गानां प्रधानदेशकालकर्त्तृत्वनियमाच।

यथाधिवासदिनेऽधिवासरूपाङ्गाधिकारार्थं सर्व्वाङ्गीभूतकाम्य-प्रधानाधिकारसम्पादकः प्रधानाभिलाषः कार्य्यः प्रधानाधिकारिणोऽङ्गेऽधिकारात् इति मैथिलद्वैतनिर्णये लिखितं तदप्ययुक्तम्।

अङ्गं हि द्विविधं भवति उपकारकमुपनायकञ्च परस्परोप-कारकमुपकारकं श्रारादुपकारकन्तु उपनायकं तत्र पूर्व्वदिने

देवतावाहनरूपस्याधिवासस्योपरञ्जकाङ्गस्याङ्गान्तरोपकरणमात्र-त्वेन वाद्यत्वात् कर्म्माङ्गाचमनादिवदकृतेऽपि प्रधानाभिलापे तदनु-ष्ठाने विरोधाभावात्। न वाऽभिलापोऽधिकारसम्पादको नित्यकर्म्मणि तदभावेऽप्यधिकारात्।

किन्तु मनसा सङ्कल्पयति वाचाभिलपति कर्म्मणा प्रतिपादय-तीति हारीतवचनम्।

मनसा निश्चयं कृत्वा ततो वाचाऽभिधीयते।
क्रियते कर्म्मणा पश्चात् प्रमाणं मे मनस्ततः॥

इति वनपर्व्ववचनञ्च निमित्तनिश्चयादिकरणकेनामुककाम-नया मयेदं कर्त्तव्यमिति निश्चयरूपेण मनःसंकल्पेनैव सम्पादि-तस्याधिकारस्यानन्तरं काम्यप्रधानाभिलापस्याङ्गविशेषरूपतया कर्त्तव्यत्वनियमं बोधयति।

अतएव स्नानैकभक्तादौ निमित्तनिश्चयाभावेनैव मनःसंकल्पा-निश्चयाद्धिकारविरहात् पूर्व्वदिनेऽधिवास उक्तः।

एवञ्च वाचाऽभिलपति कर्म्मणा प्रतिपादयतीति वचनेन प्रधानाभिलापानन्तरमेवाहत्योपकारकस्य प्रधानाङ्गस्यैवानुष्ठान-नियमविधानादन्यथा कर्म्माङ्गाचमनाभ्युदयिकश्राद्धादीनामपि तत्परतः प्रसङ्गात् प्रधानाङ्गानुष्ठानदिन एव प्रधानाभिलापः।

*[ततश्च यथा श्राद्धपूर्व्वदिने कृतेऽपि प्रधानाभिलापे ब्राह्मणानुमतिरूपस्य निमन्त्रणस्योपरञ्जकाङ्गस्यानुष्ठानम्।

यथा च शारदीयदुर्गापूजायां सप्तमीकर्त्तव्यप्रधानाभिलापस्य।]

---

* क पुस्तके—[ ] चिह्नितांशः पतितः।

पूर्वं बोधन-पत्रीस्थापनादीनामुपरञ्जकाङ्गानामनुष्ठानं तथाधिवासस्यापीति ।

अन्यथा एष्वपि स्थानेषु निमन्त्रणाद्युपरञ्जकाङ्गानां पूर्वं प्रधानाभिलापप्रसङ्गः स्यादिति ।

न चाधिवासस्य पृथक् संकल्पः कृत इति वाच्यम् ।

अयोगे क्षेत्रहरणसंकल्पे व्रतक्रिया ।

अमहाचर्य्यं चर्य्यां च चर्यं स्यात् कुम्भसन्निभम् ॥

इति हरिवंशे संकल्पं विना कर्म्मनिषेधात् । अन्यथा मातृपूजा-वसुधारादान-वृद्धिश्राद्धानां शारदीयदुर्गापूजायां बोधनादीनाञ्च अयं पृथक् सङ्कल्प इति । विस्तारस्तु दानकौमुद्यां द्रष्टव्यः ।

---

## अथ प्रयोगः ।

अभ्युदयदिने कृतप्रातःस्नानसन्ध्यादिकोऽभीष्टदेवतामभ्यर्च्य कृतकर्म्माङ्गाचमनो ब्राह्मणान् स्वस्ति वाचयित्वा—

ॐ अद्येत्यादि अमुककर्म्मणोऽभ्युदयार्थं गणेशमातृपूजा-कर्म्माहं करिष्ये इति संकल्प्य प्रथमं घटे गणेशमावाह्य पाद्या-दिभिरुपचारैरभ्यर्च्य रक्तस्फटिकादिनिर्मितासु पटादौ वा शुक्ल-वर्णेन लिखितासु पृथक् अश्वत्थपत्रेषु गौर्य्यादिमातॄः पृथक् पृथक् तत्तन्मन्त्रैः आवाहनादिभिरावाह्य पृथक् पृथक् पाद्यादिभिर्गन्धादि-नैवेद्यान्तैरर्चयेत् ।

मातरो यथा—

गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया।
देवसेना स्वधा स्वाहा मातरो लोकमातरः॥
शान्तिः पुष्टिर्धृतिस्तुष्टिरात्मदेवतया सह।
आदौ विनायकः पूज्यो अन्ते च कुलदेवता॥

ततः पूर्व्ववत् संकल्प्य गृहभित्तिलग्नां पञ्चवारान् अभ्युदयाधिक्यकामः सप्तवारान् वा नातिनीचां नवोच्छ्रितां वसोर्धारामुपविष्टः प्राङ्मुखो वसोः पवित्रमसि इति मन्त्रेण घृतेन दद्यात्।

मन्त्रो यथा—

ॐ वसोः पवित्रमसि शतधारं
वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम्।
देवस्त्वा सविता पुनातु
वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वाः कामधुक्षः॥

तत आधाराद् वसुं सम्पूज्य आयुष्यमन्त्रं जपेत्—

ॐ आयुष्यं वर्च्चस्यं रायस्पोषमौद्भिदम्।
इदं हिरण्यं वर्च्चस्वं जैत्रायाविशतादु माम्।
न तद्रक्षांसि न पिशाचाः स्तरन्ति
देवानामोजः प्रथमं ह्येतत्।
यो बिभर्त्ति दाक्षायणं हिरण्यं
स देवेषु कृणुते दीर्घायुः
स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः।

अथवा—

ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्तात् शुक्रमुच्चरत् ।

पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतम् ।*

इत्यादि शुभमस्मान् अयमग्नी स्वस्ति न इन्द्रो इत्यथवा इत्यादि वा जपेत् । अयञ्च मातृपूजादिप्रयोगः सर्व्वशाखिसाधारणः श्राद्धप्रयोगस्तु विभिद्य लिख्यते ।

---

## अथाध्वर्य्यूणां प्रयोगः ।

प्रातःस्नातान् ब्राह्मणान् दण्डद्वयोपर्य्याहूय स्वागतं दत्त्वा पाद्यार्घ्याचमनीयानि दत्त्वा पूर्व्ववत् संकल्प्य निमन्त्र्य च प्रश्नाद्यभिप्रायेण सिद्धमित्यभिधाय यवोदकप्रोक्षितेषु प्रागग्रदर्भद्वय-युक्तेष्वासनेषु अत्रासध्वमिति प्राङ्मुखान् युग्मब्राह्मणान् प्रतीच्यामुपवेशयेत् ।

तत्रायं क्रमः—

आदौ देवब्राह्मणौ तदुत्तरे मातृब्राह्मणौ तदुत्तरे पितृब्राह्मणौ तदुत्तरे मातामहब्राह्मणाविति । कुशब्राह्मणे निमन्त्र्यवाधः । प्रत्यासनसमीपे घृतेन तिलतैलेन वा श्राद्धसमाप्तिस्थायिनो दीपान् दद्यात् ।

ततः शालग्रामादौ यज्ञेश्वरमभ्यर्च्य यज्ञेश्वरो हव्येत्यादि

---

* ख पुस्तके—शृणुयाम शरदः शतमित्यधिकोऽस्ति ।

* क पुस्तके—तैलेन वा इति पाठः ।

मन्त्रञ्च पठित्वा—ॐ अपहतेति द्वारदेशे गृहान्तरे च सर्व्वतो यवान् विकीर्य्य श्रीविष्णुः श्रीपुण्डरीकाक्षः श्रीहरिरिति स्मृत्वा रक्षार्थं जलं प्रतिद्विजसमीपे स्थापयेत्।

ततो गायत्रीजपमहं करिष्ये इति द्विजान् पृष्ट्वा कुरुष्वेति तैरनुज्ञातः प्रणवव्याहृतिसहितां गायत्रीं जपित्वा—

ॐ देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च।
नमः पुष्ट्यै स्वाहायै नित्यमेव नमो नमः॥

इति त्रिर्जपेत्।

अत्र सर्व्वं कर्म्मोपवीतिना पातितदक्षिणजानुनोदङ्मुखेन सयवोदकेन ऋजुकुशत्रयेण देवतीर्थेन नमःपदेन देवपरिपाट्या कार्य्यं तिलकार्य्यं यवैः सम्पाद्यम्।

दैवपक्षे—

ॐ अद्येत्यादि अमुकगोत्रस्यामुकस्यामुककर्म्मण्यभ्युदयार्थं अमुकगोत्राया नान्दीमुख्या मातुरमुकीदेव्या एवं पितामह्या एवं प्रपितामह्या-अमुकगोत्रस्य नान्दीमुखस्य पितुरमुकशर्म्मण एवं पितामहस्य एवं प्रपितामहस्य-अमुकगोत्रस्य नान्दीमुखस्य मातामहस्यामुकशर्म्मण एवं प्रमातामहस्य एवं वृद्धप्रमातामहस्य सश्रियाद्धे कर्त्तव्ये वसुसत्ययोर्विश्वेषां देवानां वृद्धिश्राद्धमनेन घृताद्युपकरणसहितेन भोज्येन युवयोरहं करिष्ये।

कुरुष्वेति प्रत्युत्तरं कुशमयब्राह्मणे तु युष्मदस्मत्प्रयोगो न कार्य्यः किन्तु कुशब्राह्मणयोरहं करिष्ये इति। सविधापितब्राह्मणाश्च प्रत्युत्तरं दद्युः।

ततो मातृपक्षे—

ॐ अद्येत्यादि अमुकगोत्रस्यामुकस्य अमुककर्माभ्युदयार्थममुकगोत्राया नान्दीमुख्या मातुरमुकीदेव्या एवं पितामह्या एवं प्रपितामह्या क्षणियाद्यमनेन सोपकरणेन युवयोरहं करिष्ये।

एवं पितृमातामहपक्षयोरपि। स्वजलेन श्राद्धियद्रव्याणि प्रोक्षयेत्। दैवादिक्रमेण करक्षालनार्थं ब्राह्मणकरेषु जलं दद्यात्। कुशब्राह्मणे तु बाधः।

ॐ वसुसत्यौ विश्वे देवा एतद्वः कुशासने नमः। अष्टकुशत्रयात्मकमासनद्वयमुत्सृज्य दद्यात्। ॐ अमुकगोत्रे नान्दीमुखि मातरमुकिदेवि एवं पितामहि एवं प्रपितामहि एते ते कुशासने नम इत्युत्सृज्य दद्यात्। एवं पितृमातामहयोरपि। शूद्रस्य तु एते तुभ्यं कुशासने नम इति प्रयोगः सर्वत्र ज्ञेयः।

ततः कृताञ्जलिः—ॐ विश्वान् देवानावाहयिष्ये इति पृष्ट्वा आवाहयेत्यनुज्ञातो द्विजाङ्गुष्ठं गृहीत्वा ॐ विश्वेदेवाः स आगतेत्यावाह्य ॐ अपहता इति यवान् विकीर्य ॐ विश्वेदेवाः शृणुतेममिति जपित्वा आगच्छन्तु महाभागा इति पठेत् कुशद्विजेऽङ्गुष्ठग्रहणबाधः।

ततो नान्दीमुखान् पितॄनावाहयिष्ये इति पृष्ट्वा आवाहयेत्यनुज्ञातः—

ॐ उशन्तस्त्वा निधीमह्युशन्तः समिधीमहि।
उशन्नुशत आवह नान्दीमुखान् पितॄन् हविषे अत्तवे॥

इत्यावाह्य अपहतेति यवान् विकीर्य्य-

ॐ आयान्तु नो नान्दीमुखाः पितरः-

सौम्यासो अग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः

अस्मिन्यज्ञे पुष्टा मदन्तोऽधिब्रुवन्तु ते अवन्त्वस्मान्।

इति जपेत्।

शूद्रस्तु ब्राह्मणद्वारा मन्त्रं पाठयन् नम इति जपेत्।

ततोऽर्घ्यपात्रमुत्तराग्रं संस्थाप्य ॐ पवित्रे स्थो वैष्णव्याविति मन्त्रेण प्रादेशप्रमाणं पवित्रं छित्वा ॐ विष्णोर्मनसा पूते स्थ इत्यभ्युक्ष्यार्घ्यपात्रे निधाय शन्नो देवीति अपो दत्त्वा यवोऽसीति यवं दत्त्वा तूष्णीं गन्धपुष्पदूर्व्वा निक्षिप्य दर्भान्तरेणाच्छाद्य एवं मातृ-पितृ ब्राह्मणाग्रतो मातॄणां तत्पूर्व्वं पितॄणां तत्पूर्व्वं मातामहानां प्रत्येकं पात्रत्रयमुदगग्रमुपर्य्युपरिक्रमेण स्थापयित्वा पूर्व्ववत् पवित्रच्छेदनादिकं कृत्वा *[नवपवित्राणि यथाक्रमं दत्त्वा] शन्नो देवीति प्रत्येकमपः क्षिप्त्वा—

"ॐ यवोऽसि सोमदेवत्यो गोसवो देवनिर्म्मितः।

प्रत्नमद्भिः पृक्तः पुष्टा नान्दीमुखान्

पितॄन् लोकान् प्रीणाहि नः स्वाहा॥

इति प्रतिपात्रं यवान् दत्त्वा तूष्णीं गन्धपुष्पदूर्व्वा निधाय कुशान्तरेणाच्छाद्य अच्छिद्रोऽयमर्घ्योऽस्त्विति प्रत्येकमुक्त्वा सर्व्वत्र दर्भानुद्धृत्य समाभ्यां दैवपात्रमुत्थाप्य वामहस्ते कृत्वा तदस्यं

* पुस्तके—[ ] चिह्नितांशो नास्ति।

पुष्पं पवित्रञ्च मागर्थं ब्राह्मणहस्ते दत्त्वा जलान्तरञ्च दत्त्वा या दिव्येति पठित्वा—

ॐ वसुसत्यौ विश्वे देवा एष वोऽर्घ्यो नमः।

इति दक्षिणहस्तेन विप्रकरोपरि जलं दद्यात्।

ततो मातरर्घ्यपात्रं हस्ताभ्यामुत्तोल्य वामहस्ते कृत्वा पंक्तिमूर्द्धन्यस्य करमध्येपां करोपरि स्थापयित्वा तत्र पवित्रं पूर्व्वाग्रं कृत्वा कराग्रामकं यथा स्यात्तथा निधाय तत्रस्थं पुष्पं जलान्तरञ्च दत्त्वा या दिव्या श्राप इति पठित्वा ॐ अमुकगोत्रे नान्दीमुखे मातरमुकि देवि एष तेऽर्घ्यो नम इति यथोदकं दद्यात्।

एवं पितामहीप्रपितामह्योरप्यर्घ्यं पङ्क्तिमूर्द्धन्यकरे दद्यात्। एवं पितृ-मातामहपक्षयोरपि तत्पङ्क्तिमूर्द्धन्यकर एवेति।

ततः पितामहादीनां पात्राणां पात्रस्थ यव-पुष्प-जलानि पितृपात्रे निधाय प्रपितामहपात्रेणाच्छाद्य न्युब्जीकृत्य कुशोपरि सकलन्यायिविप्रपार्श्वे उत्तरभागे स्थापयेत्। ततो दैवादिक्रमेण पार्व्वणवद्वाक्येन नान्दीमुखविशेषणवता गन्धादीनि नमःपदेन दद्यात्।

ततो मण्डलानि विधायाष्टौ पात्राणि दैवादिक्रमेण पातयित्वा पार्व्वणवदग्नौकरणहोमं कृत्वा हुतशेषं सर्व्वपात्रेषु दत्त्वा पिण्डार्थं किञ्चिदवस्थाप्य अन्नव्यञ्जनादि दैवादिक्रमेण परिवेषयेत्। अत्र मिष्टद्रव्य दधिबदरमूलामलकयवानां प्राशस्त्यम्।

अन्नेषु-प्रचुरघृतं दत्त्वा भूमिलग्नकुशेन पात्रब्राह्मणयोः स्पर्शं कारयित्वा अधोमुखहस्ताभ्यां प्रत्येकं सर्व्वपात्राण्यालभ्य—

ॐ पृथिवी त इति जपित्वा क्षम्य हव्यमिदं रक्षेत्युक्का, अभ्युक्ष्य—

ॐ इदं विष्णुरिति ॐ विष्णो हव्यं रक्षखेति मन्त्रद्वयेनाधोमुखद्विजाङ्गुष्ठं द्विजाभावे स्वाङ्गुष्ठमपि निधाय अपहता इति यवान् विकीर्य्य इदमन्नं इदं हविरिमा आप एतान्युपकरणानीति ब्राह्मणयोर्निवेद्य—

ॐ वसुसत्यौ विश्वे देवा एते वो अन्ने घृताद्युपकरणसहितसोदकं नम इत्युत्सृजेत्।

सव्याहृतिकां गायत्रीं जपित्वा ॐ मधु मधु मध्विति जपन् मधुनाभिघार्य्य—

मन्त्रहीनं क्रियाहीनं विधिहीनञ्च यद्भवेत्।
तत् सर्व्वमच्छिद्रमस्तु।

इत्युक्का यथासुखं वाग्यतौ जुषेथामिति वदेत्। अत्रमाध्यन्दिनस्य बाधः। भवन्तौ प्राशयेतामित्युक्का आपोशानजलं दद्यात्।

एवं मात्रादिपक्षेऽपि दैवपरिपाट्या सर्व्वं कार्य्यं, केवलमुत्सर्गवाक्ये विशेषः। ॐ अमुकगोत्रे नान्दीमुखि मातरमुकिदेवि एवं पितामहि एवं प्रपितामहि एतत्तेऽन्नं घृताद्युपकरणसहितं सोदकं नमः। एवं पितृ मातामहपक्षयोरपि।

ततः सव्याहृतिकां गायत्रीं मधुवातेति तृचं मध्विति त्रिकञ्च यज्ञेश्वरो हव्येति पुरुषसूक्तं त्रिसुपर्ण-सोमसोमादिकञ्च मङ्गल्यं पितृप्रकाशगमन्यत्रापयञ्च पठेत्।

वेणुवीणाध्वनिभिर्ब्राह्मणान् सन्तोष्य, तृप्तेषु ब्राह्मणेषु उच्छिष्टसन्निधावुत्तराग्रदर्भानास्तीर्य सयवान्नं गृहीत्वा—

ॐ अग्निदग्धाश्चेति जलेनाप्लाव्य विकीर्य कृताञ्जलिर्येषां न मातेति पठित्वाचम्यांशको दक्षिणकर्णं स्पृष्ट्वा हरिं स्मृत्वा मात्रादि-देवाससब्राह्मणेभ्य आपोशानार्थं जलगण्डूषान् दत्त्वा प्रणवव्याहृति-सावित्रीसहितां गायत्रीं मधुवातेति तृचं मध्विति त्रिकञ्च जपित्वा रुचिरं भवद्भिरिति दैवे, पैत्रे सम्पन्नमिति पृच्छेत्।

सुरुचितं सुसम्पन्नमिति प्रत्युत्तरं कुशमौद्याणे तृप्तिप्रश्नबाधः। शेषमन्नमप्यस्तीति पृच्छेत्। इष्टैः सह भुज्यतामित्युत्तरम्।

ततः पिण्डान्यहं करिष्य इति पृच्छेत्। कुरुष्वेत्यनुज्ञातो मातृपितृब्राह्मणयोः सम्मुखसमभागे उत्तरप्रवणां वेदीं कृत्वा जलेनाभ्युक्ष्य ॐ निहन्मीति पठित्वा पंक्तित्रयेण नवमण्डलिका उत्तराग्राः कार्य्याः।

तत्र पश्चिमे मातृपंक्तिं मध्ये पितृपङ्क्तिं पूर्व्वे मातामहपंक्तिं क्रमेण कृत्वा अपहता निहन्मीति च मन्त्रद्वयेनोत्तराग्रं रेखात्रयं पंक्तित्रये एकदर्भमूलेन कृत्वा तं दर्भमूलं उत्तरस्यां प्रक्षिप्य—

ॐ अमुकगोत्रे नान्दीमुखि मातरमुकि देवि एतत्ते यवोदक-मवनेनिक्ष्व नमः। इति क्रमेणोत्सृज्य यथायथं पंक्तित्रये मूलादि-क्रमेण नवमण्डलिकोपरि यवोदकानि दद्यात्। चीरावनेजने तु फलातिशयः।

तत्र समूलान् दर्भानास्तीर्य्य देवताभ्य इति त्रिर्जपित्वा सर्व्वस्मादन्नादग्रेणात् किञ्चित् किञ्चिदुद्धृत्य घृत-मधु-दधि-बदर-

यथानग्नौकरणशेषञ्च दत्त्वा विल्वफलोपमान् नवपिण्डान् कृत्वा दक्षिणहस्तेन ऋजुकुशत्रयसहितं पिण्डं गृहीत्वा वामहस्तस्थितजलप्रक्षेपञ्च ॐ अमुकगोत्रे नान्दीमुखि मातरमुकि देवि एतत्ते पिण्डं नम इति पिण्डं दर्भमूले दत्त्वा जलं स्पृशेत्।

एवं दर्भमध्याग्रयोः पितामही—प्रपितामह्योः पिण्डं देयम्। तत्पूर्व्वपंक्तिद्वये क्रमेण पित्रादीनां मातामहादीनाञ्च पिण्डा देयाः पिण्डान्तिके पिण्डशेषं विकीर्य्य पितृपचात्तरणकुशमूलेन लेपभुजः प्रीयन्तामिति हस्तं सम्मृज्य पिण्डपात्रे हस्तं प्रक्षाप्य तज्जलं प्रत्यवनेजनार्थं स्थापयित्वा त्रिराचम्य हरिं स्मरेत्। आचमनाशक्तौ दक्षिणकर्णस्पर्शः।

ॐ अत्र नान्दीमुखाः पितरो मादयध्वं

यथाभागमावृषायध्वम्।

इति जपित्वा प्राणायामत्रयं कृत्वा अशक्तौ यथाशक्ति श्वासं विधृत्य वसन्तायेति ऋतून् नमस्कृत्य पितॄन् भास्वरमूर्त्तिकान् ध्यात्वा—

ॐ अमीमदन्त नान्दीमुखाः पितरो यथाभागमावृषायिषत।

इति जपेत्।

ततः पात्रक्षालनजलं वामहस्तेन गृहीत्वा ॐ अमुकगोत्रे नान्दीमुखि मातरमुकि देवि एतत्ते जलं प्रत्यवनेनिक्ष्व नम इति मातृपिण्डे दत्त्वा अन्येषामपि यथार्थं दद्यात्।

ततो नीवीं विस्रंस्याचम्य दक्षिणकर्णं स्पृष्ट्वा सर्व्वानुद्दिश्याञ्जलिषट्कं कुर्य्यात्।

ॐ नमो वो नान्दीमुखाः पितरः शुषाय।
नमो वो नान्दीमुखाः पितरस्तपसे।
नमो वो नान्दीमुखाः पितरो यज्जीवन्तस्तस्मै।
नमो वो नान्दीमुखाः पितरो रसाय।
नमो वो नान्दीमुखाः पितरो घोराय।
मन्यवे पुष्टेन त्वा नान्दीमुखाः पितरो नमो वः॥

ततः शुक्लवस्त्रोद्भवदशाः सूत्रमात्रं वा पूर्ब्बवद्वाक्येन मात्रादिभ्यो दत्वा ॐ एतद्वो नान्दीमुखाः पितरो वास इति जपित्वा प्रत्येकं पित्रादिभ्यः षड्भ्यः सूत्रं पूर्ब्बवद्वाक्येन दद्यात्।

ततो मातृत्रयपिण्डान् तूष्णीमभिषिच्य पित्रादि-षट्पिण्डेषु—
ॐ ऊर्ज्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम्।

पुष्टयः स्थ तर्पयत मे नान्दीमुखान् पितॄन्॥
इति जलधारां दद्यात्। एवं मातामहादिपिण्डेषु।

ततो गन्धादिभिरष्टभिर्द्रव्यैस्तूष्णीं पिण्डानभ्यर्च्य पितॄन् भास्वरान् ध्यात्वा पिण्डानि सम्पन्नानि सन्त्विति वैनोक्ते किञ्चिन्नम्रीभूय पिण्डानुत्तोल्याघ्राय पात्रे स्थापयेत्। तत आचमनार्थमुदकादिकं द्विजेभ्यो देयम्। कुशद्विजे तु जलादिदानबाधः। स्वयमप्याचम्य सुसम्प्रोक्षितमस्त्विति विप्राग्रभूमिमभिषिच्य पश्चिमादीशानदिक्क्रमेण शिवा आपः सन्त्वित्यादिना सर्व्वत्र जलपुष्पाक्षतानि दद्यात्। सन्त्विति यथायथं विप्रोत्तरम्।

तत ॐ अमुकगोत्रा नान्दीमुख्यो मातरोऽमुकीदेव्यः सर्व्वेण, दत्तेनान्नपानादिना प्रीयन्तामिति यवोदकं दद्यात्। एवं पितामह्यादिभ्योऽष्टभ्यः प्रत्येकं बहुवचनान्तप्रयोगेनाद्यर्थं कृत्वा—

अघोरा नान्दीमुखाः पितरः सन्त्विति पृच्छेत्। सन्त्विति प्रत्युत्तरम्।

गोत्रं नो वर्द्धतामिति पृच्छेत्। वर्द्धतामिति प्रत्युत्तरम्।

दातार इत्यादिना पार्व्वणवदाशिषः प्रतिगृह्य उत्तराग्रान् दर्भान् पवित्राणि चार्घ्यसम्बन्धीनि भूमावास्तीर्य्य नान्दीमुखान् पितॄन् वाचयिष्ये इति पृच्छेत् वाच्यतामित्यनुज्ञातः—

ॐ नान्दीमुख्यो मातरः प्रीयन्तां नान्दीमुख्यः पितामह्यः प्रीयन्तां नान्दीमुख्यः प्रपितामह्यः प्रीयन्तां नान्दीमुखाः पितरः प्रीयन्तामित्यादिक्रमेण प्रत्येकं वदेत् प्रीयन्तामिति सर्व्वत्र प्रत्युत्तरम्।

पुनरर्घ्यं* वहन्तीरिति दृश्यद्वयेन जलधारया सेकः। ततोऽर्घ्यपात्रमुत्तानीकृत्य दैवे काञ्चनदक्षिणां मात्रादिषु द्राक्षामलकमूलानि तन्मूल्यं वा दक्षिणां दत्त्वा विश्वे देवाः प्रीयन्तामिति ब्रूहीति पृष्ट्वा देवद्विजहस्ते यवोदकं क्षिपेत् विश्वेदेवाः प्रीयन्तामिति तेनोक्ते देवताश्च इति विसर्जयेत्।

ततो वाजे वाजे इति कुशाग्रेण पितृमातामहान् देवांश्च विसृज्य भवद्भिरयं,ततार्योऽकृत इति प्रियवचनमुक्त्वा पंक्तिमूर्द्धन्य-

---

* अयमर्घ्ये मात्रादिषध्ये।

स्नानानुष्ठं पाणिं गृहीत्वा मात्रादिक्रमेण ब्राह्मणानुत्थाप्य आमा-वाजस्येत्यनुव्रज्य प्रदक्षिणीकृत्याभिवाद्य च गृहं प्रविश्याच्छिद्रं कृत्वा विष्णुं स्मृत्वा दीपं निर्वाप्य पिण्डांश्च जलादिषु निक्षिप्य हस्तपादान् प्रक्षाल्याचम्य प्रकृतं कर्म्म कुर्य्यात्।

---

## अथ सामगानां प्रयोगः।

प्रातःस्नातान् ब्राह्मणान् दण्डद्वयोपर्य्याहूय स्वागतं पृष्ट्वा पाद्यार्घ्याचमनीयानि दत्त्वा ब्राह्मणान् निमन्त्र्य श्राद्धस्थानं गत्वा भवतामभिप्रायेण सिद्धमित्यभिधाय यवोदकप्रोक्षिते प्रागग्रदर्भद्वय-युक्तासनद्वये भवतासध्वमिति प्राङ्मुखं देवब्राह्मणद्वयं पश्चिमे उपवेश्य दक्षिणस्यामुत्तराग्रदर्भैकयुक्तेषु उत्तरायासनेषु उदङ्-मुखान् पितृमातामहपक्षयोर्युग्मब्राह्मणानुपवेशयेत्।

तत्र पूर्व्वभागे पितृब्राह्मणौ तद्वामे मातामहब्राह्मणौ प्रदक्षिणक्रमेणोपवेशयेत्। कुशब्राह्मणे निमन्त्रणबाधः। प्रत्यासन-समीपे घृतेन तिलतैलेन वा श्राद्धसमाप्तिस्थायिनो दीपान् दद्यात्।

ततः शालग्रामशिलादौ यज्ञेश्वरमभ्यर्च्य ॐ यज्ञेश्वरो-हव्ये-त्यादि पठित्वा ॐ अपहतेति द्वारदेशे गृहाभ्यन्तरे च सर्व्वतो यवान् विकीर्य्य—श्रीविष्णुः श्रीपुण्डरीकाक्षः श्रीहरिरिति स्मृत्वा रक्षार्थं जलं प्रतिद्विजसमीपे स्थापयेत्।

ॐ उशन्तस्त्वा निधीमह्युशन्तः समिधीमहि।
उशन्नुशत आवह नान्दीमुखान् पितॄन् हविषे अत्तवे॥
ॐ आयान्तु नो नान्दीमुखाः पितरः सौम्यासो
अग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः।
अस्मिन् यज्ञे सुधया मदन्तोऽधिब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान्॥

इत्यावाह्य अपहतेतिति यवान् विकिरेत्।

ततो देवब्राह्मणाग्रभूमौ उत्तराग्रकुशोपरि अर्घपात्रमुत्तराग्रं संस्थाप्य—ॐ पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ इति प्रादेशप्रमाणं पवित्रं छित्वा—

ॐ विष्णोर्मनसा पूते स्थ इत्यनुमार्घ्यपात्रे निधाय शन्नोदेवी रित्यपो दत्त्वा यवोऽसीति यवान् दत्त्वा तूष्णीं गन्धपुष्पदूर्वा निक्षिप्य दर्भान्तरेणाच्छाद्य अच्छिद्रमिदमर्घ्यपात्रमस्त्विति वदेत्।

ततः पितृब्राह्मणाग्रतः पूर्व्वाग्रकुशोपरि पितृपात्रत्रयमुपर्य्युपरिक्रमेण पूर्व्वाग्रं स्थापयित्वा तद्दक्षिणे मातामहपात्रत्रयं पूर्व्वाग्रकुशोपरि पूर्व्वाग्रं कृत्वा उपर्य्युपरिक्रमेण स्थापयित्वा पूर्व्ववत् पवित्रच्छेदनादिकं कृत्वा षट् पवित्राणि यथाक्रमं दत्त्वा शन्नोदेवी रिति प्रत्येकमपः क्षिप्त्वा—

ॐ यवोऽसि सोमदेवत्यो गोसवो देवनिर्म्मितः।
प्रत्नमद्भिः पृक्तः पुष्ट्या नान्दीमुखान्।
पितॄन् लोकान् प्रीणाहि नः स्वाहा॥

इति प्रतिपात्रं यवान् दत्त्वा गन्धपुष्पदूर्व्वा निक्षिप्य

कुशान्तरेणाच्छाद्य अच्छिद्रमिदमर्घ्यपात्रमस्त्विति प्रत्येकमुद्धृत्य हस्ताभ्यामुत्तोल्य वामहस्ते कृत्वा तत्रस्थं पुष्पं पवित्रं प्रागग्रं ब्राह्मणहस्ते दत्त्वा जलान्तरं पुष्पान्तरञ्च दत्त्वा या दिव्या आप इति पठित्वा—

ॐ वसुसत्यौ विश्वे देवा एतद्वोऽर्घ्यं नमः।

इति दक्षिणहस्तेन विप्रकरोपरि जलं दद्यात्।

ततः पितुरर्घ्यपात्रं हस्ताभ्यामुत्तोल्य वामहस्ते कृत्वा पङ्क्तिमूर्द्धन्यस्य करमन्येषां करोपरि स्थापयित्वा तत्र पवित्रमुत्तराग्रं कृत्वा कराग्राग्रकं यथा स्यात्तथा निधाय तत्रस्थं पुष्पं जलान्तरं पुष्पा*न्तरञ्च दत्त्वा या दिव्या आप इति पठित्वा—

ॐ अमुकगोत्र नान्दीमुख पितरमुकशर्म्मन् एतत्ते सयवोदकमर्घ्यं "ये चात्र त्वामनु यांश्च त्वमनु तस्मै ते नमः" इति यवोदकं दद्यात्। एवं पितामहप्रपितामहयोरप्यर्घ्यं पङ्क्तिमूर्द्धन्यकर एवेति।

ततः पितामहादीनां पात्राणां पात्रस्थयवपुष्पजलानि पितृपात्रे निधाय प्रपितामहपात्रेणाच्छाद्य न्युब्जीकृत्य कुशोपरि मातामहश्राद्धब्राह्मणवामे दैवब्राह्मणदक्षिणे स्थापयेत्।

ततो दैवादिक्रमेण पार्व्वणवद्वाक्येन नान्दीमुखविशेषणवता गन्धादीनि नमःपदेन दद्यात्।

ततो मण्डलानि विधाय दैवादिक्रमेण षट्पात्राणि पात-

* (ख) पुस्तके—पुष्पान्तरञ्चेत्यधिकः पाठः।

यित्वा पार्श्वणवदग्नौकरणहोमं कृत्वा हुतशेषं सर्व्वपात्रेषु दत्त्वा पिण्डार्थं किञ्चिदवस्थाप्य अन्नव्यञ्जनादि दैवादिक्रमेण परिवेषयेत्।

अत्र सिद्धद्रव्य-दधि-बदर-मूलामलक यवानां प्राशस्त्यम्। अन्नेषु मधुरघृतं दत्त्वा भूमिलग्नकुशेन पात्रवामाङ्गुष्ठयोः स्पर्शं कारयित्वा अधोमुखहस्ताभ्यां प्रत्येकं सर्व्वपात्राण्यालभ्य ॐ पृथिवी ते इति जपित्वा—

हव्य कव्यमिदं* दत्तेत्युक्त्वा अभ्युक्ष्य ॐ विष्णो हव्यं रक्षस्वेति मन्त्रद्वयेनाधोमुखद्विजाङ्गुष्ठं द्विजाभावे स्वाङ्गुष्ठमपि निधाय अपहता इति यवान् विकीर्य—

इदमन्नं इदं हविरिमा आप एतान्युपकरणानीति ब्राह्मणहस्ते जलं दत्त्वा सव्याहृतिकां गायत्रीं जपित्वा मधुमन्त्रवर्जं मधु मध्विति जपन् मधुमयमन्नं कृत्वा ॐ वसुसत्यौ विश्वेदेवा एतदोऽन्नं घृताद्युपकरणसहितं सोदकं नम इत्युत्सृजेत्।

मन्त्रहीनं क्रियाहीनं विधिहीनञ्च यद्भवेत्।
तत्सर्व्वमच्छिद्रमस्तु।

इत्युक्त्वा यथासुखं वाग्यतौ जुषेथामिति वदेत्।

ब्राह्मणाभावेऽस्य बाधः। भवन्तौ प्राशयेतामित्युक्त्वा आपोशानजलं दद्यात्। एवं पित्रादिपक्षेऽपि दैवपरिपाट्या सर्व्वं कार्य्यं केवलमुत्सर्गवाक्ये विशेषः।

अमुकगोत्र नान्दीमुख पितरमुकशर्म्मन् एवं पितामह एवं

---

* क पुस्तके—हव्यमिदम्।

प्रपितामह एतत्तेऽन्नं घृताद्युपकरणसहितं सोदकं ये चात्र त्वामनु यांश्च त्वमनु तस्मै ते नम इति। एवं मातामहपक्षेऽपि।

ततः सव्याहृतिकां गायत्रीं मधुवातेति त्र्यृचं मध्विति त्रिकञ्च यथेश्वरो ह्यर्थेति पुरुषसूक्तं विष्णुपर्ण-सोमसामादिकञ्च मन्त्रं* पितृप्रकाशकमन्त्रस्तववर्ज्जं पठेत्। वेणुवीणाध्वनिभिर्ब्राह्मणान् सन्तोष्य भुञ्जानेषु ब्राह्मणेषु उच्छिष्टसन्निधौ पूर्व्वोपदर्भोपरिस्तीर्य सर्व्वप्रकारमन्नं सयवं गृहीत्वा ॐ अग्निदग्धायेति जलेनाप्लाव्य विकीर्य्य कृताञ्जलिर्येषां न मातेति पठित्वाचम्यागत्य दक्षिण-कर्णं स्पृष्ट्वा हरिं स्मरेत्।

ततो भुक्तवत्सु ब्राह्मणेषु तर्पितं भवद्भिरिति दैवे पैत्रे सम्पन्नमिति पृच्छेत्। सुतर्पितं सुसम्पन्नमित्युत्तरं कुर्य्युर्ब्राह्मणा इतिप्रश्नबाधः।

ततः पित्रादिक्रमेण ब्राह्मणेभ्यो जलगण्डूषान् दत्त्वा शेषमन्न-मप्यस्तीति पृच्छेत् इष्टैः सह भुज्यतामित्युत्तरम्।

ततः पिण्डदानमहं करिष्य इति पृच्छेत् कुरुष्वेत्युक्तः पितृ-सम्मुखभागे उच्छिष्टसन्निधौ पूर्व्वप्रवणां वेदीं कृत्वा जलेनाभ्युक्ष्य निहन्मीति पठित्वा पङ्क्तिद्वये पयमण्डलिकाः पूर्व्वाग्राः कार्य्याः।

उत्तरे पितृपङ्क्तिं तद्दक्षिणे मातामहपङ्क्तिं प्रदक्षिणक्रमेण कृत्वा साग्रकुशगुच्छत्रयात्मिकां प्रादेशप्रमाणां पिञ्जलीं वामहस्तेन गृहीत्वा तां दक्षिणहस्तेनादाय उभाभ्यां हस्ताभ्यां धृत्वा—

* क पुस्तके—मन्त्रम्।

ॐ अपहता निहन्मीति च मन्त्रद्वयेन पूर्व्वाग्रं रेखाद्वयं पंक्ति-द्वये कृत्वा तां पिञ्जलीमुत्तरस्यां दिशि त्यक्त्वा जलेनाभ्युक्षेत्।

ततो रेखायां सकृदाछिन्नान् समूलान् पूर्व्वाग्रान्दर्भानास्तीर्य्य ॐ एत नान्दीमुखाः पितरः सौम्यास इति मन्त्रेण पितॄनावाह्य तिलान् विकीर्य्य सयवपुष्पं जलपात्रं वामहस्ते धृत्वा—ओं अमुकगोत्र नान्दीमुख पितरमुकशर्म्मन्नेतत्ते जलमवनेनिक्ष्व ये चात्र त्वामनु यांश्च त्वमनु तस्मै ते नम इति कुशमूले अवनेजनं दत्वा जलं स्पृशेत्।

एवं पितामह प्रपितामहयोः कुशमध्याग्रयोर्दद्यात् एवं मातामहादीनामपि यथोदकं दद्यात् चौरावनेजने तु फलातिशयः।

ततो देवताभ्य इति त्रिर्जपित्वा सर्व्वस्मादन्नादग्रेयात् किञ्चिदुद्धृत्य घृत मधु-दधि-बदर यवानन्नीकरणशेषञ्च दत्वा विल्वफलोपमान् षट् पिण्डान् दत्वा दक्षिणहस्तेन सशुक्लकुशत्रयसहितं पिण्डं गृहीत्वा मधुवातेति तृचं

ॐ अक्षन्नमीमदन्त ह्यवप्रिया अधूषत
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा-
नविष्ठया मती योजान्विन्द्रते हरी॥

इति जपित्वा वामहस्तस्थजलप्रक्षेपेण—

ॐ अमुकगोत्र नान्दीमुख पितरमुकशर्म्मन्नेष ते पिण्डो ये चात्र त्वामनु यांश्च त्वमनु तस्मै ते नम इति दर्भमूले पिण्डं दत्वा जलं स्पृशेत् एवं दर्भमध्याग्रयोः पितामहप्रपितामहयोः पिण्डद्वयं देयं एवं तद्दिने मातामहादीनां पिण्डा देयाः।

ततः पिण्डाग्निसके पिण्डशेषं विकीर्य पितृपात्रास्तरणकुशमूलेन ॐ लेपभुजः प्रीयन्तामिति हस्तं सम्मार्ज्य पिण्डपात्रे करं प्रक्षाल्याचम्य हरिं स्मरेत् आचमनाशक्तौ दक्षिणकर्णस्पर्शः ।

पादप्रक्षालनजलं वामहस्ते गृहीत्वा ॐ अमुकगोत्र नान्दीमुख पितरमुकशर्म्मन् एतत्ते जलं अवनेनिक्ष्व ये चात्र त्वामनु यांश्च त्वमनु तस्मै ते नम इति पितृपिण्डे दत्वा जलं स्पृशेत् एवमन्येषामपि पिण्डेषु यथायथं दद्यात् ।

ततः कृताञ्जलिः—अत्र नान्दीमुखाः पितरो मादयध्वं यथाभागमावृषायध्वमिति जपेत् ।

ततो वामावर्त्तेनोदङ्मुखो भूत्वा प्राणायामत्रयं कृत्वाशक्तौ यथाशक्ति श्वासं विधृत्य वसन्तायेति षड़ृतून् नमस्कृत्य पितॄन् भास्वन्मूर्त्तिकान् ध्यात्वा—

ॐ अमीमदन्त नान्दीमुखाः पितरो
यथाभागमावृषायिषत ।

इति जपन् तेनैव पथा प्रत्यावृत्य श्वासं मुञ्चेत् ।

ततः समुदित-षट्पितृमुद्रिकाञ्जलिद्वयं कुर्य्यात् ॐ नमो वो नान्दीमुखाः पितरो नान्दीमुखाः पितरो नमो व इति ।

ततः ॐ गृहान्नान्दीमुखाः पितरो दत्त इति गृहावेक्षणं कृत्वा ॐ सदोवो नान्दीमुखाः पितरो देष्म इति पिण्डानामुद्वीक्षणं कुर्य्यात् ।

ततः श्वेतवस्त्रभवा दशा अभावे सूत्रमात्रं मेषलोमानि वा वामहस्ते गृहीत्वा ॐ एतद्वो नान्दीमुखाः पितरो वास इति

प्रत्येकं जपित्वा पूर्व्ववद्वाक्येन प्रत्येकं पित्रादिभ्यः षड्भ्यः सूत्रं दद्यात्। ततः—

ॐ ऊर्ज्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम्।
पुष्टयः स्थ तर्पयत मे नान्दीमुखान् पितॄन्॥

इति पितृब्राह्मणं पृच्छेत्। सुसम्पन्नाः सन्त्विति तेनोक्ते पिण्डान् किञ्चिच्चालयित्वा विप्रेभ्यः पित्रादिक्रमेणाचमनाय जलादिकं दद्यात्। [*ततस्तूर्णीं गन्धादि।] ब्राह्मणाभावे जलदानबाधः।

तत आचान्तेषु ब्राह्मणेषु स्वयमप्याचम्य सुसमोक्षितमस्त्विति विप्राग्रभूमिमभिषिच्य पार्व्वणवत् देवादिक्रमेण शिवा आपः सन्त्वित्यादिना जलपुष्पाक्षतानि दद्यात् सन्त्विति यथायथं विप्रोत्तरम्।

ततः—ॐ अमुकगोत्रस्य नान्दीमुखस्य पितुरमुकदेवशर्म्मणः सर्व्वं दत्तमिदमन्नपानादिकमक्षय्यमस्त्विति पितृब्राह्मणकरे यवोदकं दद्यात् एवं पितामहादीनां पञ्चानां प्रत्येकं देयं सर्व्वत्रास्त्विति प्रत्युत्तरम्।

ॐ अघोरा नान्दीमुखाः पितरः सन्त्विति पृच्छेत् सन्त्वित्युत्तरम्। गोत्रं नो वर्द्धतामिति पृच्छेत् वर्द्धतामित्युत्तरम्। ततो नान्दीमुखाः पितरः प्रीयन्तामिति ब्रूहीति देवब्राह्मणं वदेत् तेनापि नान्दीमुखाः पितरः प्रीयन्तामित्युक्तेऽर्घपात्रस्थानि

* क पुस्तके—[ ] चिह्नितांश वर्त्तते।

पूर्व्वाग्राणि पवित्राणि दर्भांश्च पिण्डोपर्य्यास्तीर्य्य पित्रादि-माल्यमाप्टच्छेत्।

ॐ नान्दीमुखान् पितॄन् वाचयिष्ये इति वाच्यतामित्यनुज्ञातः-ॐ नान्दीमुखेभ्यः पितृभ्यः प्रीयन्तां नान्दीमुखेभ्यः पितामहेभ्यः प्रीयन्तां ॐ नान्दीमुखेभ्यः प्रपितामहेभ्यः प्रीयन्तामित्यादिक्रमेण प्रत्येकं षट्पितृनुद्दिश्य पृच्छेत् प्रीयन्तामिति सर्व्वोत्तरम्।

ततः पूर्व्ववत् पुनः—ऊर्ज्जं वहन्तीरिति हस्तद्वयेन जल-धारया पिण्डसेकः। ततोऽर्घ्यपात्रमुत्तानीकृत्य दैवे काञ्चनदक्षिणां पित्रादिषु द्राक्षामलकमूलानि तन्मूल्यं वा दक्षिणां दत्वा ॐ विश्वेदेवाः प्रीयन्तामिति पृष्टोऽनुज्ञा देवद्विजहस्ते यवोदकं चिपेत्।

ॐ विश्वेदेवाः प्रीयन्तामिति तेनोक्ते यार्थ्यवत् दातार इत्यादिनाशिषः प्रतिगृह्य देवताभ्य इति त्रिर्जपेत्। ततो वाजे वाजे इत्यनेन पितृमातामहान्देवांश्च विसृज्य भवद्भिरहं कृतार्थी-कृत इति प्रियवचनमुक्ता पंक्तिमूर्द्धन्यस्याङ्गुष्ठवर्जितं पाणिं गृहीत्वा पित्रादिक्रमेण ब्राह्मणानुत्थाप्य उदकपात्रं गृहीत्वा आमावाजस्येत्यनुव्रज्य वारिधारया प्रदक्षिणीकृत्याभिवाद्य च तैरनुज्ञातो गृहं प्रविश्याच्छिद्रं कृत्वा विष्णुं स्मृत्वा दीपं निर्व्वाप्य पिण्डांश्च जलादिषु निक्षिप्य हस्तपादान् प्रक्षाल्याचम्य प्रकृतं कर्म्म कुर्य्यात्।

एतच्च वृद्धिश्राद्धं जीवत्पितृकेणापि कार्य्यमित्याह छन्दोग-परिशिष्टम्—

सपितुः पितृकार्य्येषु अधिकारो न विद्यते।
न जीवन्तमतिक्रम्य किञ्चिद्दद्यादिति श्रुतिः॥
पितामहे म्रियमाणे पितुः प्रेतस्य निर्वपेत्।
पितुस्तस्य च वृत्तस्य जीवेच्चेत् प्रपितामहः॥
पितुः पितुः पितुश्चैव तस्यापि पितुरेव च।
कुर्य्यात् पिण्डत्रयं यत्र संस्थितः प्रपितामहः॥
जीवन्तमति दद्याद्वा प्रेतायान्नोदके द्विजः।
पितुः पितृभ्यो वा दद्यात् सपितेत्यपरा श्रुतिः॥

पितृकृत्येषु पिण्डपितृयज्ञपार्व्वणादिषु जीवज्जनकस्याधिकारो नास्ति हेतुमाह न जीवन्तमिति सपितुरित्यत्र पितृपदमधिकारि पितृपरं तेन पतिते प्रव्रजिते वा अचिकित्स्यरोगजरादिना अक्षमे वा पितरि जीवत्यपि पितृकृत्येऽधिकारोऽस्ति।

अतएव तत्रैव परिशिष्टम्—

ब्राह्मणादिहते ताते पतिते सङ्गवर्ज्जिते।
व्युत्क्रमाच्च मृते देयं येभ्य एव ददात्यसौ॥

ब्राह्मणादि इत्यादिशब्दात् चण्डालादीनां ग्रहणं पतिते-रिपतरि सङ्गवर्ज्जिते प्रव्रजिते च जीवत्यपीत्यर्थः। व्युत्क्रमात् गल-पाशादिनेत्यर्थः। मृतपितृकस्य तु जीवत्यपि पितामहादौ सर्व्वेषु पितृकृत्येष्वधिकारमाह पितामह इति म्रियमाणे जीवति प्रेतस्य मृतस्य पितुरेव निर्वपेत् न तु जीवन्तं पितामहमति प्रपिता-महस्यापीति।

यथा हारीतः—

पितामहे संजीवे वै पितर्य्येव समापयेत् ।

मृतस्य मृतस्य तस्य पितामहस्य पितुर्योभयोरेव निर्व्वपेत् । पितुर्जनकस्य पितुः पितुः पितामहस्य तस्यापि पितुः प्रपितामहस्येत्यर्थः ।

पक्षान्तरमाह जीवन्तमति दद्यादेति हेतुमाह सपिता पितुः पितृभ्यो दद्यादित्यपरा स्मृतिरस्ति ।

तथा च हारीतः—

जीवे पितरि वै पुत्रः श्राद्धकालं विवर्ज्जयेत् ।
येषां वापि पिता दद्यात्तेषामेके प्रचक्षते ॥

नन्वेवं स्मृतिद्वयविरोधः कथं परिहरणीयः । सत्यं पुत्रजन्मनामकरणादिनिमित्तक-वृद्धिश्राद्धविषयं जीवन्तमति दद्यादेति वचनं, न जीवन्तमतिक्रम्येति वचनं तदितरपितृकृत्यविषयम् । यद्वा पूर्व्ववचनं तर्पणपार्व्वणादिषु सकलपितृकृत्येषु नित्याधिकारनिषेधार्थं उत्तरवचनन्तु उपकारातिशयादेच्छिकानुष्ठानार्थम् । कर्म्माङ्गत्वादवश्यमनुष्ठेयमन्यथा कर्म्मवैगुण्यप्रसङ्ग इति भावः ।

मनुः—

म्रियमाणे तु पितरि पूर्व्वेषामेव निर्वपेत् ।
विप्रवद्वापि तं श्राद्धे स्वकं पितरमाशयेत् ॥
पिता यस्य तु वृत्तः स्यात् जीवेच्चापि पितामहः ।
पितुः स नाम संकीर्त्य कीर्त्तयेत् प्रपितामहम् ॥

पितामहो वा तच्छ्राद्धं भुञ्जीतेत्यब्रवीन्मनुः।
कामादा तदनुज्ञातः स्वयमेव समाचरेत्॥

पितुः पूर्व्वेषां पुरुषत्रयाणामित्यर्थः पक्षान्तरमाह विप्रवदिति श्राद्धे श्राद्धनिमित्तं तं पितरं विप्रवदादराद्यतिशयेन भोजयेत् तेन जीवन्तं पितरमादौ भोजयित्वा पुरुषद्वयस्य श्राद्धं कर्त्तव्यमित्यर्थो न तु जीवतोऽपि पितुस्तस्मिन् श्राद्धं कर्त्तव्यम्।

पितरं भोजयित्वा तु पिण्डौ निर्व्वपयात् परौ।
इति यमपार्श्वपरिशिष्टवचनात्।

पिता यस्येति नामसंकीर्त्तनमत्र श्राद्धोपलक्षणं प्रपितामह-मित्यत्र वृद्धप्रपितामहकीर्त्तनमपि ज्ञेयम्।

यस्य पिता प्रपितामहश्च प्रेतौ स्यातां स पित्रे पिण्डं निधाय पितामहात्परं द्वाभ्यां दद्यात्।
इति विष्णुवचनात्।

पितामहो वेतियाद्वे श्राद्धार्हद्रव्यं श्राद्धकर्म्मणो भोजना-सम्बन्धात् तेन जीवन्तम् पितामहं श्राद्धार्हद्रव्यैरादौ भोजयित्वा पितुः प्रपितामहस्य च श्राद्धं कुर्य्यादित्यर्थः।

यत्र—

जीवेत् पितामहो यस्य पिता चान्तरितो भवेत्।
पितुरेकस्य दातव्यमेवमाहुर्मनीषिणः॥
त्रीन् वा पिण्डान् समारोप्य मध्यमं तेन भोजयेत्।
द्वौ पिण्डौ ब्राह्मणे दद्यादग्नावप्सु वा क्षिपेत्॥

इति यज्ञपार्श्वपरिशिष्टवचनं तस्यायमर्थः..पितृप्रपितामहवत् जीवत्पितामहस्यापि तदुद्देशेन ब्राह्मणरहितं श्राद्धं कृत्वा श्राद्धद्वये ब्राह्मणान्तरवत् पितामहमपि तेन श्राद्धियद्रव्येण भोजयेत्। अथवाग्नौ जले वा श्राद्धियद्रव्यं क्षिपेत् न तु साक्षात् पितामहे श्राद्धं करणीयं एतत्तु शाखान्तरीयमेव बहूनामननुमतत्वात्। कामाद्देति—तेन जीवता अनुज्ञातः काममभिलषितं वाचरेत्। तत्प्रीत्यैव श्राद्धफललाभात् तच्छ्राद्धं न चरेदित्यर्थः।

विष्णुः—

पितरि जीवति यः श्राद्धं कुर्य्यात् येषां पिता कुर्य्यात् तेषां कुर्य्यात्, पितरि पितामहे च जीवति येषां पितामहः, पितरि पितामहे प्रपितामहे च जीवति नैव कुर्य्यात्, यस्य पिता प्रेतः स्यात् स तस्मै पिण्डं निधाय प्रपितामहात्परं द्वाभ्यां दद्यात् यस्य पिता पितामहश्च प्रेतौ स्यातां स ताभ्यां पिण्डौ दत्त्वा पितामह-पितामहाय दद्यात्, यस्य पितामहः प्रेतः स्यात् स तस्मै पिण्डं निधाय प्रपितामहात्परं द्वाभ्यां दद्यात् यस्य पिता प्रपितामहश्च प्रेतौ स्यातां स पित्रे पिण्डं निधाय पितामहात् परं द्वाभ्यां दद्यात्।

मातामहानामप्येवं श्राद्धं कुर्य्याद्विचक्षणः।
मन्त्रोहेण यथान्यायं शेषाणां मन्त्रवर्जितम्॥

पितरि जीवतीति अन्येषु मृतेष्विति शेषः। यस्य पिता प्रेतः स्यादिति पितामहप्रपितामहयोर्जीवतोरिति शेषः।
यस्य पिता पितामहश्चेति प्रपितामहे जीवतीति शेषः।

यस्य पितामहः प्रेतः स्यादिति पितरि प्रपितामहे च जीवतीति शेषः। यस्य पिता प्रपितामहश्चेति पितामहे जीवतीति शेषः। मातामहानामिति एवं पूर्व्वोक्तं सर्व्वं मातामहादीनां त्रयाणामप्यतिदिष्टम्।

मन्त्रोहेऽपीति प्रकृतौ समवेतार्थकमन्त्रे विकृतौ यत्पदमसमवेतार्थं स्यात् तत्र समवेतार्थकपदप्रक्षेपेण श्राद्धं कार्य्यं यत्तु प्रकृतावसमवेतार्थकं पदं तत्र नास्त्यूहोऽदृष्टार्थकत्वादिति प्रागेव व्याख्यातमिदं वचनमेकोद्दिष्टप्रकरणे।

इति जीवत्पितृकश्राद्धम्।

---

## अथ नित्यश्राद्धम्।

यमः—

दद्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन वा।
पयोमूलफलैर्वापि पितृभ्यः प्रीतिमावहन्॥

आदिपुराणम्—

अप्येकं भोजयेच्छ्राद्धे षण्णामप्यन्वहं गृही।
षट्सप्ताः षडरत्न्यग्ने चक्रे पैते षडन्विता॥

षण्णां पितॄणां श्राद्ध इत्यर्थः। सनकादिश्राद्धवत्र कार्य्यम्।

छन्दोगपरिशिष्टम्—

पितृभ्य इदमित्युक्त्वा स्वधाकारमुदीरयेत्।

हन्तकारं मनुष्येभ्यस्तदन्ते निनयेदपः॥

ब्रह्मपुराणे—

नित्यश्राद्धमदैवं स्यान्मनुष्यैः सह गीयते।

कार्ष्णाजिनिः—

दर्भांश्चैवासने दद्यान्न तु प्राची कदाचन।

पितृदेवमनुष्याणामेवं हि श्रुतिर्गायती॥

मनुष्यैः सह गीयत इति ब्रह्मपुराणात् सनकादिश्राद्धं स्वतन्त्रमप्येकप्रयोगेणैव कार्य्यं तच्च प्रत्यङ्मुखेनोदङ्मुखेन वेति।

यथा श्रुतिः—

प्राचीं देवा अभजन्त दक्षिणां पितरः प्रतीचीं मनुष्या उदीचीं वेति।

अयञ्च व्यवस्थितविकल्पो वेति हन्तकारेण मनुष्यान् सनकादिकान्।

कुशस्य मध्यदेशेन तृतीयेन तूदङ्मुखः।

इति तर्पणे योगियाज्ञवल्क्यदर्शनात् अथर्य्योदङ्मुखेन निवीतिना कार्य्यं न तु प्रत्यङ्मुखेनेति तेषां तर्पणे गोभिले तथा दर्शनात्।

निवीतं मनुष्याणामिति च श्रुतिः।

मत्स्यपुराणे—

नित्यं तावत् प्रवक्ष्यामि अर्घ्यावाहनवर्जितम्।

हारीतः—

नित्यश्राद्धमदैवं स्यादर्घ्यपिण्डादिवर्जितम्।

अत्रार्घ्यादिनिषेधात् पार्व्वणधर्मातिदेशप्राप्तेनिषिद्धेतर-पार्व्वणेतिकर्त्तव्यतया कार्य्यम्।

आदिशब्दाद्दक्षिणाक्षयवचनयोर्निषेध इति प्राञ्चः।

सन्ध्यादिवन्नित्यकर्म्मणि दक्षिणाभाव इत्यन्ये॥

श्रीदत्तस्तु—

पिण्डादिकार्य्यकलापानां वर्जनमुक्ताऽर्घोत्सर्गपर्य्यन्तमेव कार्य्य-मित्याह।

नित्यश्राद्धं होमपिण्डवर्ज्जमिति जातुकर्ण्यवचनात् अग्नौ-करणनिषेधः तदभावे च हुतशेषदानाद्युक्तमन्त्रलिङ्गाद्य पात्रा-लम्भनबाधः।

अत्र गृहस्थस्य प्रत्यहभोजनद्वय-मत्स्यमांसभक्षण-मैथुन-विधानात् प्रत्यहकर्त्तव्यनित्यश्राद्धे पूर्व्वदिनविहित निरामिष-सकृद्भोजनादीनां श्राद्धदिनविहितानाञ्च नियमानामनियमः।

एतन्मूलकमेव भविष्यपुराणवचनम्—

नित्यश्राद्धमहोमं स्यात् दातृभोक्तृव्रतोज्झितम्॥

काशीखण्डेऽपि—

नित्यश्राद्धं दैवहीनं नियमादिविवर्ज्जितम्।

दक्षिणारहितं कार्य्यमर्घ्यपिण्डोज्झितं तथा॥

पारस्करः—

उद्धृत्यान्नं ब्राह्मणायावनेज्य दद्यात् स्वस्ति इति।

अस्यार्थः—

सर्व्वस्मादस्मात् किञ्चित् किञ्चिदुद्धृत्य अवनेज्य संकल्प्य पृथक्-श्रुतिकल्पनाभिया पार्व्वणवत् सम्बोधनान्तवाक्येनैव ब्राह्मणाय दद्यात् श्राद्धं कुर्य्यात् किन्तु मनुष्यश्राद्धे स्वधास्थाने हन्तप्रयोगः कार्य्य इत्यर्थः।

सनकादीनाञ्च हन्तप्रयोगे चतुर्थ्यनुपपत्तेः षष्ठ्यन्त एव प्रयोगोऽनिरुद्धशूलपाणिप्रभृतीनां सम्मतः। तथापि सनकादीनां सम्बोधिततया देवत्वाश्रुततया च नमःपदेनैव दानाच्छब्दार्थयोर्न कश्चिद्विशेषः। प्रयोगस्तु क्रियाकौमुद्यां द्रष्टव्यः।

श्राद्धाशक्तौ केवलामोत्सर्गोऽपि कार्य्यः।

छन्दोगपरिशिष्टे—

अप्येकमाशयेच्छ्राद्धे पितृकार्य्यार्थसिद्धये।

इति षडुद्देशेन एकमप्याशयेदिति श्राद्धमुक्त्वा तत्राप्यसामर्थ्ये—

अप्युद्धृत्य यथाशक्ति किञ्चिदन्नं यथाविधि।
पितृभ्योऽथ मनुष्येभ्यो दद्यादहरहर्द्विजे॥

इत्यनेनामोत्सर्गमात्रं कर्त्तव्यमिति विधाय तद्वाक्याकारतया—

पितृभ्य इदमित्युक्त्वा स्वधाकारमुदीरयेत्।
हन्तकारं मनुष्येभ्यस्तदन्ते निनयेदपः॥

इत्यनेनाकलितं पित्रादिषट्कमुद्दिश्य पितृभ्यः स्वधेति बलिदानवत् पितृभ्य इदमन्नं स्वधा मनुष्येभ्य इदमन्नं हन्तेति वाक्यरचनापि दर्शितोक्ता।

कर्म्मभेदाच्छादवाक्यतः श्रुतिभेदकल्पनापि न दोषाय इति। अत्र तु हस्तयोगे चतुर्थी वाचनिकी वा तादर्थ्ये विवक्षया वेति ध्येयम्।

गरुड़पुराणे—

एष श्राद्धविधिः प्रोक्तः पठितः पापनाशनः।
अनेन विधिना श्राद्धं कृतं वै यत्र कुत्रचित्।
अक्षयं स्यात् पितॄणान्तु स्वर्गप्राप्तिस्तथा ध्रुवा॥
गोविन्दानन्दकृतिना कृतेयं श्राद्धकौमुदी।
कृतिनः कलयन्त्वत्र कौतुकाद्बुद्धिकौशलम्॥
यच्चिन्तनं भवविनाशभयं निहन्ति
यत्कीर्त्तनं भुवनमङ्गलमातनोति।
यद्वन्दनं निखिलमीप्सितमुच्चिनोति
सोऽस्यां हरिः कृतधियां धियमादधातु॥

इतिश्रीगोविन्दानन्दकविकङ्कणाचार्य्यविरचिता
श्रीमच्छ्राद्धकौमुदी समाप्ता।

---

## श्राद्धकौमुदीधृतकतिपयवेदमन्त्राणां मूलस्थानसङ्केताः।

| श्राद्धकौमुद्याः | | मन्त्राः | मूलवेदस्थानानि |
|---|---|---|---|
| पृः। | मन्त्रम्। | | |
| २४८ | २० | आमावाजस्य | यजुःसं माध्यन्दिनीशाखा। ८ अ। १८ मः। |
| २१५ | २१ | आयान्तु नःपितरः | १८ अ। ५८ मः। |
| ५३० | १६ | आयुष्यं वर्चस्यं | ३४ अ। ५० मः। |
| २४० | ६ | इदं विष्णुर्विचक्रमे | ५ अ। १५ मः। |
| ५०८ | १५ | अक्षन्नमीमदन्त | ३ अ। ५१ मः। |
| ४०४ | ११ | ऊर्जं वहन्तीः | २ अ। ३४ मः। |
| ५४४ | १ | उशन्तस्त्वा | १९ अ। ७० मः। |
| १२१ | ८ | ओषधयः समवदन्त | १२ अ। ९६ मः। |
| ५३१ | २ | तच्चक्षुर्देवहितं | ऋग्वेद सं ५ अष्टः ५ अध्या ११ वर्ग १६ सूक्तम्। |
| | | पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ | यजुः सं १ अ। १२ म। |
| ५३० | ११ | वसोः पवित्रमसि | यजुः सं १ अ। २ म। |

ष्टः। पङ्क्ताम्।

| | | | |
|---|---|---|---|
| २४८ | ११ | वाजे वाजेऽवत | ऋक् सं |
| | | | ५ अष्टक ४ अध्याय ५ वर्ग ३य सूक्तम्। |
| २३५ | ५ | विश्वेदेवा: स आगत | ऋक् सं |
| | | | ५ अष्टक ४ अध्याय ५ वर्ग ३य सूक्तम्। |
| २३५ | ८ | विश्वेदेवा: शृणुतेमं | यजु सं |
| | | | ३३ अ। ३४ म। |
| २३५ | ८ | शन्नो देवीरभीष्टये | यजु: सं |
| | | | ३६ अ। १२ म। |

## कतिपयानिर्द्दिष्टनाम्नामेतदुल्लिखितानामुद्देशः ।

| पृष्ठायाम् । | पङ्क्ताम् । | |
|---|---|---|
| १२६ | २ | केचिदित्यनेन मिताक्षरामतनुपन्यस्य दूषितम् । |
| १२६ | १२ | न चेत्यनेन श्रीदत्तमतं दूषितम् । |
| २७० | १८ | केचिदिति कल्पतरुमतमुद्घाटितम् । |
| २८८ | ६ | केचिदिति मिश्रमतं दूषितम् । |
| २८७ | ८ | केषाञ्चिदिति मिश्रमतं दूषितम् । |
| ३०४ | २ | अन्येस्त्वित्यनेन शूलपाणिमतं दूषितम् । |

# शुद्धिपत्रम् ।

| पृष्ठा: । | पङ्क्ति । | | |
|---|---|---|---|
| २६ | १० | यद्वेन ... | ... यावेन । |
| ३८ | १५ | भिचार्त्तं ... | ... भिचार्थम् । |
| ७० | ३ | गोगिले ... | ... गोभिले । |
| ११२ | १६ | तै च वच्या ... | ... तैच रच्या: । |
| २२५ | ४ | योऽग्रीट ... | ... योऽग्नीयात् । |
| १६४ | १५ | मङ्गह ... | ... मङ्गुह । |
| २७८ | १ | कार्व्यैर्य्यं ... | ... कर्संर्य्यं । |
| ३२८ | १२ | हातीत— ... | ... हारीत— । |
| ४१७ | १२ | निर्दिग्रेत् ... | ... निर्दिंग्रेत् । |
| १३५ | २१ | तन्मत्व ... | ... तन्चत्वम् । |
| १५० | ५ | भजकर्णं ... | ... भजाकर्णं । |
| २८२ | २१ | युक्तपत्त ... | ... युक्ताक्षपयपत्त । |
| ४५७ | ७ | यस्य ... | ... स्वस्य । |
| ४५८ | ८ | पितरा ... | ... पिता |
| ४६५ | २० | पिण्ड ... | ... मपिण्ड । |
| ४८० | १ | मात्तण्ड ... | ... मार्त्तण्डे । |
| ५१० | १४ | सुष्या: ... | ... सुष्या । |
| १२१ | ८ | ममभदन्त ... | ... ममयदन्त । |
| [illegible] | [illegible] | [illegible] ... | ... [illegible] |